राजपूताने का इतिहास

पांच भागों में

द्वितीय भाग

सम्पादक

श्री सुखवीरसिंह गहलोत,
एम. ए. (हिन्दी व इतिहास)

श्री जी. आर. परिहार,
एम. ए. (इतिहास व राजनीति)
अध्यक्ष, इतिहास व राजनीति विभाग,
गवर्नमेण्ट कॉलेज, श्री गंगानगर

राजपूताने का इतिहास

(संस्कृत पुस्तकों, फारसी तवारीखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और ख्यातों आदि के आधार पर प्राचीन समय से वर्त्तमान काल तक का समस्त राजपूताना प्रान्त का सचित्र इतिहास)

(पांच भागों में)

लेखक

स्व० श्री जगदीशसिंह गहलोत

एम. आर. ए. एस., एफ. आर. जी. एस.

भूतपूर्व अधीक्षक

पुरातत्व व संग्रहालय विभाग,

जोधपुर-बीकानेर खण्ड, जोधपुर

प्रस्तावना लेखक

दीवान बहादुर श्री हरविलास शारदा,

एम. आर. ए. एस., एफ. एस. एस., एफ. आर. एस. आई.,

अजमेर (राजस्थान)

द्वितीय भाग

बूंदी, कोटा तथा सिरोही राज्यों का इतिहास

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य मन्दिर, मेड़ती दरवाजा, जोधपुर–२७

प्रथम संस्करण • आषाढ, वि. सं. २०१७

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः ।।

— **वेदव्यास** (महाभारत)

इतिहास की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता और जाता है। धन से हीन होने पर कोई नष्ट नहीं होता किन्तु इतिहास और अपना प्राचीन गौरव नष्ट कर देने पर विनाश निश्चित है।

सम्मति

Seal of University
of Rajasthan

Department of History
University of Rajasthan, Jaipur

मैंने श्री जगदीशसिंहजी गहलोत द्वारा लिखित बून्दी, कोटा और सिरोही के इतिहास पढे । ये तीनों ग्रंथ इन राज्यों के संक्षिप्त राजनैतिक इतिहास है । प्रत्यक्षतः स्थानाभाव के कारण इनमें सांस्कृतिक पक्ष का समावेश नहीं हो सका, जो आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि से आवश्यक है । तथापि ये तीनों पुस्तकें पाठ्य और उपादेय हैं । इनमें मौलिक खोज तो अधिक नहीं है परन्तु पूर्व प्रकाशित समस्त सामग्री का सुचारुरूपेण निष्पक्ष उपयोग किया गया है ।

बून्दी , कोटा और सिरोही के शासक चौहान राजपूत हैं । इनका इतिहास अनेक दृष्टि से उज्ज्वल तथा रोचक हैं और मुगल साम्राज्य में इनका गौरव ऊंचा रहा है । कोटा राज्य के प्रदेश का महत्व गुप्त और शुंगकाल में भी था तथा सिरोही का प्रदेश जैनधर्म के इतिहास के लिये महत्व का है । उपजाऊ होने के कारण कोटा और बून्दी राज्यों को मराठों ने बड़ी निर्दयतापूर्वक रोंध डाले थे ।

अभी राजस्थान का इतिहास वास्तव में लिखा ही नहीं गया है । ओझा, श्यामलदास और कर्नल टॉड के इतिहास जटिल, कठिन और औपन्यासिक हैं । वे शोध के स्रोत और आधार हैं । छात्र या जनता के लिये उपयोगी नहीं है । अतः ये तीनों पुस्तिकाऐं अभिनन्दनीय है । ये सुपाठ्य, सर्वोपयोगी और विश्वस्त है । इनमें अप्रामाणिक एक भी वाक्य नहीं हैं ।

यह वास्तव में खेद की बात है कि ऐसी उत्तम पुस्तकों में छपाई की कितनी ही त्रुटियां रह गई हैं । तथापि तीनों पुस्तकें स्वागत योग्य हैं । राजस्थान के इतिहास साहित्य की इनसे वृद्धि होगी । दोनो योग्य एवं विद्वान सम्पादन बधाई के पात्र हैं कि उनके परिश्रम और लगन से मित्रवर स्व० श्री जगदीश सिंहजी गहलोत की कृतियां प्रकाश में आई ।

मथुरालाल शर्मा,
युनिवर्सिटी प्रोफेसर ऑफ हिस्ट्री,

जयपुर
१९-६-६०

दीवान बहादुर श्री हरविलास शारदा,
एम. आर. ए. एस., एफ. एस. एस., एफ. आर एस. आई.,
अजमेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

वर्तमान राजस्थान की भूतपूर्व रियासतों का सम्पूर्ण इतिहास आज तक प्रकाशित नहीं हुवा है। कर्नल टाड व डा० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा सात रियासतों का इतिहास ही लिख पाये। इस कमी को पूर्ण करने के लिये स्व० जगदीशसिंहजी गहलोत ने अपना जीवन लगा दिया। चालीस वर्षों के सतत प्रयत्नों के पश्चात राजस्थान (भूतपूर्व राजपूताना) की कुल रियासतों का इतिहास लिखने में वे सफल हुये। उन्होंने अपने जीवनकाल में कुछ रियासतों के इतिहास का प्रकाशन होते देख लिया लेकिन गत महायुद्ध की मंहगाई व कागज की दुर्लभता के कारण अन्य रियासतों का इतिहास प्रकाशित नहीं हो सका। रियासतों की ओर से ऐसे महत्व-पूर्ण प्रकाशन पर ध्यान ही नहीं दिया गया। तत्कालीन रियासती सरकारें यह जानती ही नहीं थी कि कोई राष्ट्र तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक कि उसके इतिहास का निर्माण होता रहता है। यदि तत्कालीन रियासतें चाहती तो उनके राज्यों के इतिहास प्रकाशित करने में कोई कठिनाई नहीं आती लेकिन रियासतों की ओर से कोई सहयोग नहीं मिलने के कारण श्री गहलोतजी की तैयार की गई अमूल्य सामग्री योंही पड़ी रह गई। पिछले वर्षों में श्री गहलोतजी ने कागज व अर्थ की सुलभता देख कर प्रकाशन का विचारा तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और सरस्वती का वह वरद पुत्र ब्रह्म-ज्योती में सदा के हेतु लीन हो गया व सरस्वती के मन्दिर में स्वाध्याय व शोध के चढ़ाए पुष्प पीछे छोड़ गया। मृत्यु शैय्या पर लेटे लेटे भी वह इस इतिहास के विषय में चिन्तन व मनन करते रहे और अंतिम समय उन्होंने यही इच्छा प्रकट की कि राज-पूताना का इतिहास अवश्य प्रकाशित किया जावे। उनकी इस अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिये ही यथाशीघ्र इतिहास को प्रकाशित कराने का काम तत्काल हाथ में लिया गया।

स्व० गहलोतजी अपने जीवनकाल में प्रत्येक रियासत का प्राचीनकाल से वि० सं० २००५ (ई० सन् १९४८) तक का सम्पूर्ण इतिहास तैयार कर पाये थे। ई० सन् १९४८ के बाद राजपूताने का नया नामकरण 'राजस्थान' हुआ। रियासतों की सीमाओं में कई हेरफार हुए व विलीनिकरण हुआ। इस समय में कई शोध कार्य भी आरम्भ हुए। इन नई शोधों का समा-वेश स्व० गहलोतजी ने अपने अंतिम समय तक किया लेकिन फिर भी सम्भवतः वे पूर्ण नहीं कर पाये। अतः इसको पूर्ण करने का भार उनके ज्येष्ठ पुत्र व उनके सहयोग के हेतु प्रो० परिहार पर डाला गया। अपने सरकारी कार्यों में बहुत व्यस्त रहते भी उन्होंने इसका सम्पादन किया। जहां उनको आवश्यकता प्रतीत हुई उन्होंने अपनी ओर से पाद टिप्पणियाँ भी दी हैं।

पुरातत्व के अवशेषों, ऐतिहासिक स्थानों, सिक्कों व राज्य कुलों के चित्रों का चयन स्व० गहलोतजी ने ही किया था। अतः उनके संकलन के अनुसार ही उन चित्रों को यथास्थान दिया गया है। शेष चित्रों के लिये हमने प्रयत्न किया कि उनको प्रकाशित करावें लेकिन दुःख के साथ

लिखना पड़ता है कि सम्बन्धित व्यक्तियों को, जिनसे चित्र मिल सकते थे, चित्र भेजने या चित्र प्रकाशित करने की अनुमति के लिये बार बार लिखने पर भी उन्होंने उदासीनता ही दिखाई। अतः पाठकगण क्षमा करेंगे यदि वे कई आवश्यक चित्र इस ग्रंथ में नहीं पावें। यों स्व० गहलोतजी ने चित्रों व ब्लाकों का इतना अपार भण्डार छोड़ा है कि भारत में शायद ही किसी के पास राजस्थान के इतिहास सम्बन्धी इतने चित्र व ब्लाक हों।

राजपूताने का इतिहास लगभग ३००० पृष्ठों में पूर्ण होगा। स्व० गहलोतजी की इच्छा थी कि यह ग्रंथ-रत्न दो या ज्यादा से ज्यादा तीन भागों में प्रकाशित हो लेकिन अर्थाभाव व सम्बन्धित व्यक्तियों का पर्याप्त सहयोग नहीं मिलने के कारण हमारी योजना इसे पांच भागों में प्रकाशित करने की है। यह भी उचित जान पड़ा कि रियासतों के नाम से इतिहास के अलग अलग खंड भी प्रकाशित करायें जावें, जिससे साधारण आय का पाठक भी अपना इच्छित अंश खरीद सके। जयपुर, अलवर व जोधपुर रियासतों के इतिहास शीघ्र ही प्रेस में मुद्रण के लिए जा रहे हैं।

राजपूताना के इतिहास का द्वितीय भाग—जिसमें चौहान वंश की बून्दी, कोटा व सिरोही रियासतों का इतिहास है—आपके हाथों में है। मुझे खेद है कि पुस्तक की छपाई, कागज आदि की सामग्री जैसा स्व० गहलोतजी चाहते थे, वैसी नहीं जुटाई जा सकी परिस्थितिवश कमियां रह गईं। सम्पादकों के जोधपुर से दूर रहने के कारण वे स्वयं प्रुफरीडिंग नहीं कर सके अतः कई त्रुटियां छपाई में रह गई है। कागज का अभाव तो विद्वान पाठकों से छिपा नहीं है। देश तरक्की के लिये प्रयत्नशील है लेकिन ज्ञान-वृद्धि के लिये एक अति आवश्यक तत्व कागज आज दुर्लभ व महंगा हो रहा है। कागज का अकाल सा है। अतः विज्ञ पाठक प्रथम भाग के कागज से इस भाग के कागज की तुलना न करें। हिन्दी के भाण्डार में एक खटकनेवाली कमी पूरी हो रही है और इस सेवा के उतावलेपन में जो भी कमियाँ इस प्रकाशन में रहीं, आशा है उसके लिये सहृदय पाठक क्षमा करेंगे।

प्रताप जयंती,
वि० सं० २०१७.
जोधपुर.

— चन्द्रलेखा
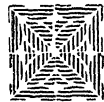
The first volume gives the history of the two oldest Ruling dynasties of Rajputana—the Sisodias of Udaipur, Dungarpur, Banswara and Pratapgarh ; and the Yadavas of Jaisalmer and Karauli, both the dynasties claiming descent from Shri Ramchandra and Sri Krishana respectively, the two greatest names in Indian History and representing the Sun and Moon dynasties.

The second volume* deals with the rest of the States of Rajputana, the Chauhan States of Bundi, Kotah and Sirohi; the Rathor States of Jodhpur, Bikaner and Kishangarh ; the Kachhwaha States of Jaipur and Alwar ; the Jhala State of Jhalawar ; the Jat States of Bharatpur and Dholpur, and the two Pathana States of Tonk and Palanpur. The author thoughtfully includes in this volume the province of Ajmer-Merwara; for, this small province though under the direct administration of the Government of India is not only a part of Rajputana but is organically connected with the surrounding States of Jodhpur, Jaipur, Udaipur and Kishangarh. It is the heart of Rajputana, as Col. Tod puts it, and is historically, ethnologically, geographically and culturally as much a part of Rajputana as Jodhpur or Jaipur States.

This second volume deals amongst others with the history of two of the bravest races that are to be found anywhere, the Chauhans and the Rathors. The Chauhan States of Bundi, Kotah and Sirohi represent a dynasty of rulers which enjoys the unique distinction amongst the Rajputs of having brought the whole of Upper India under their rule. Visaldeva (Vigrahraj) was the first Chauhan Emperor of India having conquered and made Delhi a fief of Ajmer, just as the celebrated Emperor Prithviraj was the last Hindu Emperor of India. The chivalrous exploits of Emperor Prithviraj, to whose memory the author dedicates this volume, are still sung by the bards of Rajputana. His valour and chivalry have shed impereshable lustre on the Rajput race and made his name a house-hold word throughout Upper India.

The Chauhan race has the glory of stemming the tide of the invasion of India by races inhabiting the regions beyond the north

---

* After the writing of this Foreword the publishers have decided to give the History of the three States (Bundi, Kotah and Sirohi) only in this volume. The rest will follow in other volumes viz. 3rd, 4th and the 5th.

west frontier of India whose sporadic raids and invasion began early in the eighth centuary till they finally over-threw the Chauhan Empire in 1193 A.D. The exploits of Goga Chauhan who barred the way of Sultan Mahmud Ghaznavi and fell with his one hundred and eight sons and grandsons defending Rajputana against that great raider and warrior in about 1025A.D. and to whose names, the second day after Diwali, the principal Hindu festival is dedicated, when the women congregate and offer worship to his effigy—a mud horseman with a raised lance in his hand.

The Rathors, the standards of whose premier State, Jodhpur, bear the legend RAN BANKA RATHORE (heroes on the battlefield) are welknown for their LAKH TALWAR RATHORAN ; Maharaja Ajit Singh, the Rathor King of Marwar enjoys the distinction of exercising supreme power at the Imperial Head-quarters, during the last days of Emperor Farrukhsayar's region and those of his successors Rafiuldarjat and Rafiuddaula, and of worshipping the Hindu gods, ringing the JHALAR and blowing the conch in the Diwan-i-Khas, Delhi. The heroism and chivalry of the Rathors have been acknowledged by DeBoigne, Thomas add other European Freelances of the eighteenth centuary, and they are justly famous for their clan and irresitible cavalry charge.

T. Jagdish Singh Gahlot's History of Rajputana is a most comprehensive one. The contents will give one an idea of the vast and valuable information contained in it, historical, geographical of the various States of Rajputana and of the customs and occupations of the people, their culture and their social organization. It is replete with information culled from various sources after many years of patient enquiry and research worthy of a true historian. Value of the present volume has been further enhanced by his sustained attempt to interpret the facts of history in a fairly balanced objective manner.

Another remarkable feature of the book is that it is most profusely illustrated. Portraits of all important people and illustrations of forts, towns, monument, important buildings, coins and Ensigns make the book a most valuable one. Mr. Gahlot deserves the thanks of all who are interested in the history of this province for the valuable work he has written.

The book is sure to become a most popular one.

AJMER
16th March, 1953

Harbilas Sarda

अन्तिम हिन्दू सम्राट

पृथ्वीराज चौहान, अजमेर

समर्पण

राजपूती शान, मान व आन

के

ज्योर्तिपुञ्ज

सम्राट पृथ्वीराज चौहान

को

जिसके उत्थान व पतन का

लेखा जोखा

एक ऐतिहासिक

पाठ है।

My Reminiscences of the

Late Shri Jagdish Singh Gahlot

M.R.A.S.. F.R.G.S. (London)

Birth : 14th Jan., 1903 :: Death : 22nd Sept., 1958

By

Dr. P. K. Gode, M. A., D. Litt. (Paris),
Bhandarkar Oriental Research Institute, POONA

IN THE passing away of Shri Jagdish Singh Gahlot on 22nd September, 1958 I have lost a loving scholar friend and India has lost an eminent historian. Many tributes to his memory have been paid by eminent scholars and published in different papers in Rajasthan and outside. I fully endorse all these tributes which I had an occasion to read through the favour of his learned son Shri Sukhvir Singh Gahlot, who has maintained the learned traditions of his father by his own writings. I feel it, however, a bounden duty to record here my own tribute to the sacred memory of the departed friend whom I knew very intimately for several years.

My first contact with this friend began about 35 years ago when he was in Poona in connection with the printing of one of his books in a press in Poona. The impressions then formed by me about his personality and character were vouched by his subsequent life and achievements. In fact ever since his first meeting with me he was my regular correspondent with regard to many scholarly matters of mutual interest. Another friend of mine, the late Rao Bahadur K.N. Dikshit (Director-General of Archaeology in India) used to speak highly about the sincerity, honesty and the scholarly labour of Shri Gahlot. Some years ago I had the pleasure of meeting Shri Jagdish Singh Gahlot at our Institute and at my house in the Deccan Gymkhana Colony in Poona. He gave me during his visit a glimpse of his scholarly life and unbroken study inspite of all hardships. This meeting was my last sight of this loving friend though he kept on his correspondence with me al-

most upto his last illness in September, 1958. I cherish his memory owing to the many qualities of head and heart and above all his thirst for knowledge for its own sake.

As a student of Art and Archaeology, Jagdish Singhji developed a remarkable love of antiquities. "All past is possession of the present" said Carlyle and without a study of the past the tap root of Indian life and culture and its depth and strength cannot be unearthed and studied in a scientific manner. The tap root of Indian history is supported by many roots of regional histories. Though Jagdish Singhji kept in view the tap root of history, he confined his studies to one of the roots of regional histories viz. The History of Rajputana. His monumental volumes on this subject are a visible embodiment of his scholarly strength, persistent industry and objective presentation of the data gathered by him from the morass of legend and history which surrounds the true story of Rajput valour and heroic sacrifice in the cause of political liberty for which many nations are fighting even today.

Unlike many of my scholar friends in India and outside, who confine their activities mainly to academic studies and research, Jagdish Singhji spent some of his energy in social service and even sacrificed a part of his petty income for the benefit of his fellow-beings. He was an ardent social reformer but he never referred to his activities in this capacity in his correspondence with me perhaps owing to modesty. Curiously enough I came to know about these activities only after his death. Having been brought up in the midst of social-reformers in Poona I have always entertained a high regard for social-reformers in Maharashtra and other provinces of India. I, therefore, bow to the memory of this departed social-reformer with a feeling of reverence and admiration. I feel confident that the public of Rajasthan will not fail to perpetuate the memory of this enthusiastic and self--sacrificing social reformer by a suitable memorial worthy of his personality and philanthropic spirit.

In 1943, when Jagdish Singhji was only 40 years old, Hindi Sahitya Mandir, Jodhpur published a booklet recording the appreciations of his works by eminent scholars in India and outside. Among these scholars I find the names of famous scholars like

Dr. Vogel (Leyden), Sir Aurel Stein (Oxford), Dr. L.D. Barnett (London), Rao Bahadur K.N. Dikshit (Director--General of Archaeology in India), Maharshi Madan Mohan Malaviya (Banaras), Dewan Bahadur Har Bilas Sarda (Ajmer), Dr. Gauri Shanker Hira Chand Ojha (Ajmer), Dr. Surya Kanta (Banaras), Sir Jadu Nath Sarkar (Calcutta), Prof. E.J. Rapson (Cambridge), Rai Bahadur Daya Ram Sahni (Deputy Director General of Archaeology in India), M. M. Dr. Ganganath Jha (Vice--Chancellor, Allahabad University), Dr. S. K. Chatterji (Calcutta). Words of encomium from the above reputed scholars on Jagdish Singhji's literary output at the age of forty as recorded in the booklet have been fully justified by the quality and quantity of his work during the subsequent fifteen years. I am only sorry that he left us at the premature age of fiftysix, thus leaving a void in the field of the History of Rajasthan, which it would take years to fill up.

I value disinterested friendship most above all things in this life. Among my scholar friends of the disinterested variety Jagdish Singhji stands in the front rank on account of his steadfastness in friendship, amiable temperament, love for his fellow--beings, an unquenchable thirst for knowlege and above all an exemplary character. In fact he was an ideal friend who came upto the high standard of disinterested friendship laid down in the Mahabharata (V, 36, 38).

यःकश्चिदप्यसंबद्धो मित्रभावेनवर्तते ।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत्परायणम् ॥

१९४८ के पूर्व का राजस्थान

विषय – सूची

बून्दी राज्य

✡

कोटा राज्य

☼

सिरोही राज्य

राजपूताने का इतिहास (प्रथम भाग)

पर

विद्वानों और पत्रों की कुछ सम्मतियां

•• . . . . . राजपूताने के राज्यों के विषय में प्रामाणिक ग्रंथों के अभाव का जो अनुभव पाठक अब तक करते रहे हैं वे उसकी बहुत कुछ पूर्ति इस ग्रंथ के रूप में पायेंगे ।

के. एन. दीक्षित,

डायरेक्टर जनरल ऑफ आर्कियालॉजी

•• श्री जगदीशसिंह गहलोत का नाम भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों से छिपा नहीं है। उनका 'राजपूताना का इतिहास" निश्चय ही अत्यन्त पारिश्रमिक अध्ययन का फल है । . . . . श्री गहलोत ने अपनी विभिन्न प्रकार की सामग्री के द्वारा राजपूत-इतिहास की बहुतसी समस्याओं पर एक नया प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । . . . . . लेखक ने जिस लगन और अगाध विद्वत्ता के साथ लेखों और ख्यातों का अध्ययन किया है और जिस परिश्रम और अध्यवसाय से उस अनजान क्षेत्र में जांच और खोज की है,उसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता । यह सब उन्हें और भी महत्ता देता है ।

डा० ईश्वरीप्रसाद

अध्यक्ष, इतिहास विभाग–प्रयाग विश्वविद्यालय

•• मैं आपके अनुसंधानों को और उन पर आधारित ऐतिहासिक ग्रन्थों को महत्वपूर्ण समझता हूं । मैं मानता हूँ कि आप राजपूताने के राज्यों में संचित पुराने कागज पत्रों के भण्डारों की सामग्री तक पहुँच पाये हैं जिससे आप इतिहास में विशेष रूप से सफलता प्राप्त कर पाये हैं ।

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी

प्रोफेसर व अध्यक्ष इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

•• . . . . . गहलोतजी परिश्रमी तथा अध्ययनशील व्यक्ति हैं तथा उनमें ऐतिहासिक सामग्री को मनोयोग पूर्वक परखने तथा सम्यक् रूप से सम्मिलित एवं क्रमबद्ध करने की पूर्ण योग्यता है । . . . .

डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

अजमेर

•• "राजपूताना के इतिहास" पर बहूमूल्य पुस्तक लिखकर श्री गहलोत हिन्दी भाषी जनता और विशेषरूप से भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों के धन्यवाद के पात्र हैं । यह पुस्तक राजपूताना की रियासतों से सम्बन्ध रखने वाले इतिहास और पुरातत्व की सामग्री के गहन अध्ययन, धैर्य–पूर्ण खोज और पृष्ठ-भूमि की चतुराई से की हुई जांच का परिणाम है।

जोधपुर राज्य के लिए यह एक पूर्ण सन्तोष एवं अभिमान व गर्व की बात होनी चाहिये कि उस राज्य का एक सपूत इतना प्रसिद्धि प्राप्त इतिहावेत्ता है । मुझे आशा है कि यह पुस्तक बहुत अधिक पसन्द की जायेगी तथा प्रत्येक पुस्तकालय में स्थान प्राप्त करेगी ।

महर्षि मदनमोहन मालवीय

रेक्टर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

•• राजपूताना का प्रामाणिक इतिहास लिखकर आपने हिन्दी संसार के लिये एक अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है। . . . . .

डाक्टर जे. फोगल
रेक्टर, युनिवर्सिटी आँफ लेडन, होलेण्ड
(भूतपूर्व गवर्नमेन्ट इपिग्राफिस्ट ऑफ इन्डिया)

•• ज्ञात होता है कि आपने इसके लिखने में काफी समय और परिश्रम लगाया है। आपने जिस कार्य को हाथ में लिया है उससे स्थानीय उपलब्ध इतिहास सर्व-साधारण तक बड़ी आसानी के साथ पहुँचेगा और इस दिशा में आपका यह प्रयत्न बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा।

डॉक्टर ऑरेल स्टाइन
(लेट ऑफ आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया)

•• हम श्री जगदीशसिंह गहलोत को राजपूत रियासतों के इतिहास के लेखन कार्य में सफलता प्राप्त करने के उपलक्ष में बधाई देते हैं। . . . . . श्री जगदीशसिंह को न केवल राजपूतों ही से बल्कि भील, मीना, मेर, जाट तथा गूजर आदि प्राचीन बहादुर जातियों से भी सहानुभूति है। देशभक्त होते हुए भी, लेखक देश के बीते हुए समय का सुनहला चित्र ही पाठक को दिखा कर अपने आप को धोखा नहीं देता बल्कि राजपूतों की वर्तमान गिरी हुई दशा तथा उस प्रान्त के पशु पालकों और किसानों की गिरी हुई आर्थिक अवस्था को भी सामने लाता है। . . . . . हमें यह आशा है कि गहलोतजी अपने कार्य को एक देशी राज्य के आपत्ति-जनक क्षेत्र में बैठे राजपूताने के प्राचीन इतिहासज्ञों—मुहणोत नेणसी और कविराजा श्यामलदास—की तरह दुर्भाग्यशाली बने बिना जारी रखेंगे।

"माडर्न रिव्यू"
मासिक पत्रिका, कलकत्ता

•• यह पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग की पहली पुस्तक है। . . . . . इस पुस्तक की विशेषता इसी में है कि इसके लिखने में उन सिक्कों और ताम्र-पत्रों को काम में लिया गया है जिन्हें अभी तक केवल पुरातत्ववेत्ता और पुराने लेखों के जानने वाले ही जानते थे। . . . . . लेखक ने इस पुस्तक को संक्षिप्त रूप में हर प्रकार के साधनों द्वारा इकट्ठी की हुई सामग्री से पूर्ण करके भविष्य में की जाने वाली खोज के लिये आगे कदम रखने वाली सीढी के रूप में प्रस्तुत किया है। . . . . .

"हिन्दुस्तान टाइम्स"
दैनिक नई दिल्ली

•• आश्चर्य की बात है कि अभी हमारे देश के विभिन्न विद्वान इतिहास लेखकों ने समूचे राजपूताने का कोई प्रमाणिक इतिहास प्रकाशित नहीं किया था। श्री जगदीशसिंह गहलोत ने इस कमी को पूरा करने का उद्योग करके राजपूताना निवासियों तथा इतिहास प्रेमी जनता का बड़ा उपकार किया है। . . . . भाषा, छपाई, सामग्री तथा वर्णन शैली को दृष्टि में रखते हुए यह पुस्तक एक सुन्दर ऐतिहासिक ग्रंथ है जिससे इतिहास प्रेमियों का बहुत उपकार होगा। . . . . .

"नागरी प्रचारिणी पत्रिका"
बनारस

बून्दी राज्य

भौगोलिक व आर्थिक विवरण
नाम, स्थिति और विस्तार

बून्दी राजपूताना में चौहान राजवंश का मुख्य और सब से पुराना राज्य है। यह राजपूताना प्रान्त के मध्य भाग के दक्षिणी-पूर्वी कोने में २४ अंश ५९ कला से २५ अंश ५९ कला, उत्तर अक्षांश में ७५ अंश १८ कला से ७६ अंश २१ कला पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। इस राज्य की राजधानी बून्दी का नाम, बून्दा मींणा (मीना) के पीछे प्रसिद्ध हुआ और राजधानी के नाम से ही राज्य का यही नाम पड़ा। सम्वत् १४९० (ई० सन् १४३३) के महाराणा कुम्भा के राणपुर (जिला पाली) शिलालेख में बून्दी का नाम मिलता है। खजूरी (बून्दी राज्य) गांव से प्राप्त संवत् १५६३ (ई० १५०६) के शिलालेख में "वृन्दावती" नाम भी मिलता है, पर इस नामकरण का कोई अन्य उल्लेख या प्रचलित परम्परा ज्ञात नहीं हुई है। यहां पहिले मीणों का गणराज्य था। जब से यहां चौहान वंश की हाड़ा शाखा का अधिकार वि० सं० १३९८ (ई० सन् १३४१) हुआ तब से यह इलाका "हाड़ोती" (हाड़ावाटी) कहलाने लगा है। आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व बून्दी राज्य बहुत बड़ा था और उस समय कोटा (५,६८४ वर्ग मील) तथा झालावाड़ (८१० वर्ग मील) के राज्यों की भूमि भी इसके शामिल थी। इससे आज भी उन राज्यों को भूमि हाड़ोतो ही कहलाती है। कोटा का वर्तमान राजवंश बून्दी राजवंश से ही निकला हुआ है।

सीमा—इस राज्य के उत्तर में टोंक, उदयपुर और जयपुर के राज्य, दक्षिण व पूर्व में कोटा राज्य, पश्चिम में उदयपुर राज्य है। चम्बल नदी बून्दी और कोटा राज्य की सीमा पर दक्षिण व पूर्व में बहती है। इस राज्य का आकार सम चतुर्भुज-सा है।

विस्तार—बून्दी राज्य का क्षेत्रफल लगभग २२२० वर्गमील है। इसमें से ८५७ वर्गमील भूमि जागीरों के नीचे तथा १३६३ वर्गमील खालसा की है। अब

बून्दी जिले का क्षेत्रफल २१३८.६ वर्गमील है।

पहाड़—इस राज्य के बीचों बीच आडावला पहाड़ है, जो उत्तर पूर्व में माधोपुर की पहाड़ियों से मिला हुआ है। लाखेरी के पास से यह दोहरी श्रेणी में चलकर राज्य के दक्षिण-पश्चिम में मेवाड़ की पहाड़ियों से जा मिला है। इस प्रकार आड़ावला पहाड़ से इस राज्य के लगभग दो बराबर भाग हो गये हैं। उत्तर का भाग पहाड़ी है जिसमें एक ही फसल होती है। दक्षिण का भाग समतल है जो बहुत ही उपजाऊ तथा दो फसली है।

नाल—(घाटा)—पहाड़ में होकर निकलने वाले तंग रास्तों को यहां "नाल" कहते हैं। ऐसी नाले इस राज्य में पांच हैं। एक राजधानी बून्दी में "बांदू की नाल" के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें होकर कोटा, देवली एवं नसीराबाद की छावनी (अजमेर) को सड़क गई है। दूसरी जैतिवास नामक गांव के पास है, जिसमें होकर टोंक का मार्ग है। तीसरी रामगढ़ और खटकड़ के पास है जहां मेज नदी पहाड़ को काटती हुई उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है। चौथी राज्य की सीमा पर उत्तर पूर्व में लाखेरी कस्बे के पास (लाखेरी घाटा) है। पांचवा खणिया का घाटा है जो उदयपुर राज्य को जाता है।

बून्दी राज्य में आड़ावला पहाड़ की सब से ऊँची चोटी सातूर के पहाड़ की है जो समुद्र की सतह से १,७९५ फुट ऊँची है। यह बून्दी नगर के १० मील पश्चिम को है। बून्दी नगर के किनारे पर तारागढ़ नामक पहाड़ी १,४२६ फुट ऊँची है। अजीतगढ़ में तलवास के पास की पहाड़ी १,६६२ फुट, गेनोली में १,५६६ फुट और हिन्डोली में १,१३८ फुट ऊँची है।

नदियां—इस राज्य की सब से बड़ी नदी चम्बल है जो राज्य की पूर्वी और दक्षिणी सीमा पर बहती है। इस नदी का प्राचीन नाम धर्मण्वती है। यह नदी राज्य की सीमा में कहीं-कहीं बहती है। इस नदी का पाट कहीं कहीं २४०० फुट तक है। इसकी गहराई केशोरायपाटन के पास बहुत ज्यादा है। सिवाय चम्बल के यहां की अन्य नदियां बरसाती हैं जो गर्मियों में सूख जाती हैं। चम्बल नदी विन्ध्याचल पहाड़ के उत्तरी पार्श्व से निकल कर मध्य भारत, और उदयपुर राज्यों में होती हुई दक्षिण में बून्दी राज्य व कोटा राज्य की सीमा बनाती हुई बहती है। कुछ दूर कोटा राज्य में बहकर तहसील पाटण, कापरेण और लाखेरी की पूर्वी सीमा बनाती हुई यह इन्द्रगढ़ (कोटा) में चली जाती है। आगे जाकर जयपुर, करौली और धोलपुर राज्यों को मध्यभारत के राज्य से अलग करती हुई और मध्यभारत की सीमा बनाती हुई पूर्वोतर में उत्तर प्रदेश के

इटावा नगर के पास यमुना नदी में जा मिलती है। इसकी कुल लम्बाई लगभग ६५० मील है। बून्दी राज्य में इसकी लम्बाई लगभग ७८ मील है। इसके किनारे पर प्रसिद्ध नगर भैंसरोड़गढ़ (मेवाड़) कोटा, पाटण, धोलपुर आदि बसे हैं। इसका उपयोग सिंचाई व जल विद्युत के लिये अभी तक नहीं किया गया था। अब राजस्थान सरकार ने इसके लिये ७० करोड़ रुपये की चम्बल योजना हाथ में ली है। जिससे ३ बड़े बांध और एक सिंचाई बांध का निर्माण होगा। इस योजना के पूर्ण होने पर वे कोटा, बून्दी और सवाई माधोपुर जिलों में सिंचाई के लिये जल और विद्युत की बहुतायत उपलब्धि से कृषि और उद्योग-धन्धों के विकास में महत्वपूर्ण सहायता मिलेगी।

बून्दी राज्य में चम्बल की बड़ी सहायक नदी मेज है, जो मेवाड़ के पूर्वी भाग के १,७०० फुट ऊँचे पहाड़ों से निकल कर शामपुरा होती हुई नेगट के पास बून्दी राज्य में प्रवेश करती है। यह बून्दी की उत्तरी तहसीलें हीड़ोली, गोठड़ा, गंड़ोली में बहती हुई आड़ावला पहाड़ को खटकड़ के पास काट कर, दक्षिण में लाखेरी होती हुई कोटा–बून्दी की सीमा पर पाली के पास चम्बल नदी में जा मिली है। इस प्रकार यह इस राज्य में २९ मील बही है। इस पर मुख्य गांव अलोद, दबलाना, बड़गांव, गूढ़ा, खटकड़, बराणा, और पचीपला बसे हुए हैं।

मेज की बड़ी सहायक नदियां सूकली और बेजीन है। सूकली (मांगली) नदी दक्षिण पश्चिम की पहाड़ियों में होकर मेवाड़ की ओर से आती है और घोड़ा पछाड़ तथा तालेड़ा (ताई) की नदियों के पानी को लेकर भैसखेड़ा के पास मेज नदी में मिल जाती है। ताई नदी से मिलकर यह कूरल नदी कहलाने लगती है। इस पर करजूणां, चाबरस, बागदा, एबरा और जैथल आदि प्रसिद्ध स्थान हैं।

बेजीन (भूजान) नदी पश्चिम की ओर मेवाड़ के ईटोदा के पहाड़ों से आकर कुछ दूर तहसील हीड़ोली में बहकर जयपुर राज्य से सीमा बनाती हुई तहसील मोठड़ा में होकर सादेड़ा के संगम पर बरगांव (बड़गांव) के पास मेज नदी में मिल जाती है। इस पर गोठड़ा और बाल दो बड़े गांव है।

इसके सिवाय बनास नदी तहसील नैणवा में तीन मील के लगभग बहती है। इस के तट पर बून्दी राज्य के मुख्य गांव कोरावास और जलसीना है।

झील और बांध—इस राज्य में कोई बड़ी झील नहीं है। बरदा बंध वि० सं० १९८२ (ई० सन् १९२५) में बनाया गया था। दुगारी में कनक सागर झील लगभग चार वर्ग मील है। हींड़ोली में रामसर नामक पुराना बंध है। इसकी

में २,४८,३७४ तथा वि० सं० २००७ (ई० सन् १९५७) में २,८०,५१८ हो गई। अंतिम गणना के अनुसार बून्दी जिले में १,४६,६५२ पुरुष और १,३३,८६६ स्त्रियां हैं। नगरों में ४७,७५८ तथा गांवों में २३२,७६० आबादी बसी है। बून्दी नगर की जनसंख्या २२,६९७ है। बून्दी जिले में १९५१ में अनुसूचित जातियों की आबादी ५७,००० तथा जन-जातियों की आबादी ५३,००० थी। १९४१ की जनगणना के अनुसार यहां ९३·३ प्रतिशत हिन्दू, ४·७ प्रतिशत मुसलमान और १·८ प्रतिशत जैन थे।

आवागमन के साधन—खास बून्दी नगर में रेलवे लाइन नहीं है। परन्तु राज्य की सीमा में बी० बी० एण्ड० सी० आई रेलवे (वर्तमान पश्चिमी रेलवे) की बड़ी लाइन मथुरा नागदा लाइन केवल ४३ मील के लगभग है। इस पर बून्दी राज्य के पांच स्टेशन, बून्दी रोड़ (केशोराय पाटण), अरनेठा, कापरेण, लबान और लाखेरी हैं। दूसरी दो लाइनें कोटा से बून्दी तक बड़ी लाईन और बून्दी से नसीराबाद (अजमेर) तक छोटी लाईन निकालने के लिये सन् १८९९ सं० १९५६ वि० पैमायश करके मिट्टी डाल दी गई थी, परन्तु वह आज तक नहीं बनी। अभी कुछ वर्षों पहिले इसके बनाने का सवाल चला था, परन्तु फिर मामला शांत हो गया।

सड़कें—राज्य में पक्की कंकर की सड़कें १४३ मील लम्बी हैं। कोलतार की पक्की सड़क ४३ मील लम्बी है, जिसमें से ३८ मील बाहर जिलों में है और लगभग ५ मील राजधानी में हैं। इनमें से मुख्य सड़कें निम्न हैं।

१. **बून्दी-देवली रोड़**—यह बून्दी राजधानी से सथूर दर्रे में निकल कर नया गांव, हीडोली, और बासणी होती हुई देबली अजमेर तक गई है। इसकी लम्बाई राज्य में २६ मील है।

२. **कोटा-बून्दी रोड़**—यह कोटा शहर से बलोप, तालेड़ा और देवपुरा होती हुई बून्दी जाती है। इसकी लम्बाई बून्दी राज्य में १८ मील के लगभग है।

३. **तालेड़ा पाटनरोड़**—यह कोटा-बून्दीरोड़ की एक शाखा है जो तालेड़ा के करीब जमीपुर, बाजड़ होती हुई पाटण (केशोराय पाटण) जाती है और लगभग १२ मील लम्बी है।

निजामतों और गांवों में गाडियों के आने-जाने के कच्चे मार्ग १७४ मील के करीब है। बून्दी राज्य के ये मार्ग बहुत ही खतरनाक हैं। ये मार्ग केवल गर्मी और सर्दी के ही काम के हैं। बरसात में कीचड़ के कारण ये रास्ते बिलकुल

बंद हो जाते हैं। सड़क द्वारा बून्दी जयपुर से १२८ मील, कोटा से २४ मील और अजमेर से ८९ मील है।

सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विवरण

निवासी—बूंदी राज्य में अधिकतर हिन्दू लोग बसते हैं। जन-संख्या के लगभग ९१ प्रतिशत हिन्दू, ५ प्रतिशत मुसलमान, चार प्रतिशत जैन हैं और बाकी एक प्रतिशत अन्य जातियें हैं। हिन्दुओं में अधिकतर मीणा जाति के लोग हैं। १९५१ की जनगणना के आधार पर लगभग ४४,००० मीणे हैं जो जनसंख्या के १३ प्रतिशत हैं। पहले इस राज्य पर मीणों का गणराज्य था जिसे देवसिंह हाड़ा ने विजय कर एकतन्त्र राज्य स्थापित किया था। इन मीणों को मेवाड़ व मारवाड़ के मीणे कहते हैं। मीणा एक वीर व मेहनती जाति है। देवली की छावनी के पास जंगली हिस्से को मीणा खराड़ा कहते हैं। यहां पर मीणे बसते हैं। उनका सामाजिक जीवन आदि-वासियों की तरह रहा, परन्तु धीरे-धीरे वे खेती करने लगे हैं और हिन्दू धर्म अपना लेने के कारण उनके रीति-रिवाज तथा ओढने-पहनने का ढंग हिन्दुओं की तरह हो गया। उनके सामाजिक विभाजन में दो जातिएं हैं--उज्जवल और मैले। दोनों में विभिन्नता इस बात पर है कि उज्जवल गाय, बैल का मांस नहीं खाते हैं तथा मैले इनका प्रयोग करते हैं। बूंदी के अन्य कई गांवों में परिहार मीणे भी बसते हैं। ये मीणे अपने आपको परिहार राजपूतों का वंशज बतलाते हैं। मीणों के बाद बूंदी के सामाजिक जीवन में गूजरों का स्थान आता है। यह अधिकतर कृषिप्रधान जाति है जो ढोर पशु भी पालते हैं। ये कुल जनसंख्या के १० प्रतिशत हैं। इसके बाद में ब्राह्मण ९ प्रतिशत, माली ७ प्रतिशत, महाजन ६ प्रतिशत तथा मोची ६ प्रतिशत हैं। इसके अलावा ५ प्रतिशत मुसलमानों की

बस्ती है। इनके सामाजिक जीवन में राजस्थान के सामाजिक संगठन व रीति-रिवाजों का पूरा प्रभाव रहा है। इन लोगों की मुख्य उपज मक्का, ज्वार होने के कारण इनका खाद्य-पदार्थ भी यही रहा है। ये मोटा कपड़ा पहनते हैं। स्त्रियों को भी मोटा कपड़ा अधिक पसन्द है। त्योहारों में बूंदी में गणगोर का त्योहार सामाजिक जीवन में अपना स्थान रखता है।

शिक्षा की दृष्टि से यहां के लोग बहुत कम पढ़े-लिखे हैं। कुल पढ़े-लिखे लोगों की १९५१ में दस प्रतिशत संख्या रही। इस दृष्टिकोण से राजस्थान की सब रियासतों में बूंदी का पन्द्रहवां स्थान है। सारे राज्य में सरकारी स्कूलों की संख्या २८ थी जिनमें बूंदी नगर में एक हाईस्कूल, मिडिल स्कूल तथा एक कन्या पाठशाला थी। निजामत बंरूधन में २, हिन्डोली में ५, नेणवा में २, देई में २, पाटन में ४, कापरेण में ३, लाखेरी में ४ और गैंडली में ५ स्कूलें थी। १९५१ की जनगणना के अनुसार यहां कुल १७,१३७ पढ़े-लिखे व्यक्ति थे जिनमें ९,५९३ नगरों के पढ़े लिखे व्यक्ति भी शामिल थे। नगरों में पढ़े लिखे मर्द ७,८०६ तथा स्त्रियां १,७८७ थीं। बूंदी की मुख्य भाषा राजस्थानी है। यहां उसकी शाखा हाड़ोती व खेराड़ी का अधिक प्रचार है। हाड़ोती जयपुरी भाषा का एक रूप है और जयपुर, बूंदी, कोटा की सीमाक्षेत्रों के पास अधिक बोली जाती है। खेराड़ी मेवाड़ी से मिलती जुलती है जो कि मेवाड़ की सीमा पर प्रयोग में लाई जाती है। इसको केवल ३० प्रतिशत जनता बोलती है।

धर्म––यहां के लोग अधिकतर हिन्दू होने के कारण हिन्दू देवी देवताओं की पूजा करते हैं। यहां का शासक वर्ग वैष्णवमत में अधिक विश्वास करता है और प्रायः कट्टर हिन्दू वैष्णव-धर्मी रहे हैं। नाथद्वारा के श्रीनाथजी उनके आदि देवता रहे हैं जिनकी केशरोयपाटन में 'रंगनाथजी के रूप में मूर्ति स्थापित की गई है। राव उम्मेदसिंह इन्ही रंगनाथजी का परमभक्त था। शासकवर्ग यद्यपि वैष्णव-धर्मावलम्बी था परन्तु धार्मिक अत्याचार की नीति नहीं अपनाई गई। कभी-कभी धर्मगुरु राजनीति में प्रवेश कर राजनैतिक उथल-पुथल किया करते थे जैसे कि बुद्धसिंह की बेगू वाली राणी और कछवाही राणी के धर्म-गुरु ने किया। बेगू वाली राणी का गुरु नित्यनाथ कनफटा जोगी था। कछवाही राणी वैष्णव धर्मानुरागिनी थी। बुद्धसिंह की जयपुर के जयसिंह से अनबन का एक यह कारण भी था। हिन्दू-धर्म के प्रभाव में रहकर शासक और जनता दोनों ही दानशील बनी रही। हिन्दू-धर्म के अलावा यहां चार प्रतिशत जैन भी हैं जो अधिकतर श्वेताम्बरी हैं। ५ प्रतिशत मुसलमान हैं जिनका सामाजिक जीवन बिल्कुल हिन्दुओं की तरह रहा है परन्तु मुगलों के शासनकाल में हिन्दू से मुसलमान हो

जाने के कारण वे अधिकतर सुन्नी मत के हैं। सब धर्मों के प्रति राज्य का समदृष्टिकोण रहा परन्तु वैष्णव मतावलम्बी होने के कारण राज्य के कार्य का आधार वही था। समाज में धार्मिक जीवन में ब्राह्मणों का एक विशेष स्थान पाया जाता हैं। जन्म, मृत्यु, विवाह, यज्ञ, यात्रा, नवीन कार्य प्रारम्भ करने में या अन्य कोई कार्य हो, ब्राह्मण को देविक स्वरूप प्राप्त था। मन्दिर पूजा व देवताओं तथा धार्मिक विश्वासों के वे ज्ञाता बने रहे।

सांस्कृतिक कला—बूंदी का सांस्कृतिक जीवन कला साहित्य के दृष्टिकोण से अभूतपूर्व रहा है। बून्दी का निर्माण एक कलापूर्ण दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है। पहाड़ी की तलेटी में बसा हुआ बून्दी प्राकृतिक सौन्दर्य का केन्द्र है। स्थापत्य कला की दृष्टि से बून्दी के महल अपनी तरह का एक ही है। ये महल शहर से ऊपर की घाटी में बने हुए हैं। इन महलों के कई भाग हैं जो भिन्न-भिन्न शासकों ने बनाए थे। ये बहुत ही सुन्दरता से अलंकृत है। इन महलों से ऊपर तारागढ़ का किला है। उसके पास ही एक सुन्दर छतरी है जिसे सूरज छत्री कहा जाता है जो १६ खम्भों पर आधारित है और जिसका व्यास २० फीट है। यह सूर्य छत्री कलाविदों का आकर्षण बन गई है। महलों के पास बून्दी का तालाब आया हुआ है जिसके चारों ओर चक्कर खाती हुई सड़क है जो बून्दी नगर का भी चक्कर लगाती है। इसके अलावा बून्दी के अन्य स्थानों पर भी स्थापत्य-कला के अवशेष पाए जाते हैं। हिन्डोली में १७ वीं शताब्दी के मकबरे व छतरिये हैं जिनमें मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। केशोराय पाटण का रंगनाथजी का मन्दिर सादी कला एक अद्वितीय नमूना है। इस मन्दिर को रावराजा छत्रशाल ने विष्णु के केशोराय रूप पर बनवाया था। यह मन्दिर पहले महादेव का जम्बू-मार्गेश्वर या केश्वर का मन्दिर था जो कि परशुराम ने बनवाया था। चम्बल नदी के किनारे सतियों के मन्दिर है जिन पर अभिलेख अंकित हैं।

चित्रकला—राजस्थानी चित्रशैलियों में बून्दी चित्रशैली का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी अपनी निज की शैली है जिस पर मुगल और राजपूत शैली का प्रभाव पड़ा। इसका विकास सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। इस शैली के चित्रों में राजाओं, रानियों व बारहमासों का बड़ा सुन्दरता से चित्रण किया गया है। धार्मिक चित्रों का भी बाहुल्य है। राजाओं के स्वभाव, वस्त्र, चारित्रिक एवं स्वभावगत विशेषताओं को बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित किया गया है। आँखों की आकृति आम के पत्ते के समान बनाई गई है। चित्रों की पृष्ठ भूमि में बतख हिरण ऊंचे लम्बे वृक्ष (नारियल खजूर आदि) हाथी, शेर, मोर आदि दिखाये

गये हैं। सुनहरी रंग का अधिक प्रयोग किया गया है। इनके बोर्डर भभकदार लाल और सुन्हरी रंग के होते हैं।

साहित्य—बून्दी के शासकों में महाराजा रामसिंह के काल में साहित्य की अत्यन्त उन्नति हुई थी। इनके दरबार में कई विद्वान रहा करते थे, इनमें पंडित गंगादास मुख्य थे जो संस्कृत के धुरन्धर विद्वान थे। ये पत्रकार ज्योतिषाचार्य व खगोल शास्त्री थे। इन्होंने एक खगोलिक यंत्र बनवाया जिससे तारों का अध्ययन किया जा सके। श्री भागवत पर इन्होंने टीका भी लिखी। इनके अलावा बाबा आत्माराम सन्यासी, वैद्यराज प्रमुख रहे हैं। आसानन्द, जीवनलाल, पठाण हमीदखां आदि प्रसिद्ध विद्वान इन्हीं के दरबार में रहते थे। 'वंशभास्कर' के रचयिता सूर्यमल मिश्र ने इनका आश्रय प्राप्त कर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक २००० के करीब पद्यों में रचकर बूंदी इतिहास में स्थान प्राप्त कर लिया है। दादूपंथी साधु निश्चलदास ने 'विचार सागर' नामक वेदान्त ग्रन्थ इन्ही के समय में लिखा।

बून्दी राज्य का शासन प्रबन्ध

मीणों की गणतन्त्रीय शासन प्रणाली का अन्त करके जब राव देवा हाड़ा ने अपनी सत्ता बून्दी पर स्थापित की तो वह सत्ता निरंकुश थी। देवा सर्वे-सर्वा निरंकुश शासक था जो शक्ति के बल पर राज्य करता था। बून्दी के हाड़ा शासकों का न तो कोई राजत्व का आदर्श था और न इसके लिए कोई खोज करने की आवश्यकता थी। राजकीय ढाँचा मध्यकालीन-युग की सामन्ती व्यवस्था के आधार पर खड़ा था, जहां युद्ध आवश्यक होता था और रक्तपात में लथपथ रहना सभ्यता का प्रतीक समझा जाता था। बून्दी के शासकों ने युद्ध और शक्ति के बल पर अपने वंश की परम्परा तथा शासन को बनाए रखा। परन्तु चूंकि वे हिन्दू-मत के थे अतः उनकी स्थिति को धार्मिकता व मौलिकता प्रदान की गई।

धर्मशास्त्रों के आधार पर शासन करने का विश्वास प्रत्येक राजतिलक के अवसर पर नया शासक दिला दिया करता था परन्तु उसके अनुसार शासन करने की फुरसत नहीं मिलती थी। प्रारम्भ में वे बून्दी की इकाई को बनाए रखने में; मुगलकाल में मुगल-शक्ति को बनाए रखने में; बाद में मराठों के लिए धन एकत्रित करने में और अंग्रेजी युग में उनकी कठपूतली होकर अपने राग-रंग में मस्त रहने के सिद्धान्तों के अलावा कोई शासन का सिद्धान्त उन्होंने नहीं अपनाया। फिर भी जनता उन्हें देवता का प्रतिनिधि स्वीकार करके उन्हें पूजनीय स्थान देती थी। ब्राह्मण उन्हें 'राम' और 'कृष्ण' के अवतार मानकर उन्हें धार्मिक पुरुष बतलाते रहते थे और उन्हें धर्मशास्त्रों के आधार पर राज्य करने का आदेश करते थे। कभी-कभी उदारवादी धर्मभीरू शासक ऐसा करता भी था परन्तु परिस्थितिएँ उन्हें निरंकुशता की ओर विवश करदेतीं थीं।

बून्दी का राज्य चिह्न

बूंदी राज्य का अध्यक्ष वहां का महाराव होता था। यह पद हाड़ा जाति के देवा के उत्तराधिकारियों में निहित था। हिन्दू-सिद्धान्त के अनुसार शासक का बड़ा लड़का ही राज्य-गद्दी का हकदार होता था। यदि राजा के कोई पुत्र न होता तो वह सब से नजदीक के सम्बन्धी के किसी भी पुत्र को गोद ले सकता था। बून्दी के हाड़ों को गद्दी प्राप्त करते समय १५६६ ई० के बाद मुगलों का फरमान लेना पड़ता था, बाद में पूना के पेशवाओं व मराठा सरदारों (सिन्धिया व होल्कर) को नजराना देना पड़ता था तथा अंग्रेजीकाल में रेजीडेन्ट की उपस्थिति के बिना राजतिलक कानूनी नहीं समझा जाता था। यों तो बून्दी का शासक बून्दी राज्य का सर्व-सर्वा होता था। सिद्धान्तिक रूप में वह राज राजेश्वर महाराजाधिराज के रूप में रहता पर व्यवहारिक दृष्टिकोण में वह किसी न किसी बाह्य शक्तियों के प्रभाव में बना रहता था। बून्दी के शासकों को 'महारावराज' की पदवी से सुशोभित किया जाता था। राव रतन के काल से बून्दी का झण्डा मुगलाई शक्ति द्वारा इनायत था। इस झण्डे का रंग पीला था। इस झण्डे व बादमें जो अंग्रेजों द्वारा झण्डे प्राप्त हुए थे उनमें मध्य में उनके

मूल पुरुष चहुवान का अग्निकुण्ड से प्रकट होना दिखाया गया है जिनके दोनों हाथों में तीर कमान व धनुष दिखाई देते हैं। इन सबके उपर बून्दी की प्रसिद्ध कटारी का चित्र है। श्री चहवान के दोनों ओर दो गायों का चित्र है जिसका यह आशय है कि गायों की रक्षा के लिए श्री चहुवान ने अवतार लिया। ढाल के नीचे राज्य का मूल मंत्र "श्री रंगेश भक्त बून्दीशो जयति" अंकित है। इसका तात्पर्य यह है कि श्री रंगनाथजी (विष्णु) के भक्त बून्दी नरेश की जय हो।

रावराजा की आज्ञासे मंत्री नियुक्त किए जाते थे। मुगल कालमें बून्दो का शासन भी मुगलों की तरह का रहा। राज्य में दीवान व मुसाहिब, फौजदार व किलेदार, बख्शी, रिसाला खजान्ची आदि उच्च पदाधिकारी होते थे। दीवान राज्य का मुख्य मंत्री होता था जिसके पास वित्तीय तथा प्रादेशिक शासन के अधिकार थे। फौजदार व किलेदार सेना तथा किले का अध्यक्ष होता था। यह पद किसी राजपूत को नहीं दिया जाता था। यह धाभाई के लिए पद सुरक्षित रहता था। बख्शी हिसाब किताब की देखरेख करता था और रिसाला शासक के कुटुम्ब के खर्च का उत्तरदायी था। यह व्यवस्था अंग्रेजों के साथ संपर्क होने तक चलती रही। १८५७ के बाद अंग्रेजी सरकार ने जब देशी राज्यों में हस्तक्षेप कर उनके आन्तरिक शासन को कुछ उदारवादी तथा उनके स्वार्थहित बनाने का प्रयत्न किया तो बून्दी की शासन व्यवस्था में भी थोड़ा परिवर्तन हुआ।

महाराव-राजा की सहायता के लिए राज्य कौन्सिल होती थी जिसमें पांच सदस्य होते थे जो पांच विभागों के अध्यक्ष होते थे। राज्य-प्रबन्ध के लिए कुल राज्य १० तहसीलों में विभक्त था जिनका प्रधान अधिकारी तहसीलदार होता था जिसका मुख्य कार्य लगान वसूल करने का होता था। बाद में उसे फौजदारी अधिकार भी दे दिए गए थे। इनकी देखभाल और अपीलों को सुनने के लिए नाजिम होते थे। बून्दी में चार निजामतें थी बंधरूण, हीड़ोली पाटण और नेणवा।* इन तहसीलदारों के नीचे पटवारी और शेहणे होते थे।

राज्य में न्याय प्रबन्ध के लिए एक पृथक् बून्दी फौजदारी और दीवानी कानून ग्रन्थ था जो कि हिन्दू कानून पर आधारित था। राजधानी में कोतवाल

---

* राजस्थान के निर्माण के बाद बून्दी कोटा डिविजन के अन्तर्गत एक जिला बना दिया गया है। इस जिले में ५ तहसीलें हैं; बून्दी, हिन्डोली, नेणवा, पटवा व तालेरा। बून्दी राज्य की तहसीलों को जोड़-तोड़ कर बनाई गई। इन तहसीलों में क्रमशः १३५, १३१, १६५, १६५ व १४३ कुल गांव ७३६ हैं। इस जिले का कुल क्षेत्रफल २१७३ वर्ग मील है।

हूणों के सिक्के
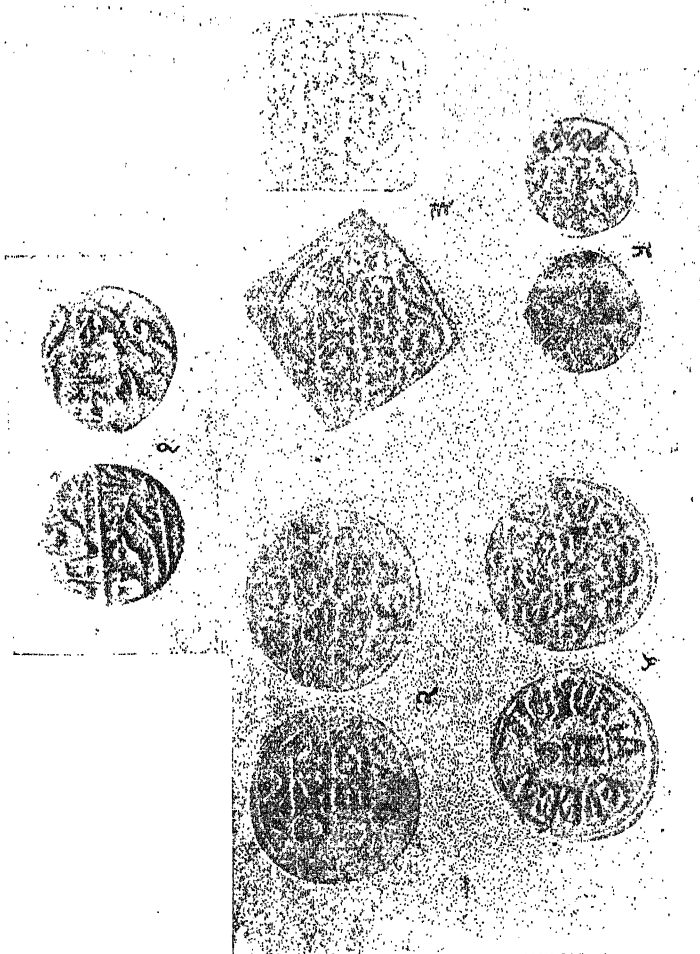
लगे। १९०१ में दरबार ने यह घोषणा की कि भविष्य में अंग्रेजी कलदार के सिवाय चेहरेशाही सिक्का चालू रहेगा और वही राज्य की तरफ से ढाला जायेगा। यह चेहरेशाही रुपया पूर्ण चांदी का था और उस समय सवा तेरह आने अंग्रेजी सिक्के के बराबर था। हाली (चेहरेशाही सिक्का) अन्तिम बार वि० सन् १९८२ (ई० सन् १९२५) में ढाला गया फिर अंग्रेजी सिक्के का प्रचलन ही रह गया।

ऐतिहासिक स्थान

बूंन्दी राज्य में अनेक प्राचीन स्थान हैं। उनमें से मुख्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

बून्दी नगर—राजधानी का (बून्दी का) प्रधान नगर है, जो २५ अंश २७ कला उत्तर अक्षांश और ७५ अंश ३९, कला पूर्व देशान्तर पर बसा है। यह अजमेर नगर से १०० मील दक्षिण-पूर्व की ओर है। यह बी. बी. एन्ड. सी. आई. रेल्वे (अब पश्चिमी रेल्वे) की बड़ी लाईन के कोटा जंकशन स्टेशन से २४ मील और बून्दी रोड़ (केशोराय पाटण) स्टेशन से २५ मील दूर है। देवली छावनी (अजमेर) से जो पक्की सड़क कोटा को गई है वह बून्दी शहर में होकर जाती है।

बून्दी नगर

राजमहल को पहुँचने के लिये दो दरवाजे हैं। हाथीपोल के दोनों ओर दो पत्थर की हाथियों की मूर्तियां हैं जो कि रावराजा रतनसिंह के राज्यकाल में १० वीं शती के आरम्भ में बनवाये गये थे। इस दरवाजे में एक प्राचीन जलघड़ी भी है। इस दरवाजे से दूसरी ओर अस्तबल के ऊपर दिवानेआम है जो रतनसिंह ने बनवाया था। दिवानेआम के आगे की ओर छत्रसाल का वि० सं० १७०१ (ई० सन् १६४४) का बनवाया छत्र महल है। यहां महल में कई सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इसके चौक में महाराव रामसिंह की यंत्रशाला है जो कि हथियाशाल कहलाती है। यहां पर बून्दी राज्य के कई प्राचीन हथियार भी रखे हुए हैं। यहां से शहर का सुन्दर दृश्य दिखाई देता है।

दिवाने आम के ऊपर की ओर रंगविलास बाग है जहां एक चित्रशाला है। इसमें कई धार्मिक, ऐतिहासिक व शिकार के १८ वीं शताब्दी के चित्र हैं। इसका एक कोना दिवार से घिरा है। यहीं १८०४ में उम्मेदसिंह का स्वर्गवास हुआ था। राजघराने के लिये यह एक पवित्र कोना है।

शहर के बाहर दक्षिण की ओर अनिरुद्धसिंह की विधवा रानी की बनवाई हुई बावड़ी है। इसके पास ही रावराजा भाऊसिंह की धा-मां का वि० सं० १७११ (ई० सन् १६५४) का बनवाया हुआ कुण्ड है।

चौरासी खम्भों की छत्री

नगर से लगभग १ मील दूर कोटा की सड़क पर रावराजा अनिरुद्धसिंह के धा-भाई देवा की याद में बनी चौरासी स्तम्भों की भव्य छत्री है। यह १६८३ में बनी थी।
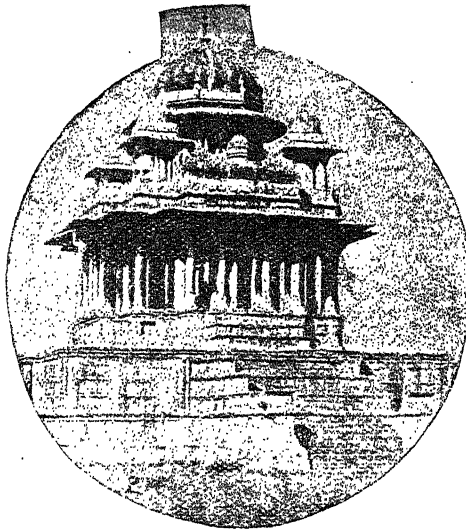
कोटा की ही सड़क पर पहाड़ियों से घिरी जेतसागर झील है जिसे मीणा सरदार जेता ने आरम्भ में बंधवाया था। इसी मीणा सरदार जेता से राव देवा ने बून्दी को लिया था। इस झील को राव सुर्जन की माता गहलोतनी जैवतजी ने वि० सं० १६२५ (ई० सन् १५६८) में वापस बंधवाया तथा इसको बढ़वाया। इस झील के किनारे पर महाराव राजा विष्णुसिंह ने सुखमहल नामक महल बनवाया।

बून्दी नगर प्राकृतिक दृष्टि से उदयपुर से दूसरे नम्बर का मनोहर नगर है। पहाड़ों के बीच में बसा होने से वर्षा ऋतु में यहां का दृश्य बड़ा ही सुन्दर और सुहावना लगता है। चारों ओर पहाड़ हरियाली से ढक जाते हैं तथा झरने और नाले बहने लगते हैं। इसी से बून्दी में अधिकांश मेले श्रावण और भाद्रपद मास में होते हैं। बून्दी का तीज का मेला सब से प्रसिद्ध मेला है, जो भाद्रपद कृष्णा तीज को भरता है। नगर चारों ओर परकोटा (शहर-पनाह) से और मैदान की ओर खाई तथा कोट से घिरा हुआ है। परकोटे में चार दरवाजे हैं। पूर्व की तरफ पाटण पोल, पश्चिम में भैंरो दरवाजा है। दक्षिण में चौगान दरवाजा और उत्तर में सुकल बावड़ी दरवाज़ा है। पूर्व की पहाड़ी पर छैल मीरां साहब की दरगाह है। दक्षिण की पहाड़ी पर चौमुखा नामक बुर्ज और उत्तर की पहाड़ी के पश्चिमी छोर पर सूर्य छत्री दर्शनीय है।

वि० सं० १९३७ की फाल्गुन कृष्णा ३ गुरुवार (ई० सन् १८८१, ता० १७ फरवरी) की मनुष्य गणना के अनुसार उस समय बून्दी शहर की बस्ती २०,७२० मनुष्यों की थी। वि० सं० २००७ (ई० सन् १९५१) में २२,६९७ की बस्ती थी जिनमें ११,४५० पुरुष और ११,२४७ स्त्रियां थी।

बून्दी शहर से डेढ़ मील उत्तर की ओर छार बाग (सार वाग) नामक राजकीय श्मशान है जहां भूतपूर्व बून्दी नरेशों की छत्रियां तथा चौतरे बने हुए हैं। यहां राव सुखन का पुत्र इंदा जो १५८१ में मुगलों के पक्ष में लड़ता मारा गया था, से लगा कर अब तक के राजाओं की छत्रियां है। इन छत्रियों की पच्चीकारी बड़ी सुन्दर है। घोड़ों तथा हाथियों की मूर्तियां बड़ी कारीगरी से बनाई गई हैं। जिस राजा के साथ जितनी रानियां सती हुई उनकी भी मूर्तियां उन राजाओं की मूर्तियों के साथ हैं। यहां छत्रशाल की भी बड़ी छत्री है जिसके दाह में ६४ रानियां सतियां हुईं थीं।

छारबाग से आधा मील आगे उत्तार की ओर बाणगंगा के तट पर महादेव का प्रसिद्ध छोटासा मन्दिर है। इस मन्दिर के बाहरी मंडप में बांयो ओर दीवार में एक शिलालेख वि० सं० १३५४ (ई० सन् १२९७) का बून्दी के राजा विजिपाल देव (विजयपाल देव) का लगा हुआ है। बून्दी के चौहाण राजा विजयपाल देव का समय बताने वाला यह पहला ही शिलालेख है।

केदारनाथ (केदारेश्वर) के पास ही महाराव राजा उम्मेदसिंह हाड़ा की शिकार बुर्ज नामक दर्शनीय तपोभूमि है। महाराव राजा उम्मेदसिंह ने १७७० में राज-गद्दी छोड़ने के बाद राजपूत रिवाज के अनुसार यहीं अपना निवास-स्थान

बनाया था। बाद में यह शिकार गृह बना दिया गया। यहां की महावीर की मूर्ति और राजमहल देखने योग्य है। शिकार बुर्ज से कुछ दूर पर पहाड़ों का
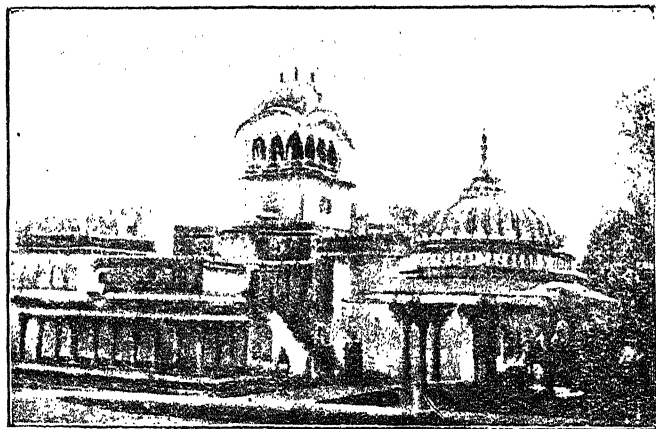
शिकार बुर्ज, बून्दी

नाका बांध कर एक बड़ा बांध बनवाया गया है, जो पानी से सदा भरा रहता है। यहां शिकार बुर्ज बनी हुई है, जहां से शिकार खेला जाता है।

बून्दी से ५ मील उत्तर पश्चिम की ओर पक्की सड़क पर फूलसागर है, जहां तालाब, महल और बाग देखने योग्य हैं। फूलसागर ई० सन् १६०२ (वि० सं० १६५६) में रावराजा भोजसिंह की उप-पत्नी फूललता ने बनवाया था लेकिन बाग आदि बाद में बनवाये गये। यहां का कुंड, दो छोटे महल, छत्री आदि महाराव राजा रामसिंह ने बनवाई थी।

पाटण—यह कस्बा बून्दी से २२ मील पूर्व की ओर तथा कोटा से ६ मील उत्तर-पूर्व में चम्बल नदी के बांये किनारे पर बसा है। यहां केशोराय (विष्णु) का प्रसिद्ध मन्दिर होने से यह केशोराय पाटण भी कहलाता है। यहां ३,४५१ मनुष्यों (१६५१ की गणना से) की बस्ती है। यहां के रेल्वे स्टेशन (केशोराय पाटण) का नाम बदल कर अब बून्दी रोड रख दिया गया है। पाटण एक बहुत पुराना कस्बा है और यहां चम्बल के पूर्व वाहिनी होने से इसकी पुराने समय से हिन्दू तीर्थों में गणना की जाती रही है। चम्बल नदी के ऊँचे पक्के घाट पर केशोराय का मन्दिर जिसे रावराजा शत्रुशाल हाड़ा ने सं० १७१५ (ई० सन् १६५६) में बनवाया था। औरंगजेब ने शत्रुशाल को अपने भाई दारा-शिकोह का कृपापात्र होने के कारण अपना विरोधी मान लिया था। इस कारण और द्वेष से उसने केशोराय के मन्दिर को गिराने के लिये अपनी सेना भेजी थी

जिसका सामना यहां के हाड़ों ने किया। शाही सेना ने मंदिर के शिखर का कुछ हिस्सा व कलश को गिरा दिया था। बाद में मंदिर की मरम्मत रावराजा
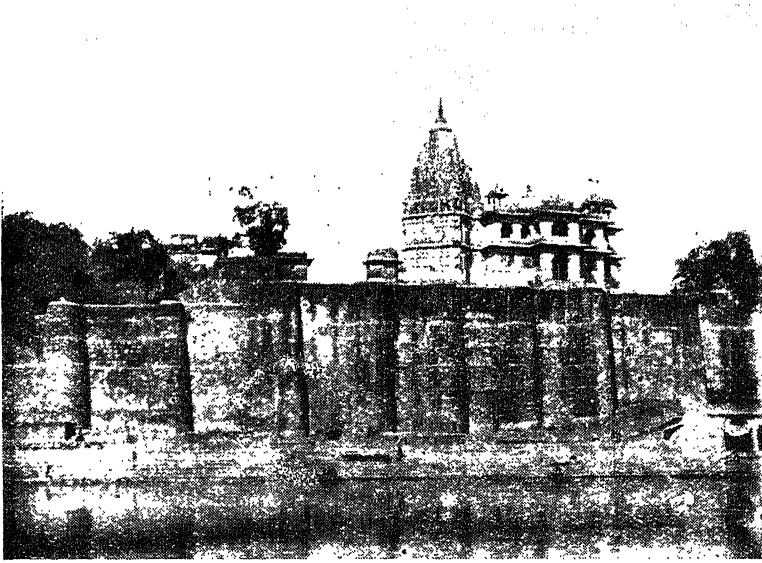
केशोराय पाटण मन्दिर, बून्दी

बुद्धसिंह के समय में हुई। इसी राजा की कछवाह रानी ने सोने का कलश चढ़वाया था।

मंदिर में अब गणेश की मूर्ति की पूजा होती है। इस मंदिर के पास ही जम्बू-द्वीप महादेव का बड़ा मन्दिर है। इस क्षेत्र को जम्बू-द्वीप या जम्बूकारण्य कहते हैं। इस मन्दिर में महा शिवरात्रि के दिन एक मेला भरता है। इस मन्दिर की ज्यादातर मूर्तियां सफेदी किये जाने के कारण पहचानी नहीं जाती हैं। मंदिर के दरवाजे पर ब्रह्मा, विष्णु व शिव की मूर्तियां हैं। गर्भगृह में लिंग है। इस मन्दिर की लगभग सब मूर्तियां सफेदी व प्लास्टर किये जाने के कारण खराब हो गई हैं। अतः उनकी कला पर गौर नहीं किया जा सकता है।

इस स्थान पर भूमि देवरा नामक प्राचीन जैन मन्दिर भी देखने योग्य है। यह मन्दिर भूमि के नीचे बना हुआ है। इसमें तीन नालें हैं। प्रत्येक नाल पर द्वार है जिनके दोनों ओर काले पत्थर की मूर्तियां हैं। सब से नीचे १४ स्तम्भों का मंडप है जिसमें काले पत्थर की आदमकद कलात्मक जिन मूर्तियां हैं। कहा जाता है कि चन्द्रवंशी राजा हस्ती (जिसने हस्तिनापुर बसाया था) के चचेरे

भाई माहेश्वर के राजा रिन्तदेव* ने इसे बसाया था और पहिले इसका नाम "रेन्तदेव पतन" था। उस समय यह नगर बहुत दूर तक फैला हुआ था लेकिन किसी कारण से नष्ट हो गया। अब भी प्राचीन स्मारक स्थान २ पर दीख पड़ते हैं। नदी के किनारे की भूमि के खोदने पर पुराने सिक्के व अन्य वस्तुएें कभी कभी मिल जाती हैं। यहां कई पुराने शिव और जैन मन्दिर भी हैं। प्राचीन समय में यहां एक विशाल जैन मन्दिर था जिसका अब केवल दरवाजा ही खड़ा है, जिसमें अनेक जैन मूर्तियां लगी हुई हैं। जैनियों की ला-परवाही से इस स्थान पर आजकल मुसलमानों का अधिकार है, जिसे वे मक्का कहते हैं। यहां एक मेला कार्तिक पूर्णिमा से ८ दिन तक लगातार भरता है, जिसमें दूर-दूर से लगभग ३०-३५ हजार यात्री आते हैं। व्यापार भी खूब होता है। चम्बल नदी के घाट पर सतियों के चबूतरों में पाये जाने वाले शिलालेखों में सब से पुराने लेख वि० सं० ६१ (ई० सन् ३५) और वि० सं० १४६ (ई० सन् ६३) के हैं। यह भी कहा जाता है कि इसके बहुत पहले परशुराम नामक किसी व्यक्ति ने जम्बुकेश्वर नामक महादेव का मन्दिर बनवाया था। यह प्राचीन मन्दिर गिर जाने पर वि० सं० १६६८ (ई० सन् १६४१) में बून्दी नरेश रावराजा शत्रुशाल हाडा ने एक बड़ा मन्दिर फिर से बनवा दिया। इस मन्दिर में केशवराय यानि विष्णु की चतुर्भुजी सफेद पाषाण की मूर्ति है। यह मूर्ति शत्रुशाल मथुरा से लाया था। इस मूर्ति की एक आंख में हीरा है लेकिन दूसरी आँख का हीरा गायब हो गया है। कहते हैं कि जसवन्त राव होल्कर को मूर्ति के दोनो हीरे नहीं भाये। अपनी तरह इस देवता को भी काणा करने के विचार से वह मूर्ति के एक हीरे को निकाल ले गया। वि० सं० १७७६ फाल्गुन शुक्ला ७ शुक्रवार (ई० सन् १७२०, ता० ५ मार्च) के दिन महाराव राजा बुद्धसिंह हाडा की पटरानी कछवाही ने मन्दिर पर सोने का कलश चढ़ाया। यह वि. सं. १७७६ फागण शुक्ल ७ शुक्रवार (ई० सन् १७२० की ५ मार्च) के लेख, जो मंदिर में लगा हुआ है, से ज्ञात होता है। यहाँ एक चबूतरे पर प्राचीन पंचमेश शिवके पांच लिंग और नंदी हैं जो पांडवों के स्थापित किये हुए बताये जाते हैं। अन्य दर्शनीय स्थान परशुराम घाट, सरस्वती, नीलकंठ महादेव आदि हैं। छत्री में शेषावतार बलदेव की मूर्ति है जिसकी चरणपादुका पर वि० सं० १६०६ माघ कृष्णा १ (ई० सन् १५५० ता० ४ जनवरी, शनिवार) का लेख है। इसी तरह एक छत्री में भगवान् चतुर्भुज की श्यामवर्ण की मूर्ति है। उसके वि० सं० १६६८

* रणथंभोर का किला बनाने और बसाने वाला भी यही राजा रन्तदेव कहा जाता है।

(ई० सन् १६४१) के लेख से रन्तिदेव की कथा का भास होता है । यहां और भी कई प्राचीन स्थान और मन्दिर दर्शनीय हैं । पाटन नगर प्राचीन तीर्थ होने के कारण बून्दी राज्य में विशेष महत्व रखता है ।

हीन्डोली—यह बून्दी राज्य की पश्चिमी निजामत का मुख्य नगर है, जो बून्दी शहर से १४ मील उत्तर में अजमेर की सड़क पर २५ अंश ३५ कला उत्तर अक्षांश और ७५ अंश ३० कला पूर्व देशान्तर पर पहाड़ की तलहटी में बसा हुआ है । इस नगर को हीन्डा नामक गूजर ने वि० सं० १४२५ में बसाया था । यहां पहले अच्छी आबादी थी । यद्यपि यहां की आबादी अब कम हो गई है फिर भी यह एक प्राचीन कस्बा होने से इसका विशेष महत्व है । यहां पर हीन्ड़ोलो के जागीरदार हाडा प्रतापसिंह के बनाये हुए प्राचीन महल तथा वि० सं० १६८६ (ई० सन् १६२६) का बना हुआ लक्ष्मीनारायण का मन्दिर दर्शनीय है । हाडा हमीर के पुत्र प्रतापसिंह द्वारा मन्दिर बनाये जाने का एक शिलालेख वि० सं० १६८६ (ई० सन् १६२६) का यहां दीवार में लगा हुआ है । यहां पर १० वीं शताब्दी के लगभग की वाराह अवतार की मूर्ति है । पहाड़ी पर सेवड़ा छत्री में वि० सं० १०११ भाद्र-पद सुदि ११ (ई० सन् ६५४ की अगस्त १३) का लेख है ।

हीन्डोली में रामसागर नामक बड़ा तालाब है । जिसे अनुमानतः ३०६ वर्ष पूर्व महाजन रामशाह ने बनवाया था । बून्दी के स्वर्गीय महाराव सर रघुवीरसिंह ने तालाब की पक्की पाल तथा एक सुन्दर कोठी तथा बारहदरी आदि बनवा कर हीन्डोली की शोभा बढ़ा दी है । पाल पर से तालाब की शोभा बहुत सुहावनी मालूम होती है । पाल के नीचे एक सुन्दर बाग बना हुआ है । गांव में हुन्डेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर है, जहां शिवरात्रि को अच्छा मेला भरता है । यह मन्दिर जोशी गणेश के पुत्र परशुराम ने वि० सं० १६८६ वैशाख शुक्ला ३ (ई० सन् १६६२ ता० १२ अप्रेल गुरूवार) को बनवाया था जैसा कि मन्दिर की दीवार के शिलालेख से प्रकट होता है ।

लाखेरी—यह प्राचीन कस्बा बून्दी शहर के उत्तर-पूर्व में कोटा राज्य से मिला हुआ आडावला पहाड़ के नीचे बसा हुआ है । इस नगर को लाखा चौहान ने बसाया था । ई० सन् १६१३ में यहां पर अंग्रेज व्यापारी किल्क निकसन एन्ड कम्पनी ने पोर्टलेन्ड सिमेन्ट का कारखाना खोला जिसके कारण से लाखेरी की जन संख्या में अच्छी वृद्धि हो गई है । १६५१ में लाखेरी सीमेन्ट वर्कस की बस्ती ८,११८ (पु. ४१६४, स्त्री. ३६२४) और लाखेरी

म्यूनीसिपलीटी की बस्ती ४,८६४ (पु. २५८५, स्त्री. २३०६) थी। इस कारखाने से २५००० टन सीमेन्ट का उत्पादन प्रतिमास होता है। लाखेरी पश्चिमी रेल्वे की बड़ी लाइन (नागदा मथुरा लाईन) का स्टेशन है। लाखेरी के पान बहुत अच्छे होते हैं। यहां तोरण थाम की बावड़ी अत्यन्त सुन्दर है। यहां से एक दर्रा इन्द्रगढ़ को जाता है।

लाखेरी से ४ मील दूर उत्तरी सरहद के पहाड़ पर एक मजबूत किला बना हुआ है जिसे गुगेर का किला कहते हैं।

दबलाना—बून्दो से ११ मील उत्तर की ओर मेज नदी के किनारे २५ अंश ३५ कला उत्तर अक्षांश और ७५ अंश ४० कला पूर्व देशान्तर पर बसा हुआ यह एक बड़ा गांव है। यहीं पर वि० सं० १८०३ में बून्दी नरेश महाराव राजा उम्मेदसिंह और महाराजा ईश्वरसिंह का एक भारी युद्ध हुआ था। इसी युद्ध में बून्दी की सेना हारी थी। यहां पर संवत् १५१६ वि० (१४५६ ए.डी.) का एक दिगम्बर सम्प्रदायका जैन मन्दिर तथा सोलंकिया की छाजियां हैं; जिनमें से एक पर संवत् १६२३ का लेख है। दो सतियों के चबूतरे पर सं. १५४३ (१४८६) और सं. (१५६६) १६६६ (१६१२) के लेख हैं। यहां के रावजी का गढ़ बड़ा अच्छा बना हुआ है।

दुगारी—यह बून्दी राज्य का एक जागीरी कस्बा है जिसे महाराव राजा उम्मेदसिंह ने वि. संवत् १८२६ में अपने छोटे पुत्र सरदारसिंह को जागीर में दिया था। यह बून्दी राज्य में सबसे बड़ा ठिकाना है। यहां पर कनकसागर नामक तालाब ३ वर्ग मील के विस्तार में है, जो रावराजा भोजू की राणी कनकावती का बनवाया हुआ है। पहाड़ी के टीले पर जलेश्वरनाथ महादेव का शिखरबंद मन्दिर है, जिसके स्तम्भ पर संवत् ११११२ का लेख है। चतुर्भुज का शिखर बंद मन्दिर रावराजा भोजू (१०५५) की रानी कनकावतो का बनवाया हुआ है।

खटकड़—यह बून्दी से १६ मील पूर्व को है। इस ओर खैर वृक्ष ज्यादा होने से इसका नाम खैराड़ पड़ गया। खैराड़ से खटकड़ नाम पड़ा। यहां की पहाड़ी पर राव शत्रुशाल ने धूंधला जोगी का एक मन्दिर बनवाया था। धूंधला गोरख नाथ का चेला कहा जाता है। मन्दिर में धूंधला की मूर्ति है और उसपर वि. सं. १२७३ अगहण शुक्ला ३ का लेख खुदा है।

यहां के खंडहरों से ज्ञात होता है कि यह कभी घनी बस्ती लिये होगा। यहां एक महादेव का शिखर बन्द मन्दिर है।

वि. सं. १२०१ (ई. सन् ११४४) में पीलपिंजर खींची ने खटकड़ को जीता था। इसी का वंशज राव अचला मांडू के बादशाह हाशंग शा से लड़ता हुआ मारा गया था। तब खटकड़ पर मांडू वालों का राज्य हो गया। बादमें राणा सांगा के समय यह हाड़ों के अधिकार में आया।

नैणवा—यह भी एक पुराना कस्बा है और बून्दी से लगभग २४ मील पूर्वोत्तर में २५ अंश ४६ कला उत्तर अक्षांश तथा ७५ अंश ५१ कला पूर्व देशान्तर पर बसा हुआ है। यह नैपावा व हिन्डोली तहसीलों से बने सब डिवीजन का मुख्य कार्यालय है। इस सुन्दर नगर की जनसंख्या वि. सं. २००७ (ई. सन् १९५१) में ५७४९ थी। यह नगर चारों ओर शहर पनाह और कोट से घिरा हुआ है तथा यहां एक सुदृढ़ किला भी है। नगर के पूर्वोत्तर और दक्षिण पश्चिम में तीन तालाब हैं, जिनमें सबसे बड़ा नवल सागर है, जिसे नवलसिंह सोलंकी नामक सरदार ने बनवाया था। यहां पर एक छोटा सा परन्तु सुन्दर महल बना हुआ है।

बून्दी का राजनैतिक इतिहास

चौहानों की उत्पत्ति—भारतीय राजनैतिक क्षेत्र पर चौहानों का उत्थान काल आठवीं सदी से लेकर सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (वि. सं. १२३६ ई. सन् ११९२) मौहम्मद गोरी (वि. सं. १२४९ ई. सन् ११९२) द्वारा हार तक का समय स्वीकार किया जाता है। कालान्तर में मुसलमान काल में चोहानों ने अपने छोटे-छोटे राज्यों के सामन्ती आधार सिद्धान्त के अनुसार राज्य करना प्रारम्भ किया। वे पुनः कभी अखिल भारतीय राजनीति के मुखिया नहीं बन सके। मुगलों के समय हाड़ों शाखा के चौहानों ने मुगल साम्राज्य को शक्ति

शाली बनाने में पूर्ण सहयोग देकर एक प्रभावशाली राजपूत शक्ति बनाने का प्रयास किया परन्तु उसी समय हाडा चौहानों में विभाजन हो गया। चौहान राजपूतों की २४ शाखाओं¤ में से सब से महत्वपूर्ण हाड़ा चौहान शाखा रही है।* इन हाड़ों का मुख्य केन्द्र बून्दी था परन्तु संवत् १६८१ में माधोसिंह हाड़ा ने कोटा में स्वतंत्र हाड़ा राज्य स्थापित कर लिया।† इस प्रकार हाड़ा चौहानों की शक्ति के विभाजन से उनकी गृह कलह की घटनाएँ बढ़ गईं। मराठी युग (सन् १७३४–१८१८) में बून्दी व कोटा के हाड़ा राजपूताना के राजनैतिक रंगमंच पर प्रविष्ट होने लगे। राजस्थान में मराठों का प्रवेश बून्दी व कोटा के गृह-कलह के परिणाम स्वरूप हुआ‡ राजपूताने के इतिहास में चौहानों का इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण है।

उत्पत्ति—चौहाण राजपूतों की उत्पत्ति के बारे में इतिहासज्ञों में कई मत प्रचलित हैं। इन मतों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) चौहाण अन्य राजपूतों की तरह सूर्य्य-वंशी या चन्द्र-वंशी क्षत्रिय हैं।

(२) अग्नि कुल के वंशज हैं।

(३) विदेशी हूण, सिथियन, ससेनियन आदि की भारतीय मिश्रित जाति की सन्तान हैं।

(४) ब्राह्मण से क्षत्रिय परिवर्तित हैं।

इतिहासज्ञों ने इस विषय के बारे में निश्चित तौर पर तथ्यों के आधारभूत विश्वासों के साथ कोई निर्णय नहीं दिया है यद्यपि डा० दशरथ शर्मा ने इस ओर निर्णयात्मक रूप में अपने विचारों को रखा है।

सूर्य्यवंशी चन्द्रवंशी—विक्रम सं० १०३० से १६०० तक (९७३ ई० से १५४३ ई०) कोई शिलालेख या तथ्यपूर्ण साहित्यिक सामग्री प्राप्त नहीं हुई है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि चौहानों की उत्पत्ति अग्निकुंड से हुई है।§ उस समय तक सभी चौहान राजपूत अपने को सूर्य्यवंशी कहते थे। अजमेर

¤ सोनगरा, खिची, देवड़ा, हाड़ा, मोहिल, माल्हण, चीवा, चाहिल, बोड़ा, निर्ना

* टाड : एनल्स एण्ड एण्टीक्युटीज आफ राजस्थान जिल्द ३ पृ० २४४१

† डा० मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास जिल्द १ पृ० ९७

‡ टाड : एनल्स एण्ड एण्टीक्युटीज आफ राजस्थान जिल्द

§ रेउ : भारत के प्राचीन राजवंश, जिल्द १ पृ० ०२५

में ढाई दिन के झोंपड़े से प्राप्त एक नाट्य-काव्य लेख* के अनुसार चौहान सूर्य्य-वंशी कुल के हैं। ऐसे ही 'पृथ्वीराज विजय काव्य' में चौहानों को सूर्य्यवंशी लिखा हैं। यह काव्य अन्तिम भारतीय-सम्राट् पृथ्वीराज के समय का बना हुआ कहा जाता है। इसके प्रथम सर्ग में लिखा हैं कि 'ब्रह्माजी ने पुष्कर की रक्षा के लिए विष्णु से प्रार्थना की। इस पर विष्णु ने सूर्य्य की ओर देखा। तब सूर्य्य मंडल से एक धनुर्धारी पुरुष का आविर्भाव हुआ और उसने राक्षसों को मार भगाया। वही पुरुष अन्त में चाहमान नाम से प्रसिद्ध हुआ।" चुनार किले में बून्दी के महाराव सुर्जनसी का बनवाया हुआ 'सुर्जन चरित्र' नामक ग्रन्थ मिला है उसमें भी चौहानों को सूर्य्यवंशी लिखा है। 'हमीर महाकाव्य' के रचयिता नयचन्द्र सूरि ने चौहानों की उत्पत्ति के बारे में इस बात पर ध्यान आकर्षित किया है कि ब्रह्मा से साम्राज्य प्राप्त करके चाहमान ने अन्य शासकों पर उसी प्रकार राज्य किया जैसे उसका प्रधान पूर्वज सूर्य्य, पर्वतों पर राज्य करता है।†

कुछ अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि चौहान चन्द्रवंशी थे। देवड़ा चौहान शासक राव लूम्बा के समय के एक शिलालेख‡ में लिखा हुआ है कि सूर्य्य और चन्द्रवंश के अस्त हो जाने पर, जब संसार में उत्पात आरम्भ हुआ, तब वत्स ऋषि ने ध्यान किया। उस समय वत्स ऋषि के ध्यान और चन्द्रमा के भोग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो चन्द्रवंशी कहलाया।" जेम्स टाड को हासी किले से एक शिलालेख मिला था। यह चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीय का है§ इस लेख में इनको चन्द्रवंशी लिखा है। इसी तरह मेवाड़ में बिजोलिया ग्राम के वि० सं० १२२६ के एक शिलालेख¶ के अनुसार तथा जोधपुर राज्य के जसवन्तपुरा में सूंधा माता के मन्दिर के चौहान चाचिरादेव के वि० सं० १३१९ (ई० सन् १२६३) के लेख में चौहानों को वत्सगोत्री लिखा है।

अग्निवंशी—चौहानों का अग्निवंशी होने का सर्व प्रथम उल्लेख 'पृथ्वीराज रासो' नामक महाकाव्य में प्राप्त होता है। चन्दवरदाई ने चौहानों की उत्पति के बारे में लिखता है कि आबू पर्वत पर वशिष्ठ मुनि ने यज्ञ किया। यज्ञ में

---

* डाक्टर मथुरालाल शर्मा का विश्वास है कि ढाईदिन का झोपड़ा पहले सरस्वती मन्दिर था जिसे वीसलदेव चतुर्थ ने १२१० वि० सं० ने निर्मित किया। इस का शिलालेख का एक अंश अजमेर अजायबघर में रखा है।

† (१३९३-१४०३ सन् के बीच)

‡ आबूपर्वत पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर का वि० सं० १३७७ (१३२० ई०) शिलालेख

§ सन् ११६७ ¶ चोहान सोमेश्वर देव का

दैत्यों ने बाधा डाली तब वशिष्ठ ने यज्ञ-रक्षा के लिए प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चहुआण नामक क्षत्रिय योद्धाओं को यज्ञवेदी से उत्पन्न किया। इन्हीं योद्धाओं के वंशज परिहार सोलंकी, परमार और चौहान कहलाए*। बून्दी राज्य के राज-कवि श्री सूर्य्यमल मिश्र ने अपने वंश भास्कर में पृथ्वीराज-रासो की चोहानों की उत्पत्ति की कहानी को स्वीकार कर लिखा कि वशिष्ठ के आमन्त्रण पर ब्रह्मा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अतिक्रूर आहूति डाल कर चौहानों को उत्पन्न किया था।† 'वंश प्रकाश' का मत वंश भास्कर पर आधारित है। उसमें उल्लेख है कि कलियुग के १००० वर्ष के अनुमान बीतने पर बौद्धों का मत बहुत फैल गया और वेद के मानने वाले कम रह गए और दैत्य भी बढ़ गए इस वास्ते वशिष्ठ ऋषि ने बोद्धों के मत के खंडन और दैत्यों को मारने और वेद का मत चलाने के लिए आबू पहाड़ पर यज्ञ किया। उस यज्ञ के अग्निकुंड में से चार क्षत्रिय पैदा हुवे, पहले प्रतिहारजी जिनको पड़िहारजी, दूसरे चालूक्यजी जिनको सोलंखीजी, तीसरे प्रामारजी जिनको पंवारजी और चौथे चाहुवाणजी जिनको चौहाणजी भी कहा करते हैं।‡

पृथ्वीराज-रासो तथा वंश भास्कर के विश्वासों को राजपूत शासकों ने मान्यता दी है। "सूर्य्यवंशी" के बदले राजपूतों ने अपने आपको 'अग्नि वंशी' कहना प्रारम्भ किया। अग्निवंशी स्वीकार करते हुए भी उपरोक्त ग्रंथों में इन राजपूतों का सूर्य्यवंशी होना स्पष्ट मालूम होता है। 'रासो' में क्षत्रियों को तीन भागों में विभक्त किया है 'रघुवंशी, चन्द्रवंशी और यादववंशी। इन अग्नि कुल में उत्पन्न होने वाले कुलों को सूर्य्यवंश में होना बतलाया है§। इसी प्रकार सूर्य्यमल मिश्र ने अपनी कृति में इस बात को स्वीकार किया है कि कुछ लोग अग्नि वंशी क्षत्रियों को सूर्य्यवंशी भी मानते हैं। दोनों एक ही वंश है¶ इस दृष्टि से अग्नि कुल के क्षत्रिय सूर्य्यवंशी या चन्द्रवंशी हैं।

चौहान विदेशी मिश्रित सन्तान—कर्नल टाड ने भाटों और चारणों की कथाओं को कल्पना मात्र मानकर उनके कथनों को सत्य रूप देने के लिए इस

---

* पृथ्वीराजरासो आदिपर्व पृ० ४६५१ † वंश भास्कर पृ० ६१–६४

‡ वंश प्रकाश पृष्ठ संख्या २ यह कथा "कालिन्दि का प्रकाश" से उद्धृत की गई प्रतीत होती है जिसमें लिखा है कि कलियुग १००० वर्ष बीत जाने पर यवन लोग प्रजा को सतायेंगे तब यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न क्षत्रिय उनकी रक्षा करेंगे। श्यामलदासकृत 'वीर विनोद' में इस बातका उल्लेख भी है कि उसी यज्ञ मंडप में केले का पेड़ खड़ा किया था उसके फूल के डोडे से एक राजपूत पैदा किया जिसका नाम डोड़िया हुआ।

§ पृथ्वीराज रासो आदिपर्व पृ ५४ ¶ वंश भास्कर प्रथम भाग पृ० ८७

बात को तथ्यपूर्ण बतलाया है कि अपनी रक्षा के लिए ब्राह्मणों ने युद्ध-प्रिय विदेशी जातियों को शुद्ध करके आर्य्य धर्म में सम्मिलित किया हो या आदिवासी शूद्र जातियां हो जिन्हें मंत्र और आहुति द्वारा शुद्ध किया गया हो। आगे चलकर टाड ने इन्हें सिथियन आक्रमणकारियों की सन्तान के रूप में स्वीकार किया है।* विन्सेन्ट स्मिथ अपनी पुस्तक अर्ली हिस्ट्री ऑफ इन्डिया में इन अग्निकुल क्षत्रियों को हूण गुर्जरों के वंशज बताता है† गुर्जर प्रतिहारों के लिए जेम्सकेम्बेल और डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर का यह विश्वास है कि ये लोग बाहर से आई हुई खजर जाति के हैं जो भारत में प्रवेश करने के बाद गूजर कहलाने लगे।‡

भाटों की ख्यातों में हूणों की गणना राजपूत वंशों में की गई है।§ हूणों ने जब भारत पर आक्रमण किया तो वे यहीं बस गए। उन्होंने हिन्दू-धर्म स्वीकार किया तथा स्थानीय शासकों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने लगे। हूण लोगों ने शैवधर्म स्वीकार कर लिया।¶ इन्ही की सन्तानें राजपूतों के रूप में प्रगट हूई। जो इतिहासकार इन्हें विदेशी मिश्रित स्वीकार करते हैं उनके निम्नलिखित आधार हैं—(१) अग्नि द्वारा शुद्ध किए हुए वे विदेशो हैं जिनकी आवश्यकता ब्राह्मणों को उस काल में मालूम हुई जब कि उनके प्रभाव से हिन्दू वर्ग मुक्त होता जा रहा था। (२) कन्नोज के प्रतिहारों को गुर्जर माना जाता है और गुर्जरों को कनिघंम यू-ची मानता है। अतः गुर्जर प्रतिहार राजपूतों के पूर्वज विदेशी थे। (३) राजपूतों का उत्थान काल—हूण भारत में ७ व ८ वीं शताब्दी में आए। उनके आने के बाद एक सदी बाद राजपूतों का उदयकाल प्रारम्भ होता है। उस समय के पहले ही प्राचीन क्षत्रियों की परम्पराएँ नष्ट हो गई थीं अतः नई राजपूत जातियों के उदय का प्रारम्भ किसी नई परिस्थितियों को अंकित करता है। वे परिस्थितियां विदेशी प्रभाव से उठ खड़ी हुईं।

चौहान प्राचीन रघुवंशी क्षत्रिय हैं—वास्तव में इन राजपूतों की उत्पत्ति की मूल कथा ही एक किंवदंती मात्र है। 'अग्निकुल' का सिद्धान्त 'पृथ्वीराज रासो', 'वंश भास्कर' आदि ने प्रचलित किया। दोनों पुस्तकों में 'कालिन्दिका प्रकाश'

---

* टॉड. एनल्स एन्ड एन्टीक्वीटिंग जिल्द ३, पृ० १४४५

† पृष्ठ संख्या ४२६

‡ भण्डारकार–गुर्जर (J Bo. Br. R.A.S. Vol. xx)

§ ओझा: राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द पृष्ठ ५५

¶ मन्दसौर अभिलेख जिसमें हुण शासक मिहिर कुल को शिवभक्त लिखा है।

से प्रेरित होकर उसके अनुसार लिख दिया गया है। ये तीनों ग्रंथ बिना किसी महत्वपूर्ण तथ्य के इस कथा को गढ देते हैं। रासो तथा कालिन्दिका प्रकाश दोनों ही प्राचीन ग्रन्थ नहीं है।* रासो का मूल भाग चन्द बरदाई का लिखा हुआ होगा लेकिन उसका ज्यादातर भाग १७ वीं शताब्दी के बाद लिखा गया माना जाता है।† यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणिक नहीं माना जा सकता है क्योंकि इसमें ज्यादातर काव्य कल्पनाएँ तथा ऐतिहासिक भूलें हैं। इसके अलावा रासोकार स्वयं स्वीकार करता है कि अग्निकुल से उत्पन्न हुए कुल सूर्य्यवंशी थे। कन्नौज के प्रतिहार गूर्जरों को विदेशी स्वीकार कर लेने से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि चौहान भी विदेशी थे। कुछ इतिहासकारों ने राजपूत उदयकाल के आधार पर राजपूतों व हूणों को एक ही वंश का स्वीकार किया है। तीसरी व चौथी शताब्दी के पश्चात् क्षत्रियों की परम्परा का नष्ट हो जाना स्वीकार किया जा सकता है परन्तु यह मान लेना कि क्षत्रिय वंश के शासक सदा के लिए नष्ट हो गए ठीक प्रतीत नहीं होता है। चौथी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक प्राचीन क्षत्रिय शासक अखिल भारतीय राजनीति में प्रभावशाली तो नहीं रह सके परन्तु यदा कदा प्रान्तीय व क्षेत्रीय-स्तर पर बने अवश्य रहे। चितौड़ में बापा रावल के पहले मोरि क्षत्रिय थे।‡ गुप्तकाल में§ और हर्ष के समय क्षत्रिय राज्य तंत्र थे। हूणों व सिथियनों से शादी सम्बन्ध के कारण इन कुलों को विदेशी कहना पर्याप्त नहीं स्वीकार किया जा सकता है। चौहान वंश के शासक इसी प्रकार एक क्षेत्रिय क्षत्रिय हों जो अखिल भारतीय राजनीति में प्रभावशाली न रहे हों। बाद में चौहानों का कोई एक प्राचीन चवहाण शासक रहा हो जिसकी परम्परा को लेकर उस वंश का नाम चौहान पड़ा ऐसा विश्वास स्वीकार कर लिया गया है।¶

---

* डा. मथुरालाल शर्मा: कोटा राज्य का इतिहास भाग १ पृष्ठ ४४

† सी. बी. वैद्य: हिस्ट्री ऑफ मेडिवियल हिन्दू इन्डिया जिल्द २ पृष्ठ १९

‡ कुमारपाल प्रबन्ध

§ समुद्रगुप्त ने जिन शासकों को हराया वे सब क्षत्रिय थे।

¶ चौहानों की उत्पत्ति के बारे में लुगलीदेव के अचलेश्वर अभिलेख के आधार पर कि चौहान सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी थे यह सिद्धान्त लुप्त हो जाता है। सूर्य्यवंशी व चन्द्रवंशी आख्यायिकाएें दो बातों को स्पष्ट करती हैं कि (१) चौहान वंशीय (जातीय) (tribally) रूप में पौराणिक चन्द्र और सूर्य्यवंशीय क्षत्रियों से सम्बन्धित नहीं हैं। (२) चौहानों को क्षत्रिय-पद बहुत काल बाद प्राप्त हुआ सम्भवतः यह पद गैर हिन्दुओं के विरुद्ध लड़कर हिन्दूधर्म की रक्षार्थ प्राप्त हुआ।

डाक्टर भण्डारकार का मत कि चौहान खजर जाति के वंशज थे सत्य प्रतीत नहीं

होता है । डाक्टर भण्डारकार ने वसुदेव वहमन के सिक्कों के आधार पर यह निर्णय दिया कि इन सिक्कों के मुख्य भाग में जो उक्ति अंकित है वह सेसेनियन पहलवी भाषा में हैं। 'सफ वरसु तेफ श्री वसुदेव' आन्तरिक वृत मार्जिन (हाशिए में) में 'सफ वरसु तेफ वहमान मुल्तान मल्का' और दूसरी ओर में श्री वासदेव (नागरी लिपि में अंकित है और पहलवी उक्ति) तुकान जालीस्तान स्पर्दक्षरण है । डाक्टर भण्डारकार ने 'व'(V) और 'च' (CH) को प्राचीन भारत की, (सातवीं–आठवीं सदी) नागरी लिपी के अनुसार समान शब्द स्वीकार किया है और 'वासुदेव वहमान' के स्थान पर 'वासुदेव चहमान' सही शब्द स्वीकार करके "चहवाण" के वंशज 'चौहानों' की उत्पति इस प्रकार खजर जाति (विदेशी) स्वीकार किया है । वासुदेव के बारे में उनका कहना है कि इस सिक्के में जो वासुदेव उल्लेखित है वह वासुदेव 'पृथ्वीराज विजय' व 'प्रबन्धकोष' में उल्लेखित वासुदेव ही है । प्रबन्ध कोष में जो उसकी तिथि वि० सं० ६०८ दी गई वह गल्त थी वास्तव में सिक्के के आधार पर तिथि वासुदेव की तिथि वि० सं० ६२७ होनी चाहिए। डा० दशरथ शर्मा अपनी पुस्तक चौहान डायनेस्टी पृष्ठ ८ में डाक्टर भण्डारकर के मत का खण्डन करते हुए इस पर सन्देह करते हैं कि 'वासुदेव' का नाम ही सिर्फ नागरीलिपि में है बाकी उक्ति ससेनियन पहलवीं लिपि में है जिसमें 'व' (V) और 'च' (CH) एक नहीं भिन्न-भिन्न है । इस प्रकार वहमान के स्थान पर 'चहवाण' पढा नहीं जा सकता है ।

डाक्टर भण्डारकार चौहानों को विदेशी जाति के ब्राह्मण वर्ग को इस आधार पर स्वीकार करते हैं । (१) वासुदेव के बाद प्रथम शासक जो मूल आधार स्त्रोत में मिलता है उसका नाम समन्त है । उसे बिजोलिया अभिलेख में वत्सगौत्र का ब्राह्मण कहा गया है । (२) कविराज शेखर की चौहान स्त्री से शादी इस आधार पर सत्य मानी जा सकती है कि चौहाण ब्राह्मण थे ।

यह मत अर्द्ध रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि चौहान ब्राह्मण थे पर विदेशी ब्राह्मण नहीं थे । यह मत डा० भण्डारकार के तथ्यों के आधार पर नहीं बल्कि बिजोलिया अभिलेख की उक्ति विप्रः श्री वत्सगोत्रभूत से स्वीकार किया जा सकता है (कविराज श्यामलदास ने इसे 'विप्रः श्री वत्सगोत्रभूत पढ़ा है) यह कि चहमान वत्स गौत्रीय ब्राह्मण था इसकी सत्यता 'क्यामखान रासो' जानकृत से मालूम होती है । जान एक चौहानवंशीय कैमखानी था जो १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल में हुआ । वह पृष्ठ ४ पर लिखता है चाहुवान है जगत में ते सब बछरूगोत ।४६। चाउ भयो सुत वध को........... ।

अतः जान चहवाण को जामदाग्न गोत्र के वत्स का वंशज लिखता है (ऋषि वत्स की आँख से उत्पन्न । चौहाण गोत्रच्छारा उन्हें वत्सगोभिन बतलाता है । जालोर के चौहाणों के सुंधा अभिलेख और चन्द्रावती के चौहाणों का अच्लेश्वर अभिलेख इस मत का समर्थन करता है अतः शाकम्भरी का सामन्त व उसके पूर्वज, पल्लवों, कादम्बों और गुहिलोतों की तरह ब्राह्मण थे जिन्हे परिस्थितिवश ब्राह्मणत्व को त्याग कर क्षत्रिय वंश में प्रवेश करना पड़ा । डा० दशरथ शर्मा: अर्ली चौहान डाइनेस्टी पृष्ठ ९–१०.

राजनैतिक इतिहास

(अ) चौहानों का प्रारम्भिक इतिहास—चौहान वंश का मूल पुरुष चाहमान माना जाता है* इसी शासक के नाम से चौहान इसके वंशज कहलाने लगे क्योंकि चौहान चवहाण का अपभ्रंश है। यह चवहाण शासक कब हुआ, किस स्थान पर यह राज्य करता था यह निश्चित तौर पर अभी ज्ञात नहीं हो पाया है। वंश भास्कर में सूर्य्यमल ने चवहाण व उसके पीछे ३६ राजाओं का शासन करने का उल्लेख लिखा है।† पृथ्वीराज विजय के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चहुमान अति शक्तिशाली शासक था और उसके छोटे भाई धनंजय के नेतृत्व में चहवाण ने समस्त भारत पर अधिकार किया और अन्तिम समय में चहवाण धार्मिक केन्द्रों की यात्रा करता हुआ पुष्कर में मृत्यु को प्राप्त हुआ।‡ शिलालेखों के आधार§ पर चहवाण वंशजों के प्रारम्भिक शासक अहिछत्र

---

* एपिग्राफिक इन्डिया जिल्द २६ पृष्ठ संख्या ६। पृथ्वीराज विजय सर्ग २ श्लोक ८२, क्याम खां रासो

† 'वंशभास्कर' भाग २ पृष्ठ ५१८-२२
चौहाणों का प्रारम्भिक वंश भड़ौच में वि० सं० ८१३ की हसलोट प्लेट से प्राप्त होता है। यह अभिलेख, मृतवंध्या द्वितीय जोकि भृगुकच्छ का चौहाण शासक था, का है। उसके पहले ५ पूर्वज हो चुके थे। प्रथम शासक का नाम राजन महेशनघदाम था—भृतवद्ध द्वितीय की तिथि ७३६-७३८ है वह नागभट परिहार (ई० सन् ७२४-७४३) का सामन्त-शासक था और खलिफा हिशम का समकालीन था। डा० दशरथ शर्मा का अर्ली चौहान डाइनेस्टी पृ० १४

‡ पृथ्वीराज विजय सर्ग २

§ हर्षनाथ (शेखावटी) का शिलालेख वि० सं० १०३० की आषाढ़ सुदि १५ (ई. सन् ९७३)

में राज्य* करते थे । हर्षनाथ के मन्दिर के शिलालेख में राजा गुवक से विग्रहराज तक की वंशावली दी गई है। बिजोलिया शिलालेख† के आधार पर सामन्तदेव से सोमेश्वर देव तक की वंशावली प्राप्त की जा सकती है । दोनों शिलालेखों में गुवक से दुर्लभराज तक आठ राजाओं की वंशावली समान है । दुर्लभराज के पिता विग्रहराज की मृत्यु वि० सं० १०३० (ई० सन् ९७३) में हुई । इस तिथि के आधार पर तथा प्रत्येक शासक का काल पन्द्रह वर्ष का स्वीकार किया जाय‡ तो गुवक का राज्यकाल वि० सं० ९२५ (ई० सन् ८६८) के लगभग आता है । ९ वीं शताब्दी के मध्यकाल में चवहाणों का शासन नागोर क्षेत्र में होना प्रतीत होता है ।

पृथ्वीराज विजय में इस बात का उल्लेख है कि वासुदेव§ ने शाकंभरी (सांभर) झील पर अधिकार कर लिया । इसीसे इसके वंशज शाकम्भरीश्वर कहलाये । वासुदेव के बाद सायन्तदेव, जयराज, विग्रहराज और दुर्लभराज क्रमशः राजा हुये । इन शासकों के बारे में कुछ विशेष महत्व पूर्ण तथ्य ज्ञात नहीं हो पाया है ।

---

* डाक्टर मथुरालाल शर्मा ने अपने कोटा राज्य के इतिहास (जिल्द १ पृष्ठ ५०) में अहिछत्र नागौर को माना है । पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने अहिछत्र को उत्तरी पांचाल की राजधानी माना है । समुद्रगुप्त के अलाहाबाद प्रशस्ति में अंकित अहिछत्र क्षेत्र डाक्टर राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार (Gupta Empire) गंगा जमुना दोआब का उत्तरी भाग रहा है । अहिछत्र बरेली से २० मील पश्चिम में राम नगर के पास है ।

डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने नागोर को ही अहिच्छत्र मानकर इस बात का उल्लेख किया है कि सांभर पहुँचने के लिए वहाँ से एक दिन की यात्रा करनी पड़ती है ।

नागोर और अहिच्छत्र एक ही है यह सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि जैनतीर्थों में नागोर का नाम तो है पर अहिच्छत्रपुर का नाम नहीं । यह स्थान सांभर के पास ही होना चाहिए क्योंकि पृथ्वीराज विजय के अनुसार वासुदेव रात को शाकम्भरी मन्दिर में सोया। उषाकाल में उठा और सूर्य्य उदय होने के पहिले ही वह राजधानी (अहिच्छत्रपुरा) को पहुँच गया ।

बिजोलिया अभिलेख के अनुसार अहिच्छत्रपुरा का सामन्त का उत्तराधिकारी नरदेव पुन्ताला में राज्य करता था सम्भवतः अहिच्छत्रपुरा पुन्ताला और साम्भर के बीच में हो ।

डा० दशरथ शर्मा : अर्ली चोहान डायनेस्टी पृ० १०-१३

† बिजोलिया मेवाड़ का एक ठिकाना था, वहां एक शिलालेख वि० सं० १२२६ की फाल्गुन बदि ३ (ई० सं० ११७० की ५ फरवरी गुरुवार) का प्राप्त हुआ है ।

‡ अनुमानित १५ × ७ = १०५ = १०३० — १०५ = ९२५ वि० सं०

§ चहमान का वंशज वंश भास्कर के अनुसार

दुर्लभराज के पुत्र गुवक* (प्रथम) के समय में पहले पहल मुसलमानों का आक्रमण अजमेर में हुआ और वह अपने ७ वर्ष के पुत्र सहित मारा गया। गुवक नागावलोक का समकालीन था। इसका समय वि० सं० ८०० (ई० सन् ७४३) के लगभग का है।

गुवक प्रथम शिव-भक्त था जैसा कि उसके हर्षदेव मन्दिर के निर्माण से प्रतीत होता है। शैव मत उसके वंश का राज्य-धर्म बन गया था। पृथ्वीराज विजय में इसका नाम नहीं लिखा है तथापि विजोलिया तथा हर्षनाथ के मन्दिरों के अभिलेखों से इसका चौहाण शासक के रूप में स्वीकार किया जाना तर्क संगत है। इस वंश के शासक चन्दनराज के समय चौहानों और तंवरों के बीच भयंकर संघर्ष हुआ। उसने तंवरावती पर हमलाकर वहां के तंवरवंशी राजा रूद्रेण को मार डाला† चन्दनराज का पुत्र और उत्तराधिकारी वाक्यपतिराज था। इसने अपने साम्राज्य की सीमा विन्ध्याचल पर्वत तक फैलाई थी जिससे इसे विन्ध्यनृपति कहते थे।‡

पृथ्वीराज विजय में दी हुई वंशावली के अनुसार वाक्यपतिराज के तीन पुत्र थे, सिंहराज, लाखण, व वत्सराज। वाक्यपति की मृत्यु के बाद सिंहराज सांभर का शासक हुआ। यह शासक वीर व दानी था। हर्षनाथ के मन्दिर में स्वर्ण-कलश इसी ने चढ़ाया। कई गांव ब्राह्मणों को दान में दिए। तोमर शासकों के लवण नामक राजा की सहायता से सिंहराज पर आक्रमण किया पर वह विजयी न हो सका।* हमीर महाकाव्य में लिखा है कि सिंहराज से गुजरात, अंग, चोलबाट आदि के शासक घबराते थे। मुसलमानों से भी इसे संघर्ष करना पड़ा। प्रबन्ध कोष से ज्ञात होता है कि उसने अजमेर के पास मुसलमान सेनापति हाजीउद्दीन को हराया। सिंहराज के बाद सांभरी चौहानों को लगातार मुसलमानों के आक्रमणों का सामना करना पड़ता था। सिंहराज का पुत्र विग्रहराज व उसका भाई दुर्लभराज वि० सं० १०५७ तक सांभर में निष्कंटक राज्य

---

* बिजोलिया शिलालेख
Their cradle land was in the tract extending approximately from Pushkar in the south to Harsa in the north. It had every right to be called Jangladesh on account of abounding in pilu, kasik, and sami trees, the characteristic vegetation of such tract. Dr. D. R. Sharma: Early Chohan Dynasties page 10.

† हर्ष शिलालेख ‡ विजोलिया शिलालेख § हर्ष शिलालेख (ए. इ. जिल्द २ पृष्ठ १२)

करते रहे। दुर्लभराज का पोता वाक्यपति द्वितीय महमूद गजनी का समकालीन था। महमूदगजनी ने जब सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करने के लिए भारत में प्रवेश किया तो उसे वाक्यपति के लड़के वीर्यराव से संघर्ष करना पड़ा।

वाक्यपतिराव प्रथम का दूसरा पुत्र लाखण (लक्ष्मणराज) था। उसने मारवाड़ में नाडोल में अपना एक अलग राज्य स्थापित किया।* नाड़ोल में चौहाणों की इस शाखा ने लगभग २०० वर्षों तक राज्य किया। १२०० ई० के लगभग जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने नाडोल पर आक्रमण किया तो वहां के चौहान शासक भीनमाल की ओर चले गये।† भीनमाल की चौहान शाखा में माणिक-राय द्वितीय प्रसिद्ध शासक हुआ। इसके समय में मेवाड़ के दक्षिण-पूर्वी भाग पर चौहानों का राज्य स्थापित हो गया। माणिकराय के बारे में टाड लिखता है कि चौहानों का इतिहास महत्वपूर्ण स्तर पर आ गया। माणिकराय ने प्रारंभ में भैसरोड तक ही अपने अधिकारों को सीमित रखा परन्तु बाद में उसने बम्बावदा पर अधिकार करके उसे अपनी राजधानी बनाया। माणिकराय के उत्तराधि-कारियों में संभारण जैतराव, अनंगराव, कुतसिंह और विजयपाल हुए।‡

विजयपाल देव का पुत्र हरराय या हाड़ाराव बड़ा प्रसिद्ध नरेश हुआ। इसीके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि बम्बावदा के चौहान शासक हाड़ा चौहान कहलाये। आगे चल करके इन हाड़ा चौहानों ने बून्दी पर अधिकार कर लिया। ये हाडा चौहान क्यों कहलाये ? इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के कथन हैं। भाटों के कथन के अनुसार हाडा शब्द को संस्कृत के अस्थि का पर्यायवाची मान लिया गया है अतः अस्थिपाल नामक राजा के सम्बन्ध से हाडा वंश का उल्लेख किया है। अजमेर के चौहान शासकों में§ विशालदेव के पुत्र अनुराज के पुत्र ईस्तपाल हाडा चौहानों का संस्थापक था।¶ ईस्तपाल ने सम्वत् १०८१ में असीर पर अधिकार किया और उसने महमूद गजनवी से संघर्ष किया। उसका पुत्र हम्मीर महमदगोरी के विरुद्ध घाघर के युद्ध में मारा गया। अलाऊदीन खिलजी के समय सम्वत् १३५१ में रात्र ंड असीर में मारा गया और उसके पुत्र रैणसी ने मेवाड़ की ओर जाकर भैंसरोड पर अधिकार कर लिया। रैणसी के पुत्र बंगा ने वम्बोदा

---

* सी. वी. वैद्य हिस्ट्री आफ मिडिवियल हिन्दू इन्डिया † नाडोल का शिलालेख।

‡ विजयपाल चौहान का वि० सं० १३५४ (ई. सं. १२९७) का एक शिलालेख जो बून्दी से तीन मील दूर महादेव के मन्दिर के पास प्राप्त हुआ।

§ अजमेर के चौहानों का इतिहास अलग से दिया गया है।

¶ टाड : ऐनल्स एन्ड एन्टीक्वीटीज ओफ राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ संख्या १४६१

ग्रौर मिनाल पर ग्रधिकार कर लिया तथा वि० सं० १३६८ (ई० सन् १३४१) में राव देवा ने मीणों से बन्धु घाटी छीन कर बून्दी नगर की स्थापना की ग्रौर उस क्षेत्र को हाडावती नाम दिया जिसे ग्राजकल हाडोती कहते हैं ।*

बून्दी के इतिहास वंशभास्कर में ग्रजमेर के महाराजा सोमेश्वर के एक पुत्र उरथ को बून्दी के खानदान का ग्रौर उसके भाई भरत को रणथम्भौर के मूल घराने का लिखा है । ऐसा प्रतीत होता है कि भरत ग्रौर उरथ चौहानों की भिन्न.भिन्न वंशावलियों में उल्लिखित न होने के कारण कल्पित है । मूथा नैणसी ने बून्दी के राजवंश को नाडोल के चौहान राजा केतु (कीर्तिपाल) के वंश का होना बतलाया है ।†

इन उपरोक्त कथनों के ग्रनुसार बून्दी के हाड़ा चौहानों का मूल पुरुष नाडोल के चौहान राव लखण था या ग्रजमेर के शासक ग्रनुराज माणिक्य रहा । टॉड ने हाड़ा शाखा का उल्लेख ईस्तपाल (ग्रस्थिपाल) के रूप में लिया है । भाटों की कथा में लिखा है कि उसे एक राक्षस ने मार डाला था । परन्तु ग्राशापूर्ण देवी ने उसकी हड्डियाँ जोड़ करके फिर से जिलाया । इसलिये इसके वंशज हाड़ा कहलाये क्योंकि ग्रस्थि हाड को कहते हैं । भाटों ने ग्रस्थिपाल का नाम हाडा राव रख लिया है । परन्तु ग्रस्थिपाल के होने का ग्रौर ग्रासिर लेने का कोई तथ्यपूर्ण सबूत प्राप्त नहीं हुग्रा है । संभव है कि राव देवराज के पुत्र हरराज के नाम से उसके वंशज हराऊत प्रसिद्ध हुए जो प्राकृत में हाडा कहलाने लगे ।

ग्रसीरगढ़ या ग्रासरगढ़ में भी चौहानों का राज्य होना साबित नहीं होता है । यह गढ़ मध्य-प्रदेश के निम्बार जिले के खंडवे से साढे उन्नीस मील दक्षिण–पश्चिम की ग्रोर सतपुड़ा पहाड़ की एक चोटी पर बहुत मजबूत बना हुग्रा है । फरिस्ता लिखता है कि ई० सं० १३७० के करीब ग्राशा नाम के एक ग्रहीर ने यह गढ़ बनवाया था । वहां उसके पूर्वज ७०० वर्ष पहले हुक्मरानी करते थे ।

बून्दी में हाडा चौहानों के राज्य की स्थापना—बून्दी में ग्राने के पहले हाडा चौहान पथार के इलाके में रहते थे। पथार पर कब्जा करने वाला पहला चौहान राव रतनसिह था जिसे राव रेणसी भी कहते हैं । रतनसिह के दो पुत्र केलख ग्रौर केकल थे । राव केलख को कोढ का रोग हो गया ग्रौर केदारनाथ की उसने पैदल यात्रा की थी । वहां वह उस रोग से मुक्त होकर लौटा । बाद

---

* वही पृष्ठ संख्या १४६७　　† मुणौत नैणसी की ख्यात भाग १ पृष्ठ १०४

में वह पथार पर राज्य करने लगा। केलण के पोते राव बंगदेव ने मेनाल का नगर ले लिया। धीरे-धीरे उसने मांडलगढ़, बिजौलिया, रतनगढ़ आदि परगने अपने अधिकार में कर लिये। बंगदेव के बारह पुत्र थे परन्तु उसका बड़ा लड़का राव देवा गद्दी पर बैठा। देवा की शक्ति इतनी बढ़ गई कि पूर्व में भैंसरोड़, पश्चिम में बम्बावदा और मीनाल तक उसका राज्य फैल गया था।* उस समय दिल्ली में सिकन्दर लोदी (ई० सन् १४८९-१५१७) राज्य कर रहा था। वह देवा की शक्ति से शंकित हो गया और उसने मुलाकात करने के लिये बुलाया था। देवा ने मिणों से सं० १३९८ में बन्धु घाटी लेकर वहां बून्दी राज्य की स्थापना की। बम्बावदा में वह अपने लड़के हरराज को गद्दी पर बैठा कर स्वयं बून्दी में रहने लगा। हरराज के बारह लड़के थे जिसमें बड़ा लड़का आलू बम्बावदा की गद्दी पर बैठा। उसका नाम पथार क्षेत्र में हमेशा के लिये प्रसिद्ध हो गया।

१. राव देवसिंह हाड़ा–
(वि. सं. १३९८-१४००)

देवसिंह पहले चित्तौड़ (मेवाड़) के महाराणाओं के आधीन था और उसी राज्य के भैंसरोड़ ग्राम में रहता था। देवसिंह (देवा) और उसके ११ वंशज भी (राव सुर्जन हाड़ा तक) चित्तौड़ के राणाओं के आश्रित रहे।† यों इनमें

* टाड ऐनाल्स एन्ड एन्टीक्वीटीज ओफ राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४६४

† वीर वीनोद जिल्द २ पृष्ठ संख्या १०६। वीर विनोद में लिखा है कि देवी सिंह हाड़ा बूंदी में राज जमा कर और दुबारा कुंअर अरिसिंह से मदद लेकर बूंदी के तमाम जिलों को अपने कब्जे में लाया और प्रति वर्ष चित्तौड़ के महाराणाओं की सेवा में रहने लगा और मेवाड़ के अव्वल दर्जे का सरदार कहलाया।

ऐसे भी कई नरेश हुए जिन्होंने महाराणा से कुछ सम्बन्ध नहीं रक्खा, परन्तु प्रायः इन सबने ही मेवाड़ के नरेशों को अपना मुखिया माना ।

राव देवसिंह ने बूंदी का राज्य मीणों से छीन कर किस प्रकार अपने अधिकार में किया इस विषय में कई प्रकार के विवरण मिलते हैं। कहते हैं कि पहिले बूंदी नगर तथा उसके आसपास के गांवों पर बूंदा मीणा राज्य करता था। इसका पोता जेता, राव देवा के समय इस प्रदेश का स्वामी था। एक ब्राह्मण की कन्या से इस मीणा सरदार ने विवाह करना चाहा। ब्राह्मण ने देवसिंह हाड़ा की शरण ली। देवसिंह ने एक चाल चली। उसने एक मण्डप बनवाया उसके नीचे बारूद भरदी गई और जब मीणा सरदार मय अपने बरातियों के आया तो उन्हें खूब शराब पिलाकर उस स्थान को बारूद से उड़ा दिया और बाकी मीणों को मार कर बूंदी पर कब्जा कर लिया।

महाकवि सूर्यमल्ल चारण ने वंशभास्कर में लिखा है कि उन दिनों बूंदी और उसके आस-पास के इलाकों में मीणों का राज्य था। इनका मुख्य सरदार जैता था जो बहुत शक्तिशाली था। उसकी इच्छा थी कि उसके पुत्र राजपूत कन्याओं को व्याहें। इस विचार से उसने अपने कामदार जसराज चौहान से उसकी पुत्रियों का अपने पुत्रों से विवाह करने का प्रस्ताव रक्खा। उस समय ऐसे विवाह कभी-कभी होते भी थे क्योंकि जो कोई भूमि का स्वामी होता था वही क्षत्रिय कहलाने लगता था। इसी कारण से उनके सम्बन्ध कभी-कभी राजपूतों में हो जाया करते थे। लेकिन इन मीणों के रीति-रिवाज जसराज को पसन्द नहीं थे अतः उसने इस प्रस्ताव को टालना चाहा। जसराज स्पष्टतः मना नहीं कर सकता था अतः उसने इस विषय में देवसिंह से सहायता मांगी। देवसिंह को अच्छा अवसर मिला। उसने साँप को ऐसे मारना चाहा कि लाठी भी नहीं टूटे। उसने चाहा कि यह विवाह भी न होवे ओर उसके राज्य का विस्तार हो। अतः उसने जेता को जसराज द्वारा कहला दिया कि यदि मीणें अपनी कुप्रथाओं को छोड़कर राजपूतों की सभ्यता व रीति-रिवाजों का पालन करें तो उसके पुत्रों के साथ जसराज की कन्याएं व्याही जा सकती हैं। मीणा सरदार जेता ने यह मन्जूर कर लिया। विवाह की तैयारियां होने लगी। बरात के स्वागत स्थान के नीचे बारूद बिछा दी गई। उनके पहुँचने पर बारूद में आग लगा दी गई, जिससे मीणें जल मरे और जो बचे वे मार डाले गये।*

---

* वंश भास्कर द्वितीय भाग पृष्ठ १६२४। वंश भास्कर में बारूद के प्रयोग द्वारा जेता मेणा का नष्ट किया जाना सत्य प्रतीत नहीं होता है। डाक्टर मथुरा लाल शर्मा ने कोटा राज्य

यह भी बतलाया जाता है कि देवसिंह हाड़ा ने अपनी कन्या मंगली का विवाह मेवाड़ के राणा लक्ष्मणसिंह के कुंवर अरिसिंह के साथ करके उसकी सहायता से मीणों को बून्दी से निकाल कर वहां का कब्जा किया। मूणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि देवा की पुत्री का विवाह राणा अड़सी के साथ हुआ था। इसलिये राणा की सहायता से देवा ने मीणों को मार कर बूंदी ली।* बाद में देवा (देवसिंह) ने अपनी सेना भी तैयार करली और मेवाड़ के राणा को मातहती स्वीकार की। इससे यह ज्ञात होता है कि देवा हाडा ने मेवाड़ की सहायता से बूंदी का राज्य स्थापित किया। यह बात अवश्य असत्य है कि देवा हाड़ा की पुत्री का विवाह राणा अरिसिंह से हुआ, क्योंकि देवा का समकालीन राणा हमीर (सं० १३८३-१४२१) था और राणा अड़सी तो बहुत ही छोटी आयु में राजगद्दी पर बैठने के पहले ही युद्ध में सं० १३६० (ई० सन् १३०३) में वीरगति को प्राप्त हुआ था।

सूर्य्यमल (वि० सं० १८७२-१९२५) ने देवा का मीणों को मार कर सं० १२९८ आषाढ़ बदि ६ मंगलवार को बून्दी पर अधिकार करना लिखा है।† परन्तु यह ठीक नहीं ज्ञात होता है, क्योंकि देवा के पड़दादा विजयपाल का वि० सं० १३५४ का शिलालेख बून्दी शहर के पास केदारनाथ महादेव के मन्दिर में मिल चुका है। यदि हम प्रत्येक राजा का राज्यकाल लगभग २० वर्ष मानें तो देवा का समय वि० सं० १३९४ (ई० १३३७) के लगभग निकलता है। ख्यातों से यह भी मालूम होता है कि देवा ने अपने पिता के जीवित काल में बून्दी पर कब्जा कर लिया था। कर्नल टाड ने भी देवा का सं० १३९८ (ई० सन् १३४०) में बून्दी पर अधिकार होना लिखा है।‡ अतः यही समय ठीक जान पड़ता है।

के इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ संख्या ५८ में वंशभास्कर के रचियता की कल्पना मानकर इसे अस्वीकार किया है। वास्तव में १३ वीं व १४ वीं शताब्दी में भारत में बारूद का प्रयोग संभव नहीं था। विश्व में भी पहली बार बारूद का प्रयोग १५ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ और भारत में इसका प्रयोग बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध १५२६ में किया था।

* मुहणोत नेणसी की ख्यात पत्र २६ पृष्ठ संख्या १। वीर वीनोद के लेखक श्यामलदास ने नेणसी की घटना को अधिक सत्य माना है क्योंकि वंशभास्कर की रचना से करीब २०० वर्ष पहले नेणसी ने अपनी प्रसिद्ध ख्यात लिखी। बूंदी पर हाड़ाओं के राज स्थापन के ३०० वर्ष बाद नेणसी हुए अतः नेणसी का आधार अधिक सत्य प्रतीत होता है।

† वंश भास्कर द्वितीय भाग, पृष्ठ १६२५-१६२७

‡ टॉड एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज जिल्द ३ पृष्ठ संख्या १४६७

कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव देवा सिकन्दर लोदी के दरबार में दिल्ली गया था परन्तु यह मानने योग्य नहीं है, क्योंकि बादशाह सिकन्दर लोदी का समय वि० सं० १४८६ (ई० सन् १४३२) से सं० १५१७ (ई० सन् १४६०) का है और राव देवा का समय वि० सं० १३६८ (ई० सन् १३४१) के लगभग का है। इतने समय तक उसका जीवित रहना सम्भव नहीं है*। टॉड ने यह भी लिखा है कि राव देवा अपने जीतेजी राजपाट छोड़ अपने पुत्र समरसिंह (समरसी) को उत्तराधिकारी बना कर बून्दी से पाँच कोस दूर उमर थुणा गांव में मृत्यु पर्यन्त रहा।†

देवसिंह तक बम्बावदा के हाड़ों की स्थिति साधारण ही थी।‡ मीणों से बूंदी लेने के बाद उसने अपने राज्य को बढाया। मौका देखकर बाद में इसने गौड़ गजमल से खटकड़, गोहिल मनहरदास से पाटन, गोड़ो से गेणोली और लाखेरी और दहिया, जसकरण से करवर के परगनें छीन कर अपने बून्दी राज्य को बढ़ाया। अपने पिता के प्रति भक्ति प्रकट करने के लिए देवसिंह ने अमरथूण से पूर्व की ओर गंगेश्वरी देवी का मन्दिर बनवाया। वहां पर एक बावड़ी का निर्माण करवाया।§

---

* टॉड के अनुसार वि. सं. १३६८ (१३४१-१३४२ ई.) में भारत में मोहम्मद बिन तुगलक सुल्तान था (१३२५ ई.-१३५१ ई.) वंश भास्कर के आधार पर डाक्टर मथुरालाल शर्मा ने देवा की तिथि १२९८ वि. सं. स्वीकार की है। तिथि से देवा का समकालीन मुसलमान शासक सिकन्दर लोदी नहीं था क्योंकि १२९८ वि. सं. (१२४१-४२ ई.) में नसीरूद्दीन इल्तुमिश का लड़का दिल्ली में राज्य कर रहा था।

† टाड़ एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान जिल्द ३, पृष्ठ संख्या १४६८। देवा ने अपने लड़के समरसीं को बूंदी का राज्य देकर सन्यास लेलिया और फिर बूंदी या बम्बावदा में पुनः प्रवेश नहीं किया।

‡ वंश भास्कर द्वितीय भाग पृष्ठ १६३७ के अनुसार देवा ने बूंदी पर अधिकार अपने पिता के काल में ही किया था और उसकी मृत्यु के बाद बम्बावदा का राज्य बूंदी में मिला लिया। परन्तु टाड़ का कथन है कि देवा ने बम्बावदा का राज्य अपने लड़के हरराज को सोंप दिया था। दोनों शाखाएं एक दूसरे से स्वतंत्र रहीं। टाड जिल्द ३ पृष्ठ संख्या १४६७

§ वंश भास्कर द्वितीय भाग पृष्ठ १६२६-१६२७

२. समरसिंह–
(सं० १४००-१४०३)

यह सं० १४०० (ई० सन् १३४३) के लगभग गद्दीनशीन हुआ। इसने कैथून, सीसवली, बड़ौद, रैलावन, रामगढ़, मऊ और साँगौर आदि स्थानों के गौड़, पंवार तथा मेढ राजपूतों को हटा कर उनको अपना सामन्त बनाया* तथा अपने पैतृक राज्य को सुदृढ़ किया। भील, मीणों आदि का दमन कर अपने राज्य को भी बढ़ाया। इसने केवल ३ वर्ष राज्य किया। इसके समय में राज्य का विस्तार चम्बल नदी के बांये किनारे तक हो गया। वंश भास्कर में लिखा है कि समरसी बादशाह अलाउद्दीनखिलजी (वि० सं० १३५३-७२) के मुकाबले में बम्बावदा में मारा गया, परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि अलाउद्दीनखिलजी तथा समरसिंह समकालीन नहीं थे। समरसिंह का राज्यकाल वि० सं० १४०० से १४०३ तक था। इस काल में दिल्ली पर मुहम्मदबिन तुगलक राज्य कर रहा था। इस समय में बादशाह स्वयं आपत्ति में था अतः उसके द्वारा यह संभव नहीं था कि वह राजपूताने की ओर स्वयं आता या सेना भेजता। इसके चार पुत्र नरपाल, हरपाल, जेतसिंह और डूंगरसिंह थे। ज्येष्ठ पुत्र नरपाल बून्दी का स्वामी हुआ। हरपाल को जजावर की जागीर मिली। जेतसिंह ने चम्बल नदी के दाहिने किनारे पर भीलों के राज्य पर चढ़ाई कर भीलों को हराया। उस वक्त भीलों की राजधानी अकेलगढ़ (वर्तमान कोटा से ५ मील दक्षिण-पश्चिम) थी। भीलों के कई छोटे-छोटे राज्य अकेलगढ़ से दक्षिण पूर्व मुकन्दरा पर्वतमाला के साथ-साथ मनोहर थाने तक फैले हुए थे। भीलों का प्रसिद्ध सरदार कोटया था जिसके नाम पर कोटा नगर बसा था। कोटया भील के नेतृत्व में भील बून्दी राज्य का विस्तार

---

* कोटा राज्य का इतिहास जिल्द १ मथुरालाल कृत पृष्ठ संख्या ६१।

होना पसन्द नहीं करते थे। इससे उसने अपने पिता के आदेश से ही उसने भीलों पर चढ़ाई कर कोटा के आसपास की भूमि पर कब्जा कर लिया। इस युद्ध में ६०० भील तथा ३०० हाड़ा सिपाही मारे गए।* तब से कोटा का परगना बून्दी के राजकुमार की जागीर में रहने लगा। जेतसिंह अपने को कोटा राज्य का अधिपति मानते भी बून्दी राज्य के अधीन रहा। जेतसिंह बाद में अपने बड़े भाई नरपाल की सहायता करते टोड़ा के युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया।†

३. राव् नरपाल–
(सं० १४०६-१४२७)

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात यह राजगद्दी पर बैठा। इसने करीब २४ वर्ष राज किया। नरपाल ने पलायथा के महेशदान खिची को हराकर पलायथा को अपने कब्जे में किया।‡ इसका विवाह टोड़ा के सोलंकी सरदार रैपाल की पुत्री से हुआ था। कर्नल टाड़ ने लिखा है कि राव नरपाल को टोड़ा की एक संगमरमर पत्थर कीशिला बहुत पसंद आई, परन्तु टोडे के सरदार ने उसे देने से इन्कार कर दिया। नरपाल ने इससे अपना अपमान समझा और सोलंकनी रानी से प्रेम नहीं रक्खा। रानी ने इस पर अपने पिता को शिकायत लिखी। इस पर टोड़ा का सरदार काजली तीज (सावण) को बून्दी पर चढ़ आया और अचानक भाले से राव का काम तमाम कर दिया। नरपाल के पीछे सोलंकनी रानी सती

---

* वंशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ संख्या १६७८-७९

† उपरोक्त पृष्ठ १७१५

‡ वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ १७२७, इस तवारीख के अनुसार पलायथे के युद्ध में नाथूजी के १०० और पहाड़सिंह (पलायथा के शासक महेशदास का भाई) के ७० व्यक्ति मारे गए। नापूजी ने दुर्ग रक्षा के लिए ८०० सैनिकों की टुकड़ी किले में रखी।

हुई ।* नरपाल के राज्य का बहुत-सा हिस्सा उसके हाथों से चला गया ।†
वि० सं० १४८५ के शृंगी स्थान से मिले शिलालेख से ज्ञात होता है कि मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह ने इनको हराया था और तब से बून्दी राज्य मेवाड़ के मातहत हो गया ।‡

राव नरपाल के तीन पुत्र हम्मीर, नोरंग और पीरराज थे । नरपाल का देहान्त सं० १४४५ के आस-पास हुआ था ,

४. राव हम्मीर–
(सं० १४४५-१४६०)

अपने पिता के पीछे यह गद्दी पर बैठा । इसे हामा भी कहते थे । इसकी मृत्यु वि० सं० १४६० में हुई । उसके दो लड़के वीरसिंह और लालसिंह थे । हम्मीर वीर पुरुष था । इसने बून्दी के पास शेरगढ़ के पंवारों से लोहा लिया, क्योंकि पंवारों ने इसके पिता नरपाल की गणगौर को लूटा था । अंत समय में यह अपने पुत्र वीरसिंह को राजगद्दी देकर वह काशी सन्यास लेकर चला गया और वहां उसी वर्ष परलोक सिधारा ।§

* टाड़ : एनाल्स एन्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द ३ पृष्ठ संख्या १४६८-१४७०

† तवारीख राज बूंदी में लिखा है कि नापूजी दिल के बोदे थे इसलिए अपने पिता के हासिल किए हुए कई परगने खो दिए । शेरगढ़ का पंवार हरराज उनकी गणगौर लूट कर ले गया।

‡ भावनगर इन्सक्रिपशन्स पृष्ठ ११

§ बून्दी की तवारीख में यह घटना उल्लेखित है ।

५. राव वीरसिंह–
(सं० १४६०-१४७०)

यह राव हम्मीर का ज्येष्ठ पुत्र था और वि० सं० १४६० में बून्दी की राजगद्दी पर बैठा। वंश-भास्कर में लिखा है कि इसने चित्तौड़ के राणा की अधीनता में रहने से मना कर दिया। इस पर महाराणा लाखा (लक्षसिंह) ने हाॅडों को दबाने के लिये एक बड़ी सेना के साथ बून्दी पर चढ़ाई करदी। तब मेवाड़ की सेना बून्दी पर चढ़ाई करदी। जब मेवाड़ की सेना बून्दी से कुछ मील दूर निम्बेड़ गाँव तक पहुँची तब हाड़ों ने भी केसरिया करके लड़ने की ठानी। विजय की कोई आशा नहीं देख कर हाड़ों ने आधी रात को सिसोदिया के पड़ाव पर हमला कर दिया। इससे मेवाड़ की सेना में भगदड़ मच गई। राव खुद राणा के डेरे में पहुँच गया परन्तु राणा किसी तरह चित्तौड़ की ओर भाग गया। इस तरह हाॅडों द्वारा हार कर महाराणा लज्जित हुआ और उसने बून्दी को जीतने का प्रण किया तथा कहा कि जब तक बून्दी नष्ट नहीं कर दूंगा तब तक अन्न-जल नहीं लूंगा। कहते हैं कि इस प्रतिज्ञा को जैसे-तैसे पूरी कराने के लिए चितौड़ के नीचे एक गार (मिट्टी) की बून्दी बना कर उसे नष्ट करने का विचार किया गया परन्तु इस बनावटी किले की रक्षा के लिये चितौड़ के सरदारों ने कुम्भा वैरसी नामक हाड़ा को इस मिट्टी की बून्दी का रक्षक बनाया और उसे समझाया कि जब राणा सेना लेकर आवे तब आत्मसमर्पण कर देना, किन्तु उसने उत्तर दिया कि हाड़ा वंश में जन्म लेने से बून्दी नामकी रक्षा करना मेरा धर्म है। इसलिये जीते-जी शस्त्र नहीं छोड़ूंगा। लोगों ने उसकी बातों को हंसी समझा परन्तु उसने अपने जीते-जी मिट्टी की बून्दी पर भी कब्जा नहीं होने दिया।* इस घटना में कोई सत्यता नहीं प्रतीत होती है क्योंकि

* टाड इस घटना का उल्लेख राव हमीर के काल में करता है। टाड़ जिल्द ३, पृष्ठ १४७१

मेवाड़ के इतिहास में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। यह कथा भाटों की कल्पना पर ही आधारित है।

वीरसिंह के तीन पुत्र बैरीसाल, जावदजी और निरमराज थे। वीरसिंह की मृत्यु सं० १४७० के करीब हुई।

६. राव बैरीसाल–
(सं० १४७०-१५१६)

३२ वर्ष की आयु में सं० १४७० के लगभग बैरीसाल बून्दी की राज-गद्दी पर बैठा। यह एक निर्बल तथा अयोग्य शासक था कर्नल टॉड के कथनानुसार इसने वि० सं० १५२६ तक ५० वर्ष राज्य किया, परन्तु तवारीख फरिश्ता से पता चलता है कि यह मालवे के महमूदखिलजी के आखिरी हमले में सं० १५१६ वि० (ई० सन् १४५९ ई० ८६३) में काम आया। इसके राज्यकाल की उल्लेखनीय घटना बून्दी पर मांडू (मालवा) के बादशाह महमूदखिलजी की चढ़ाई है। तवारीख फरिश्ता में लिखा है कि मांडू के सुलतान महमूदखिलजी ने तीन वार कोटा, बून्दी पर चढ़ाई की। पहली वि० सं० १५०६ (ई० सन् १४४९) में* दूसरी सं० १५१० (ई० सन् १४५३)† और तीसरी वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५९) में आखिरी चढ़ाई में सुलतान ने अपने छोटे

* फरिश्ता लिखता है कि महमूद खिलजी ने कोटे के राजा से सवालाख टंके का नजराना लिया।

† दूसरी बार कोटा बून्दी पर आक्रमण करने का कारण यह था कि हाड़ोती के राजपूत शासकों ने मांडू के अधीन क्षेत्र में लूट मार मचादी थी अतः महमूद खिलजी उन्हें दण्ड देने को आया। यह लड़ाई मंहूनी गांव में हुई जिसमें राजपूतों की करारी हार हुई। उनकी स्त्रिएँ कैद करली गई और माँडू भेजदी गई।

शाहजादा फिदाईखां को वहां का मालिक बनाया। बून्दी जीत कर किले में अपना अफसर छोड़कर वह मांडू चला गया। इसी संघर्ष में बैरीसाल भी मारा गया।

बैरीसाल के ८ पुत्र, अखैराज, चूंडा, उदयसिंह, भाँडा (बन्दो), भापादेव, लोहट, कर्मचन्द, और श्यामजी (केशवदेव) थे। पहले तीन राजकुमारों ने लड़ाई में अपने पिता का साथ नहीं दिया इसलिये पिता ने भाँडा (भाणदेव) को अपना उत्तराधिकारी बनाया। बैरीसाल के दो पुत्र लड़ाई में मुसलमानों द्वारा पकड़े गये जिन्हें मुसलमान बना दिया गया। उनका नाम मुसलमानों ने समरकन्दी व उमरकन्दी रखा।*

(वि० सं० १५९६ (ई० सन् १४३९) के राणकपुर (मारवाड़) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि महाराणा कुम्भा ने कुल हाड़ोती प्रदेश (बून्दी राज्य) को विजय कर वहां के नरेश को अपना सामन्त बनाया था।)

७. राव भाणदेव–
सं० (१५१६-१५६०)

इसका नाम भारमल, भांड़ा, बन्दो और सुभाड़ देव भी मिलता है। यह बून्दी के इतिहास में एक प्रसिद्ध पुरुष हुआ है। इसने भाई सांड़ देव (सांड़ा) की सहायता से बून्दी के खोये प्रदेश को वापिस लिया† तथा बाद में इसने मांडू

* टाड़ समरकन्दी व उमरकन्दी को राव वीरसिंह (वीरसाल) के पुत्र मानता है तथा देखो टाड जिल्द ३ पृष्ठ १४७३। बेरीसाल के ७ पुत्रों में ५ पुत्रों को (बन्दु, मांड़ा, सन्दक, अका, उदा व चन्दा को अकावत, उदावत व चन्ड़ावत शाखाओं के पूर्वज बतलाता है।

† जब भाण देव गद्दी पर बैठा सिर्फ ९ साल का था। पिता की वसीयत के अनुसार इसके तीन बड़े भाई गद्दी से वंचित किए जाने पर इसको राज्य दिया गया। इसके गद्दी पर बैठते ही इन भाइयों ने बून्दी राज्य के कई हिस्सों पर अधिकार कर लिया। जब यह सयाना हुआ तब अपने छोटे भाई सांड़ा की सहायता से खोये प्रदेश पुनः लेलिए।

(मालवा) तक लूट खसोट करना आरम्भ करदिया इस पर मांडू के सुलतान ने हाड़ों को दबाने के लिये समरकंदी व उमरकन्दी को मय फौज के बून्दी पर भेजा। इन्होनें राव भाणदेव को वहां से निकाल दिया। इनका बून्दी पर लगभग ११ वर्ष तक अधिकार रहा और भाणदेव पर्वतों में मातूण्ड़ा नामक गाँव में जा रहा, जहां इसकी मृत्यु सं. १५६० के लगभग हुई। मातूण्ड़ा में उसकी छत्री भी अब तक है। वंश भास्कर से यह पाया जाता है कि समरकंदी ने बूंदा लेकर भाणदेव और साँड़देव को कुछ गांव जागीर में दे दिये थे*।

राव भाणदेव हाडा बड़ा उदार व धार्मिक नरेश था। इसने तीन वर्ष तक का संचय किया हुआ कुल अनाज वि० सं० १५४८ के घोर दुर्भिक्ष में सबको बाँट दिया।† कहा जाता है कि राणा कुम्भा ने हाड़ोती प्रदेश को विजय कर वहाँ के शासक को अपना सामंत बनाया था‡

इसके तीन पुत्र नारायणदास नर्बद और नरसिंहदास§ थे। बाद में एक दिन सांडाराव व भांडाराव को हिंडोली में दावत के बहाने बुला कर समरकन्दी ने उन्हें मरवा डाला।¶

८. राव नारायणदास–
(१५६०-१५८४)

पिता की मृत्यु के समय नारायण राव इतना शक्तिशाली नहीं था कि समरकन्दी का विरोध कर सके पर बाद में धीरे धीरे पठार देश के हाड़ों को इकट्ठा कर बूंदी को अपने धर्म भ्रष्ट चाचाओं से वापिस लेने का निश्चय किया।

* वंश भास्कर जिल्द तृतीय, पृष्ठ १७०८
† टाड राजस्थान जिल्द ३, पृष्ठ १४७३
‡ राणकपुर (मारवाड़) का शिलालेख वि० सं० १४९६
§ टाड़ इनके २ पुत्रों का ही उल्लेख करता है नरायणदास व निवुद्ध–टाड राजस्थान जिल्द तृतीय पृष्ठ १७०८ ¶ वंश प्रकाश पृष्ठ सं० ५०-५१

आरम्भ में इसने उनसे मेलजोल बढ़ाया, जिससे उनसे कुछ जागीर भी मिल गई ।* एक दिन उसने मौका पाकर उनको मार डाला । समरकन्दी का पुत्र दाउद भी मारा गया । हाडों ने नारायणदास का साथ दिया और इस तरह बूंदी पर फिर हाड़ों का राज्य स्थापित हो गया ।†

नारायणदास बड़ा वीर और साहसी नरेश था । यह चित्तौड़ के महाराणा रायमल का समकालीन था । जब मालवे के सुलतान गयासुद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर‡ उसे घेर लिया तब राव नारायणदास अपनी सेना लेकर उसकी सहायता के लिये चित्तौड़ पहुँचा और यवनों को मार भगाया । इस युद्ध में नारायणदास के कई घाव लगे और उसके कई हाड़ा सैनिक काम आये । इस सेवा के उपलक्ष में महाराणा रायमल से प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह इससे कर दिया§ राणा साँगा की भी यह बराबर सहायता करता था । यह कन्वाह के युद्ध वि० सं० १५८४ में महाराणा साँगा की अधीनता में बाबर के विरुद्ध भी लड़ा था ।¶ वि० सं० १५८४ के लगभग यह अपने भाई नर्बद हाड़ा के साथ जागीरदार खटकड़ों के हाथ से शिकार में धोखे से मारा गया ।$

इसके तीन पुत्र सूरजमल, रायमल और कल्याणदास थे । राव नारायणदास की एक रानी जोधपुर के राव सुजा की पुत्री खेतूबाई राठौड़ थी । यह बहादुर

---

* बून्दी राज्य की ख्यात के अनुसार वंश प्रकाश पृष्ठ सं० ५१

† टाड़ राजस्थान : जिल्द ३ पृष्ठ सं० १४७४। इस विजय के उपलक्ष में एक स्तम्भ का निर्माण नारायण ने कराया था जिसे टाड ने अपनी बून्दी यात्रा के समय सुरक्षित पाया था ।

‡ कहाजाता है कि मालवा के सुल्तान गियासुद्दीन (१४६९-९९ ई०) ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था परन्तु इसमें कुछ सन्देह है क्योंकि फारसी तवारीखों में गियासुद्दीन को एक विलासी शासक के रूपमें उल्लेख किया गया है जो कभी भी अपनी राजधानी माँडू से बाहर नहीं गया ।

वंश भास्कर तथा वंश प्रकाश में अहमदाबाद और मांडू के बादशाह महमूद और मुजफ़्फर ने अपनी फौज से चित्तौड़ घेर लिया, महमूद और मुजफ़्फर शाह राणा संग्राम सिंह के समकालीन थे । उन्हीं के काल में उन्होंने मिलकर मेवाड़ पर आक्रमण किया पर विजयी न हो सके ।

§ टाड़–राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ सं० १४७५

¶ वंश भास्कर तृतीय माग पृष्ठ २०६५;

$ वंश भास्कर में लिखा है कि खटकडे का जागीरदार नरबद ने अपने पिता संग्रामसिंह की मृत्यु का बदला लेने के लिए इन दोनों भाइयों को सम्वत १५८४ में मारा था । टाड़ के अनुसार नारायणदास की मृत्यु १५९० ई० में हुई ।

तो था परन्तु अफीम का नशा ज्यादा करता था। इसके अफीम की तारीफ में राजस्थान में कई दन्तकथाऐं प्रसिद्ध हैं।* इसके छोटे भाई नर्बदे की पुत्री कर्मवती महाराणा साँगा को ब्याही थी। इसी कर्मवती (पद्मावती) ने चित्तौड़ के घेरे में वीरता-पूर्वक भाग लिया था। कर्नल टाड ने राव नारायणदास की मृत्यु सं० १५६० (ई० सन् १५३३) में होना लिखा है जो ठीक नहीं है।

६. राव सूरजमल हाड़ा—
(सं० १५८४-१५८८)

यह अपने पिता नारायणदास के समान ही वीर तथा उदार नरेश था। इसकी भुजाऐं घुटनों तक लम्बी थीं और यह था भी बड़ा कद्दावर नौजवान परन्तु अफीम का बहुत सेवन करता था†। इसके समय में मेवाड़ तथा बूंदी में वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा प्रेम बढ़ गया था। सूरजमल की बहिन सूजाबाई की शादी महाराणा रतनसिंह के साथ हुई थी और महाराणा रतनसिंह ने भी अपनी बहिन का विवाह राव सूरजमल से किया था।‡

महाराणा साँगा के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा और छोटा पुत्र विक्रमादित्य तथा उदयसिंह अपनी माता महाराणी हाड़ी (करमेती-कर्मवती के साथ अपनी जागीर के रणथम्भोर के किले में रहता था। उस समय बूंदी का राव सूर्य्यमल हाड़ा उनका अभिभावक (गार्जियन) था। महाराणा रतनसिंह और राव सूर्यमल में अधिक समय तक मेल नहीं रहा। इन दोनों की मृत्यु एक दूसरे के हाथ से वि० सं० १५८८ (ई० सन् १५३१) में

---

* ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह एक बार में सात पैसों के भार का अफीम खा जाता था। आमतौर पर राजपूतों का अमल लेना एक पैसे के भार तक ही था।

† टाड़ जिल्द ३ पृष्ठ ७४६७ ‡ उपरोक्त पृष्ठ १४७७

शिकार में धोखे से हुई। इसकी मृत्यु का कारण सूरजमल का अपने भानजे विक्रमादित्य का जिसको रणथम्भोर की ७० लाख की जागीर मिली हुई थी, पक्ष लेना था। विक्रमादित्य मेवाड़ पर अधिकार जमाना चाहता था। अतः महाराणा ने शिकार के बहाने से सूर्य्यमल को मरवा दिया।* कुछ लोगों का कहना है कि एक समय चित्तौड़ के दरीखाने में बैठे हुए सूरजमल हाड़ा की कोठासिया के राव ने मजाक की। इस पर सूरजमल ने उसे मार डाला। इसका बदला लेने के लिये राव पूर्णमल चौहान ने महाराणा को बहका कर सूर्यमल को शिकार में धोखे से मरवाया। सं० १५८८ के फाल्गुण मास में महाराणा रतन-सिंह ने सूरजमल हाड़ा को नाणता के पास गोर्ख तीर्थ के पहाड़ी शिकारगाह में शिकार खेलने को बुलवाया। सूरजमल वहां पहुँचा। कोठारिया का राव पूर्णमल पूरबिया (चौहान) महाराणा के साथ था। शिकार के हो-हुल्लड़ में दो बार पूरबिये ने तीर चलाये, परन्तु वार खाली गया। इस पर महाराणा घोड़े के एड़ी लगा कर पूरबिये के साथ सूरजमल के निकट पहुँचा और उस पर वार किया। सूरजमल घोड़े से गिर पड़ा परन्तु घायल होने पर भी वह अपने को संभाल कर पट्टी बाँधने लगा। महाराणा दूर निकल गया। पूर्णमल ने यह देख कर महाराणा से कहा कि काम तो हुआ परन्तु अधूरा। इस पर महाराणा वापिस लौटा और उसने एक आखिरी वार करना चाहा। इस पर सूर्यमल ने अपूर्व बल से उसका कपडा खींच कर उसे घोड़े से नीचे गिरा दिया और अपनी कटार से महाराणा रतनसिंह का काम तमाम कर दिया। सूरजमल के प्राण भी

---

* टाड: राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४७७—राजपूताने की स्त्रियां अपने स्तन के दूध का कितना महत्व मानती थीं यह महाराव सूर्य्यमल की मृत्यु की एक घटना से ज्ञात होता है। कहते हैं कि जब उनकी मृत्यु की सूचना बून्दी पहुँची तो उनकी एक रानी ने अपनी सास (राजमाता खेतू राठौड़) से सती होने की आज्ञा चाही। उसने उत्तर दिया कि महाराणा मेरे पुत्र को मारडाले और मेरा पुत्र उसे जीवित छोड़दे यह मैं मान नहीं सकती। मेरे दूध का प्रभाव इतना कायरता पूर्ण नहीं हो सकता। यह सच है कि बचपन में उसे चुप करने के लिये डावड़ी (दासी) ने उसके मुँह में अपना स्तन दे दिया था। ऐसा मालूम होते ही मैंने उल्टी कराकर उसके पेट से वह दूध निकाल दिया था फिर भी यदि कुछ अंश उसमें रहगया हो तो यह उसी का प्रभाव हो सकता है। थोड़ी देर तक दूसरे समाचार आने का इन्तजार करो। इतने में ही यह समाचार आया कि रावजी ने राणाजी को भी मारडाला है, यह सुनते ही राजमाता ने रानी को सती होने की आज्ञा प्रसन्नता पूर्वक देदी। इससे स्पष्ट है कि किसी निम्न कुल की स्त्री के दूध के असर से राजपूत स्त्रियें सदा अपने बच्चों को दूर रखतीं थीं।

वहीं निकल गये।* इसी प्रकार पूर्णमल पूरबिया भी मारा गया। पाटण ग्राम में महाराणा का दाह संस्कार हुआ और महाराणी पंवारजी उनके साथ सती हुई।† नाणता में इन दोनों वीरों की छत्रियां अब तक मौजूद हैं और इसी घाटी के ऊपर सूजा बाई की छत्री भी बनी हुई है। इस घटना से मेवाड़ के सिसोदिया व बूंदी के हाड़ों के बीच शत्रुता हो गई। यह शत्रुता काफी समय तक रही।

राव सूरजमल ने केवल ४ वर्ष राज्य किया। इनका उत्तराधिकारी इनका पुत्र सुरताण हुआ।

१०. राव सुरताण—
(सं० १५८८-१६११)

यह सं० १५८८ में आठ वर्ष की आयु में राज्य का मालिक हुआ। इसका विवाह महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्तसिंह की पुत्री से हुआ था। इससे महाराणा उदयसिंह ने पठानों से अजमेर छीन कर राव सुरताण हाड़ा को दे दिया।‡ यह बड़ा अत्याचारी और मूर्ख नरेश था। इसने प्रजा व सरदारों को अपने कार्यों से नाराज कर दिया। इसको काल भैरव का इष्ट था, जिसको यह नरबलि चढ़ाया करता था।§ इस प्रकार के अनैतिक और मूर्खतापूर्ण कार्यों से प्रजा इससे दु:खी रहती थी। एक बार हाड़ा सरदार सांतल की राव सुरताण ने आँखें फोड़ दी।¶

इसके समय में वि० सं० १६०३ (ई० सन् १५४६) में कोटा केसरखां व डोकरखां नामक दो पठान सैनिकों के हाथ में चला गया। इसी समय बड़ौद और सीसवाली के परगने भी रायमलखीची ने अपने कब्जे में कर लिये।

---

* नैणसी भाग १ पृष्ठ ११० (काशी संस्करण) † वीर विनोद भाग २ पृष्ठ ८
‡ अमर काव्य पृष्ठ ६३, वीर विनोद भाग २ पृष्ठ ८७ § टाड भाग ३ पृष्ठ १४७६
¶ नैणसी भाग १ पृष्ठ ११०

सुरताणसिंह चुपचाप यह देखता रहा। उसमें यह शक्ति नहीं थी कि उनको वापिस कब्जे कर लेवे। बून्दी की यह दशा देख कर मालवा के सुलतान ने भी बून्दी पर आक्रमण किया।* सुरतानसिंह को न अपने पर भरोसा था और न सरदारों का। सरदार भी इसके अपमानजनक व्यवहार से प्रसन्न नहीं थे। अतः महाराणा उदयपुर की सलाह से हाड़ा सरदारों ने इसे सं० १६११ में राजगद्दी से उतार दिया। इसके कोई राजकुमार नहीं था। इससे सरदारों ने मिलकर भाणदेव के परपौत्र अर्जुन को ही सं० १६११ में गद्दी पर बैठाया और मुसलमानों का सामना कर बून्दी को बचाया। राव सुरताण वहां से भाग कर महाराणा के सरदार रायमल खीची के पास गया।† बाद में उसे एक गांव चम्बल नदी पर जीवन निर्वाह के लिये दे दिया गया, जिसका नाम पीछे से सुरताणपुर पड़ा। राज्यच्युत राव सुरताण के वंशधर सुरतानोत हाड़े कहलाते हैं। राव अर्जुण महाराणा विक्रमादित्य की सेवा में चित्तौड़ में भी रहने लगा। जब गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब बून्दी की ५ हजार सेना का अधिपती होकर हाड़ा अर्जुन चित्तौड़ आया। महाराणा ने उसे चित्तौड़ी बुर्ज का संरक्षक बनाया। मुसलमानों ने सुरंग बना कर तथा बारूद से भरकर चित्तौड़ी बुर्ज को उड़ा दिया, जिसमें अर्जुन हाड़ा व उसके साथी सं० १५९२ (ई० सन् १५३५) में काम आये। इससे अर्जुन का पुत्र सुर्जण बून्दी की राजगद्दी पर बैठा।

सुरताण फिर भी शान्ति से नहीं बैठा‡ वह बादशाह अकबर की सेवा में पहुँचा और वहां तोपखाने का अफसर बन गया। जब अकबर ने चित्तोड़ पर (वि. सं. १६२४) में चढ़ाई की उस समय सुरताण ने मार्ग में से थोड़ी सी शाही सेना लेकर बून्दी पर भी चढ़ाई की परन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

---

* कोटा राज्य का इतिहास डा. मथुरालाल कृत भाग १ पृष्ठ ६८

† वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २२०१

‡ वंश भास्कर, भाग २ पृष्ठ २२५३-५४

११. राव सुर्जन हाड़ा–
(वि० सं० १६११-१६४२)

यह हाड़ा अर्जुन का बड़ा पुत्र था और राव सुरताण के राज्यच्युत होने पर वि० सं० १६११ (ई० सन् १५५४) में बून्दी की गद्दी पर बैठा। आरम्भ में यह अपनी माता जयन्ती के आदेशानुसार राज्य करता रहा। इसके समय से पूर्व बून्दी के राव किसी न किसी प्रकार मेवाड़ के मातहत रहते थे,* परन्तु राव सुरजण के राज्यकाल में बून्दी का सम्बन्ध मेवाड़ से टूट गया और तब से मुगल बादशाहों से सम्बन्ध जुड़ा। इसका शासन बून्दी के इतिहास में बड़ा महत्व रखता है। इसने बून्दी के छीने परगनों को जीतने के लिये एक बड़ी सेना इकट्ठी की। इस सेना में उसके २० जागीरदार भाई तथा कई अन्य राजपूत सरदार थे।† सेना इकट्ठी कर इसने केसरखां और डोकरेखां पठानों को हरा कर कोटा को वापस जीता‡ और अपने पुत्र भोज को

राव सुर्जन हाड़ा

* वीर विनोद जिल्द २ पृष्ठ १०८ नैणसी की ख्यात के अनुसार

† वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २२३६

‡ मालवे के सुल्तानों के प्रतिनिधि के रूपमें डोकर खां ने कोटा में २६ वर्ष तक राज्य किया। (वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २२३६) अकबर के धायभाई आदमखां ने मालवा के शासक बाज बहादुर को हटाकर (१५६० ई०) मालवा को मुगल राज्य में मिला दिया। कोटे पर जब माँडू सुल्तानों का प्रभाव कम हुआ तब राव सुर्जन ने अपने बन्धुओं की सहायता से कोटे पर अधिकार कर लिया।

सुपुर्द कर दिया जहां वह स्वतंत्र शासक की भांति राज्य करने लगा।* मऊ के खीची रायमल को सुर्जन राव ने हरा कर उससे कोटा के उत्तर के बड़ौद व

रणथम्भोर किला, युद्ध

सीसवाली परगने वापिस लिये। रणथम्भोर का दुर्गम व सुदृढ़ किला महाराणा सांगा ने मांडू (मालवे) के मुसलमान सुलतान से वि० सं० १५७२ (ई० सन् १५१५) में छीना था।† बाद में यह किला शेरशाह के हाथों में चला गया। बादशाह अकबर ने अक्टूम्बर १५५८ में रणथम्भोर लेने का प्रयत्न किया लेकिन वह असफल रहा। परन्तु वह बराबर जीतने का प्रयत्न करता रहा। तंग आकर

* गैपरनाथ का शिलालेख सं० १६३६ अदितवार बाबाजी श्री दामोदरपुरी गेपख्यानि धरमशाला कुदाई अमल कोट महाराज कंवर श्री भोजजी राऊ कुं बधाई।

† तुजुके बाबरी (बेवरीज अनुवाद) पृष्ठ ४८३

किले के पठान किलेदार ने धन लेकर सुर्जन को वि० सं० १६१६ (ई० सन्१५५९) के अंतिम दिनों में सौंप दिया ।* सुर्जन ने रणथम्भोर के आसपास के परगनों को भी अपने अधिकार में कर अपनी शक्ति बढ़ाई। अकबर की आंखों में चित्तौड़ व रणथम्भोर के किले खटक रहे थे। अत: वि० सं० १६२५ (ई० सन् १५६८ फरवरी) में चित्तौड़ विजय करने के बाद अकबर ने इस वर्ष के अप्रेल में रण-थम्भोर को सेनायें भेज दीं। हाड़ा सहज ही अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले नहीं थे। अत: स्वयं बादशाह अकबर ने रणथम्भोर का घेरा फाल्गुन १६२६ (फरवरी १५६९) में डाल दिया ।† लगभग डेढ़ माह तक घेरा पड़ा रहा लेकिन राव सुर्जन ने आत्म-समर्पण नहीं किया। अन्त में जो काम शस्त्र बल से न हो सका वह युक्ति और प्रेम से किया गया। आमेर (जयपुर) के राजा भारमल कछवाहा के समझाने से राव सुर्जन ने चैत्र सुदी ४ (ई. सन् १५६९ ता० २१ मार्च) को मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार करली। पठानों से रणथम्भोर लेने के पश्चात् सुर्जन की ओर से वहां का किलेदार सांवतसिंह कायम किया गया क्योंकि इसके ही प्रयत्नों से सुर्जन को यह किला मिला था। राव सुर्जन ने जब यह किला अकब्रर को सौंपने का निश्चय किया तब सांवतसिंह हाड़ा ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया।

मुगलों की अधीनता स्वीकार करते समय राव सुर्जन ने बादशाह अकबर से कुछ शर्तें तय कराईं थीं जो इस प्रकार हैं ।‡

(१) बून्दी के राजाओं से महल में डोला (बेगम बनाने के वास्ते) भेजने को **नहीं** कहा जायगा।

(२) बून्दी के राजाओं को अपनी स्त्रियों को **मीना बाजार** (नौरोज) में भेजने का नहीं कहा जायगा।

(३) बून्दी के राजाओं को अटक पार जाने को नहीं कहा जायगा।

(४) बून्दी के राजाओं को शस्त्र पहिने दीवानेआम व दीवानेखास में आने की आज्ञा रहेगी।

---

* टाड : राजस्थान जिल्द ३, पृष्ठ १४८०–टाड़ लिखते हैं कि बोदला के चौहान शासक ने रणथम्बोर का किला सुजान राव को इस शर्त पर दिया था कि वह मेवाड़ के सामन्त के रूप में राज्य करेगा।

† वि० ए० स्मिथ : अकबर दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ९८

‡ टाड : राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४८२

(५) बून्दी के राजाओं को दिल्ली राजधानी में लाल दरवाजे तक नक्कारा बजाते हुए आने की आज्ञा रहेगी।

(६) बून्दी के राजाओं के घोड़ों के शाही दाग न लगाये जायेंगे।

(७) बून्दी के राजा कभी किसी हिन्दू सेनापति के नीचे नहीं रखे जायेंगे।

(८) बून्दी राज्य से जजिया कर नहीं लिया जायेगा।

(९) उनके मन्दिर इत्यादि पुण्य स्थानों का आदर किया जायगा।

(१०) जैसे मुगलों की राजधानी दिल्ली है वैसे ही हाड़ों की राजधानी बून्दी रहेगी, बादशाह उन्हें राजधानी बदलने के लिये लाचार नहीं करेगा।

इन शर्तों की पूर्ण सत्यता में इतिहासज्ञों में मतभेद हैं। वंश भास्कर में प्रथम ७ शर्तों का ही वर्णन है* लेकिन कर्नल टाड़ ने १० शर्तों का उल्लेख किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये शर्तें राजपूती अभिमान की सूचक थीं लेकिन इन शर्तों के किये जाने में कुछ सन्देह है जिन घटनाओं का उल्लेख इन शर्तों में हुआ है उनमें कई बाद में घटित हुई थीं। उदाहरण रूप से जजिया वि० सं० १६२१ (ई० सन् १५६४) में ही बन्द कर दिया गया था, घोड़ों के बादशाही दाग लगाने की प्रथा वि० सं० १६३१ (ई० सन् १५७४) में शुरू हुई, अटक पार जाने की आशंका उस वक्त थी ही नहीं क्योंकि बादशाह अकबर के राज्य की सीमा उस समय इतनी बढ़ी हुई नहीं थी। इसलिये इन बातों का समावेश पहले से ही सुलहनामे में आना वास्तविकता से दूर ले जाती है। फिर ऐसा कोई सुलहनामा बून्दी में पाया नहीं जाता है। इस सुलहनामे का न तो फारसी तवारीखों में† और न मूणोत नैणसी के ग्रन्थ में ही इसका उल्लेख है। नैणसी ने इतना तो अवश्य लिखा है कि राव सुर्जन ने सं० १६२६ की चैत्र सुदी ६ (ता० ५ मार्च १५६९ शुक्र) को बादशाह अकबर की मातहती स्वीकार करते हुए इस शर्त के साथ गढ़ बादशाह को सौंपा कि मैंने महाराणा मेवाड़ का अन्न खाया है इसलिए उस पर चढ़ कर कभी नहीं जाऊँगा।‡ रणथम्भोर ले लिया

---

* वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २२६५ स्वंय टाड़ भी इस सम्बन्ध में लिखता है कि यह वृत्तान्त बून्दी नरेश ने अपने कागजों से संकलित कर उसे दिया था और यह कहीं कहीं चारण भाटों की ख्यातों से बढ़ाया गया है। (टाड राजस्थान भाग ३ पृष्ठ १४८२)

† अबुलफजल ने अकबर नामे में इन शर्तों का कोई उल्लेख नहीं किया; अकबर नामा सफा ३३७

‡ मुहणोत नैणसी की ख्यात भाग १ पृष्ठ १११ काशी संस्करण

जाने पर अजमेर सूबा के अन्तर्गत एक सरकार बना दी गई जिसके नीचे बून्दी और कोटा के परगने रक्खे गये।

जो कुछ भी हो लेकिन यह सत्य है कि राव सुर्जन को अकबर ने लोभ देकर अपने पक्ष में मिलाया था।

इन हाड़ों ने भी बाद में मुगलों का बराबर साथ देकर उनके राज्य विस्तार में योग दिया। कहते हैं कि राव सुर्जन के बिना लड़े रणथम्भोर का किला बादशाह अकबर को सौंप देने पर मेवाड़ के सरदारों में उसकी बड़ी बदनामी हुई। अन्तिम दिनों में राव सुर्जन ने अपना राजकाज अपने पुत्र दूदा को सौंप दिया और स्वयं काशी में ही रहने लगा।

अपनी जातियों में वह चाहे लज्जित हुआ हो लेकिन वह बादशाह अकबर द्वारा बहुत ही सम्मानित हुआ। रणथम्भोर सौंपने के बाद बादशाह ने उसे हजारी जात और मनरूढ़ तथा गढ़कटंगा (मध्य प्रदेश) की जागीर इनाम में दी। वहां उसने वहां के आदिम निवासी—गोड़ों का दमन किया तथा उनकी राजधानी बारीगढ़ पर मुगल अधिकार स्थापित किया। इस पर बादशाह सुर्जन पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे रावराजा की उपाधि दी तथा ५००० का मनसब दिया* बादशाह ने उसे बून्दी के निकट के २६ परगने तथा बनारस के निकट २६ परगने दिये।† अतः नवम्बर १५७५ से वह अपने जागीर के परगनों में ही रहने लगा तथा वहां बनारस (काशी) को अपना निवास स्थान बना लिया। बनारस में इसने कई इमारतें, महल, घाट और बाग बनाये।

काशी में उसके निवास करते समय उसके अनुरोध से ही चन्द्रशेखर कवि‡ ने वहीं "सुर्जन चरित" नामक संस्कृत काव्य सं० १६३५ (ई० सन् १५७८) के आसपास बनाना शुरू किया था। (सर्ग २० श्लोक ६४) परन्तु उसकी समाप्ति से पूर्व ही सुर्जन का स्वर्गवास सं० १६४२ (ई० सन् १५८५) में हो गया और यह ग्रंथ उनके पुत्र भोज के समय समाप्त हुआ। इसमें चौहान वंश की वंशावली

---

* वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २२८४-८५

† उपरोक्त २२८६, अकबर ने उसे बनारस व चुनार का हाकिम भी नियुक्त किया।

‡ यह कवि गौड़ देश (बंगाल) निवासी अम्बष्ट (वैद्य) जाति के जितामित्र नामक व्यक्ति का पुत्र था।

श्री चहुवान के वंशधर वासुदेव से लेकर राव सुर्जन तक दी है।* इस काव्य में पृथ्वीराज रासो के निर्माता चन्द कवि का नाम भी मिलता है†। इससे यह भी ज्ञात होता है कि सुर्जन ने मालवा अधिपति का किला अपने पराक्रम से छीना था।

राव सुर्जन के तीन राजकुमार दूदा, भोज और रायमल तथा एक पुत्री पुरबाई थी। पुरबाई ने विधवा हो जाने के बाद बून्दी में पीताम्बर (विष्णु) का मन्दिर बनवाया।‡ रायमल को जागीर में पलायथा मिला था जो इस समय कोटा राज्य में है। राव सुर्जन के काशी में रहने के कारण बून्दी का राज्य उसका पुत्र दूदा सम्भालता था। १५७६ में दूदा और भोज में बून्दी के शासन प्रबन्ध के मामले को लेकर आपस में अनबन हो गई। स्वयं सुर्जन ज्येष्ठ पुत्र दूदा से नाराज था क्योंकि वह अकबर से मेल रखने के विरुद्ध था।§ इस कारण भोज देव को बून्दी का राज्य देना चाहा। इस पर दूदा अगस्त १५७६ में विद्रोही हो गया। बादशाह ने विद्रोह को दबाने के लिये दो बार सेना भेजी। दूदा अन्त में हार कर उदयपुर पहुँचा और महाराणा की सहायता से लूट-खसोट करने लगा। इधर बादशाह ने बून्दी राज्य राजकुमार भोज को १५७७ के पिछले महीनों में दे दिया। बाद में १५७८ में शाहबाजखां की सिफारिश से उसके अपराध क्षमा किये गये और यह दरबार में पहुँचा। बादशाह ने दूदा को पंजाब की ओर नियुक्त किया परन्तु दूदा वहां से भाग निकला और विद्रोही हो गया। उसने फिर बून्दी पर कब्जा पाने का प्रयत्न किया लेकिन असफल रहा।

---

* इस २० सर्ग (अध्याय) के महाकाव्य में १३९७ श्लोक हैं। यह काव्य सर्व प्रथम राजेन्द्र लाल मित्र को वि० सं० १९२७ (ई० सन १८७०) में काशी निवासी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के यहां से प्राप्त हुआ था (देखो "नोटिस आफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स्" बाई राजेन्द्रलाल मित्र, जिल्द १ नं० ७६ सन १८७० ई०) तत्पश्चात महा महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एम. ए. सी. आई. को यह काव्य प्राप्त हुआ था और उनके द्वारा ही सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी बून्दी (बन्धन नम्बर ३४१) में यह काव्य पहुंचा। (देखो हरप्रसाद शास्त्री डिसक्रिप्टिव कैटालोग, व जिल्द ४ नं० ३०८४ सन् १९२३ ई०)

† अथ भ्रमन् भूवलयं विवृण्वन्–भोमावलीभाग्यविलासभाजम्
चन्द्रामिध : पूर्व मनेन वितैमित्री कृतस्तत्र जगामबन्दी कृत १० सर्ग १३५२ लोक

‡ पुरबाई की आज्ञा से आगामी रामचन्द्र ने फाल्गुन सुदि ८ गुरुवार (वि० सं० १६५२) को पीताम्बर चरित नामक खण्डकाव्य बनाया था। इसके शुरू में राजवंश स्तुति तथा विष्णु स्तुति है। उक्त पं० रामचन्द्र कवि के पिता का नाम जनार्दन तथा पितामह का पं० पुरुषोत्तम था (श्लोक १३१)।

§ अकबर ने दूदा का नाम लकड खां रखदिया था।

वहां इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। अन्त में सितम्बर १५८५ में (वि० सं० १६४२ में मालवा में मर गया।* इस प्रकार राजकुमार भोज के राजमार्ग का कांटा निकल गया।

राव सुर्जन बड़ा धार्मिक, उदार बुद्धिमान और प्रतापी नरेश था। अकबर के कृपापात्र होने के कारण इसने हिन्दू तीर्थ यात्रियों के लिये बहुतसी सुविधायें दिलवाईं। काशी मे घाटों की इमारतें और २० जलाशय बनवाये। इससे इनकी बहुत यश-वृद्धि हुई। महाराणा उदयसिंह के साथ जब इसने द्वारका की यात्रा की उस समय वहां रणछोड़जी का मन्दिर बहुत मामूली सा था, इससे राव सुर्जन ने महाराणा से आज्ञा लेकर नया मन्दिर बनवाया जो अब तक विद्यमान है।†

इनके जीवन का अन्तिम समय काशी में ही बीता और वि० सं० १६४२ (ई० सन् १८८५) में यह वहीं परलोक सिधारा।‡ काशी में मणिकर्णिका घाट के पास ब्रह्मनाल (मुहल्ला) के बीच इसके और उसके साथ सती होने वाली रानियों के समाधि स्थान (चबूतरे) बने हुए हैं।

---

* बून्दी की ख्यातों में इस घटना का उलेख इस प्रकार दिया गया है "अपने बेटे दूधा को राजकाज सौंप राव सुर्जन कांशी में जा रहे थे। किसी सबब से दोनों भाइयों में अनबन हो गई और पीछे से राव सुर्जन ने भी अपने बड़े बेटे से रंजीदा होकर भोज को बून्दी का राज दिलाना चाहा जिस पर दूदा नाराज होकर खुल्लम खुल्ला अपने पिता से बागी होगया और पादशाह से रूखसत हासिल किए बिनाही अपने वतन में आकर लड़ाई का सामान दुरस्त करने लगा। उसकी इस हर्कत से खफा होकर पादशाहने बून्दी भोज को बख्श दी पहले थोड़ी सी फौज दूधा को सजा देने के वास्ते भेजी। उसे दूधा ने मार भगाई। तब राव सुर्जन के इतिफाक से जीनखां कोकतलाश को फौज देकर भेजा और बून्दी फतह होने पर पादशाह ने राव सुर्जन को दो हजारी मंसब अता किया। दूधा फिसाद करने से बाज न रहा तब बादशाह ने शाहबाज खां की मातहती में फौज भेज कर दूधा को कैद कर पंनाव की तरफ भेज दिया। मगर वह वहां से भाग आया और मालवे की तरफ जाता हुआ सं० १६३८ वि० में रास्ते में मर गया।

† मूता नैणसी भाग १ पृष्ठ १११

‡ टाड : राजस्थान तृतीय भाग पृष्ठ सं० १४८४

१२. राव भोज–
(वि० सं० १६४२-१६६४)

यह राव सुर्जन का दूसरा पुत्र और बांसवाड़ा के रावल जगमाल उदयसिंहोत का दोहिता था।* यह अपने पिता के जीवनकाल में ही सं० १६३३ (ई० सन् १५७७) से राज्य का प्रबन्ध करने लग गया था,† परन्तु राजसिंहासन पर अपने पिता की मृत्यु के बाद सं० १६४२ (ई० सन् १५८५) में बैठा। इसका बड़ा भाई दूदा अपने पिता सुर्जन से विद्रोह कर बैठा था और फिर वि० सं० १६४२ (ई० सन् १५८५) में मर भी चुका था।

राव भोज

यह बहुत समय तक मानसिंह के अधीन शाही युद्धों में रहा और उड़ीसा में इसने अफगानों के युद्ध में वीरता दिखलाई। जिस समय गुजरात में इब्राहीम हुसेन मिर्जा अकबर ने सं० १६२९ (ई० सन् १५७२) में चढ़ाई की उस समय राव भोज भी युद्ध में था। वि० सं० १६३० (ई० सन् १५७३) में सूरत का किला और अहमदनगर का किला सं० १६५७ (ई० सन् १६००) में विजय किया गया था। इन युद्धों में राव

* बांकीदास बात ११२९ † उमराये हनूद पृष्ठ ९५

भोज ने बड़ी वीरता दिखाई थी। इसी अहमदनगर के युद्ध में प्रसिद्ध वीरांगना अहमदनगर की बेगम चाँद बीबी मय अपने ७०० वीर स्त्रियों के देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ते.लड़ते काम आई थी।

अहमदनगर के युद्ध में भोज की वीरता पर प्रसन्न होकर बादशाह ने भोज के नाम पर वहां के किलों की बुर्ज का नाम भोज बुर्ज रक्खा था।*

बादशाह अकबर के दरबार में राव भोज का मंसब एक हजारी था।† ख्यातों में लिखा है कि राव भोज की बादशाह अकबर से अन्तिम दिनों में नहीं बनी। इसका यह कारण बतलाया जाता है कि अकबर ने राव भोज की सुन्दर पुत्री से विवाह करना चाहा, परन्तु भोज ने टालने के लिये यह कह दिया कि मेरी कन्या की मंगनी (सगाई) हो चुकी है। इस पर बादशाह ने वर का नाम पूछा। भोज ने दरबार में खड़े हुए राजपूत नरेशों की तरफ प्रश्न भरी दृष्टि से देखा कि कौन वीर ऐसा साहसी है कि जो मेरी कन्या से विवाह करेगा। इस पर किसी ने राव भोज से आँख नहीं मिलाई, केवल जोधपुर के राठौड़ मालदेव के पौत्र सिवाणें के राव कल्ला, रायमलोत ने मूंछ पर हाथ फेरा। इस इशारे को समझ कर भोज ने कल्ला राठौड़ को अपना भावी दामाद बता दिया। बादशाह ने कल्लाजी राठौड़ को सगाई छोड़ने को कहा पर उस वीर ने नहीं माना और बून्दी जाकर राव भोज की कन्या से शादी करली तथा अकबर के क्रोध से अपनी जान व जागीर को खो दिया।‡

जब बादशाह अकबर का देहांत वि० सं० १६३२ कार्तिक सुदि १४ (ई० सन् १६०५ ता० १५ अक्टूम्बर) मंगलवार को हो गया तब राव भोज भी आगरा से बून्दी लौट आया। तख्त पर बैठने के बाद जहांगीर ने आमेर के राजा मानसिंह की पोती और जगतसिंह की पुत्री जो राव भोज की दोहिती थी उससे विवाह करना चाहा, परन्तु भोज ने इसमें भी रोड़ा अटका दिया। इससे बादशाह नाराज हो गया और उसने निश्चय किया कि काबुल से लौटने पर राव भोज

---

* टाड : राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४८५

† उमरायेहनूद पृष्ठ ६५ महासिरल उमरा पृष्ठ २७४

‡ टाड ने अकबर व भोज की अनबन का कारण अन्य ही बताया कि अकबर की बेगम जोधाबाई की मृत्यु हो जाने पर यह ऐलान कराया कि सब सरदार दाढ़ी मूंछ मुड़वाएँ। राव भोज ने इसका विरोध किया तथा जबरदस्ती करने पर शस्त्रों द्वारा विरोध किया। अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और पुनः अपनी सेवाओं में लेलिया।

को सजा दूंगा ।* परन्तु इसी वर्ष वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) में भोज का देहांत बून्दी में हो गया ।† राव भोज ने २२ वर्ष राज किया । इसके चार राजकुमार रतनसिंह, हृदय नारायण,‡ केशवदास और मनोहरदास थे ।

१३. राव रतन हाड़ा– (वि० सं० १६६५-१६८८)

इसका जन्म वि० सं० १६२८ सुदि १० रविवार (ई० सन् १५७१ ता० ३ जून रविवार को हुआ । वि० सं० १६६४ (ई० सन् १६०७) में यह बूंदी के सिंहासन पर बैठा ।

राव रतन हाड़ा

अपने पिता भोज की तरह यह भी सं. १६६५ में सम्राट जहांगीर का कृपा-पात्र था । सं. १६७० (ई० सन् १६१३) में यह शाहजादा खुर्रम (शाहजहां) के साथ मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध लड़ने को भेजा गया था । बाद में सं. १६७१ वि. में शाही फौज के साथ दक्खन में भी गया । वहां कुछ समय तक रहकर थोड़े दिनों के लिये यह अपने देश को चला आया । इसी समय सम्राट् जहांगीर लोगों के बहकाने से शाहजादा खुर्रम से नाराज हो गया ।§ खुर्रम ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया । तब राव रतन सं. १६८० में

* उमराये हनूद ६५ महासिरल उमरा पृष्ठ २७४ † उमराये हनूद पृष्ठ ६५

‡ भोजने गद्दी पर बैठते समय अकबर की स्वीकृति लेकर हृदयनारायण को कोटे का शासक नियत किया । जहां इसने १५ वर्ष तक राज्य किया । हृदयनारायण के वंशज हरदावत कहलाये (डा० मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास पृष्ठ ८३) ।

§ नूरजहाँ के कारण जहांगीर व खुर्रम में अनबन होगई । नूरजहां अपने पहले पति शेरअफगन

शाहजादे पर्वेज और महावतखां के साथ शाहजादे खुर्रम (शाहजहां) का सामना करने के लिये दक्षिण में भेजा गया। वहां से पर्वेज व महावतखां पूर्व को गये तब रतन को बुरहानपुर जिले का सूबेदार बनाया।* उस समय खुर्रम ने बुरहानपुर का किला लेना चाहा परन्तु राव रतन हाड़ा ने खुर्रम की सेना का तीन बार मुकाबला कर उसे हटा दिया। अन्तिम हमले में राव रतन खुद "जगजोत" नामक हाथो पर सवार होकर शाहजादे के मुकाबले को आया और शाहजादे की सेना पर टूट पड़ा और विजय पाई।† इस युद्ध में राव के राजकुमार माधोसिंह हरिसिंह भी बड़ी वीरता से लड़े और दोनों ही सख्त घायल हुए थे। राव रतन का भाई हृदयनारायण बादशाह के आदेश से इलाहाबाद की ओर गया क्योंकि इसके पहिले ही खुर्रम उधर चला गया था। इलाहाबाद के पास झांसी नामक स्थान पर शाही सेना और खुर्रम की सेना का सामना वि. सं. १८८० (जुलाई १६२४) में हुआ। खुर्रम इस युद्ध में हार कर भाग गया। लेकिन हृदयनारायण भी डर कर भाग गया। बादशाह हृदयनारायण की कायरता पैर बहुत नाराज हुआ। बादशाह ने उसको कोटा की गद्दी से उतार दिया और राव रतन को कोटा का राज्य स्थायी रूप में दे दिया।‡

राव रतन की दक्षिण की सेवाओं से प्रसन्न होकर जहांगीर ने सं. १६८२ में उनका मंसब ५ हजारी जात व पांच हजार सवार का कर दिया और "रावराय" (रावराजा) की उपाधि दी। इस प्रकार इसने जहांगीर के दरबार में अपने पिता

द्वारा पैदा लड़कों के पति (जहांगीर का चौथा पुत्र) को खुर्रम के स्थान पर राज्य दिलाना चाहती थी अतः शहरयार खुर्रम को कन्धम् लेने भेजा गया। खुर्रम नूरजहां की चालाकी समझ कर जाने की आनाकानी करने लगा और फिर बाद में विद्रोह कर दिया।

* खफीखां जिल्द १ पृष्ठ ३४८

† महासिरुल उमरा प्रथम भाग पृष्ठ ३१६ (हिन्दी संस्करण)

‡ जहांगीरी जिल्द २ पृष्ठ २६४-८६। वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २४६६। खफीखां जिल्द १ पृष्ठ ३४६-५६। कर्नल टाड ने (भाग ३ पृष्ठ १४८७ तुजु के जहांगीरी) लिखा है कि सं० १६३५ कार्तिक सुदी १५ मंगलवार (ई० सन् १५७८) को हुआ था और इसी युद्ध में राव रतन का पुत्र माधोसिंह घायल होने से जहांगीर ने उसे कोटा का अलग राज्य दिया। परन्तु यह ठीक नहीं है। "तुजके जहांगीरी" के अनुसार बुरहानपुर का यह युद्ध हि० सन् १०३४ (ई० सन् १६२५ वि० सं० १६८२) में हुआ। सं० १६२५ में तो सम्राट् जहांगीर सात वर्ष का बालक था। माधोसिंह को कोटे का राज्य सम्राट शाहजहां ने हि० सन् १०४१ (ई० सन् १६३१ वि० सं० १६८८) में राव रतन की मृत्यु के पीछे दिया था।

से भी अधिक यश और सम्मान प्राप्त किया। यह मुगल साम्राज्य का स्तम्भ माना जाता था। इसने शाही सेना की सहायता से मऊ के खीची चौहानों को हराया और उनके गढ़ गागरुया, मऊ, चाचरणी आदि स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया।* मऊ के इस युद्ध में इनके दोनों भाई हृदयनारायण और केशवदास तथा दोनों पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह भी साथ थे। केशवदास अपने सौ साथियों सहित उसी युद्ध में मारा गया था।† दरियावखां नामक प्रसिद्ध लुटेरे को जो मेवाड़ व उसके आस-पास लूट-खसोट करता था, इसने पकड़ कर सम्राट के पास पहुँचाया। बादशाह ने उस पर प्रसन्न होकर इसे नौबत, नक्कारे का शाही निशान राजकीय उत्सवों के लिये पीला झंडा और डेरे के लिये लाल झंडा लगाने की इज्जत दी जो अभी तक प्रचलित है।‡ इसने इस प्रकार हर तरह से बादशाह को प्रसन्न किया और इधर मेवाड़ के महाराणाओं से भी मेलजोल ही रखा। इस तरह इसने अपने राज्य को बढ़ाने के साथ ही साथ अपना यश भी फैलाया। न्यायप्रिय भी वह कम नहीं था। इसने न्यायशीलता का जो परिचय दिया था वह इतिहास प्रसिद्ध है। कर्नल टाड ने लिखा है कि राव रतन के ज्येष्ठ पुत्र युवराज गोपीनाथ का एक ब्राह्मणी से प्रेम था और उसकी चर्चा सारे शहर में फैल गई थी। ब्राह्मण ने एक दिन उसे मार डाला और उसकी लाश रास्ते में फेंक दी। जब राव रतन को यह पता लगा तो वह चुप रहा और किसी को कुछ भी दण्ड नहीं दिया। गोपीनाथ की मृत्यु का कारण फारसी तवारीख "बादशाहनामा" में कुछ और ही बताया है। उसमें लिखा है कि राजकुमार गोपीनाथ दुबला पतला होने पर भी बहुत ताकतवर था। ताकत से बेढ़ब काम करने के कारण वह बीमार होकर २५ वर्ष की आयु में वि. सं. १६७१ (ई० सन् १६१४ हि. सन् १०२३) में मर गया।§ जो हो युवराज गोपीनाथ का देहांत भरी जवानी में हो गया। उसके पांच पुत्र शत्रुशाल, इन्द्रशाल,¶ बेरीसाल, मोहकमसिंह और महासिंह थे।

राव रतन का देहांत वि. सं. १६८८ (ई. सन् १६३१) को बालाघाट (मध्यप्रदेश) के पड़ाव में हुआ जहां उसने बुरहानपुर में अपने नाम पर रतनपुर नाम का कस्बा बसाया था।$ इसके तीन राजकुमार थे। पहिला गोपीनाथ तो

---

* वंश भास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २४७६ † उपरोक्त पृष्ठ २४७६-२४८०

‡ टाड़: एनल्स एण्ड एण्टी क्वीटीज आफ राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४८७

§ मुंशी देवी प्रसाद "शाहजहांनामा" भाग १ पृष्ठ ३६

¶ यह सम्राट शाहजहां के आठ सौ जात व चार सौ सवार के मनसबदार थे।

$ टाड़ राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४८७ : बादशाह नामा पृष्ठ ४०१

कुँवरपने में ही चल बसा था। दूसरा माधोसिंह जो बाद में कोटा का राजा बना। हृदयनारायण को कोटा की गद्दी से हटाये जाने के बाद राव रतन ने कोटा का राज्य माधोसिंह को दे दिया था। माधोसिंह कोटा का राजा माना जाने लगा। उसको बाद में अलग से कोटा का राज्य सम्राट शाहजहां ने वि. सं. १६८८ (ई. सन् १६३१) में दिया।* हरिसिंह को राज्य से पीपलदा की जागीर मिली।

राव रतन के स्वर्गवास के पश्चात् उसका पौत्र और गोपीनाथ का पुत्र शत्रुशाल बूंदी की राजगद्दी पर बैठा।†

१४. राव शत्रुशाल हाड़ा—
(वि० सं० १६८८-१७१५)

ये राव रतन के पोते और गोपीनाथ के पुत्र थे। राव गोपीनाथ के ११ पुत्र और थे। सं० १६८८ में २५ वर्ष की आयु में राव शत्रुशाल बून्दी के राज-सिंहासन पर बैठा। इसका जन्म वि० सं० १६६३ आश्विन सुदि १५ रविवार (ई० सन् १६०६ ता० १९ अक्टूबर) को हुआ था। यह बड़ा वीर और पराक्रमी नरेश था। इसने अनेकों युद्धों में भाग लिया था। यह बादशाह शाहजहां का बड़ा कृपा पात्र था।‡ जब यह राज-सिंहासन पर बैठा तब बादशाह ने इसे राव का खिताब तीन हजारी जात व दो हजार सवार का मनसब§ और देकर बून्दी व

---

* महम्मद वारिस बादशाह नामा पृष्ठ ४०१

† बांकीदास एतिहासिक बातें, संख्या ५४९।

‡ शाहजहाँ ने बून्दी का राजा स्वीकार किया और दिल्ली (राजधानी शाही) का सूबेदार बनाया—टाड जिल्द १४८९।

§ मुआसिरुल उमरा हिन्दी संस्करण भाग १ पृष्ठ ४०१-४०२।

खटकड़ ग्रादि परगने जागीर में देकर खानेजमा के साथ दखिन में भेजा जहां वि. सं० १६८६ (ई० सन् १६३२) में दौलताबाद का किला जीतने में इसने बड़ी बहादुरी दिखलाई। इस सेवा के उपलक्ष में इसकी मनसब में एक हजार सवार की वृद्धि हुई। सं० १६९० (ई० सन् १६३३) में परेदा के किले के घेरे में इसने अच्छा काम किया। सं. १६९१ में जब खानेजमा* बालाघाट का सूबेदार नियुक्त हुआ तब यह भी उसके साथ ही वहां रक्खा गया। जब सं. १६९२ (ई० सन् १६३५) में बादशाह साहू भोसला को दण्ड देने के लिये और दक्षिण के सुल्तानों का दमन करने के लिये खानदेश गया तब उसके बुरहानपुर नगर में पहुँचने पर राव शत्रुशाल खानेजमा के साथ सेवा में पहुँचा।† जब सं. १६९८ (ई. सन् १६४१) में बादशाह ने शाहजादा दाराशिकोह को ईरान के बादशाह के हमले से रक्षा करने के लिये कंधार को रवाना किया तब राव शत्रुशाल को भी घोड़ा व खिलग्रत देकर साथ भेजा। वहां से लौटने पर सं. १७०१ (ई. सन् १६४४ में खिलग्रत सहित अपने राज्य (बून्दी) को जाने की छुट्टी मिली। वि. सं. १७०२ में शाहजादा मुरादबख्श के साथ यह बलख और बदख्शां की चढ़ाई में भेजा गया।‡ सं. १७ ५ (ई. सन् १६४८) में जब यह शाही दरबार में लौटा तब सम्राट ने इसका मनसब साढ़े तीन हजार सवार कर इसे शाहजादा औरंगजेब के साथ कंजिलवशों के विरुद्ध कंधार की चढ़ाई पर भेज दिया। सं. १७०८ तथा १७०९ की कंधार की चढ़ाइयों में भी यह नियुक्त हुआ। इन युद्धों में इसने बड़ी वीरता दिखलाई।§

राव शत्रुशाल हाड़ा

जब बादशाह शाहजहां वृद्ध हो गया तो उसने अपने साम्राज्य को चारों बेटों में बांट कर उनको अलग-अलग प्रान्तों का सूबेदार बना दिया। शुजा

---

* खाने जहां लोदी।

† टाड राजस्थान पृष्ठ १४८९ जिल्द ३

‡ मुआसिरुल उमरा भाग १ पृ० ४०३।

§ मुआसिरुल उमरा पृ० ४०३।

बंगाल प्रान्त, औरंगजेब दक्षिण, मुरादबख्श गुजरात और ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह दिल्ली में रहा। उस समय राव शत्रुशाल हाड़ा दिल्ली का सूबेदार था। जब शाहजादा औरंगजेब दक्षिण में था शत्रुशाल भी उसके मातहत एक उच्च पदाधिकारी था।* औरंगजेब ने दक्षिण के बड़े-बड़े किले दौलताबाद, बीदर, गुलबर्गा और दमोनी जीते।† इन विजयों में शत्रुशाल की हाड़ों की सेना ने अपूर्व वीरता बताई। मुगल साम्राज्य की ऐसी उत्तम सेवा के उपलक्ष में ही सम्राट ने शत्रुशाल का मनसब साढ़े तीन हजारी जात व साढ़े तीन हजार सवार का कर दिया था। जब वि. सं. १७१४ (वि. सं. १६५७) में बादशाह शाहजहां बहुत बीमार पड़ा तब उसके चारों पुत्रों ने तख्त के लिये लड़ना आरम्भ कर दिया। शाहजादा शुजा बंगाल से आगरा की ओर चल पड़ा। दारा सम्राट के पास ही था। औरंगजेब ने चालाकी से मुराद को बहका कर अपने पक्ष में कर लिया और आगरे की ओर बढ़ने की तैयारी की। इस पर बादशाह ने शत्रुशाल हाड़ा को दक्षिण से बुलवाया।‡ औरंगजेब ने उसे रोका परन्तु जैसे-तैसे वह नर्बदा पार करके बून्दी पहुँच गया और वहां से शीघ्र ही आगरा को चल दिया। शाहजहां ने इसे औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना को रोकने के लिये दारा के साथ भेजा। विदा करते समय बादशाह ने बांरा और मऊ के परगने कोटा के राव मुकन्दसिंह से छीन कर वापस शत्रुशाल को दे दिये।§ दाराशिकोह की सेना सुसज्जित होकर धौलपुर के पास सामूगढ़ में जा डटी। औरंगजेब व मुराद भी दक्षिण और गुजरात से होते हुए उज्जैन के पास धर्मत (फतहाबाद) की लड़ाई¶ में विजयी होकर आगरा से कुछ मील पूर्व की ओर सामूगढ़ पहुँचे। इस युद्ध में हाड़ा, राठौर, सीसोदिया और गौड़ राजपूतों का नेतृत्व शत्रुशाल ने किया और उसके रिश्तेदारों ने अपूर्व वीरता बतलाई। कर्नल टाड़ ने लिखा है कि जब सेना के बीच में शाहजादा दाराशिकोह जो हाथी पर सवार था एकाएक गायब हो गया तब सेना तितर-बितर होने लगीं। यह देख कर राव शत्रुशाल हाथी पर सवार होकर लड़ा परन्तु तोप के एक गोले ने उसके हाथी को भगा दिया। इस

* टाड़ राजस्थान जिल्द ३ १४८९।

† यदुनाथ सरकार—हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग ४ पृष्ठ २६८, व २७२।

‡ टाड—राजस्थान जिल्द ३ पृ० १४९०।

§ वंश भास्कर जिल्द ३ पृष्ठ १३७।

¶ धर्मत के युद्ध में हाड़ा शत्रुशाल ने जसवन्तसिंह राठोड़ (जोधपुर नरेश) का साथ नहीं दिया। क्योंकि उस युद्ध का नेतृत्व राठोड़ सरदार कर रहा था था जो कि शत्रुशाल को स्वीकार नहीं था (टाड़ राजस्थान भाग ३ पृ० १४९१।

पर शत्रुशाल हाथी पर से उतर कर एक घोड़े पर सवार होकर लड़ा।* शत्रुशाल ने स्वयं औरंगजेब व मुराद पर भी आक्रमण किया लेकिन वे बच निकले। अंत में अचानक उसके ललाट में एक गोली लगी जिससे वह रणक्षेत्र में ही ज्येष्ठ सुदि ६ (ई. सन् १६५८, २९ मई सोमवार) को वीर गति को प्राप्त हुआ।† इस युद्ध में इसके पुत्र भारतसिंह व भाई मोहकमसिंह अपने दो पुत्रों सहित व उदेसिंह आदि भी मारे गये।

इसके चार पुत्र भावसिंह, भीमसिंह, भगवंतसिंह, भारतसिंह थे। इसका एक विवाह महाराणा जगतसिंह उदयपुर की राजकुमारी के साथ हुआ था।‡ इसने बून्दी में छत्रमहल और पांटण में केशवराय का मन्दिर बनवाया था।§ शत्रुशाल के अलांवा गोपीनाथ के ग्यारह पुत्रों में इन्द्रभाण ने इन्द्रगढ़ में अपनी सत्ता स्थापित की। बेरीसाल ने बलवण पाया। राजसिंह को हरिगढ़ मिला। मुहकमसिंह को आंतरदांह, महासिंह को थाणा प्राप्त हुआ।¶

१५. राव भावसिंह हाड़ा—
(वि० सं० १७१५-१७३८)

राव शत्रुशाल के ज्येष्ठ पुत्र राव भावसिंह हाड़ा का जन्म फागुण बदि ३ मंगलवार (ई० सन् १६२४ ता० २८ जनवरी को हुआ था। बादशाह औरंगजेब

* टाड राजस्थान भाग ३ पृष्ठ १४९२।
† बांकीदास ऐतिहासिक बातें संख्या १६३२।
‡ वीर विनोद भाग २ पृष्ठ सं० ३२१।
§ बांकीदास, ऐतिहासिक बातें संख्या १४५०, टाड़ राजस्थान भाग ३ पृष्ठ संख्या १४९२।
¶ उपरोक्त पृष्ठ संख्या १४८९।

राव भावसिंह हाड़ा

इसके पिता से नाराज था* लेकिन इसके भाई भगवन्तसिंह हाड़ा को जो पहले से ही दिल्ली में शाही सेवा में रहता था व औरंगजेब के साथ दक्षिण में था बादशाह ने राव का खिताब और बून्दी का कुछ भाग मऊ, बारा आदि राज्य परगने देकर बून्दी का अलग राजा बना दिया।† लेकिन उसके कुछ ही समय बाद उसका देहान्त हो गया।‡ तब बादशाह ने ये परगने जगतसिंह को मुकाते पर दे दिये। इतना ही नहीं उसने शिवपुर के राजा आत्माराम गौड़ और बरसिंह बुन्देले को बून्दी पर चढ़ाई करने को भेजा, परन्तु खातोली नामक गांव के पास हार कर वह वापिस लौट गया।§ इस तरह जब भावसिंह हाड़ा काबू में नहीं आया तब औरंगजेब ने नीति से काम लिया और भावसिंह को माफी देकर अपनी नेकनियती की प्रतिज्ञा कर आगरे बुलवाया। ई० सन् १६५८ की नवम्बर में यह औरंगजेब के दरबार में गया और तीन हजारी जात व दो हजार सवार के मन्सब, डंका, झंडा, राज की पदवी और बून्दी आदि जिलों की जागीर पाकर सम्मानित हुआ।¶ उसी समय बादशाह ने भावसिंह को शाहजादा मुहम्मद सुल्तान के साथ बागी शाहजादा शुजा का सामना करने को भेजा। प्रयाग के पास मुकाम कोड़ा में जो युद्ध बादशाह औरंगजेब तथा शुजा के बीच माघ बदि ६ (ई० सन् १६५८ ता० २४ दिसम्बर शनिवार) को हुआ उसमें राव भावसिंह शाही तोपखाने का अफसर था।$ इसके बाद यह दक्षिण में छत्रपति

---

* महाराव शत्रुशाल ने मुगल उत्तराधिकारी के युद्ध में दाराशिकोह का पक्ष लिया था। उसकी मृत्यु समुगढ़ के युद्ध में हुई थी अतः औरंगजेब इससे नाराज था।

† वंश प्रकाश पृ० ७६।

‡ इसकी मृत्यु मऊ में हुई।

§ टाड: राजस्थान भाग ३ पृ० १४९२—हाडाओं ने शाही झण्डा और माल असबाब पर अधिकार कर लिया था। बाद में हाडाओं ने गौड़ शासक आत्मारामकी राजधानी शिवपुर पर भी अधिकार कर लिया था।

¶ टाड: राजस्थान भाग ३ पृ० १४९३। $ वंश भास्कर तृतीय भाग पृ०

शिवाजी के विरुद्ध लड़ने को नियुक्त हुआ। सं० १७१७ (ई० सन् १६६०) में इसने अमीरुल उमरा शायस्ताखां के साथ चाकण के किले को घेर कर उस पर अधिकार कर लिया। मिर्जा राजा जयसिंह (आमेर) के दक्षिण पहुँचने पर यह उसके साथ चढ़ाइयों में रहा। सं० १७२२ (ई० सन् १६६५) में दिलेरखां के साथ इसने चांदा के राजा पर चढ़ाई की। यह औरंगाबाद (दक्षिण) का फौजदार नियुक्त होकर बहुत समय तक वहां रहा।* वहां इसने कई इमारतें बनवाई और अपनी वीरता, दान और उदार भावों के लिये बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। इसने औरंगाबाद के पास अपने नाम पर भावपुरा नामक गांव बसाया था। उसी गांव में वि० सं० १७३८ वैशाख बदि ८ (ई० सन् १६८१ ता० १ अप्रेल शुक्रवार) को इसका स्वर्गवास हुआ।† इसका एक मात्र पुत्र पृथ्वीसिंह बालपने में ही मर गया था इसलिए इसने अपने छोटे भाई भीमसिंह के पुत्र किशनसिंह को गोद (दत्तक) लिया। बाद में औरंगजेब के इशारे पर, अपने कट्टर धार्मिक विचारों के कारण किशनसिंह सं० १७३४ (ई० सन् १६७७) में उज्जैन में मारा गया।‡ यह अपने धर्म का बड़ा पक्का था। जब औरंगजेब ने बून्दी के पास केशवरायजी का मन्दिर तोड़ने को एक सेना भेजी तब किशनसिंह ने सेना से मुकाबला करके मन्दिर की रक्षा की थी। किशनसिंह का पुत्र अनिरुद्धसिंह इसके गोद आया। भावसिंह की एक बहिन का विवाह जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के साथ हुआ था। भावसिंह बड़ा वीर और शरणागत रक्षक था। इसने बीकानेर नरेश महाराजा कर्णसिंह को दिलेरखां के षड़यंत्र से बचा कर अपने पास औरंगाबाद में आश्रय दिया था। महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद अपनी बहिन कर्मवती के पुत्रों की रक्षार्थ औरंगजेब से लड़े थे।

---

* सरकार: शिवाजी पृ० सं०   वंश प्रकाश पृ० ७९-८०

† टाड: राजस्थान जिल्द ३ पृ० सं० १४८३, इसकी मृत्यु की तिथि मनुर्षा के उद्धरणों के आधार पर मार्च १६७७—फरवरी १६७८ के बीच है; टाड़ के आधार पर (सम्वत् १७३८ सम्वत् १६८२) ई० और वंशभास्कर में सूर्यमल मिश्र सन् १६८१ ता० १ अप्रेल सम्वत १७३८ वैशाख बदि ८ मानता है।

‡ किशनसिंह को दत्तक-पद से उस समय मुक्त कर दिया जबकि वह भगवतसिंह की मृत्यु के बाद उसकी गद्दी पर बैठ गया था। किशनसिंह कट्टर धर्म प्रवृत्ति का था। जब औरंगजेब ने बून्दी के केशोराय पाटण के मन्दिर को नष्ट करने ५००० की टुकड़ी भेजी तो किशनसिंह ने वीरता पूर्वक उस मन्दिर की रक्षा की। उज्जैन में शाही सूबेदार से धर्म के कारण शत्रुता मोल लेली इस पर सूबेदार ने उसे मरवा डाला।

१६. राव अनिरुद्धसिंह हाड़ा–
(सं० १७३८-१७५२ वि०)

यह राव भावसिंह हाड़ा के छोटे भाई भीमसिंह का पोता और किशनसिंह का लड़का था। इसका जन्म वि० सं० १७२३ आषाढ़ बदि ७ बुद्धवार (ई० सन् १३६६ ता० १३ जून) को हुआ था। यह वि० सं० १७३८ (ई० सन् १६८१) में १५ वर्ष की आयु में बून्दी की राज-गद्दी पर बैठा। उस समय बादशाह औरंगजेब ने इसके लिये खिलअत और हाथी टीके में भेजा।* बाद में जब बादशाह ई० १६८२ में दक्षिण की ओर गया तब राव अनिरुद्ध-सिंह हाड़ा भी साथ गया। वहां राव ने बड़ी वीरता दिखाई। एक समय जब बादशाह की बेगमों को मरहठों ने घेर लिया तब इसने शत्रु से लड़कर उन्हें बचाया जिससे बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने खिलअत (सिरोपाव) व कई परगने इसे जागीर में दिये। इसके सिवाय अनिरुद्धसिंह की प्रार्थना पर बादशाह ने

राव अनिरुद्धसिंह हाड़ा

यह भी स्वीकार किया कि हाड़ों की सेना शाही सेना में सब से आगे हरावल में चलेगी। जब वि० सं० १७४३ आश्विन सुदि ५ रविवार को औरंगजेब ने

* टाड: राजस्थान जिल्द ३. पृष्ठ १४९३।

बीजापुर का किला विजय किया, उस समय उसके घेरे व लड़ाई में अनिरुद्धसिंह ने बड़ी बहादुरी दिखाई।

हाडा दुर्जनसिंह बून्दी राज्य में बलवन का जागीरदार था। उसके और राव अनिरुद्धसिंह के आपस में मनमुटाव हो गया। कहा जाता है कि दुर्जनसिंह महरठों से मिल गया था जिसकी सूचना राव ने औरंगजेब को दी। इससे दुर्जनसिंह ने शाही सेवा से लौट कर बून्दी के राज्य पर कब्जा कर लिया। जब इस घटना की सूचना बादशाह के कानों तक पहुँची तब बादशाह ने दुर्जनसिंह हाड़ा को बून्दी से निकाल देने के लिये मुगलखां, भीमसिंह बनेडा, महासिंह, भदौरिया के भाई रुद्रसिंह और सैय्यद मुहम्मदअली आदि को खिलअत हाथी घोड़े देकर राव अनिरुद्धसिंह की सहायता के लिये बड़ी फौज के साथ बून्दी की ओर रवाना किया।† राव अनिरुद्धसिंह को भी खिलअत हाथी और घोड़ा आदि विदाई के समय दिये। अनिरुद्धसिंह शाही सेना के साथ बून्दी पहुँचा। दुर्जनसिंह किला छोड़कर भाग गया और अनिरुद्धसिंह ने वापिस बून्दी पर अधिकार कर लिया।‡ बाद में जोधपुर के राठौड़ दुर्गादास ने बीच में पड़कर दुर्जनशाल हाड़ा को राव अनिरुद्धसिंह के पैरों में नमाया और उनके आपस में मेल करा दिया।§ बाद में यह शाहजादा आजम के पुत्र बेदारबख्त के साथ जुलाई १६८८ में जाट नरेश राजाराम से लड़े थे। इस लड़ाई में यह ज्यादा टिके नहीं रह सका अतः युद्ध के बीच ही बून्दी भाग गया। इस पर बून्दी की सेना का नेतृत्व राजगढ़ (कोटा) के जागीरदार गोबर्धनसिंह ने बून्दी नरेश की पगड़ी और छत्र लेकर किया।¶ कुछ समय तक बून्दी में रहकर अनिरुद्धसिंह ने बून्दी का प्रबन्ध ठीक किया। बाद में बादशाह ने इसे काबुल की तरफ मुगल साम्राज्य की उत्तरी सीमा का झगड़ा तय करने को शाहजादा मुअज्जम और आमेर के राजा बिशनसिंह के साथ भेज दिया। जहां सं० १७५२ (ई० सन् १६९५) में इसका देहान्त हो गया।$

इसके चार पुत्र बुधसिंह, जोधसिंह, अमरसिंह और विजयसिंह थे। जोधसिंह के लिये प्रसिद्ध है कि सं० १७६३ की चैत्र सुदि ३ (६-३१७०६ बुधवार) को

---

* उपरोक्त १४६४।

† देवीप्रसाद: औरंगजेब नामा भाग २ पृ० १२४-१२५।

‡ देवीप्रसाद: औरंगजेब नामा भाग २ पृ० १२७।

§ कविराज बांकीदास: ऐतिहासिक बातें संख्या १६६४।

¶ डा० शर्मा: कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग पृ० २०८।

$ टाड: राजस्थान जिल्द ३ पृ० १४६४।

जबकि गणगौर का त्यौंहार बून्दी में मनाया जा रहा था तालाब में गणगौर की प्रतिमा के साथ जोधसिंह मय अपनी स्त्री स्वरूपकँवर व साथियों के नाव में सैर करने निकले, परन्तु किसी मस्त हाथी ने उस नाव को उलट दिया जिससे वे मय अपने साथियों और गणगौर के डूब गए।* उस समय से राजपूतों का यह प्रसिद्ध त्यौंहार बून्दी में नहीं मनाया जाता है तथा तब से यह कहावत कि "हाडो ले डूबो गणगौर–प्रचलित हो गई।

१७. रावराजा बुद्धसिंह– (वि० सं० १७५२-१७९६)

यह राव अनिरुद्धसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था जो १० वर्ष की आयु में वि० सं० १७५२ पौष बदि १३ (ई० सन् १६९५ ता० २३ दिसम्बर, सोमवार) को बून्दी के राज-सिंहासन पर बैठा। जब सं० १७६३ में बादशाह औरंगजेब दक्षिण में बीमार पड़ा तब उसने ज्येष्ठ पुत्र बहादुरशाह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा प्रकट की परन्तु फाल्गुन बदि १४ (ता० २१ फरवरी ई० सन् १७०७) को बादशाह के अहमदनगर (दक्षिण) में मर जाने पर उसके दोनों पुत्र बहादुरशाह और आजम में तख्त के लिये लड़ाई ठन गई। बहादुरशाह काबुल से आगरा के लिये चल पड़ा और शाहजहां आजम दक्षिण से गुजरात होता हुआ आगरे की ओर बढ़ा। राव बुद्धसिंह हाड़ा ने जो शाहजादा बहादुर-शाह के साथ ही काबुल में था, बहादुर.

रावराजा बुद्धसिंह

* वीर विनोद भाग २ पृ० ११४।

शाह का साथ दिया । कोटा, दतिया आदि के राजपूत नरेशों ने आजम का पक्ष लिया ।* कोटे के राव रामसिंह हाड़ा ने शाही फौज की सहायता से बून्दी का मऊ का इलाका अपने कब्जे में कर लिया था तथा बुद्धसिंह ने पंजाब में बहादुरशाह से मिलकर उसकी सहायता से पाटन वापस अपने राज्य में मिला लिया था । इसलिये बून्दी कोटा में पहिले से अनबन था । फिर भी रामसिंह यह नहीं चाहते थे कि कोटा व बून्दी नरेश दूसरों के लिये आपस में लड़ें । इस कारण राव रामसिंह हाड़ा ने बुद्धसिंह को आजम का पक्ष लेने का इशारा कराया, लेकिन इधर से यही उत्तर मिला कि "मैं नमक हरामी" करके अपने नाम को बट्टा नहीं लगाऊँगा ।† दोनों सेनाओं का मुकाबला आगरा के दक्षिण में ३४ मील पर, धौलपुर के पास जाजव के मैदान में वि० सं० १७६४ आषाढ़ बदि ४ रविवार (ई० सन् १७१७ की ८ जून) को हुआ । इस युद्ध में बहादुरशाह की फौज के अध्यक्ष उसके शाहजादे मुइनुद्दीन और आजमशाह थे । दतिया का राजा दलपत बूंदेला, कोटा का रामसिंह हाड़ा और शाहजादा आजम मय अपने पुत्र बेदारबख्त और बालजहां के मारे गये । इस प्रकार बहादुरशाह निष्कंटक होकर आगरे के तख्त पर बैठा ।‡

बुद्धसिंह हाड़ा ने भी इस युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखलाई । इससे बहादुरशाह ने बुद्धसिंह को "महाराव राणा" का खिताब तथा कुछ परगने जागीर में दिये ।§ उस समय बुद्धसिंह ने कोटे को भी हथियाना चाहा और बहादुरशाह से कोटा की जागीर का फरमान अपने नाम लिखवा कर जोगीराम हाड़ा के सेनापतित्व में कोटा को अपने अधिकार में करने का प्रयास किया ।¶ इसमें उसे सफलता नहीं मिली । इससे कोटा व बून्दी में परस्पर शत्रुता हो गई जिसके कारण दोनों के बीच कई लड़ाईयां हुई । उधर बादशाह शाहजादे कामबख्श की उलझन में दक्षिण की तरफ फंसा हुआ था । उसने दक्षिण में जाते समय बुद्धसिंह को बुला भेजा ।$ वि० सं० १७६७ में जब बादशाह अपने भाई पर विजय पाकर दक्षिण से लौटा उस समय पंजाब में सिक्खों का उपद्रव उठ खड़ा हुआ इस कारण

---

* कोटा के राव रामसिंह आजम के पक्ष में थे । हाड़ा राजपूतों की मुख्य और उपशाखा प्रथम बार खुले युद्ध में आपस में लड़ने लगे ।

† टॉड: राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४९५-८६ ।

‡ इरविन: लेटर मुगल्स पृ०·······

§ वीर विनोद भाग २ पृ० ११५ ।

¶ यही पुस्तक कोटे राज्य का इतिहास पृ० सं० १४१४ ।

$ बुद्धसिंह जयपुर होते हुए बेगू विवाह करने गया । वहां से सीधे दक्षिण की ओर चला गया ।

बादशाह पंजाब की ओर चला गया। वहा ई० सन् १७१२ में बादशाह की मृत्यु हो गई। बादशाह की मृत्यु का बुद्धसिंह को बड़ा खेद हुआ और वह बून्दी में ही बैठ रहा। वह नये बादशाह फरुखसियर के राज-गद्दी समारोह तक में भाग लेने नहीं गया और कुछ समय पश्चात् अपनी ननिहाल चला गया। तब मौका पाकर कोटा के महाराव भीमसिंह ने फरुखसियर से फरमान प्राप्त कर बून्दी पर कब्जा करने के बाद वहां का सब कीमती सामान कोटा पहुँचा दिया। जहांगीर द्वारा राव रतन को दिये केसरिया निशान और नक्कारे भी कोटा ले गये। जब वि० सं० १७७२ में फरुखसियर और उसके प्रधान मंत्री सय्यद बंधुओं में अनबन हो गई तब महाराव राजा बुद्धसिंह हाड़ा ने फरुखसियर का पक्ष लिया और बादशाह को प्रसन्न कर बून्दी का राज्य वापिस ले लिया।* सय्यद बंधु षड़यंत्र से फरुखसियर को मारना चाहते थे और इस षड़यंत्र में कोटा के महाराव भीमसिंह भी शामिल थे। बुद्धसिंह ने जब देखा कि मैं फर्रुखसियर को नहीं बचा सकता और मेरी जान भी खतरे में है† तब वह कुछ बहाना बनाकर दिल्ली से चलकर अपनी सुसराल आमेर जहां के महाराजा सवाई जयसिंह की बहिन अमरकुँवरी के साथ इनका विवाह हुआ था चले गये। बादशाह फर्रुखसियर सं० १७७६ ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० सन् १७१९ ता० १८ मई) को मारा गया। फर्रुखसियर के बाद सवाई जयसिंह और बुद्धसिंह का शाही दरबार में प्रभाव घट गया। कोटा के भीमसिंह ने सैयद बंधुओं को इन दोनों के विरुद्ध कर दिया। सैय्यद-बंधु भी जानने लगे कि इनको शक्तिहीन बनाने में ही लाभ है। अतः उन्होंने भीमसिंह को बून्दी पर आक्रमण करने को उकसाया। भीमसिंह यह चाहता ही था अतः शाही सेना की सहायता से वि. सं. १७७६ (१७ नवम्बर १७१९) बून्दी पर चढ़ाई कर दी। घमासान युद्ध हुआ। इस लड़ाई में बुद्धसिंह का काका ६००० राजपूतों के साथ मारा गया।‡ बून्दी पर कोटा का अधिकार होगया। भीमसिंह ने बून्दी में कोई राजसी चिन्ह नहीं छोड़ा वहां की नौबत,

---

* फर्रुखसियर सैयद बन्धुओं से मुक्ति चाहता था। जब सैयद हुसेनअली दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा गया तो उसकी अनुपस्थिति में जयपुर नरेश जयसिंह ने बून्दी के बुद्धसिंह को बादशाह से क्षमा दिलवा कर पुनः बून्दी उन्हें दिला दी।

† भीमसिंह ने सैयद बन्धुओं को सलाह दी थी कि फरुखसियर को गद्दी से हटाने का विरोध जयसिंह और बुद्धसिंह करेंगे अतः इन्हें राजधानी से दूर रखा जाय। फरुखसियर पर सैय्यदों ने प्रभाव डाल कर जयसिंह को आमेर भेज दिया और भीमसिंह ने बुद्धसिंह को मारने हेतु उसके डेरे पर हमला कर दिया परन्तु बुद्धसिंह बचकर भाग गया और जयसिंह से जा मिला।

‡ खफीखां जिल्द २ पृ० ८४४-८५१।

नक्कारे आदि कोटा पहुँचा दिये गये। कोटा की ओर से वहां फौजदार भगवान दास धाभाई नियुक्त किया गया। वह वहां भीमसिंह के देहांत तक (वि. सं. १७७७) रहा। भीमसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर उसने समझा कि बुद्धसिंह वापस बून्दी पर आक्रमण करेगा। इस भय से उसने बून्दी राज्य वापस बुद्धसिंह को दे दिया।*

बुद्धसिंह इसके बाद सवाई जयसिंह की सहायता से राज्य करने लगे। सवाई जयसिंह ने नागराज धाभाई को बून्दी का मन्त्री बनाया। वह जयसिंह के कहने के अनुसार राज्य करने लगा। यह बुद्धसिंह को अच्छा नहीं लगा लेकिन अपनी शक्ति-हीनता के कारण विवश था। बाद में बुद्धसिंह की कछवाहा राणी ने अपने भाई जयसिंह को लिखकर नागराज को हटाने के लिये कहा। जयसिंह ने अपनी बहिन का कहना मान कर नागराज को हटा दिया। इसके बाद बुद्धसिंह ने सालमसिंह को अपना मंत्री बनाया।†

इसी समय बुद्धसिंह ने एक अनुचित कार्य्य कर डाला जिसके कारण जयसिंह उसके विरुद्ध हो गया तथा जिसके कारण उसे अपना शेष जीवन बड़े दुःख से काटना पड़ा।

बुद्धसिंह के चार विवाह उदयपुर, जयपुर, बेंगू (मेवाड़) और भिणाय (अजमेर) में हुए थे। प्रथम विवाह जयपुर में महाराजा सवाई जयसिंह कछवाह की बहिन अमरकुंवर के साथ हुआ था जिसकी मंगनी पहिले बहादुरशाह के साथ की गई थी। बुद्धसिंह किसी नित्यनाथ नामक कनफटा जोगी के उपदेश तथा पुरोहित गजमुख की प्रेरणा से वैष्णव मत से वाममार्गी हो गया। उसकी कछवाह रानी अमरकुंवर वैष्णव धर्मानुयायिनी थी। इससे उन दोनों में अनबन रहती थी। बुद्धसिह अपनी चूंडावत रानी से, जो बेगू (मेवाड) के चूड़ावत राव काली-मेघ को पुत्री थी, ज्यादा प्रसन्न था। उससे उनके दो राजकुमार हुए थे। कछवाह रानी अमरकंवर अपनी सौत का सुख न देख सकी। इसने छल से अपने को गर्भवती बतला कर किसी का पुत्र मंगवा के उसे अपना पुत्र प्रकट किया परन्तु यह भेद बाद में खुल गया इसलिये रावराजा कछवाही रानी के गर्भ से पैदा हुए पुत्र को अनौरस बतलाता था। अतः जब आमेर में रहते समय कछवाही रानी का पुत्र भवानीसिंह रावराजा बुद्धसिंह के सामने लाया गया तो उसने अनजान

---

* ई० १७२० में सैयदों का प्रभाव समाप्त हो गया अतः भीमसिंह की मृत्यु के बाद कोटे का बून्दी पर प्रभाव न रह सका।

† टॉड: राजस्थान तृतीय भाग पृ० १४९७।

होकर पूछा कि यह किस का पुत्र है ? सवाई जयसिंह ने कहा कि आपका बेटा और मेरा भानजा है । बुद्धसिंह कछवाह रानी से नाराज थे ही अतः उसने सवाई जयसिंह से कहा कि यह लड़का मेरा नहीं है । इसे तो विष देकर मार डालना चाहिये । सवाई जयसिंह इससे बुद्धसिंह से नाराज हो गये । उसने बुद्धसिंह को बून्दी से हटाने के लिये अपनी सेना भेज दी । बून्दी और जयपुर की सीमा पर पांचोलास गांव में दोनों राज्यों की सेना के बीच लड़ाई हुई । इस लड़ाई में जयपुर के ईसरदा, भावट, सरवाड़ आदि के पांच बड़े जागीरदार तथा दोनों ओर की काफी सेना मारी गई । बुद्धसिंह को हार कर अपनी ससुराल बेगूं जाना पड़ा । सवाई जयसिंह ने इन्द्रगढ़ के जागीरदार देवीसिंह हाड़ा को बून्दी की राजगद्दी पर बैठाना चाहा लेकिन उसने मना कर दिया । इस पर उसने करवड़ के सरदार सालमसिंह जो तारागढ़ का किलेदार और बून्दी नगर का संरक्षक था, के पुत्र दलेलसिंह को अपनी अधीनता मान लेने पर वि० सं० १७८६ (सितम्बर १७२९) में बून्दी की राजगद्दी पर बैठाया । दलेलसिंह को राज्य देने की स्वीकृति बादशाह पर दबाव डालकर जयसिंह ने ले ली ।*

बून्दी राज्य में ऐसी गड़बड़ देखकर कोटा राज्य ने भी बून्दी का कुछ हिस्सा दबा लिया । लेकिन बुद्धसिंह यों हार मानने वाला नहीं था । उसने जयसिंह के मालवा की ओर वि० सं० १८८६ (ई० सन् १७२९) में चले जाने पर बून्दी पर वापस कब्जा करने का प्रयत्न किया । इस पर दलेलसिंह के पिता सालमसिंह ने जयपुर की सेना की मदद से बुद्धसिंह की सेना को वि० सं० १७८७ (अप्रेल १७३०) को कुशलथ में बुरी तरह हराया । इस प्रकार शत्रु को हराकर दलेलसिंह ने वि० सं० १७८७ (१९ मई १७३०) को बून्दी पर पूर्ण आधिपत्य जमाया । इसके बाद अपने को और भी शक्तिशाली बनाने के लिये जयपुर नरेश जयसिंह की पुत्री से व्याह किया ।†

दलेलसिंह बून्दी की राजगद्दी पर बैठकर सुख नहीं पा सका । दलेलसिंह का बड़ा भाई प्रतापसिंह अपने छोटे भाई को राजगद्दी पर देख नहीं सका। अतः वह अपने भाई व पिता के विरुद्ध होकर बुद्धसिंह से मिल गया । बुद्धसिंह की रानी ने उसे दलेलसिंह के विरुद्ध मराठों से सहायता लेने को दतिया भेजा ।

---

* टॉड: राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४९७-१४९९ । वास्तव में बुद्धसिंह से बून्दी छीनने का तो यह कारण ही था पर जयसिंह 'बृहत् जयपुर योजना के लिए बून्दी कोटा आदि पर अधिकार करने के लिए ही बून्दी पर चढ़ाई कर उसे अपने अधीन करना चाहता था ।

† उपरोक्त पृ० १४९९ ।

मराठों ने ६ लाख रुपये देने की शर्त पर बून्दी पर आक्रमण करना तय किया। (बैसाख वदि १५. वि० सं० १७९१ २२ अप्रेल १७३४, सूर्य्य ग्रहण) के दिन मल्हार राव होल्कर तथा राणोजी सिन्धिया ने प्रतापसिंह के साथ बून्दी पर आक्रमण कर दलेलसिंह के पिता सालमसिंह को गिरफ्तार कर लिया। मराठे वापस अपने देश को चले गये। मराठों के जाते ही जयपुर की सेना ने बून्दी पर चढ़ाई कर वापस दलेलसिंह को बून्दी दिलवा दी।* और सालमसिंह को २ लाख रुपये मराठों को देकर छुड़वा दिया।†

मराठों के राजस्थान में आने की यह प्रथम घटना थी। इसका प्रभाव राजस्थान पर बहुत बुरा पड़ा। आगे के लिये मराठों के राजस्थान में आने का रास्ता खुल गया। जयसिंह को यह बहुत अखरा। जयसिंह ने इस विषय में विचार विमर्श करने के लिये अक्टूबर १७३४ में राजपूताने के राजाओं की एक सभा भी बुलाई लेकिन उसका कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला। अब तो मराठों का उत्कर्ष तथा मुगलों का पतन स्पष्टतः दिखाई दे रहा था। कहने को मुहम्मदशाह बादशाह था लेकिन उसके आदेशों का कोई पालन नहीं करता था। उसका कोई सम्मान नहीं था। अतः राजपूताने के राजाओं का मुगल बादशाहों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। अब राजपूत मराठों को ही शक्तिशाली मानकर उनकी सहायता की मांग करते थे। स्वयं मुहम्मदशाह ने भी बाद में मराठों को राजपूत राजाओं से चौथ लेने की अनुमति दे दी।

रावराजा बुद्धसिंह के जीवन के अन्तिम १० वर्ष अपने ससुराल बेगूं में ही बीते। वहां वह शराब और अफीम का ज्यादा प्रयोग करने लगा। अतः वह पागल हो गया और वि० सं० १७९६ की वैशाख कृष्णा ३ (ई० सन् १७३९ की अप्रेल २६) को इस संसार को छोड़ गया।‡

रावराजा बुद्धसिंह के ६ पुत्र देवसिंह, भगवतसिंह, पद्मसिंह, उम्मेदसिंह, चन्द्रसिंह और दीपसिंह थे। उम्मेदसिंह और दीपसिंह चूंडावत रानी से थे और बेगू में ही रहते थे। सवाई जयसिंह ने उदयपुर के महाराणा को कह कर इन्हें बेगू से निकलवा दिया अतः ये पांचल में जाकर रहने लगे।§ वि० सं० १८०० (ई० सन् १७४३ में सवाई जयसिंह के मरने पर कोटा के दुर्जनशाल हाड़ा को सहायता से उम्मेदसिंह ने वि० सं० १८०५ (२३ अक्टूबर, १७४८) में बून्दी पर अधिकार कर लिया।

---

* वंश भास्कर पृ० ३२१६-३२२०।
† वंश प्रकाश ८९।
‡ उपरोक्त ८९-९०।
§ टाड: राजस्थान ३ भाग पृ० १४९९।

महाराव उम्मेदसिंह–
वि० सं० १७६६-१८२७)

इसका जन्म वि० सं० १७८६ की आषाढ़ की अमावस्या (ई० सन् १७२९ की १५ जून, रविवार) को हुआ था।

महाराव उम्मेदसिंह

यह अपने पिता रावराजा बुद्धसिंह की मृत्यु पर वि० सं० १७८६ (ई० सन् १७३९) में १० वर्ष की आयु में बून्दी के रावराजा माने जाकर बेगूं में ही गद्दी पर बैठाया गया। परम्परा के अनुसार इसे गुरु-मंत्र सुनाने के लिये वल्लभ सम्प्रदाय का गोस्वामी गोपीनाथ सवाई जयसिंह कछवाहा के डर से नहीं आया।* इस कारण यह रस्म रामानुज सम्प्रदाय के ब्राह्मण द्वारा सम्पन्न कराई गई।†

वि० सं० १८०० की आश्विन शुक्ला १४ (२१ सितम्बर १७४३) को सवाई जयसिंह का स्वर्गवास हो गया। अब सु-अवसर देख कर उम्मेदसिंह ने बून्दी का राज्य वापस लेने की ठानी। कोटा के महाराव दुर्जनशाल, गुजरात के सूबेदार

* वीरविनोद में इस बात का उल्लेख है कि जयपुर के महाराजा जयसिंह ने राणा जगतसिंह पर जोर डाला कि बेंगू के चूडावतों के यहां से उम्मेदसिंह व उसके भाई दीपसिंह को निकाल दिया जाय। इस पर उम्मेदसिंह कोटा आकर रहने लगा।

† वंश प्रकाश पृष्ठ ९५

फखरुद्दीन को १ लाख देकर तथा शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह से सैनिक सहायता से वि० सं० १८०१ की द्वितीय आषाढ़ शुक्ला १२ (१० जुलाई १७४४) को बून्दी को घेर लिया। १८ दिन जमकर लड़ाई हुई। इस युद्ध में कोटा का सेनापति गोविन्दराम नागर मारा गया तथा उम्मेदसिंह स्वयं घायल हो गया लेकिन जीत उम्मेदसिंह की ही रही। दलेलसिंह नेनवा भाग गया। उम्मेदसिंह का बून्दी पर कब्जा हो गया। लेकिन उसे बून्दी का काफी हिस्सा कोटा नरेश को युद्ध खर्च के एवजाने में देना पड़ा।* शाहपुरा के उम्मेसिंह को भी १ परगना दिया गया। कोटा नरेश ने पलायथा के अपजी रूपसिंह को बून्दी राज्य में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया तथा अन्ता के महाराजा अजीतसिंह को किलेदार बनाकर तारागढ़ उसके सुपुर्द किया।† उम्मेदसिंह को दुर्जनशाल का यह व्यवहार बहुत ही बुरा लगा अतः वह उससे असंतुष्ट होकर मारवाड़ नरेश अभयसिंह के पास सहायता के लिये गया लेकिन वहां से भी उसे बहुत कम सहायता मिली।‡

इधर सवाई जयसिंह के उत्तराधिकारी ईश्वरीसिंह ने दलेलसिंह को बून्दी वापस दिलाने के लिये दिल्ली से सहायता मांगी लेकिन वहां से इच्छित सहायता नहीं मिली। अतः उसने मराठों से सहायता§ लेकर बून्दी पर कब्जा कर लिया और कोटे को घेर लिया। दो माह के घेरे के बाद सन्धि हो गई। इस घेरे में मरहठा सेनापति जियाजी सिन्धिया का एक हाथ तोप के गोले से उड़ गया। इससे जयपुर नरेश ने बून्दी राज्य का पाटण परगना दलेलसिंह हाड़ा से सिन्धिया को दिलवाया।¶ मौका पाकर उम्मेदसिंह ने कोटा से १६ लाख रुपयों की मदद लेकर फिर बून्दी पर चढ़ाई की और बून्दी के पास बीचोड़ गांव में वि० सं० १८०२ (२० जुलाई १७४५) को जयपुर की सेना को हराया। इस पर इश्वरी-सिंह कछवाहा ने १८,००० की एक सेना वि० सं० १८०३ (ई० सन् १७४६) को नारायणदास खत्री की अधीनता में भेजी। बून्दी से ६ मील दूर गांव डबलाना में लड़ाई हुई। उम्मेदसिंह हार गया और इधर-उधर सहायता के लिये फिरता रहा। अंत में उसे बुद्धसिंह की कछवाहा रानी ने ही सहायता दी। उसके लिये रानी स्वयं

---

* वंश भास्कर : जिल्द ४, पृष्ठ ३३७१। टाड : राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १५०६

† डा. शर्मा : कोटा राज्यका इतिहास जिल्द १ पृष्ठ

‡ वंश प्रकाश : पृष्ठ ६४

§ पेशवा ने ईश्वरसिंह की सहायता के लिए मल्हारराव होल्कर और जियाजी सिन्धिया को भेजा।

¶ टाड : राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १५००

मल्हारराव होल्कर के पास गई। उसे राखीबंद भाई बनाया* और उसे उम्मेदसिंह की सहायता के लिये तैयार किया। मल्हारराव भी इन राजपूत राज्यों के आपसी झगड़े से लाभ उठाना चाहता था। अत: ४ अक्टूबर १७४६ को कोटा का दुर्जनशाल व बून्दी का उम्मेदसिंह महाराणा उदयपुर से नाथद्वारा में मिले। महाराणा उदयपुर अपने भानजे माधोसिंह कछवाहा को ईश्वरीसिंह से जयपुर का राज्य छीन कर दिलाना चाहता था। अत: मल्हारराव होल्कर से विचार विमर्श कर इन्होंने तय किया कि (१) माधोसिंह को टोंक, टोड़ा, मालपुरा तथा निवाई के परगने दिलवाये जावे, (२) उम्मेदसिंह को बून्दी दिलाई जावे तथा इसके लिये उम्मेदसिंह मरहठों को युद्ध का कुल खर्चा देवे और (३) कोटा के दुर्जनशाल तथा प्रतापसिंह के कब्जे में नेनवा, समिधि तथा करवार के परगने रहने की अनुमति ली जावे।

मल्हारराव होल्कर को आरम्भ में सहायता के लिये २ लाख रुपये दिये गये। इस पर मल्हारराव ने अपने पुत्र खाण्डेराव को १००० घुड़ंसवारों के साथ राजपूत नरेशों की सहायता के लिये भेजा। देवली छावनी के उत्तर में बनास नदी के दक्षिणी घुमाव पर राजमहल स्थान पर वि० सं० १८०४ के प्रथम चैत्र शुक्ला १ (१ मार्च १७४७, रविवार) को युद्ध हुआ जिसमें विजय जयपुर की हुई। उदयपुर की सेना को भारी हानि उठानी पड़ी। ईश्वरीसिंह ने महाराणा की सेना का भीलवाड़ा तक पीछा किया तथा भीलवाड़ा को लूटा। अन्त में महाराणा ने संधि करली। ईश्वरीसिंह अप्रेल १७४७ में वापस जयपुर लौट गया। इसके बाद १७ अगस्त १७४६ को ईश्वरीसिह बून्दी गया तथा वहां कुछ सप्ताहों तक रहा।

वि० सं० १८०५ (जुलाई १७४८) में मल्हारराव होल्कर व गंगाधर तात्या ने जयपुर के माधोसिंह कछवाहा को जयपुर राज्य के टोंक, टोडा और मालपुरा के परगने दिलवाये। माधोसिंह को मदद में उम्मेदसिंह और दुर्जनशाल हाड़ा भी थे। इस सेना ने जयपुर को रौंद दिया। कहीं भी जयपुर की सेना ने सामना नहीं किया। अंत में बगरु (सांभर से २३ मील पूर्व) नामक स्थान पर जयपुर की सेना ने सामना किया। पहली अगस्त १७४८ से ७ अगस्त तक युद्ध हुआ जिसमें भी जयपुर वाले हारे। जयपुर नरेश को सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार ईश्वरीसिंह को अपने भाई माधोसिंह को जयपुर के ५ परगने देने पड़े तथा उम्मेदसिंह को बून्दी लौटाना पड़ा। ९ अगस्त १७४८ को ईश्वरीसिंह

---

* टाड : राजस्थान जिल्द ३, पृष्ठ १५०१-२

मल्हारराव होल्कर तथा उम्मेदसिंह आपस में मिले तथा इन्होंने पारस्परिक मित्र बने रहने का एक दूसरे को वचन दिया। विजयी पक्ष वहां से १० अगस्त को पुष्कर होकर बून्दी चला गया। बून्दी पहुँचने पर वहां के जयपुरी किलेदार ने वि. सं. १८०५ (१८ अक्टूबर १७४८) को बून्दी उम्मेदसिंह को लौटा दी। इसके ५ दिन बाद उम्मेदसिंह बून्दी की राजगद्दी पर बैठा*।

उम्मेदसिंह ने मरहठों को इस सहायता के बदले में १० लाख रुपये देना स्वीकार किया। इसमें से २ लाख उसने वि. सं. १८०६ (ई. सन् १७४६) में दिये। इसके बाद १८ जून १७५१ को ३ लाख रुपये मल्हारराव व जयअप्पा को तथा ५ लाख रुपये सतारा के खजाने में जमा कराने का तय किया गया। इनके अलावा मल्हारराव व जयअप्पा को बून्दी, नेनवा आदि स्थानों की सन् १७५१ की जून से चौथ वसूल करने तथा सतारा राज्य में ७५००) सालाना कर देने का तय किया।

उम्मेदसिंह ने बून्दी राज्य मिलने पर राज्य मुहर में अपने इष्टदेव "रंगनाथ" का नाम खुदवाकर रामानुज सम्प्रदाय को महत्व दिया क्योंकि उनकी ही प्रेरणा से उन्हें राजगद्दी मिली थी।† राजगद्दी पर बैठने के बाद उसने शासन व्यवस्था सुधारने की चेष्टा की और राज्य की आमदनी बढाने के लिये विशेष ध्यान दिया। उसे १४ वर्ष के बाद बून्दी का अधिकार मिला था, इससे खजाना सब खाली हो चुका था। मल्हारराव होल्कर जो उम्मेद सिंह का मामा बना हुआ था, इस समय कुछ भी मदद न कर सका। तब प्रथम भादो सं. १८०६ (अगस्त १७४७) में उम्मेदसिंह सतारा में पेशवा से मिलने गया। रास्ते में खानदेश के बाफ गांव में और पूना में उसका अच्छा स्वागत किया गया। उन दिनों जब मल्हारराव की पुत्री की शादी हुई तब उम्मेदसिंह ने अपने गोद के रिश्ते को निबाहते हुए अमूल्य सौगातें भेंट की। पौष बदि ३ सं. १८०६ शुक्र (१५ दिसम्बर १७४६) में राजा शाहू के मृत्यु समाचार सुन कर मल्हारराव और उम्मेदसिंह सतारा गये जहां पर नये शासक रामराज का राज तिलक हुआ। इस समय रघुजी भोसले व पेशवाओं के बीच में जो विवाद था वह शान्त होगया। सावन बदि ५ गुरुवार वि, सं. १८०७, २ जुलाई १७५० को उम्मेदसिंह बून्दी लौट आये। इसके ५ मास बाद जब मल्हारराव ने जयपुर के हरगोविन्द नाटाणी दीवान के ईशारे से जयपुर पर चढ़ाई की और वहां के महाराजा ईश्वरसिंह ने

---

* वंशभास्कर १५३४-४२। टाड: राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १५०४-१५०५

† वंशप्रकाश: पृष्ठ ६५

अपने दीवान के विश्वासघात को जानकर वि. सं. १८०७ की पौष कृष्णा १२ (१२ दिसम्बर १७५०) को विष खाकर प्राण दे दिये तब उम्मेदसिंह का कांटा सदा के लिये निकल गया।*

महाराजा ईश्वरीसिंह के बाद माधोसिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठा। माधोसिंह का बर्ताव बून्दी के साथ अच्छा रहा। वि.सं. १८१९ (ई. सन् १७६२ में जब माधवराव सिन्धिया ने बून्दी को घेर लिया तब जयपुर के माधोसिंह और शाहपुरा के उम्मेदसिंह ने उम्मेदसिंह की सहायता की। इस सहायता के फलस्वरूप सिन्धिया कुछ फौजखर्च ही लेकर चला गया। बाद में जब वि. सं. १८२४ की पोष कृष्णा ९ (१० दिसम्बर १७६७) को भरतपुर और जयपुर के बोच लड़ाई हुई तब उम्मेदसिंह ने भी अपने पुत्र अजीतसिंह को जयपुर की सहायता के लिये भेजा।

वि. सं. १८१२ (ई. सन् १७५५) में जब रणथम्भोर का किला बादशाही किलेदार के द्वारा महाराजा माधोसिंह को सौंप दिया गया तब माधोसिंह और कोटा नरेश के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में उम्मेदसिंह ने कोटा की मदद नहीं की। माधोसिंह की सेना वि. सं. १८१८ की मगकेर शुक्ला ४ (१७६१ की ३० नवम्बर) को मरवाड़ा की लड़ाई में हार गई।† कोटा के विजयी होजाने पर कोटा नरेश दुर्जनशाल ने बून्दी को दलेलसिंह के पुत्र किशनसिंह को दिलाना चाहा। लेकिन इसमें उसको सफलता नहीं मिली।

अपनी शक्ति स्थापित करने के बाद उम्मेदसिंह ने इन्द्रगढ़ पर आक्रमण किया। वह दबलाना की हारके बाद रावके व्यहार‡ का बदला लेना चाहता था। इन्द्रगढ़ का शासक देवसिंह उस समय जयपुर गया हुआ था। उस समय उम्मेदसिंह की शादी का नारियल जयपुर महाराजा के यहां पहुँचा ही था।

---

* टाड : राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १५०४। इस प्रकार उम्मेदसिंह १४ वर्ष घुमक्कड़ जीवन बिताने के पश्चात बून्दी की गद्दी पर निश्चिन्त होकर बैठ गया। परन्तु इस राजनैतिक विप्लव के कारण मराठों का राजस्थान में प्रवेश हुआ और मुगलों के अधःपतन पर राजपूत शासकों के आपसी युद्ध के निर्णायक मराठा शासक बन गए।

† उम्मेदसिंह सेना सहित भटवारे के युद्ध में दुर्जनसिंह की सहायता के लिए आया था परन्तु युद्ध के दौरान में वह तटस्थ रहा इस पर दुर्जनशाल उम्मेदसिंह से क्रोधित होगया था।

‡ दबलाना के युद्ध के बाद हारा हुआ, घायल उम्मेदसिंह इन्द्रगढ़ के राव के पास शरण लेने गया परन्तु राव ने यह कहकर उसे पनाह नहीं दी कि वह बून्दी और इन्द्रगढ़ की बरबादी का कारण है। इस पर उम्मेदसिंह ने इन्दरगढ़ छोड़ कर कारवेन का रास्ता लिया। इन्द्रगढ़ की सीमा में उसने पानी तक नहीं पिया। टाड: राजस्थान तृतीय जिल्द पृष्ठ १५०१

देवसिंह की सलाह पर वह नारियल बून्दी लौटा दिया गया। उम्मेदसिंह अति क्रोधित हुआ। सम्वत् १८१३ (१७५७ ई.) में उम्मेदसिंह बैंजसनी माता के दर्शन करने कारवार गया हुआ था। यह मन्दिर इन्दरगढ़ के पास था। उम्मेदसिंह ने देवसिंह को मिलने के लिए बुलाया। देवसिंह कुटम्ब सहित पहुँचा। वहां एक रात को चुपके से उम्मेदसिंह की आज्ञा पर देवसिंह, उसका लड़का व पौत्र मार डाले गए। उनके शव पासकी झील में फेंक दिए गए और इन्द्रगढ़ का इलाका उम्मेदसिंह ने अपने छोटे भाई दीपसिंह को दे दिया।* इस प्रकार उम्मेदसिंह हाड़ा का शासनकाल मुसीबतों और दौड़ धूप में ही बीता। उसे कभी चैन से बैठकर राज करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

उम्मेदसिंह वीर साहसी और कठिनाइयों में घबराने वाला पुरुष नहीं था। जहाँ एक ओर वह कठोर निरंकुश व बदला लेने की भावना रखता था वहाँ दूसरी ओर दयालु भी था। जीवन के संकट काल में जहाँ उसे निराशा नहीं हुई वहां उसने वृद्धावस्था में सम्वत् १८२७ (सन् १७७१) में सन्यास लेलिया। राज्य का भार 'युवराज' की पदवी के सहित राजकुमार अजीतसिंह को सौंप दिया। अजीतसिंह की उस समय उम्र १७ वर्ष की थी।

सन्यासी जीवन में वह बून्दी के पास के एक केदारनाथ आश्रम में रहा। धार्मिक स्थानों पर इसने यात्रा भी प्रारम्भ की। एक ओर वह गंगा तट पर, हिमालय की पहाड़ियों में धर्म केन्द्रों पर घूमते रहा। दूसरी ओर उन्होंने दक्षिण में रामेश्वर तक की यात्रा भी की। बंगाल के अराकान क्षेत्र के सीताकुंड, उड़ीसा के जगन्नाथ, द्वारका में कृष्णा मन्दिर के दर्शन भी किये। इसकी तीर्थ यात्रा की एक विशेषता यह थी कि वह अपने पूरे अस्त्रशस्त्र के साथ ढाल, तलवार, बरछी भाला, तीर कमान के साथ धार्मिक यात्रा करता था। एक बार काबों के एक झुण्ड ने उसे घेर लिया परन्तु इसने उनके छक्के छुड़ा दिए। और उनके नेताओं को गिरफ्तार कर प्रतिज्ञा करवाली कि आगे से वे द्वारका के किसी यात्री को नहीं सतायेंगे। उम्मेदसिंह जिस रजवाड़े में जाता था उसका शाही स्वागत होता था। वह विद्वान व चमत्कारी गिना जाता था।† इस जीवन में उसकी पदवी 'श्री जी' हो गयी थी।

इस प्रकार के सन्यासी के जीवन में उन्हें सूचना मिली कि उसके लड़के का देहान्त हो गया (वि. सं. १८३०) सन् १७७३। अजीतसिंह का पुत्र विष्णुसिंह

---

* टाड : राजस्थान तृतीय जिल्द पृष्ठ १५०८

† टाड : राजस्थान तृतीय जिल्द पृष्ठ १५११

मृत्यु हो गई। महाराणा के साथ के सरदार शंभूसिंह (सनवाड़) और दौलतसिंह (बावलास) भी मारे गये। लेकिन महाराणा के छड़ीदार रूपा ने महाराव अजीतसिह पर ऐसे जोर से छड़ी मारी कि वह बेहोश हो गया। यह घटना वि. सं. १८२६ चैत्र बदि १ (ई. सन् १७७३ ता. ६ मार्च मंगलवार) को हुई।*

इस घटना का विवरण "चौहाण कुल कल्पद्रुम" ग्रन्थमें इस प्रकार दिया है कि जयपुर नरेश की दो पुत्रियों में से एक का विवाह बून्दी नरेश अजीतसिह हाड़ा के साथ हुआ था और दूसरी का उदयपुर नरेश महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के साथ। जिस समय दूसरी बहिन का विवाह महाराणा अरिसिह से होनेवाला था तब उस समय महाराव अजीतसिंह हाड़ा की कछवाही रानी जयपुर गई थी। वहां महाराणा अरिसिह ने कपट से उसका हाथ पकड़ लिया। महाराव अजीतसिह की रानी ने उस हाथ को अपवित्र जानकर काटडाला और आकर अपने पति को सब वृतान्त सुनाया। इसलिये अजीतसिह ने महाराणा से बदला लेने के लिये आखेट का निमन्त्रण देकर उसे धोखे से मार डाला।

महाराणा अरिसिंह के मारे जाने के दो मास बाद ही बैशाख सुदि १५ वि. सं. १८३० (ई. सन् १७७३ की ६ मई गुरुवार) को २० वर्ष की उमर में महाराव अजीतसिह हाड़ा कोढ़ की बिमारी से इस संसार से चल बसा इसके एक पुत्र विष्णुसिह (बिशनसिह) था।

महाराव राजा विष्णुसिंह
(वि० सं० १८३०-१८७८)

इस का जन्म वि. सं. १८२६ पौष बदि ११ (ई. स. १७७२ तारीख २० दिसम्बर रविवार) को हुआ था। जब वि. सं. १८३० ज्येष्ठ बदि ११ सोमवार

* टाड राजस्थान भाग १, पृष्ठ ५०७ तथा भाग ३, पृष्ठ १५१२-१५१३ वंशभास्कर पृष्ठ ३७६४-३८०० वीरविनोद भाग २, पृष्ठ १५७५

(१७ मई १७७३) को यह राज गद्दी पर बैठा उस समय केवल साढ़े चार मास का था। इससे इसके दादा उम्मेदसिंह ने धाय भाई सुखराम को राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त कर पौत्र की शिक्षा दीक्षा का और राज्य की देखभाल करने का काम संभाला। बालक महाराव का प्रथम विवाह केवल चार वर्ष की आयु में बीकानेर नरेश महाराजा गजसिंह की चार वर्ष की कन्या पन्ना कुंवर से हुआ। दूसरा विवाह १३ वर्ष की उमर में वि. १८४३ मार्गशीर्ष (मंगासर वदि १२ को २८ नवम्बर १७८६ सोमवार) करोली नरेश महाराजा माणिक्यपाल की कन्या अमृत कुंवर से हुआ था।

विशनसिंह

जब यह बालिग हुआ तब स्वार्थी लोगों (नाथावत हमीरसिंह कछवाहा आदि) के बहकाने में आकर इसने अपने दादा राजर्षि उम्मेदसिंह से अनबन करली। श्रीजी ने नवयुवक महाराव को समझाया कि वह कोटा के दीवान जालिमसिंह की कन्या से विवाह न करें क्योंकि इसमें वंश की शोभा नहीं। वह शक्तिमान होने पर भी हमारे छुट भैया (कोटा) का कामदार है। विवाह और बैर शत्रुता बराबर वालों ही के साथ अच्छा होता है। कहा भी है:—"समान शीले व्यसनेसु सख्यम्" अर्थात्—समान स्वभाव वालों की मैत्री होती है। जालमसिंह झाला बड़ा राजनीति निपुण, अंगुली पकड़ते ही पहुँचा पकड़ने में सिद्धहस्त और बडा शक्तिशाली था। उस समय ऐसे बहुत ही कम रजवाड़े होंगे जो जालिमसिंह से न दबते हों। कोटा नरेश तो उसके हाथ की गुड़िया थे। इस कारण भी उससे विवाह सम्बन्ध होने में राजर्षि उम्मेदसिंह बून्दी का भला नहीं समझते थे। परन्तु महाराव विष्णुसिंह ने अनुभवी दादा की उचित सलाह नहीं मानी और वि. सं. १८५० आषाढ़ सुदि १० को १८ जुलाई १७९३, गुरुवार को जालमसिंह झाला की कन्या अजनकुंवर से व्याह कर लिया।

बून्दी से सम्बन्ध होते ही जालिमसिंह झाला ने चुपचाप अपने कई आदमियों को बून्दी के राजकाज में लगवा दिया। अनुभवी वयोवृद्ध स्वामीभक्त धाय भाई

सुखराम बून्दी के प्रधान मंत्री पद से हटाया जाकर मामूली बात पर एक लाख रुपये के जुर्माने से दंडित करवाया गया ।*

इस प्रकार का रंग ढ़ंग देखकर महाराव विष्णुसिंह का चाचा सरदारसिंह अपने पुत्र ईश्वरीसिंह सहित जयपुर चला गया। नवयुवक महाराव के सेवक जालिमसिंह से मिल गये। उधर सं० १८५५ (ई. सन् १०९८) में राजर्षि उम्मेदसिंह दूसरी बार जगदीश की यात्रा को रवाने हुआ। यह यात्रा करके जब काशी पहुँचा तब पौत्र महाराव विष्णुसिंह ने दो कर्मचारियों को भेजकर राजर्षि को कहलाया कि आप काशी ही में निवास करें। आपके खर्च के लिये यहां से रकम पहुँच जाया करेगी। "उम्मेदसिंह यह रंगढंग देखकर कुछ काल तक काशी में ही रहा। पश्चात् "श्रीजी" अपने कर्तव्य का विचार कर बून्दी को रवाना हुआ। कर्नल टाड ने लिखा है कि जब उम्मेदसिंह काशी से बून्दी आरहा था तब अनेक राजाओं के कर्मचारी मार्ग में मिल कर अपने अपने राजाओं के संदेश कह-कह कर अपने राज्यों में लिवा ले जाने का "श्रीजी" से आग्रह करते रहे परन्तु वह कहीं न गया, क्योंकि सीधे बून्दी जाने का उन्होंने संकल्प करलिया था। अपने दामाद जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंह कछवाहा का विशेष आग्रह होने से वह केवल जयपुर ठहरा। उसने उसका बड़ा आदर सत्कार करके यहां तक कहा कि यदि आप चाहें तो अपने सेना बल से आपको बून्दी व कोटा राज्य दिलवा सकता हूँ परन्तु उम्मेदसिंह ने उत्तर दिया कि मुझे संसार से अब क्या लेना देना है। ये सब राज्य तो मेरे ही हैं। कोटा में मेरा भतीजा है और बून्दी में मेरा पोता है।†

इस प्रकार का उत्तर देकर जयपुर से रवाना होने के बाद श्रीजी ने बून्दी कहला भेजा कि मैंने काशी में रहने का निश्चय कर लिया है। मैं वहां ही रहूँगा अभी केवल "श्रीरंगनाथजी" के दर्शन करने बून्दी आता हूँ। दर्शन करके लौट जाऊँगा। बून्दी राज्य में जब श्रीजी पहुँचे तब वहां के दीवान और सरदार आदि आपके दर्शन व स्वागत के लिये सामने आये और कुछ दिन तक केदारनाथ

---

* टाड ने इस कथा का उल्लेख नहीं किया है। वह लिखता है कि जब उम्मेदसिंह और विष्णुसिंह में अनबन होगई तो फौजदार जालिमसिंह झाला ने दोनों के बीच सन्धि करवाई। यह सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि टाड जालिमसिंह का घनिष्ट मित्र था। जालिमसिंह की कुटिलता का पक्ष लेकर अंग्रेजी राज्य का उसे मित्र समझता थ ।

† टाड: राजस्थान तृतीय भाग पृष्ठ १५१५

महादेव के निकट अपने आश्रम में रहे। एक दिन मौका पाकर आप अचानक श्री रंगनाथजी के दर्शन करने के लिये महलों में पधारे। वहां जाकर अपने पौत्र (महाराव विष्णुसिंह) से मिले। मिलने पर आपने अपनी नंगी तलवार अपने पौत्र के हाथ में देकर कहा कि "मेरा बुरा इरादा तुम्हारे प्रति नहीं है। यदि तू मेरे से सन्तुष्ट नहीं है तो इस तलवार से अभी अपने हाथ से मेरा शिर काटले। किन्तु इन बदमाशों से मेरी बदनामी न करवा। और श्रीजी के इस कथन का उन पर पूरा असर हुआ और वह जान गये कि इन दुष्टों को मारे बिना मैं अब निष्कंटक राज्य न कर सकूंगा। इस पर इसने पूज्य पितामह का बल पाकर झालाओं के चक्र से छुटकारा पाया। तब से महाराव राजा विष्णुसिंह निष्कंटक राज करने लगा।*

वि. सं. १८६७ (ई. सन् १८१०) में महाराव विष्णुसिंह के चचेरे भाई बलवन्तसिंह (जागीरदार गोठड़ा) ने उपद्रव खड़ा किया और उसने नेंनवा किले पर अपना अधिकार करलिया।† इस पर महाराव ने सेना भेज कर उसका दमन किया। जिस वर्ष (वि. सं. १८६१) राजर्षि उम्मेदसिंह का स्वर्गवास हुआ उसी वर्ष अंग्रेजों की सेना कर्नल मानसन के सेनापतित्व में जसवंतराव होल्कर से लड़ने कोटा राज्य में गई लेकिन मुकन्दरे के घाटे में उसे हार खाकर लौटना पड़ा।‡ इस हारी हुई अंग्रेज सेना को बून्दी राज्य ने जहां तक बन सका सहायता दी। इसका फल यह हुआ कि होल्कर बून्दी का कट्टर शत्रु होगया और वि. सं. १८६१ (ई. सन् १८०४) से सं. १८७४ (ई. सन् १८१०) तक होल्कर व सिंधिया की मराठी सेनाओं ने तथा पिन्डारियों की लगातार लूट खसोटों ने बून्दी को तबाह करदिया। मरहठों तथा पिन्डारियों ने बून्दी से खिराज वसूल किया। वास्तव में होल्कर तथा संधिया ने बून्दी को आपस में बांट लिया। महाराव विष्णुसिंह नाममात्र का राजा रह गया। राज्य की आय १० लाख से घट कर ३ लाख रु० ही रह गई।§

तंग आकर अंग्रेजी सरकार से बून्दी राज्य को सं. १८७४ माघ सुदि ५ (ई. सन् १८१८ ता० १० फरवरी मंगलवार को) संधि करनी पड़ी। अंग्रेज

---

* टाड का कथन है कि जालिमसिंह ने पोते दादा की मित्रता कराई।

† वंश प्रकाश पृष्ठ ११३

‡ वंश प्रकाश पृष्ठ ११२। वंश प्रकाश में उल्लेख है कि मुकन्दरे की घाटी के युद्ध में अंग्रेजों की सहायता के लिए वकील सादुल्ला खां, टोकरावास के मगनसिंह घमनसिंह महासिंघोत आदि को भेजा।

§ वंश भास्कर चतुर्थभाग

पिन्डारियों का दमन करना चाहता था इसमें बून्दी के राज्य की सहायता आवश्यक थी। अतः इस संधि के अनुसार बून्दी अंग्रेज सरकार के संरक्षण में आ गया। जो खिराज होल्कर को दिया जाता था वह अंग्रेज सरकार द्वारा माफ कर दिया गया। बून्दी के जो परगने होल्कर ने ५० वर्ष पहले दबालिये थे बून्दी को वापिस दिलवा दिये गये। इसी प्रकार जो सिंधियाने परगने दबालिये थे वे भी बून्दी को वापिस लौटाये गये। महाराव राजा ने अंग्रेज सरकार को ८० हजार रुपये खिराज में देना स्वीकार किया।* परन्तु बाद में यह रकम घटाकर ४० हजार ही रखी गई। वि. सं. १९०४ (ई. स. १८४७) में सिंधिया (ग्वालियर) की सहमति से केशोराय पाटन का परगना बून्दी को १८ हजार रु. वार्षिक सिंधिया को देते रहने की शर्त पर सौंपा गया।

सं. १९१७ (ई. सन् १८६०) में सिंधिया के साथ अंग्रेज सरकार की संधि हुई तब केशोराय पाटण का परगना अंग्रेज सरकार के कब्जे में आया जिसने बून्दी को सदा के लिये ८० हजार रु. वार्षिक खिराज पर सौंप दिया। इसके सिवाय सं० १७७४ (ई. सन् १८१८) के अहदनामें के अनुसार ४० हजार रु. सालाना भी बून्दी की तरफ से सरकार को देना तय हुआ।†

कोटा राज्य के इन्द्रगढ़, खातौली बलबन, गैंता, पीपल्दा आंतरदा, पूसोद और करवाड़ नामक ८ ठिकाने जो कोटारियात कहलाते हैं पहले बून्दी राज्य के अधीनस्थ थे। वास्तव में ये जागीरें भी बून्दी राज्य में से उनको मिली थी। ये ठिकाने किला रणथम्भोर के साथ लगे हुए थे। जब रणथम्भोर का किला बादशाह अकबर के हाथ लगा तो उसने इन कोटारियात से कर (खिराज) मांगा क्योंकि इनकी इस किले से बहुत रक्षा होती थी। लगभग सं. १८११ (ई. सन् १७५४) में रणथम्भोर का किला जयपुर राज्य में आ गया और जो खिराज दिल्ली वाले लिया करते थे वह जयपुर दरबार लेने लगे। उस खिराज की वसूली के लिये प्राय: जयपुर राज्य की सेना हाडोती में आया करती थी। बून्दी वालों से खिराज पहुँचाने का प्रबन्ध बराबर नहीं होता था। अतः वि. सं. १८७४ पौष बदि ३ शुक्रवार (ई. सन् १८१७ ता. २६ दिसम्बर) को जब दिल्ली में अंग्रेज सरकार का अहदनामा कोटा राज्य के साथ हुआ तब वहां के प्रधान मंत्री राजराणा जालमसिंह झाला ने सरकार के प्रतिनिधि देहली

---

* एचीसन: ट्रीटीज एंग्जमेण्टस एण्ड सनदस जिल्द ३ पृष्ठ २२९

† एचीसन: ट्रीटीज एंग्जमेण्टस एण्ड सनदस जिल्द ६ पृष्ठ ६-७

रेजीडेन्ट श्री मेटकाफ से कह सुनकर उक्त कोटरियों को* वि. सं. १८८० (१८२३ A.D.) में कोटा के अधीन कर लिया और इन कोटरियों के खिराज के रु० १४,३९७।।।–) प्रति वर्ष जयपुर राज्य को अंग्रेज सरकार के द्वारा देते रहने की शर्त संधिपत्र में लिखदी जो आज तक कोटावाले देते आ रहे हैं। चतुर दीवान जालमसिंह झाला ने इन ठिकानों के जागीरदारों को फिर कोटा राज्य से जागीरें दिलवादी व बून्दी की अपेक्षा उनकी इज्जत ज्यादा बढ़ाई और इस प्रकार उन्हें अपने पक्षमें कर लिया।†

वि. सं. १८७७ (ई. सन् १८२०) में कोटा के महाराव किशोरसिंह हाडा अपने दीवान जालिमसिंह झाला से तंग आकर कोटे से बून्दी चले आया। तब विष्णुसिंह ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया और उसे सांत्वना दी। कुछ समय के बाद महाराव किशोरसिंह दिल्ली चला गया।‡

वि. सं. १८७८ की आषाढ़ सुदि १५ (ई. सन् १८२१ ता० १५ मई रविवार) को महाराव विष्णुसिंह का हैजा से स्वर्गवास हो गया। इसके दो पुत्र रामसिंह और गोपालसिंह थे। रामसिंह ११ वर्ष की आयु में अपने पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा। विष्णुसिंह ने अपने पीछे सती होने की मनाई करदी थी। यह वीर और साथ ही दयालु नरेश था। शिकार से इसे बड़ा प्रेम था। इसने कई शेर, चीते तथा सूअर मारे थे। शिकार में इसकी एक टांग भी टूट गई थी। यह एक मितव्ययी राजा था। जब पिंडारियों के घावों से इसका खजाना खाली हो गया तब बड़ी मितव्ययता से इन्होंने काम चलाया और राज कोष को बढ़ाने का इसने एक नया और अनोखा तरीका अपनाया। इसने एक इन्द्रजीत नाम का एक लम्बा चौड़ा जूता बनवाया था। और किसी को अपना दीवान बनाते समय यह शर्त कराते थे कि यदि १०० रु० रोज से खजाने को नहीं बढ़ाया तो इन्द्रजीत जूते से मरम्मत की जायगी।

महाराव राजा विष्णुसिंह को हनुमानजी का बड़ा इष्ट था इसलिये दूसरे बून्दी शहर के पश्चिम की ओर बजरंग विलास बाग की नींव डाली। इसकी

* डॉ. शर्मा कोटा राज्य का इतिहास जिल्द २ पृष्ठ ५३७

† डॉ. शर्मा कोटा राज्य का इतिहास : पृष्ठ ५३७

‡ डॉ. शर्मा कोटा राज्य का इतिहास : बून्दी में किशोरसिंह को हटाने के लिए कम्पनी के एजेन्ट और जालिमसिंह ने बून्दी नरेश के नाम खरीते भेजे जिससे किशोरसिंह वृन्दावन चला गया पृष्ठ ५९७

किशनगढ़ वाली रानी ने बून्दी के दक्षिण में धर्मशाला बनवाकर उसमें हनुमानजी की मूर्ति स्थापित की और इसकी एक उपपत्नी सुन्दर शोभा ने तालाब पर सुन्दर घाट बनवाया।

महाराव राजा रामसिंह
(वि० सं० १८७८-१९४६)

इसका जन्म वि. सं. १८६८ की पौष सुदि ३ बुद्धवार (ई. सन् १८११ की १८ दिसम्बर) को हुआ था। यह बून्दी के राजसिंहासन पर वि. सं. १८७८
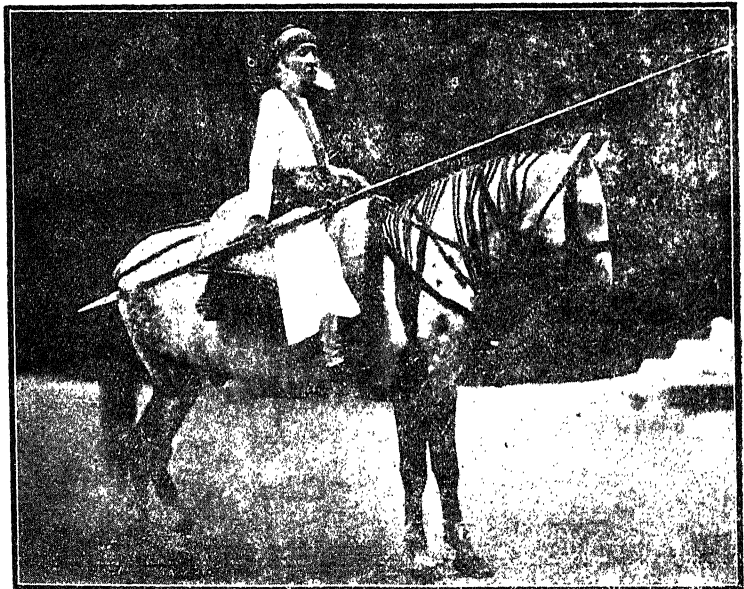
रामसिंह

की श्रावण वदि १२ (ई. सन् १८२१ ता० २६ जुलाई गुरुवार) को दस वर्ष की आयु में बैठा। इसके दो बड़े भाई इन्द्रसिंह व बलदेवसिंह कुंवर पद में ही स्वर्ग सिधार गये थे। इसका राज्याभिषेक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कर्नल जेम्स टाड* की उपस्थिति में बड़े समारोह से हुआ था। पहले राजप्रबन्ध का काम चार सरदारों की एक कौंसिल के हाथ में रहा। बाद में राजमाता अमान कुंवर राठौड़ की, जो किशनगढ़ की राजकुमारी थी, देखभाल में होने लगा† परन्तु प्रबन्ध ठीक नहीं हो सका और महाराव राजा के नैतिक जीवन की संभाल भी अच्छी नहीं रही। इसलिये राजमाता से अधिकार लेलिये गये और राज प्रबन्ध धायभाई किशनराम को सौंपा गया। उसने राज्य का अच्छा प्रबन्ध किया और राज्य की आय भी बढ़ाई। महाराव राजा का प्रथम विवाह जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह राठोड़ की राजकुमारी स्वरूप कंवर के साथ सं. १८८१ की फागुण बदि ८ (ई. सन् १८८० ता० २५ दिसम्बर, गुरुवार) को हुआ था। इस अवसर पर बून्दी नरेश तथा महाराजा मानसिंह ने एक थाल में भोजन किया और बरात एक मास तक जोधपुर में रही। इस विवाह के लिये बून्दी ने कोटा के सेठों से दो लाख रु० कर्ज लिये थे। जोधपुर महाराजा ने इस रकम को अपने पास से चुका दी। दहेज भी बहुत दिया। यह सब कुछ होते भी स्वरूप कंवर की आयु रामसिंह से अधिक थी और इन दोनों में बनती न थी। राजा की आज्ञा का पालन भी यथावत् मुसाहिब (दीवान) किशनराम धायभाई नहीं करता था। इसलिये एकबार रानी के नौकरों व बून्दी वालों के बीच झगड़ा हो गया। जोधपुर के महाराजा मानसिंह के संकेत से सं० १८८६ (ई० सन् १८२९) में सालू नामक राजपूत ने कचहरी में बैठे हुए दीवान धाय भाई किशनराम को मार डाला। महारानी स्वरूप कंवर राठोड़ के निजि मकान में जो मारवाड़ी आदमी थे वे समय पर सालू की सहायता को न पहुँच सके अतः सालू भी बून्दी वालों के हाथ से मारा गया। बून्दी सेना ने महारानीजी के साथ में आये हुए मारवाड़ियों के निवास स्थान को घेर लिया और तीन दिन तक पानी भी उनके डेरे में न पहुँचने दिया तब घबरा कर घिरे हुए मारवाड़ी भाग निकले और उनमें से

---

* जेम्स टाड उस समय राजस्थान की रियासतों पर ए० जी० जी० नियुक्त किया गया था। ए० जी० जी० को नए राजा के सिंहासन पर बैठते समय उपस्थित रहना पड़ता था। उसकी अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधि रहता था। तब ही नए राजा को वैधानिक तौर पर राज्य का अधिपति स्वीकार किया जा सकता था।

† टाड लिखता है कि राज माता बहुत स्नेहशील व नम्र स्वभाव की थी। टाड: जिल्द ३ पृ० १५२०.

कामदार सिंघी सरदारमल तथा छांगानी रूपराम गिरफ्तार किये जाकर मार डाले गये।* जोधपुर के बूड़सू ठिकाने का सरदार प्रतापसिंह मेड़तिया जिसकी जागीर महाराजा मानसिंह राठोड़ ने जब्त करली थी और जो उन दिनों कोटा में रहता था, उसने मौके पर पहुँच कर बाकी मारवाड़ियों को बचा लिया। महाराजा मानसिंह ने उससे प्रसन्न होकर बूड़सू ठिकाना उसको वापिस दिया। इधर जोधपुर से पोकरण ठाकुर बभूतसिंह दो सो सवार और तीन सौ पैदल लेकर बून्दी जा पहुँचा। झगड़ा अधिक बढ़ता देख कर अंग्रेज सरकार ने बीच-बचाव करके कोटा के पोलिटिकल एजेन्ट चार्ल्स ट्रेवेलियन द्वारा सुलह करादी।† संवत् १८९८ की पौष सुदि २ (ई० सन् १८४२ ता० १३ जनवरी, गुरुवार) को महाराव पूर्व के तीर्थों की यात्रा के लिए रवाना हुए और संवत् १९०० आषाढ़ बदि १३ (२५ जून १८४३, रविवार) को राजधानी लौटे। इन्सने दशहरा मास में मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी, गया और चित्रकूट आदि बहुत से तीर्थों की यात्रा की। सं० १९२२ में महाराव ने फिर काशी (बनारस) की यात्रा की। पहले से ही आश्विन और चैत्र मास की नवरात्रि में देवी के पूजन के वक्त बहुत से भैंसे और बकरे यहां बलिदान के नाम से मारे जाते थे। इसने सिवाय १ या २ स्थानों के अन्य सब स्थानों पर यह प्रथा बंद करा दी।‡

सं० १९०४ (ई० सन् १८४७) में अंग्रेज सरकार ने केशोराय पाटण जिले का दो तिहाई हिस्सा सिन्धिया से लिया था। वह महाराव राजा रामसिंह को वापस दे दिया। इसके एवज में बूंदी से प्रति वर्ष ८० हजार रुपये अंग्रेज सरकार को देना तय हुआ। इसी महाराव के समय में वि० सं० १९१४ (ई० सन् १८५०) का इतिहास प्रसिद्ध विप्लव हुआ। सारे देश में अंग्रेजों के विरुद्ध आग भड़क उठी। महाराव ने उस समय अंग्रेजों की सहायता नहीं की क्योंकि महाराव राजा का उन दिनों कोटा के साथ मनमुटाव था।§ इस कारण सरकार ने बूंदी

---

* वीर विनोद: भाग २ पृ० ११९, वंश प्रकाश: पृ० ११७-११८.

† वंश प्रकाश पृष्ठ ११९

‡ अन्य सुधारों में इसने सम्वत् १८९३ में, जो राजपूतों के लड़की जन्मने को अपशकुन मानकर लड़कियों की हत्या करदी जाती थी, उस प्रथा को बन्द करा दिया। अंग्रेजों ने सम्वत् १९०१ में इस प्रकार का कानून बून्दी में लागू किया।

§ एचिशन: ट्रीटीज जिल्द ३ पृ० २१८: वंश प्रकाश में यह उल्लेख है कि नीमच में विद्रोह के समय मेजर वर्टन को बून्दी की सहायता प्राप्त हुई थी। वंश प्रकाश पृ० १२१। इसके अलावा वंशप्रकाश का लेखक यह भी लिखता है कि जब बागियों की फौज कोटे आई तो बून्दी की फौज ने उसे शिकस्त दी (पृष्ठ १२२-१२३).

से ३ वर्ष तक पत्र व्यवहार बंद रखा। वि० सं० १९१५ की आषाढ़ शुक्ला ८ (२१ जुलाई १८५८) के दिन जन-भारतीय विद्रोहियों की सेना बून्दी की ओर आई तब महाराव ने नगर और किले के द्वार बन्द कर विद्रोहियों पर तोपों के फायर करवाये जिससे उन्हें वहां से चला जाना पड़ा।

महाराव राजा ने अपने छोटे भाई गोपालसिंह को दुश्चरित्र होने के कारण नजर कैद कर दिया। वह उसी दशा में बाद में मर गया। सं० १९१९ (ई० सन् १८६२) में महाराव और उसके वंशजों को गोद लेने की सनद मिली। सं० १९३४ माघ बदि २ सोमवार (ई० सन् १८७७ की १ जनवरी) को लार्ड लिटन ने देहली में दरबार किया। इस अवसर पर महाराव भी वहां गये। महारानी विक्टोरिया की ओर से इन्से सितारे हिन्द प्रथम श्रेणी का तगमा (जी० सी० एस० आई) और महारानी का सलाहकार की उपाधि मिली।* दिल्ली से पीछे लौटते हुए जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह ने महाराव को कुछ दिन जयपुर में महमान रखा जिससे दोनों राज्यों का आपस का विरोध मिट कर पूर्ण स्नेह हो गया। सं० १८८८ (ई० सं० १८३१) में अजमेर में महाराव ने बेंटिक से तथा सं० १९३२ (ई० सन् १८७५) में आगरा में लार्ड अलनबरा से मुलाकात की।† सं० १९३९ माघ कृष्णा ३ (ई० सन् १८८३ की २७ जनवरी शुक्रवार) को इसके महाराज कुमार रघुवीरसिंह का विवाह जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी की बहन सौभाग्यकंवर के साथ हुआ। सं० १९४२ (ई० सं० १८८५) में इसके छोटे राजकुमार का विवाह किशनगढ़ में हुआ। वि० सं० १८९० (ई० सन् १८३३) और १९२५ (ई० सन् १८६८) के भारी अकालों में इसने अपनी प्रजा का पालन अच्छी तरह किया। यह प्रजा के हितों का पूरा ध्यान रखते थे। ये पुराने विचारों के रईस थे। ये अंग्रेज व मुसलमानों से छूने पर मुलाकात करने के बाद नहाते और कपड़े भी धुलवाते थे।

बाल्यावस्था में संस्कृत पढ़ने में इन्सने अच्छा परिश्रम किया था और इन्से धार्मिक ग्रन्थों का परिशीलन करते और विद्वानों की संगत करने का भी शौक था। इसके दरबार में कई विद्वान रहा करते थे यथा पंडित गंगादास मुख्य थे जो संस्कृत के धुरन्धर विद्वान थे। ये पत्रकार भी थे। इन्होंने अपनी देखरेख में भादो सुदि १० वि० सं० १९२८ को एक भौगोलिक यंत्र बनवाया था। एक दूसरा खगोल यंत्रराज पौष सुदि ३ वि० सं० १९२८ में बनवाया था। इन्सने

---

* एचिशन : ट्रीट्रीज : जिल्द ३ पृ० २१८,

† वंशप्रकाश पृष्ठ १२८. हर मुलाकात के बाद में इसने काशी की यात्रा कर शुद्धि की थी।

श्रीमद् भागवत की टीका भी लिखी थी। इसके दरबार में एक वैद्यराज बाबा आत्माराम सन्यासी थे जिसकी कई दवायें अति प्रसिद्ध थीं। इसके अलावा, आसानन्द जीवनलाल पठाण हमीदखां आदि प्रसिद्ध विद्वान थे। "वंशभास्कर" नामक उत्तम पद्यात्मक चौहाण वंश के इतिहास का रचयिता कवि सूर्यमल चारण (मिश्र) इन्सी का आश्रित था और दादूपंथी साधु निश्चलदास "विचारसागर" नामक वेदान्त ग्रंथ का रचयिता इन्सी के समय में हुआ था। महाराव रामसिंह को वेदान्त पर विचार विमर्श करने का बड़ा चाव था। इसके समय में बून्दी में संस्कृत पढ़ाने के लिये ४० पाठशालायें थीं इससे बून्दी नगर दूसरा काशी माना जाने लगा था। राज्य प्रणाली में प्रत्येक बात पुराने ढंग की रखने का इसे शौक था और अपने आपको पुराने ढंग का एक राजपूत रईस मानने में ये अपना गौरव समझते थे। पुराने ढंग का होते हुए भी इन्सने अपने राज्य से कई कुप्रथाओं तथा अंध-विश्वास की बातों को हटा दिया था। इसके समय में साधारणतया और विशेषकर जंगली कौमों में यह प्रथा थी कि बूढ़ी औरतों को डायन कह कर उन पर बच्चे व मनुष्यों को खा डालने का दोष लगा देते और उनको जीते जी पानी में डुबा देते थे या उसे नाना प्रकार के दुःख देते थे। सं० १८८६ (ई० सन् १८२९) में महाराव ने राज्य भर में यह घोषणा करा दी कि कोई ऐसी औरतों को डायन कहकर नहीं मारे तथा दुःख नहीं देवे। इसी प्रकार ज्यादातर लोग भूत-प्रेतों के अंध-विश्वास में पड़े हुए थे। उनका भ्रम दूर करने के लिये भी महाराव राजा रामसिंह ने घोषणा कराई कि भूत को प्रत्यक्ष बतलाने वाले को ५० बीघे जमीन दी जायगी परन्तु कोई भी भूत-प्रेत साबित नहीं कर पाया। सं० १९१५ (ई० सन् १८५८) में जब खराड़ के मीनों ने बलवा किया तो महाराव रामसिंह ने उनको दबा दिया। गोठड़ा के जागीरदार भोमसिंह हाड़ा ने अपने पिता बलवंतसिंह हाड़ा की तरह राज्य की आज्ञाओं का उलंघन किया और राज विद्रोह फैलाया इससे उसकी जागीर जब्त करके उसे राज्य से निकाल दिया गया। पश्चात् वह मय अपने भाई शेरसिंह व पुत्र धोकलसिंह और फतहसिंह के मारा गया।*

इस प्रकार इसका शासन बड़ा कड़ा था। जिन लोगों ने इसका सामना किया उनको देशबदर होना पड़ा। सं० १९३९ माघ बदि १४ बुद्धवार (ई० सन् १८८२ की १८ जनवरी) में अंग्रेज सरकार के साथ नमक बनाने के विषय का अहदनामा हुआ जिससे बून्दी राज्य में नमक बनाना बंद किया गया और

* वंश प्रकाश प० १२८.

सिवाय उस नमक के जिस पर सरकारी चुंगी लगती हो किसी प्रकार का नमक बाहर से लाना व भेजना बंद हो गया। इस नमक के ऐवज में बून्दी राज्य को ८ हजार रु० वार्षिक अंग्रेज सरकार की तरफ से दिया जाना तय हुआ।*

सं० १९४२ (ई० सन् १८८६) में महाराव राजा ने पुराने सिक्के की जगह अपने नाम का नया सिक्का चलाया। इस सिक्के में एक तरफ अंग्रेजी भाषा में महारानी विक्टोरिया १८८६ ई० और दूसरी तरफ बून्दी का भक्त रामसिंह १९४२ अंकित था। यह रामशाही रुपये के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सं० १९४३ (ई० सन् १८८६) में महाराव ने दूसरा रुपया ढ़लवाया जिसमें एक ओर कटार का चिन्ह और महारानी विक्टोरिया का नाम अंग्रेजी में तथा दूसरी ओर बून्दी का रामसिंह १९४३ अंकित था। यह कटारशाही सिक्का ई० सन् १९४० तक† इसी रूप में बून्दी राज्य में बनता रहा। उस पर रामसिंह का नाम भी अंकित होता रहता परन्तु उसके साथ में संवत् बदलता रहता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक बड़ी भूल थी क्योंकि भविष्य में नवीन संवत् को रामसिंह के नाम के साथ देख कर इतिहास-वेत्ता महाराव रामसिंह को इस समय का करार दे सकते हैं।

सं० १९४६ चैत्र बदि १२ गुरुवार (ई० सन् १८८९ ता० २८ मार्च) को सवा अठतर वर्ष की आयु में ६८ वर्ष राज करके महाराव राजा रामसिंह का स्वर्गवास हुआ। इसके भीमसिंह, रंगनाथसिंह, रघुवीरसिंह, रंगराजसिंह और रघुराजसिंह नामक पांच राजकुमार तथा अर्जुनसिंह और गोवर्द्धनसिंह व जगन्नाथसिंह तीन अनौरस पुत्र उप-पत्नियों (पड़दायतों) से थे। इनमें से पाटवी महाराज कुमार भीमसिंह ३२ वर्ष की आयु में सं० १९२५ में तथा दूसरे महाराजकुमार रंगराजसिंह सं० १९१३ में ही चल बसे थे। इससे तृतीय महाराजकुमार रघुवीरसिंह वि० सं० १९४६ (सन् १८८९ ई०) में अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए।

---

* एचिशन: ट्रीट्रीज जिल्द ३ पृ० सं० २१९।

† १९४० तक जबकि दीवान ए० डब्ल्यू० रोबर्टसन् ने भारतीय सिक्के का प्रचलन किया। बून्दी के १००) भारतीय सिक्के १२५) के बराबर होते थे।

महाराव राजा सर रघुवीरसिंह बहादुर (वि० सं० १९४६-१९८४)

इसका जन्म वि० सं० १९२६ आश्विन बदि १ मंगलवार (ई० सन् १८६९ ता० २१ सितम्बर) को हुआ और वि० सं० १९४६ चैत्र सुदि ११ शुक्रवार

महाराव राजा सर रघुवीरसिंह बहादुर

(ई० सन् १८८९ ता० १२ अप्रेल) को बीस वर्ष की आयु में वह बून्दी की राजगद्दी पर बैठा। वि. सं. १९४६ माघ बदि ३ गुरुवार (ई० सन् १८९० ता० ९

जनवरी को राजा के पूर्ण अधिकार अंग्रेज सरकार ने इन्से सौंपे ।

सं० १९४८ (ई० सन् १८९१) में अजमेर जाकर वह वाईसराय से मिला । सं० १९५१ (ई० सन् १८९४) में उसको के. सी. आई., सं० १९५४ (ई० सन् १८९७) में के. सी. एस. आई., सं. १९५८ (ई. सन् १९०१) में जी. सी. आई. ई. सं. १९६९ (ई. सन् १९१२) में जी. सी. वी. ओ. और सं. १९७६ (ई. सन् १९१९) में जी. सी. एस. आई. की उपाधियां अंग्रेज सरकार से मिली । सं. १९६० (ई. सन् १९०३) और सं. १९६८ (ई. सन् १९११) के देहली दरबारों में भी सम्मिलित हुए । सं. १९६८ (ई. सन् १९११) में राजराजेश्वरी महारानी मेरी को बून्दी राजधानी* में निमंत्रण देकर इन्होंने उसका बड़ा आदर सत्कार किया और जब माघ सं. १९६८ (ई. सन् १९१२ जनवरी) में सम्राट पंचमजार्ज व सम्राज्ञी मेरी वापस विलायत जाने लगे तो महाराव राजा उनको बम्बई तक पहुंचाने गये । प्रथम महायुद्ध (ई. सन् १९१४-१९१८) में और बाद में अफगान युद्ध (ई. सन् १९१९) में महाराव राजा ने अपनी और अपने राज्य की सेवाओं को अंग्रेज सरकार के अर्पण किया और तनमन व धन से सहायता दी । इसके समय में सं. १९५६ (ई. सन् १८९९) का भयंकर अकाल पड़ा । सं० १९६२ (ई. सन् १९०५) में इन्सने रेल्वे को बून्दो राज्य में होकर निकालने के लिये जमीन दी ।† इन्से १७ तोपों की सलामी थी । इसके विवाहित रानियों से कोई राजकुमार (पुत्र) न था केवल उपपत्नी (खवास-पासवान) से एक अनौरस पुत्र भवानीसिंह नाम का था जिसे इन्होंने "महाराज" की पदवी दे रखी थी । इससे महाराव राजा के सगे छोटे भाई महाराव राजा रघुराजसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह को गोद लिया गया। महाराव राजा की मृत्यु सं. १९८४ सावण बदि १३ मंगलवार (ई० सन् १९२७ ता० १६ जुलाई) को ५८ वर्ष की आयु में ३ बज कर १५ मिनट पर शामको हुई । इन्होंने ३९ वर्ष तक राज्य किया ।‡

---

* महारानी मेरी शिकार की बहुत शोकीन थी । बून्दी के जंगलों में शेर का शिकार करने के लिए वह बून्दी आई थी ।

† एचिशन: ट्रीट्रीज जिल्द ३ पृ० २१९ ।

‡ महायुद्ध की समाप्ति पर १९२० में बून्दी के महाराव ने केशोराय पाटण को बून्दी राज्य में मिलाने तथा १८४७ की सन्धि की ५ वीं धारा रद्द करने की प्रार्थना की । अंग्रेजी सरकार ने १९२४ में महाराव सर रघुवीर के साथ नई सन्धि कर ८०,०००) रुपये वार्षिक कर के बदले में पाटण बून्दी को दिया । एचिशन: पृष्ठ २१९ जिल्द ३ । कोटा बून्दी का आपसी मनमुटाव सन् १७०७ जून १० जाजव के युद्ध से चला आ रहा था । यह मह मनमुटाव इनके समय में दूर हुआ । सम्वत् १९८० (सन् १९२३) में जब सर रघुवीर बिमार पड़े तब कोटा के महाराव उम्मेदसिंह इसकी सकुशलतां पूछने आए और सम्वत् १९८४

महाराव राजा सर ईश्वरीसिंह जी. सी. आई. ई.
(वि० सं० १६८४-२००२)

आप स्वर्गीय बून्दी नरेश महाराव राजा सर रघुवीरसिंह बहादुर के सहोदर

ईश्वरीसिंह

कनिष्ठ भ्राता स्वर्गीय महाराज रघुराजसिंह के पुत्र थे और महाराव राजा सर

(१६२७ ई०) में सर रघुवीर मरे तो कोटा राज्य में शोक मनाया गया। महाराव उम्मेदसिंह कुटुम्ब सहित शोक प्रकट करने-बून्दी आए। (डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग २ पृष्ठ ७१४) १६१६ ई० के इन्डिया एक्ट के अनुसार नरेन्द्रमण्डल का निर्माण हुआ जिसमें इन्होंने सर्व प्रथम सदस्यता प्राप्त की।

रामसिंह के वंश में यही एकलौते वंशधर थे। आपका जन्म जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंहजी के छोटे भाई महाराज मुहब्बतसिंह की पुत्री देवकुँवर के उदर से वि० सं० १९४९ चैत्र बदि ६ बुद्धवार (ई० सन् १८९३ ता० ८ मार्च) को हुआ था। सं० १९६२ मंगलवार सुदि ८ सोमवार (ई. सन् १९०५ ता ४ दिसम्बर) के दिन अपने पूज्य पिता महाराज रघुराजसिंह के स्वर्ग सिधारने पर आप अपनी बांसी की जागीर के स्वामी हुए, जो इनके दादा स्वर्गीय महाराजा रामसिंह ने वि० सं० १९४१ (ई. सन् १८८४) में प्रदान की थी। आपकी पढ़ाई का प्रबन्ध घर पर ही हुआ था। आपने हिन्दी, उर्दू और कुछ कुछ अंग्रेजी का भी अभ्यास किया था।

महाराव राजा सर रघुवीरसिंह बहादुर के एकलौते राजकुमार की अकाल मृत्यु हो जाने पर महाराज ईश्वरीसिंहजी ही एकमात्र राज्य के अधिकारी रह गये थे। अत: सं. १८८४ (ई. सन् १९२७) में रघुवीरसिंह के स्वर्ग सिधारने पर सं. १९८४ की श्रावण बदि १३ मंगलवार (ई० सन् १९२७ ता० २६ जुलाई) को महाराज ईश्वरसिंह बून्दी के राज-सिंहासन पर बैठे। आपका राज्याभिषेक उत्सव सं. १९८४ श्रावण सुदि १० सोमवार (ई. सन् १०२७ ता. ८ अगस्त) को बड़ी धूमधाम से हुआ।

महाराव राजा सर ईश्वरीसिंह को राज-शासन के पूर्ण अधिकार सं. १९८४ आसोज सुदि १ सोमवार (ई. सन् १९२७ ता. २६ सितम्बर) को मिले।* इन अधिकारों के मिलने के कुछ वर्ष बाद सन् १९३१ के जून मास में राज्य के जनाने महलों के निकट कर्मचारी पुरोहित रामनाथ कुदाल (दाहिमा ब्राह्मण) को राज-कोप का भाजन बनना पड़ा। इसको खुलेआम राज्य की पुलिस ने निर्दयता से १२ जून को मार डाला। इस अन्याय से जनता अप्रसन्न हो गई और उनकी श्रद्धा राज्य शासन से उठने लगी। इस कुकर्म की निन्दा व विरोध में ९ दिन तक वहां हड़ताल भी रही। इस हत्याकांड का फैसला ४-९-३१ ई. को बून्दी की चीफकोर्ट से हुआ। उसमें ७ मुसलमान व एक हिन्दू को सजा हुई।† १९३८ में भारत सरकार ने इस राज्य का खिराज १,२०,००० से घटा कर ७०,४००) कर दिया। इनके कोई राजकुमार न होने से इन्होंने कापरेन ठिकाने के कुंवर बहादुरसिंह को वि. सं. १९९० चैत्र बदि ६ शुक्रवार (ई. सन् १९३३ ता. १७ मार्च) को गोद (दत्तक) लिया। महाराव राजा साहब को अंग्रेज सरकार की ओर

---

* एचिशन : ट्रीट्रीज जिल्द ३ पृ० २१९।

† बाम्बे क्रोनिकल, १९ जून १९३१।

से जी. सी. आई. ई. की उपाधि सं. १९९४ वैशाख (ई. सन् १९३७ मई) मास में मिली थी। इनके काल में दूसरा महायुद्ध (१९३९-४५) हुआ। इन्होंने अपनी तथा राज्यकीय सेवायें अंग्रेजी सरकार को अर्पित कीं और अपने लड़के बहादुरसिंह को युद्ध में सक्रिय भाग लेने भेजा। इनकी मृत्यु २३ अप्रेल ३९४५ को बून्दी में हुई।*

महाराव राजा बहादुरसिंहजी (१९४५-१९४७)

महाराव राजा बहादुरसिंह का जन्म १७ मार्च १९२१ को कापरेन वंश में, सुप्रसिद्ध राजा बुद्धसिंह (१६९५-१७३९) से फटे हुए ठिकाने कापरेन में हुआ था। बून्दी के महाराव के आप १९३३ में गोद आये। आपकी शिक्षा मेयोकालेज अजमेर में हुई थी। १९४० में आपने पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज मुरादाबाद और १९४१ में इन्डियन सिविल सर्विस प्रोबेशनर्स कोर्स की भी शिक्षा प्राप्त की थी।

महारावजी ने पिछले युद्ध में स्वयं भाग लिया था। आपने १९४२ में एक-केडट के रूप में आफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल बंगलौर के द्वारा सेना में प्रवेश पाया। वहां का कोर्स समाप्त करते ही आपने इन्डियन आर्मंड कोर्पस के साथ बर्मा के

---

* इनके शासनकाल में दूसरा महायुद्ध हुआ जिसमें इन्होंने अंग्रेजी सरकार की बून्दी फोज व युद्ध फण्ड में बहुत सहायता दी। राजकुमार बहादुरसिंह स्वयं अंग्रेजी फौज में भरती होकर बर्मा के युद्ध क्षेत्र में गए जहां उन्होंने जापानियों से डटकर मुकाबला किया और मेकटिला में वीरता का प्रदर्शन करने पर १९४५ में सैनिक वीरता पदक मिला।
बून्दी महाराव ने १८ अक्टूबर १९४३ को प्रतिनिधि धारा सभा का निर्माण किया जिसमें चुने हुए व्यक्तियों का बहुमत था। १९ अक्टूबर को धारा-सभा में १९४३-१९४४ का बजट एकाउन्टेन्ट जनरल ने रखा। इस धारा-सभा ने प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य करदी। टाइम्स ऑफ इण्डिया, बम्बई, २७ अक्टूबर १९४३, पृ० ५।

युद्ध में भाग लिया। दूसरी मार्च १९४५ को आप मेकटिला के युद्ध में घायल हो गये। इस लड़ाई में महाराव टेंक सेना के साथ जापानियों से लड़े। घोर युद्ध हुआ। इसमें टेंक कमान्डर को सनसनाती गोलियों के बीच भी टेंक के बाहर सिर रखना पड़ा ताकि वह युद्ध की गति देखते हुक्म दे सके। इसमें महाराजा साहिब के टेंक के लगभग ४० गोलियाँ लगी। एक गोली से तो आप बाल बाल बच गये। इस प्रकार उन्होंने वहां से जापानियों को भगा दिया और काफी दूर तक उनका पीछा भी किया। उसी युद्ध में अपनी वीरता के अपूर्व प्रदर्शन के उपलक्ष में आपको मिलिटरी क्रास नामक पुरस्कार पदक मिला।

महाराव बहादुरसिंह

इनका विवाह रतलाम की ज्येष्ठ राजकुमारी के साथ अप्रेल १९३८ में हुआ था। इस विवाह से राजकुमार रणजीतसिंहजी का जन्म १३ सितम्बर १९३९ को तथा एक राजकुमारी ६ फरवरी १९४२ को हुई।

आपका राजतिलक राजमहलों में १४ मई १९४५ को हुआ। उसी दरबार में सरदारों व उच्च अफसरों ने नजरें व न्यौछावर कर अपनी राज-भक्ति प्रदर्शित की। इसके बाद ४ अगस्त को तत्कालीन राजपूताने के रेजीडेन्ट गिलन की उपस्थिति में आपने भावी सुधारों व प्रजा के हित को सदा ख्याल में रखने की घोषणा की। शीघ्र ही राज्य की धारा सभा का दूसरा अधिवेशन अगस्त १९४५ में बुलवाया। १९४६ में दीवान राबर्टसन ने त्याग-पत्र दे दिया। राबर्टसन सन् १९३६ से बून्दी का दीवान था। उसके दीवान काल के समय बून्दी राज्य की आय १४ लाख से १० लाख हो गई और १९४६ में राज्य का रिजर्व फण्ड २७ लाख रुपये का था। १९४७ ई० को भारत के स्वतन्त्र होने पर बून्दी राव ने वृहत् राजस्थान के बनने के लिए पूर्ण सहयोग दिया। २५ मार्च १९४८ को जब राजस्थान संघ बना तब बून्दी राज्य भी उसमें सम्मिलित हो गया। अब महाराज को सरकार से प्रिवीपर्स के २,८१,०००, मिलते हैं।

बून्दी राज्य का मुसलमानों से सम्बन्ध

वीर विनोद के लेखक कविराज श्यामलदास के तथ्यों के आधार पर बून्दी देवीसिंह हाड़ा से राव सुर्जन हाड़ा तक चितौड़ के राणाओं के आश्रित रहा। अतः बून्दी राज्य की स्थापना वि. सं. १३९८ (सन् १३४१) से सं. १६२६ (सन् १५६९) तक उसका दिल्ली के सुल्तानों से सम्बन्ध मेवाड़ के राज्य के अन्तर्गत ही रहा। कर्नल टाड ने बून्दी के संस्थापक देवीसिंह को सिकन्दर लोदी के दरबार में जाने का उल्लेख किया है।* यह सत्य प्रतीत नहीं हो सकता क्योंकि देवा राव का काल सन् १३४०-१३४२ ई. में दिल्ली का सुल्तान मोहम्मद

---

* टाड: राजस्थान: द्वतीयभाग पृष्ठ सं० १४६४

बिन तुगलक था न कि सिकन्दर लोदी जिसका समय १४३२ सं. १४६० तक था। राव देवा का इस प्रकार सौ वर्ष जीवित रहना सम्भव नहीं। राव देवा के बाद उसका पुत्र समरसी ई. सन् १३४३ में गद्दी पर बैठा। वंश भास्कर में लिखा है कि समरसी बादशाह अलाउद्दीन खिलजी (वि. सं. १३५३-७२) के मुकाबले बम्बावदा में मारा गया।* यह तथ्य भी तर्क संगत नहीं जचता है। समरसी का राज्य काल वि. सं. ७४०० (७३४३ ई.) से वि. सं. १४०३ (सन् १३४६) था। उस काल में अलाउद्दीन दिल्ली के सिंहासन पर राज्य नहीं करता था। उसका काल तो ई. सं. १२९६ से १३१४ ई. तक रहा है। उस समय में मुहम्मदबिन तुगलक दिल्ली के राज्य सिंहासन पर राज्य करता था। उसके शासन में इतनी उथल-पुथल थी कि उसके लिए राजपूताने की ओर स्वयं आना या सेना भेजना मुश्किल था। मुगलों के आने के पहले बून्दी के हाड़ाओं का दिल्ली सल्तनत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध की कोई तथ्यपूर्ण वार्ता प्राप्त नहीं हुई है। जो कुछ भी रहा होगा वह महाराणा उदयपुर के सामन्त के रूप में रहा होगा। यों तो फरिश्ता के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि मालवा के बादशाह महमूदखिलजी ने बून्दी कोटा पर तीन बार चढ़ाई की। पहली सन् १४५९ में, दूसरी बार १४५३ में तथा तीसरी सन् १४५९ की। आखीरी चढ़ाई में सुल्तान अपने छोटे शाहजादा फिदाईखां को वहां का मालिक बना कर आया। राव बैंरीसाल सन् १४५९ में महमूदखिलजी के विरुद्ध युद्ध करते हुए मारा गया। बैरीसाल के दो पुत्र मुसलमानों द्वारा पकड़े गए† जिन्हें मुसलमान बना दिया गया। उनका नाम मुसलमाने अमरकन्दी और समरकन्दी रक्खा। जिन्होंने बून्दी पर अधिकार कर ११ वर्ष तक राज्य किया‡ इसी समय मेवाड़ के राणा कुम्भा ने हाडोती प्रदेश को विजय कर वहां पर अपनीं प्रभुता पुनः स्थापित की।§ वंश प्रकाश में तथा बून्दी राज्य की ख्यात और टाड राजस्थान में इस बात का उल्लेख है कि समरकन्दी या उसके पुत्र दाउदखां को मार कर राव नारायणदास ने बून्दी पर हाड़ाओं की पताका पुनः फहरादी।¶

राव नारायणदास (१५०३–१५२७ ई.) ने मेवाड़ का नेतृत्व पुनः स्वीकार किया। वह चितौड़ के राणा रायमल और महाराणा संग्रामसिंह का समकालीन

---

* वंशभास्कर : तृतीयभाग पृष्ठ सं० १६७८

† टाड : तृतीयभाग पृष्ठ सं० १४७३

‡ वंशभास्कर : पृष्ठ १७०८

§ राणकपुर का शिलालेख वि० सं० १४९६

¶ वंशप्रकाश ५१, टाड पृष्ठ १४७४

था। राणा रायमल की पुत्री का विवाह राव नारायणदास से हुआ था। १५२५ ई. में बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। १५२६ ई. में उसने लोदी सुल्तान इब्राहीमखां को पानीपत के मैदान में बुरी तरह हरा कर दिल्ली आगरा पर अधिकार कर लिया। १५२७ ई. में बाबर खानवा के मैदान में राणा सांगा के विरुद्ध आ खड़ा हुआ। राणा सांगा के नेतृत्व में समस्त राजपूताने के शासक लड़ रहे थे। बून्दी के राव नारायण ने राणा सांगा की अधीनता में बाबर के विरुद्ध युद्ध किया। विजय बाबर की रही परन्तु हाड़ों ने मुगल अधीनता स्वीकार नहीं की।‡ राव नारायण के छोटे भाई नर्बदे की पुत्री कर्मवती महाराणा सांगा को ब्याही थी। जिसके पुत्र विक्रमादित्य व उदयसिंह थे। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद विक्रम व उदयसिंह व उसकी माता को रणथम्बोर सौंपा गया था जहां वे बून्दी के राव सूर्य्यमल हाड़ा की निगरानी में रहते थे। गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने चितौड़ पर सन् १५३५ में आक्रमण किया तो बून्दी का राव अर्जुन बून्दी की ८ हजार सेना का अधिपति होकर चितौड़ आया। रानी कर्णावती हाड़ी ने मुगल बादशाह हूमायू को राखी भेजकर अपनी सहायता के लिए बुलाया परन्तु हूमायू ठीक समय पर न आ सका। बहादूरशाह ने चितौड़ विध्वंस कर दिया। सुरंग बना कर और उसमें बारूद भर कर चितौढ़ का बुर्ज उड़ा दिया जिसमें अर्जुन हाड़ा व उसके साथी काम आए। राणी कर्णावती ने जौहर किया। बहादुरशाह का चितौड़ पर अधिकार हो गया।

अकबर के समय से मुगलों व बून्दी के हाड़ों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से स्थापित होने लगा था। अकबर साम्राज्यवादी शासक के रूप में राजपूताने की स्वतन्त्र रियासतों को अपने अधीन करने में संलग्न था। उसने हर तरह के साधनों को, युद्ध, कूटनीति, षड़यंत्र आदि, अपना कर अपनी साम्राज्य-लिप्सा को पूर्ण करना चाहा। कालान्तर में अकबर ने राजपूतों के सहयोग से अपने साम्राज्य व वंश की दृढ़ता स्थापित की। राजपूताने के राज्यों में असन्तुष्ट वर्ग विशेषकर असन्तुष्ट राजवर्ग अकबर के दरबार में शरण पाया करते थे। बून्दी के राव सूरजमल के दर्दनाक अन्त† के कारण उसका आठ वर्षीय बालक सुरताण गद्दी पर बैठा। उसकी शादी महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्तसिंह की पुत्री से हुई। सुरताण बड़ा अत्याचारी और मूर्ख नरेश था। उसने प्रजा व सरदारों को अपने कार्यों से नाराज कर दिया। वह भैरव का इष्ट रखने के कारण नरबलि चढ़ाया

---

* उपरोक्त पृष्ठ १४७५

† वंशभास्कर तृतीयभाग पृष्ठ २०६५

‡ नैणसी की ख्यात भाग १ पृष्ठ ११०

करता था। सरदारों ने इस अत्याचार के विरुद्ध संगठित होकर सुरताण को गद्दी से उतार दिया। उसे सुरथानपुर का गांव दे दिया। और राव भाणदेव के पुत्र नर बुद्ध के पुत्र अर्जुन को राजसिंहान पर बैठा दिया। सुरताण अपने विरोधियों के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए मुगल बादशाह अकबर की शरण में गया। ऐसे समय में अकबर राजपूतों पर अधिकार स्थापित करने के लिए क्षुब्ध राजपूत वर्ग को प्रोत्साहन दे रहा था। अकबर ने उसे तोपखाने का अफसर बना दिया। जब अकबर ने चितौड़ पर सन् १५६७ ई. में आक्रमण किया उस समय सुरताण अकबर के साथ था। मार्ग में से थोड़ी-सी शाही सेना लेकर उसने बून्दी पर चढ़ाई कर उसे लेना चाहा पर उसे सफलता नहीं मिली।*

बून्दी के हाडों और मुगलों के बीच का सम्बन्ध राव सुर्जन हाड़ा के काल से दृढ़ हुआ। राव अर्जुन जब सन् १५३४-३५ में चितौड़ में बहादुरशाह के साथ युद्ध में मारा गया तो उसका लड़का राव सुर्जन गद्दी पर बैठा। वह रणथम्बोर का हाकिम था और मेवाड़ के राणाओं के अधीन था। इसकी शक्ति का विकास डोकरखां व केसरखां से पुनः कोटा प्राप्त करने पर बढ़ गई। कोटा के उत्तर के बड़ौद व सीसबली के परगनों पर भी इसने अधिकार कर लिया। ठीक इसी समय अकबर ने चितौड़ विजय कर रणथम्बोर पर अधिकार करने की योजना बनाई।

रणथम्बोर का दुर्गम व सुदृढ़ किला महाराणा सांगा ने मालवे के सुल्तान महमूदखिलजी से सन् १५१५ में छीना था।† बाद में यह किला शेरशाह के हाथों में चला गया।‡ परन्तु शेरशाह की मृत्यु के बाद अफगान राज्य की क्षति होने और मुगलों की पुनः स्थापना के मध्यकाल में सुर्जन हाड़ा के नेतृत्व में पुनः रणथम्बोर स्वतन्त्र हो गया। अकबर ने अक्टूबर १५५८ में रणथम्बोर लेने का प्रयत्न किया लेकिन वह असफल रहा। मुगलाई हमले बारबार रणथम्बोर पर होते रहे इससे रणथम्बोर के पठान किलेदार ने धन लेकर सुर्जन को सन् १५५६ के अन्तिम दिनों में सौंप दिया।§ सुर्जन ने रणथम्बोर के आसपास के परगनों को भी अपने अधिकार में कर अपनी शक्ति बढ़ाई। अकबर के लिए

---

* वंशभास्कग भाग २, पृष्ठ २२५३-५४

† तुजुके बाबरी (बेवरीज अनुवाद) पृष्ठ ४८३

‡ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत पृष्ठ १०६

§ टाड: राजस्थान जिल्द ६, पृष्ठ १४८०, टाड लिखता है कि बैंदला के चौहान शासक ने रणथम्बोर का किला राव सुर्जन को इस शर्त पर दिलाया कि वह मेवाड़ के सामन्त के रूप में राज्य करे।

असहनीय था कि यह दुर्ग और उसका अधिपति स्वतन्त्र रहे। अप्रेल १५६८ ई. में अकबर ने एक सेना रणथम्बोर विजय करने के लिए भेजी परन्तु मालवा के विद्रोही मिर्जा के आक्रमण हो जाने पर यह मुगली सेना वापिस बुला ली गई। फरवरी १५६९ में अकबर ने स्वयं सेना का नेतृत्व कर रणथम्बोर का घेरा डाल दिया।* लगभग डेढ़ माह तक घेरा पड़ा रहा लेकिन राव सुर्जन ने आत्म-समर्पण नहीं किया। अन्त में जो काम शास्त्र बल से न हो सका वह युक्ति और प्रेम से किया गया। नागोर के राजा भारमल (भगवानदास) के समझाने से राव सुर्जन ने २१ मार्च सन् १५६९ को मुगलों की अधीनता स्वीकार करली जब आमेर का भगदानदास सुरजनराय से भेंट करने गया तब उसके साथ छद्मवेष में अकबर भी था। राजपूतों ने अकबर को पहचान लिया। इस पर अकबर ने स्वयं अपने आपको प्रकट कर दिया और बातचीत स्वयं करने लगा। रणथम्बोर में सुरजन की ओर से सावतसिंह हाड़ा किलेदार था। उसने इस प्रकार आत्म-सर्मपण करने का विरोध किया परन्तु उसका विरोध व्यर्थ हीं रहा† राव सुर्जन और अकबर के बीच एक सन्धि हुई जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं।

१–बून्दी के राजाओं से महल में डोला भेजने को नहीं कहा जायगा।

२–बून्दी के राजाओं को अपनी स्त्रियों को नौरोज में भेजने को नहीं कहा जायगा।

३–बून्दी के राजा अटक के पार नहीं जायेंगे।

४–बून्दी के राजा को शस्त्र पहिने दीवानेआम व दीवाने खास में आने की आज्ञा दी जायेगी।

५–बून्दी के राजाओं को दिल्ली राजधानी में लाल दरवाजे तक नक्कारा बजाते हुए आने की आज्ञा रहेगी।

६–बून्दी राजाओं के घोड़ों के शाही दाग न लगाये जायेंगे।

७–बून्दी के राजा कभी किसी हिन्दू सेनापति के नीचे नहीं रखे जायेंगे।

८–बून्दी राज्य से जजिया कर नहीं लिया जायेगा।

---

* वी० ए० स्मिथ : दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ९८

† बदाउनी के अनुसार सुरजनराय को जब यह बात स्पष्ट की गई कि चित्तोड़ जैसा सुदृढ़ किला मुगल आक्रमणों को अधिक समय तक बर्दाश्त न कर सका तो रणथम्बोर का किला कैसे मुगल ताकत का विरोध कर सकता है। इसलिए उसने अपने दोनों बेटों दूदा और भोज को अकबर की सेवा में भेज दिवा।

९–उनके मन्दिर इत्यादि पुण्य स्थानों का आदर किया जायेगा।

१०–हाड़ों की राजधानी बून्दी ही रहेगी उन्हें बदलने को लाचार नहीं किया जायेगा।*

इन शर्तों की पूर्ण सत्यता में मतभेद है। वंश-भास्कर में प्रथम ७ शर्तों का वर्णन है† लेकिन कर्नल टाड ने १० शर्तों का उल्लेख किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये शर्तें राजपूत अभिमान की सूचक थीं लेकिन इन शर्तों के किए जाने में कुछ सन्देह है। जिन बातों का उल्लेख इन शर्तों में हुआ है उनमें कई बाद में घटित हुई थीं। उदाहरण रूप में जजिया ई. सन् १५६४ में ही बन्द कर दिया गया था, घोड़ों के बादशाही दाग लगाने की प्रथा बून्दी में ई. सं. १५७४ में शुरू हुई। अटक पार जाने की आशंका उस वक्त थी ही नहीं क्योंकि अकबर के राज्य की सीमा उस समय इतनी बढ़ी हुई नहीं थी। इसलिए इन बातों का समावेश पहले से ही सुलहनामें में आना वास्तविकता से दूर ले जाता है। इस सुलहनामें का जिक्र न तो अबुल फजल ने अकबरनामे में किया, न बदाउनी ने और न मुहता नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा। नैणसी ने इतना तो अवश्य लिखा कि राव सुर्जन ने ५ मार्च १५६९ को बादशाह अकबर की मातहती स्वीकार करते हुए इस शर्त के साथ गढ़ बादशाह को सौंपा कि 'मैंने महाराणा मेवाड़ का अन्न खाया है इसलिए उस पर चढ़कर कभी नहीं जाऊँगा।'‡ रणथम्बोर लिए जाने पर अजमेर सूबा के अन्तर्गत एक सरकार बना दी गई जिसके नीचे बून्दी और कोटा के परगने रक्खे गये। तब से बून्दी के हाड़ा बराबर मुगलों की सेवा में रहे। अकबर ने हाड़ा सुर्जन को एक हजारी जात व सवार का मनसबदार बना दिया। तथा गढ़ कटंगा (मध्यप्रदेश) की जागीर इनाम में दी। वहां राव सुजान ने गोड़ों का दमन करके बारीगढ़ पर मुगल अधिकार स्थापित कर लिया। इस पर अकबर ने उसे ५००० का मनसबदार बना दिया।§ बादशाह ने उसे बून्दी के निकट के २६ परगने और बनारस के निकट २६ परगने दिये।¶

राव सुर्जन के काशी में रहने के कारण बून्दी का राज्य उसका पुत्र दूदा

* टाड: राजस्थान जिल्द ३, पृष्ठ सं० १४८२

† वंशभास्कर: तृतीयभाग पृष्ठ २२६५

‡ मुहणोत नैनसी की ख्यात भाग १, पृष्ठ १११ (काशी संस्करण)

§ वंशभास्कर तृतीयभाग पृष्ठ २२८४–८५

¶ उपरोक्त २२८९। अकबर ने उसे चुनार व बनारस का हाकिम भी नियुक्त किया था।

सम्हालता था और भोज कोटे में नियुक्त था जो बून्दी के मातहती में रहता था। ई, १५७६ में दूदा और भोज में बून्दी के शासन प्रबन्ध के मामले को लेकर आपस में अनबन हो गई। स्वयं सुर्जन ज्येष्ठ पुत्र दूदा से नाराज था क्योंकि वह अकबर से मेल रखने के विरुद्ध था।* इस कारण उसने भोजदेव को बून्दी देना चाहा। इस पर दूदा अगस्त १५७१ में विद्रोही हो गया। बादशाह ने विद्रोह को दबाने के लिए दो बार सेना भेजी। दूदा अन्त में हार कर उदयपुर पहुँचा और महाराणा की सहायता से लूट-खसोट करने लगा। अकबर ने १५७७ में भोज को बून्दी का राजा स्वीकार किया। उसे एक हजारी मनसब दिया गया।†

राव भोज अकबर के सरदारों में बड़ा राज-भक्त सरदार था। बहुत समय तक मानसिंह के नेतृत्व में शाही युद्धों में जाता रहा व वीरता का परिचय देता रहा। उड़ीसा में अफगानों को दबाने में राव भोज ने अकबर से यश प्राप्त किया। गुजरात के शासक इब्राहीम मिर्जा के विरुद्ध जब १५७२ ई. में अकबर ने प्रयाण किया तो राव भोज उस युद्ध में हरावल में लड़े। राव भोज ने १५७३ में सूरत के किले और १६७० ई. में अहमदनगर के किलों को विजय करने में मुगलों का हाथ बटाया। अहमदनगर के युद्ध में भोज ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे प्रसन्न होकर बादशाह ने उस किले की बुर्ज को भोजबुर्ज कहना प्रारम्भ किया।‡ परन्तु भोज के अन्तिम दिनों में अकबर उससे नाराज हो गया। अकबर भोज की कन्या से शादी करना चाहता था पर भोज ने अपनी कन्या की शादी जोधपुर के राव मालदेव से कर दी थी। इस पर अकबर ने भोज के पद छीन लिए। टाड का कथन है कि इस अनबन का कारण यह था कि अकबर की पटरानी जोधाबाई की मृत्यु पर राव भोज ने दाढ़ी मूंछ नहीं मुँडवाई, इससे अकबर नाराज होगया।§ अकबर की मृत्यु के बाद (१६०५ ई०) भोज पुनः बूंदी लौटा परन्तु जहाँगीर से पुनः झगड़ा मोल ले लिया क्यों कि भोज जहांगीर और जयपुर नरेश की लड़की जोकि भोज की दोहिती थी उसकी शादी का विरोध करता था। जहांगीर उस समय काबुल में था और लौटने पर राव भोज को दंड देना चाहता था। पर इसके पहले ही राव भोज का १६०८ में देहान्त हो गया।¶ राव भोज ने अपने दूसरे लड़के हृदयनारायण को कोटा का

---

* अकबर ने दूदा का नाम लड़कखां रखदिया था

† महासिरलउल उमरा पृष्ठ २७४

‡ टाड़ राजस्थान तृतीयभाग पृष्ठ १४८५

§ उपरोक्त पृष्ठ १४८५

¶ उमरावं हेनूद पृष्ठ ६५

राजा बनाकर अकबर से फरमान प्राप्त कर लिया था।* उसकी मृत्यु के बाद राव रतन गद्दी पर बैठा।

बूंदी के शासकों ने मुग़ल-प्रभुत्व काल में बादशाहों के प्रति राज्य-भक्ति का अलौकिक प्रदर्शन किया। वे हमेशा दिल्ली पर आसीन शासक के प्रति वफादार बने रहे और जिन्होंने मुगल सल्तनत का विरोध किया उन्हें दबाने में इन्होंने केन्द्रीय सरकार को सहायता दी। राव रतन (सन् १६०८–१६३१) जहांगीर का पंचहजारी मनसबदार था। उसे 'सर बुलन्द राय' और 'रामराज' की उपाधिएं दी गई थी ; केसरिया निशान व नक्कारा शाही इनायत के रूप में प्रदान हुए थे। खुर्रम (आगे चलकर जो 'शाहजहां' हो गया था) के विद्रोह † को दबाने में राव रतन ने भरपूर सहायता जहांगीर को दी। खुर्रम के विद्रोह को दबाने के लिए राव रतन व उसका भाई हृदयनारायण भेजा गया। राव रतन ने शाहजादा परवेज और महाबत खां के नेतृत्व में दक्षिण की ओर प्रयाण किया जहाँ खुर्रम माडूं में था। माडूं पर खुर्रम हार गया तथा नर्मदा पार कर वह दक्षिण की ओर चला। इस समय राव रतन के प्रयास से खुर्रम और महाबत खां के बीच सन्धि करने की योजना बनी पर शर्त तय न हो सकने के कारण पुनः युद्ध प्रारम्भ हुआ। नर्मदा पार कर राव रतन ने खुर्रम को बुरी तरह हराया।‡ बुरहानपुर पर शाही अधिकार हो जाने के बाद खुर्रम ने बुरहानपुर का घेरा डाल दिया परन्तु राव रतन व उसके पुत्रों माधोसिंह व हरिसिंह की वीरता के कारण बुरहानपुर न ले सका। खुर्रम गोड़वाला होता हुआ बंगाल बिहार की ओर चला। परवेज और हृदयनारायण उसका पीछा करते हुए इलहाबाद की ओर चले। राव रतन को बुरहानपुर का किलेदार नियुक्त किया गया।§ भूंसीके युद्ध में हृदयनारायण भाग गया। जहाँगीर ने उससे कोटा लेकर अस्थायी रूप से राव रतन को सौंप दिया। भूंसी के युद्ध में हार कर खुर्रम पुनः दक्षिण की ओर लौटा और बुरहानपुर लेने का प्रयास किया। परन्तु इस बार वह हार कर पकड़ा गया और वहीं किले पर राव रतन की देखरेख में रख दिया गया।¶ राव रतन की दक्षिण की सेवाओं से प्रसन्न होकर ५ हजारी मंसब तथा 'रावराय'

---

* डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास जिल्द १ पृष्ठ ८३

† खुर्रम के विद्रोह के लिए देखो डा० आशीर्वादीलाल कृत मुगलकालीन भारत पृष्ठ ३२३

‡ खफीखां जिल्द १ पृष्ठ ३४८

§ टाड : राजस्थान जिल्द ३ पृष्ठ १४८७ खफीखां जिल्द १ पृष्ठ ३४८

¶ वंशभास्कर : तृतीय भाग पृष्ठ २४६६

की पदवी दी। राव रतन ने सुअवसर देखकर कोटा का राज्य माधोसिंह को दे दिया और जहांगीर से शाही फरमान की प्रार्थना की। यद्यपि जहांगीर ने शाही फरमान तो नहीं दिया परन्तु माधोसिंह को कोटा देने पर आपत्ति नहीं की। जहांगीर की मृत्यु के बाद १६२८ में शाहजहां ने शाही फरमान देकर कोटा का राजा माधोसिंह को स्वीकार किया। राव रतन की मृत्यु के बाद १६३२ ई० में माधोसिंह ने कोटा का स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

मुग़ल उत्तराधिकारी युद्ध व बून्दी के राव

राव रतन के बाद कोटा पर माधोसिंह बून्दी से स्वतन्त्र होकर राज्य करने लगा था। बूंदी पर राव रतन के पुत्र गोपीनाथ का लड़का शत्रुशाल गद्दी पर बैठा। गोपीनाथ राव रतन के जीवन काल में ही मृत्यु प्राप्त हो चुका था। राव शत्रुशाल शाहजहां का बड़ा कृपा पात्र था। इसे 'राव' का खिताब दिया गया, तीन हजारी जात व दो हजारी मनसब दिया गया। दक्षिण में खाँनेजहाँ लोदी के साथ रहकर इन्होंने दौलताबाद (१६३२ ई० में) के किले को विजय करने में बहादुरी का परिचय दिया। इस सेवा के उपलक्ष में इसके मनसब में एक हजार सवार की वृद्धि हुई। सन् १६३३ में इसने परेदा के किले को फतह किया। १६३५ ई० में शाहजहां-शाहू भौंसले संघर्ष में शत्रुशाल बूंदी के हाड़ा राजपूतों को लेकर शाही सेवा में पहुंचे। जब कन्धार विजय करने के लिए दारा ने शाही फौज का नेतृत्व स्वीकार किया तो शत्रुशाल की सेवाएं मांगी। औरंग-

जेब के साथ कजिल देशों के विरुद्ध कन्धार की चढ़ाई के समय यह अग्रणीय था।*

शाहजहाँ की बीमारी काल (१६५६–१६५८) में उसके चारों पुत्रों में राजगद्दी के लिए युद्ध हुआ। शत्रुशाल ने दिल्ली के सूबेदार की हैसियत से, यद्यपि उस समय शत्रुशाल दक्षिण में था, वह दिल्ली लौटा और बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। शाहजहां ने इसे औरंगजेब और मुराद की संयुक्त सेना को रोकने के लिए दारा के साथ भेजा। विदा करते समय शाहजहाँ ने बारा और मउ के परगने कोटा के राव मुकन्दसिंह से छीनकर पुनः शत्रुशाल को दिए।† धौलपुर के पास सामूगढ़ के मैदान में औरंगजेब धर्मत विजय के बाद‡ दारा से आ भिड़ा। इस युद्ध में हाड़ा, राठौड़, सीसोदिया और गौड़ राजपूतों का नेतृत्व शत्रुशाल ने किया। इस युद्ध में उसका पुत्र भारतसिंह व भाई मोहकम-सिंह अपने दो पुत्रों सहित मारे गए। इस युद्ध में औरंगजेब की विजय हुई। बाद में उसने शाहजहाँ को आगरे के किले में कैद करके स्वयं बादशाह बन गया। बूंदी के सिंहासन पर शत्रुशाल का पुत्र भावसिंह गद्दी पर बैठा। औरंगजेब भावसिंह से इसलिए नाराज था कि उसके पिता ने उत्तराधिकारी युद्ध में उसके विरुद्ध दारा की सहायता की थी। राव भावसिंह के चाचा भगवन्तसिंह ने औरंगजेब का साथ दिया था। बादशाह आलमगीर ने उसे 'राव' का खिताब देकर बूंदी के मऊ और बारा का भाग उसे देदिए। परन्तु शीघ्र ही उसका देहान्त हो गया। इस पर बादशाह ने ये परगने जगतसिंह कोटा नरेश को दे दिये। भावसिंह के विरुद्ध औरंगजेब ने शिवपुर के शासक आत्माराम गौड़ और बरसिंह बुन्देले को चढ़ाई करने भेजा। परन्तु खाटोली गांव के पास मुट्ठी भर हाड़ा राजपूतों ने १५००० शाही सेना को बुरी तरह से हरा दिया।§ औरंग-जेब ने छल द्वारा भावसिंह को अधीन करना चाहा। उसे मिलने के लिए आगरा बुला भेजा। वहाँ इसने औरंगजेब की अधीनता नवम्बर १६५८ में स्वीकार कर तीन हजारी जात व दो हजारी सवार का मन्सब प्राप्त किया। उसी समय

---

* मुआसिरुल उमरा पृष्ठ १३७

† वंशभास्कर जिल्द ३ पृ० ११७

‡ धर्मत के युद्ध में हाड़ा शत्रुशाल ने जोधपुर के जसवन्तसिंह राठौड़ का साथ नहीं दिया क्योंकि उस युद्ध का नेतृत्व राठौड़ सरदार कर रहा था जो कि शत्रुशाल को स्वीकार नहीं था। टाड : राजस्थान भाग ३ पृ० १४६१

§ टाड : राजस्थान तृतीय भाग पृ० १४६३

बादशाह ने भावसिंह को शाहजादा मुहम्मद सुलतान के नेतृत्व में बंगाल के सूबेदार शाहजादा शुजा का सामना करने को भेजा। प्रयाग के पास मकामकोड़ा में जो युद्ध बादशाह औरंगजेब तथा शुजा में २४ दिसम्बर १६५८ को हुआ था उसमें राव भावसिंह शाही तोपखाने का अफसर था। इसके बाद दक्षिण के छत्रपति शिवाजी के विरुद्ध लड़ने को भेजा गया। इसने शायस्ताखां के साथ चाकण के किले को घेर कर उस पर अधिकार कर लिया। पूना में शायस्ताखां की शिवाजी द्वारा हार (१६६४ ई० में) सवाई जयसिंह की पुरन्धर विजय के समय शाही सेना के तोपखाने के अध्यक्ष का कार्य्य कर सफलता प्राप्त की। ई० सं० १६६५ में दिलेरखां मुगल सेनापति को चांदा के शासक पर विजय प्राप्त करने में सहायता दी। औरंगाबाद के फौजदार नियुक्त होकर के कई समय तक दक्षिण में रहे। औरंगाबाद के पास ही इसने एक नगर बसाया जिसका नाम भावपुरा रखा। वहीं इसकी मृत्यु १ अप्रेल १६८१ में हुई।* इसका भाई भीमसिंह का पुत्र किशनसिंह† कट्टर धार्मिक विचारों का था। यही कारण था कि औरंगजेब ने उसे उज्जैन भेज दिया जहां के सूबेदार ने उसे मरवा डाला। जब औरंगजेब ने बून्दी के पास केशोरायपाल के मन्दिर को तोड़ने का प्रयास किया तो किशनसिंह ने शाही सेना का मुकाबला कर मन्दिर की रक्षा की।

किशनसिंह के पुत्र अनिरुद्धसिंह ने औरंगजेब की अमूल्य सेवा की। १६८२ के बाद मृत्यु पर्यन्त औरंगजेब दक्षिण भारत में ही रहा। वहां मराठों की शक्ति के विरुद्ध बीस साल तक लड़ता रहा। इसी बीच में औरंगजेब ने १६८५ में बीजापुर व १६८६-८७ में गोलकुण्डा पर अधिकार कर लिया था। इन सब युद्धों में अनिरुद्धसिंह था। वह हरावल में रहता था। बून्दी से कई समय तक अनुपस्थित रहने के कारण व बलबन के जागीरदार हाडा दुर्जनसिंह की बादशाह से शिकायत करने पर हाड़ा दुर्जन विद्रोही हो गया और उसने बून्दी पर अधिकार कर लिया। इस पर औरंगजेब ने अनिरुद्धसिंह का बून्दी पर पुन: अधिकार स्थापित करने के लिए शाही फौज भेजी जिसने बिना कोई युद्ध किए ही बून्दी पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब के लम्बे अर्से तक दक्षिण में रहने के कारण

---

* वंश प्रकाश पृ० ७९–८०

† किशनसिंह को भावसिंह ने गोद लिया था। इसने महाराजा जसवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह को मुगल दरबार से निकाल कर सुरक्षित जगह पहुँचाने में मदद की। जसवन्तसिंह की रानी कर्मवती इसकी बहिन थी

उत्तरी भारत के सूबेदार विद्रोही होने लगे। ऐसी स्थिति में राजाराम के नेतृत्व में जाटों ने उपद्रव कर दिया। सन् १६८६ में औरंगजेब ने शाहाजादा बेदारबख्त को इस उपद्रव को दबाने के लिए भेजा। जुलाई सन् १६८८ में एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें राजाराम मारा गया। राव अनिरुद्धसिंह ने भी इस युद्ध में भाग लिया परन्तु युद्ध-क्षेत्र से वह भाग निकले। उसकी पगड़ी गोरधन-सिंह हाड़ा ने पहन कर उसकी इज्जत की रक्षा की* कुछ समय तक वह बून्दी में ही बना रहा। बाद में बादशाह ने इसे काबुल की तरफ मुगल साम्राज्य का उत्तरी सीमा का झगड़ा तय करने को शाहेजादा मुअजम और आमेर के राजा विशनसिंह के साथ भेज दिया जहां सन् १६६५ में इसका देहान्त हो गया।†

मुग़ल पतन युग में बून्दी के शासकों का मुग़ल सम्बन्ध

औरंगजेब की मृत्यु मार्च १७०७ में अहमदनगर में हुई। उसके वसीयत-नामे के अनुसार वह अपने चारों पुत्रों में साम्राज्य का विभाजन करना चाहता था। ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम को दिल्ली का तख्त सौंपना चाहता था परन्तु दक्षिण में उसके साथ उसका दूसरा पुत्र आजम स्वयं बादशाह बनना चाहता था। इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी युद्ध निश्चित था। राजपूताने के राज्यों के शासकों ने अपने स्वार्थानुसार दोनों दलों में से एक का पक्ष लिया। बून्दी के राव बुद्धसिंह ने शाहजादा मुअज्जम का पक्ष लेकर शाहजादा आजम को जाजव के युद्ध में (१७०७ जून) परास्त किया। इस युद्ध में कोटा के हाडा शासक रामसिंह शाहजादा आजम के पक्ष में था। रामसिंह ने बुद्धसिंह को अपनी

---

* डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास प्रथम भाग पृ० २०८

† टाड़ राजस्थान जिल्द ३ पृ० १४६४

ग्रोर मिला कर ग्राजम का पक्ष लेने के लिए लिखा परन्तु बुद्धसिंह कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहा। मुग्रज्जम विजयी होकर बहादुरशाह के नाम से बादशाह बना। बुद्धसिंह को उसने 'रावराजा' की पदवी तथा पचहजारी मनसब दिया।* इसके ग्रलावा उसे कोटा पर ग्रधिकार स्थापित रखने की ग्रनुमति भी देदी। बुद्धसिंह ने ग्रपने दीवान गंगाराम धाभाई को कोटे पर चढ़ाई करने की ग्राज्ञा दी। जोगीराम के नेतृत्व में बून्दी की एक सेना ने कोटे पर चढ़ाई की लेकिन वह ग्रसफल रही।†

बुद्धसिंह स्वयं जयपुर व बेगू शादिएँ करता हुग्रा बहादुरशाह का फरमान प्राप्त करते ही दक्षिण की ग्रोर चल पड़ा जहां बहादुरशाह ग्रपने भाई रामबगस के विद्रोह को दबाने गया था। बहादुरशाह १७१२ ई० में मर गया। उसके बाद जहांदारशाह तख्त पर बैठा। इसी काल में दिल्ली की राजनीति में सैयद भाइयों ग्रब्दुला व हुसेनग्रली का प्रभाव बढ़ने लगा। उन्होंने फर्रुखसियर को दिल्ली के तख्त पर बैठा दिया। इस राजनैतिक उथल-पुथल में कोटा के राव भीमसिंह ने सैयद भाइयों का साथ दिया। बुद्धसिंह तटस्थ रहे। बादशाह बनने के बाद फर्रुखसियर ने राजपूत शासकों को दिल्ली बुला कर ग्रपनी अधीनता करवाई। परन्तु बुद्धसिंह दिल्ली नहीं पहुँचा। ऐसे ग्रवसर का लाभ उठा कर कोटा के राव भीमसिंह ने बादशाह को बुद्धसिंह के विरुद्ध भड़काया ग्रौर बून्दी प्राप्त करने का फरमान ले लिया‡ इस फरमान के ग्राधार पर भीमसिंह ने बून्दी पर ग्राक्रमण कर उस पर सन् १७१३ में अधिकार कर लिया। ग्रौर राव रतन का केसरिया झण्डा ग्रौर नक्कारे कोटा ले ग्राए।§

शीघ्र ही फर्रुखसियर व सैय्यद बन्धुग्रों में ग्रनबन होने लगी। फर्रुखसियर ने सैयदों के प्रभाव से मुक्त होने के लिए दक्षिण के सूबेदार निजामुल्मुल्क को राजधानी में बुला भेजा ग्रौर हुसैनग्रलीखां को उसके स्थान पर दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। इस प्रकार दोनों भाइयों को पृथक कर वह सम्पूर्ण शक्ति ग्रपने पास रखना चाहता था। ऐसी स्थिति में सवाई जयसिंह ने बुद्धसिंह को पुनः बून्दी दिलाने का प्रयास किया ग्रौर सैय्यद भाइयों के विरोध में शक्ति एकत्रित करने व राजपूत शासकों का सहयोग पानेके लिए फर्रुखसियर ने पुन:

---

* वीर वीनोद भाग ३ पृष्ठ ६२६
† उपरोक्त भाग ४ पृ० २६६६
‡ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग पृष्ठ३०२२-२२
§ टाड : राजस्थान तृतीयभाग पृष्ठ १४६६

बून्दी का फरमान बुद्धसिंह को दे दिया। भीमसिंह को मऊ और बारां के परगने के अलावा बून्दी बुद्धसिंह को लौटानी पडी*। १७१६ ई० में मराठों की सहायता से हुसेनअली ने दिल्ली के तख्त से फरूखसियर को गद्दी से हटा दिया। कहीं बुद्धसिंह व जयसिंह फरूखसियर का पक्ष न लेले इसलिए जयसिंह को जयपुर जाने की आज्ञा मिल गई और भीमसिंह ने बुद्धसिंह की हत्या करने हेतु उस पर दिल्ली के मकान पर आक्रमण किया परन्तु बुधसिंह बच कर जयसिंह के पास चला गया।† इसके बाद बून्दी पर भीमसिंह ने पुनः आक्रमण किया और १७१६ में बून्दी पर अपना राज्य स्थापित किया।

फरूखसियर की मृत्यु के बाद दिल्ली तख्त पर कई शाहजादों को बैठाया गया परन्तु सब निकम्मे थे। अन्त में सैय्यद बन्धु मोहम्मदशाह को गद्दी पर बैठा कर स्वयं शासन करने लगे। अलाहाबाद का सूबेदार छबेलाराम ने जो सैयदों का विरोधी था विद्रोह कर दिया। बुधसिंह ने इस विद्रोह में भाग लिया। करीब १० हजार हाड़ा सैनिकों के साथ बुधसिंह ने छबेलाराम का साथ दिया। इस पर सैयदों ने बुधसिंह के खिलाफ १७ नवम्बर सन् १७१६ को शाही सेना भेजी। जनवरी १७२० के आसपास बुधसिंह से लड़ाई हुई। जिसमें बुधसिंह का काका मारा गया और उसमें लगभग ६००० राजपूत काम आए।‡ परन्तु ठीक इसी समय निजाम दक्षिण से बड़ी फौज लेकर दिल्ली पर आक्रमण करने आ रहा था अतः बून्दी सैयदों का फरमान भीमसिंह, गजसिंह तथा दिलावरखां को प्राप्त हुआ कि वे निजाम को रोकने के लिए शीघ्र प्रस्थान करें। निजाम के खिलाफ लड़ाई में भीमसिंह काम आया (१७२०) और सैयद बन्धुओं का दिल्ली की राजनीति में प्रभाव समाप्त हो गया। बून्दी में कोटा की ओर से भगवानदास धा-भाई शासन कर रहा था पर भीमसिंह की मृत्यु के बाद उसने बून्दी का राज बुधसिंह को दे दिया। यह मुगलों का अन्तिम प्रभाव था जिसके बाद बून्दी पर जयसिंह का प्रभाव स्थापित हुआ और उसके मुक्त करने के लिए बुधसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह ने मराठों की शरण ली।

---

* वंशभास्कर : चतुर्थभाग पृष्ठ ३०६५-६७, इरविन लेटर मुगल्स जिल्द १, पृष्ठ ३७६।

† उपरोक्त जिल्द २ पृष्ठ १०–११।

‡ खफीखां जिल्द २ पृष्ठ ८४४-८५१।

बून्दी राज्य का मरहठों से सम्बन्ध

शिवाजी के महाराष्ट्र के निर्माण के बाद भारत से हिन्दू राज्य की स्थापना की भावना ने हिन्दुओं को बहुत प्रेरित किया परन्तु उनकी मृत्यु के बाद ई० सन् १६८० से लेकर १७१९ ई० तक यह भावना अखिल भारतीय-स्तर पर कार्यान्वित नहीं हो सकी। १७२० ई० में बाजीराव पेशवा ने इस नीति को पुनः प्रचारित किया और उत्तरी भारत में मराठों का प्रभाव बढ़ने लगा। मुगल साम्राज्य उस समय अपनी अधोगति की ओर आ रहा था। राजपूत शासकों पर अब मुगलों की निरंकुशता समाप्त हुई तो वे आपस में लड़ने लगे तथा अपने झगड़ों के निर्णायक के रूप में बढ़ती हुई मराठों की शक्ति का स्वागत करने लगे। मराठों को जहां ऐसी स्थिति में एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित करना चाहिए था वहां वे राजपूतों के गृहकलह को दुधारी गाय समझ कर प्रोत्साहन देते रहे। राजपूताने में मरहटों का प्रवेश इसी उद्देश्य से कि राजपूत शासकों का धन पूना की ओर तथा उसके सामन्तों के खजानों में आता रहे, हुआ। बून्दी के प्रारम्भिक गृह-कलह सन् १७३६ के बाद से, मराठों का प्रभाव बून्दी पर स्थापित होने लगा और सन् १८१७ तक जब तक कि उन्होंने अंग्रेजी राज्य से सन्धिकर उनकी सुरक्षा नहीं प्राप्त करली, बना रहा।

बून्दी का राव भीमसिंह औरंगजेब के शाही तोपखाने के अध्यक्ष के रूप में शिवाजी के खिलाफ लड़ाई में गया था। चारु पुरन्धर विजय में वह मरहठा विरोधी तत्वों में था। उसका पुत्र अनिरुध्दसिंह भी मराठों के खिलाफ औरंगजेब के साथ दक्षिण भारत में रह कर मुगल शक्ति के पतन को रोकता रहा। परन्तु मराठी शक्ति उन दिनों में शिशुकाल में थी और अपने जीवित रहने के लिये बराबर संघर्ष करती रही। राजपूत शक्तियों का इस प्रकार मुगलों को सहयोग देकर

उन्हें समाप्त करना उस समय तक प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं था। तब तक मुगल सम्राट अत्यन्त ताकतवर थे और वे राजपूतों को अपने आधीन रखने की क्षमता रखते थे।

बून्दी के शासकों ने मुगल राजनीति में कभी भी इतना महत्व प्राप्त नहीं किया कि वे मुगलों के शासन को प्रभावित कर सके या मुगल सूबों के कर्त्ता-धर्त्ता बन जाय। वे सिर्फ युध्द-क्षेत्र में जाने वाली सेनाओं का साथ देने तक ही सीमित रहे। मराठों की उनसे टक्कर लड़ाई के मैदान में होती रही लेकिन राज-नीति क्षेत्र में नहीं। राव बुधसिंह (१६९६–१७३९) का बून्दी में राज्यकाल उथल-पुथल का समय था। १७१३ ई० में बून्दी कोटा के अधीन चला गया। १७१५ ई० में पुनः बून्दी बुधसिंह के अधिकार में आ गया परन्तु १७१९ ई० में फरुख-सियर की मृत्यु के बाद कोटा के राव भीमसिंह ने बून्दी पर चढ़ाई कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। वहां का शासन चलाने के लिए भगवानदास का भाई नियुक्त कर लिया गया जिसने भीमसिंह की मृत्यु के बाद १७२० में बून्दी राज्य बुद्धसिंह को दे दिया।*

ऐसे समय में आमेर का राजा जयसिंह बून्दी पर अधिकार करना चाहता था। मुगल साम्राज्य की शक्तिहीनता का लाभ उठा कर जयसिंह ने वृहत् जयपुर निर्माण करने की योजना बनाई। कोटा व बून्दी जो आपसी जातीय कलह में संलग्न थे, उनकी स्थिति का लाभ उठा कर वह इन दोनों राज्यों पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। बुद्धसिंह का पुनः बून्दी पर अधि-कार हो जाने पर वह सवाई जयसिंह की सलाह से राज्य करने लगा। सवाई जयसिंह ने नागराज धाभाई को बून्दी का मन्त्री बनाया। वह जयसिंह के कहने के अनुसार राज्य करता था। शीघ्र ही जयसिंह और बुद्धसिंह में अनबन हो गई। इस अनबन का कारण टाड के अनुसार बुद्धसिंह का कच्छवाही रानी जो कि जयसिंह की बहिन थी, के प्रति दुश्चरित्रता का कलंक लगाना था।† इस अपमान का बदला लेने के लिए जयसिंह ने बुद्धसिंह को गद्दी से उतारने का निश्चय किया। पहले तो इन्द्रगढ़ के ठाकुर को गद्दी सौंपी गई। वह उसके लिए तैयार नहीं हुआ। फिर यह पद तारागढ़ के किलेदार व करवाड़ के ठाकुर सालमसिंह को सौंपा गया। जयसिंह की सहायता से पांचोलास गांव के पास बुद्धसिंह को सालमसिंह ने हरा कर बून्दी पर अधिकार कर लिया और अपने पुत्र दलेलसिंह को बून्दी

---

* सैय्यद बन्धुओं का प्रभाव उस समय तक समाप्त हो चुका था।

† टाड : राजस्थान जिल्द ३, पृष्ठ १४९७-९-यही पुस्तक, बून्दी का इतिहास पृष्ठ ८०–८१।

का शासक घोषित किया। जयसिंह ने इस शासन को कानूनी स्वीकृति देने के लिए बादशाह मोहम्मदशाह से शाही फरमान ले लिया और उसे शक्ति प्रदान करने के लिए जयसिंह ने अपनी लड़की की शादी दलेलसिंह से करदी।*

बून्दी के इस गृह-कलह ने मराठों का बून्दी की ओर प्रयाण प्रारम्भ किया। कोटा का राव दुर्जनशाल जयसिंह के आमन्त्रण पर बून्दी के नए राजा के अभिषेक पर बून्दी गया और दलेलसिंह को विवशता की स्थिति में राजा स्वीकार कर लिया और दलेलसिंह को सरोपाव और घोड़े सत्कार रूप में दिए।† बुद्धसिंह भाग कर बेंगू पहुँचा। वहां से महाराणा उदयपुर से सहायता की प्रार्थना की। महाराणा उदयपुर कोटा राव दुर्जनशाल से मिल कर सहायता देना चाहता था। पर बुद्धसिंह ने इस योजना के प्रति कोई सक्रिय जोश नहीं बताया।

दूसरी ओर बून्दी की राजनीति ने पलटा खाया। सालमसिंह के दो पुत्र दलेलसिंह और प्रतापसिंह थे। दलेलसिंह बून्दी के सिंहासन पर बैठ गया। वह अपने बड़े भाई प्रतापसिंह से ठीक व्यवहार नहीं रखता था। कभी कभी उसका अपमान भी कर देता था। इस पर प्रतापसिंह ने बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर दक्षिण के मराठों की सहायता लेने का निश्चय किया।‡ प्रतापसिंह कोटा से रवाना होकर दक्षिण गया और बाजीराव पेशवा से मुलाकात कर यह सन्धि करली कि बून्दी की गद्दी पर बुद्धसिंह बैठा दिया जाय तो वह ६ लाख रुपये मराठों को देगा।

पेशवा ने यह काम मल्हारराव होल्कर व राणोजी सिन्धिया को सौंपा। २२ अप्रेल १७३४ ई० को बून्दी पर मराठों का पहला आक्रमण हुआ। सालमसिंह व दलेलसिंह बून्दी से भाग गए। पुनः बुद्धसिंह को बून्दी का शासक घोषित कर दिया गया।§ कछवाही रानी ने होल्कर को अपना राखी–बन्द भाई बनाया। जब बेंगू में बुधसिंह को यह सूचना मिली तो वह होल्कर से मिलने नहीं आया।¶ बून्दी में मुख्य सलाहकार प्रतापसिंह बनाया गया। परन्तु मराठी सेना के जाते ही जयसिंह ने २०,००० सेना लेकर मराठों पर चढ़ाई की। प्रतापसिंह व

---

* टाड : जिल्द ३, पृ० १४९७-९९

† वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ० ३१९२-९३

‡ वंशभास्कर चतुर्थ भाग पृ० ३२१५

§ वंशभास्कर चतुर्थभाग पृ० ३२१६–१८।

¶ वशभास्कर चतुर्थभाग पृ० ३२२० सरकार : फाल ओफ दी मुगल एम्पायर जिल्द १, पृ० २५१–२५२।

कछवाही रानी ने बिना युध्द किए बून्दी छोड़ दिया।* बून्दी पर पुनः दलेलसिंह बैठाया गया। जयसिंह ने सालमसिंह को जिसे मराठों ने गिरफ्तार कर लिया था, २ लाख रुपये देकर छुड़ाया।†

सन् १७३९ ई० में बुद्धसिंह का देहान्त बेगूं में हो गया। उसका बड़ा लड़का उम्मेदसिंह उस समय १७ वर्ष का था। उम्मेदसिंह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। बेगूं के ठाकुर ने महाराणा के दबाव में आकर जिसे जयसिंह ने दबाया था, उम्मेदसिंह और उसके भाई दीपसिंह को बेगूं से निकाल दिया था। ये कोटा चले गए और महाराव दुर्जनशाल से सहायता की आशा की। सन् १७४१ ई० में महाराव दुर्जनशाल नाथद्वारा एक धर्म महोत्सव में आया और महाराणा उदयपुर से मुलाकात कर उम्मेदसिंह को पुनः बून्दी दिलाने की सन्धि की। यह तय हुआ कि माधोसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाया जाए और उम्मेदसिंह को बून्दी की; परन्तु जयसिंह के जीवित रहते यह कार्य करना दुर्जनशाल को सम्भव प्रतीत नहीं हुआ।

सन् १७४३ ई० में जयसिंह की मृत्यु हो गई। शाही फरमान के अनुसार जयपुर की गद्दी पर ईश्वरसिंह बैठा। परन्तु सवाई जयसिंह की महाराणा उदयपुर की वैवाहिक सन्धि के अनुसार उसकी सीसोदिया राणी का पुत्र माधोसिंह गद्दी पर बैठना चाहिए था। § अतः महाराणा उदयपुर ईश्वरसिंह के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित करने लगे। महाराव कोटा उम्मेदसिंह के लिए बून्दी चाहते थे जो ईश्वरसिंह नहीं देना चाहता था। अतः महाराणा के उस मोर्चे में उम्मेदसिंह, और दुर्जनशाल भी शामिल हो गए। दुर्जनशाल ने जोधपुर शासक महाराजा अभयसिंह व गुजरात के सूबेदार नवाब फर्रुखुद्दौला से सहायता मांगी। शाहपुरा के शासक उम्मेदसिंह भी इसमें आ सम्मिलित हुए। अभयसिंह ने सहायता नहीं भेजी।

इस सेना ने १७४४ में बून्दी पर आक्रमण किया। ईश्वरसिंह ने दलेलसिंह की सहायता के लिए फौज भेजी लेकिन दलेलसिंह बून्दी से निकाल दिया गया और राव दुर्जन ने बून्दी पर अपना अधिकार कर लिया।¶ उम्मेदसिंह को यह बुरा लगा। उसने अभयसिंह से सहायता मांगी। इसी बीच में ईश्वरसिंह ने

---

* वंशभास्कर चतुर्थभाग पृ० ३२२१।

† वंश प्रकाश पृ० ८९।

‡ वंशभास्कर चतुर्थभाग पृ० ३३२०।

§ वीर विनोद भाग २ पृ० ९७३–७७।

¶ वंशभास्कर पृ० ३३७१।

बून्दी पर पुनः अधिकार स्थापित करने के लिए मराठों से सहायता मांगी। उसने राजमल खत्री को मराठों से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा। उसने फौज खर्च के एक करोड़ रुपयों के बदले में राणोजी सिन्धिया तथा रामचन्द्र पंडित को अपनी ओर मिला लिया।* पर वे ठीक समय पर न आ सके। उधर महाराणा उदयपुर ने माधोसिंह का पक्ष लेकर ईश्वरसिंह से युद्ध करने के लिए राव दुर्जन से सहायता मांगी। पर राव दुर्जन ने जयपुर के विरुद्ध सक्रिय भाग नहीं लिया। सन् १७४७ में ईश्वरसिंह ने पेशवा बालाजी बाजीराव के दबाव में आकर उम्मेदसिंह को बून्दी का शासक स्वीकार कर लिया।† परन्तु पेशवा के दक्षिण में जाते ही उन्होंने राणोजी सिन्धिया के पुत्र जियाजी सिन्धिया से बातचीत कर बून्दी पर आक्रमण करने के लिये मराठों से सहायता मांगी। बून्दी में दलेलसिंह राजगद्दी पर बैठा। इसके बाद कोटे पर होल्कर व दलेलसिंह सहित ईश्वरसिंह ने आक्रमण किया।

उम्मेदसिंह पुनः घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करने लगा। परन्तु वह निराश नहीं हुआ। जोधपुर नरेश अभयसिंह से थोड़ी सेना लेकर बीचड़ी के स्थान पर दलेलसिंह को हराया। दलेलसिंह भाग कर जयपुर पहुँचा और पुनः बून्दी न जाने की इच्छा प्रकट की। पर ईश्वरसिंह बून्दी छोड़ना नहीं चाहता था। अमरपुरा में उम्मेदसिंह ईश्वरसिंह से हार कर घुमक्कड़ी हो गया। इस बार महाराव दुर्जनशाल ने मल्हारराव होल्कर को उम्मेदसिंह की सहायता के लिए लिखा। ७ अगस्त १७४८ ई० में बगरु के स्थान पर होल्कर, कोटा व उदयपुर की सेना ने ईश्वरसिंह को बुरी तरह हरा कर उम्मेदसिंह को बून्दी का शासक बना दिया। ‡ होल्कर की सहायता प्राप्त करने के लिए कछवाही राणी ने पुनः अपने राखीबन्ध भाई को राखी भेजी थी। इस प्रकार मराठों की सहायता से १४ वर्ष तक घुमक्कड़ जीवन व्यतीत कर २३ अक्टूबर १७४८ में उम्मेदसिंह बून्दी की गद्दी पर बैठा। इन्हीं दिनों ईश्वरसिंह ने निरन्तर परेशान होकर आत्म हत्या करली।

मल्हारराव की इस सेवा के बदले में उम्मेदसिंह ने पाटण का परगना उसे दे दिया। पेशवा ने पाटण को तीन भागों में बाँट कर पेशवा, होल्कर व सिन्धिया को दे दिया। चूंकि पेशवा का भाग नाम मात्र का था अतः होल्कर

---

* वंशभास्कर पृ० ३३७४

† वीर विनोद भाग ३ पृ १२३७।

‡ वंशभास्कर चतुर्थ भाग ३३६०—१ टाड : राजस्थान भाग ३ पृ० १५०४–५।

ही उसका लाभ उठाया करता था।* इसके अलावा मल्हारराव को १० लाख रुपये दिए। इसमें से २ लाख उसी समय दिए गए। इसके बाद १८ जून १७५१ को ३ लाख रुपये मल्हारराव व जयअप्पा को तथा ५ लाख रुपया सतारा के खज़ाने में जमा कराना तय हुआ। मल्हारराव व जयअप्पा को बून्दी नेनवा आदि स्थानों की चौथ वसूल करने तथा सतारा राज्य में ७५,०००) सालाना रुपये देने का १७५१ की जून को तय हुआ।

उम्मेदसिंह ने महाराव दुर्जनशाल की सहायता से भी खोया हुआ राज्य प्राप्त किया था। अतः कोटा के शासक उम्मेदसिंह से हर परिस्थिति में सहायता की आशा करते थे। जब १७६१ ई० में माधोसिंह ने कोटा पर आक्रमण किया तो महाराव शत्रुशाल ने उम्मेदसिंह से सहायता मांगी। उम्मेदसिंह सेना सहित भटवाड़े के मैदान में आ डटा पर युद्ध में तटस्थ रहा। विजय शत्रुशाल की हुई। परन्तु वह उम्मेदसिंह से अत्यन्त नाराज हो गया और उसे दण्ड देने का निश्चय किया। ऐसे ही समय में मराठों के विरुद्ध उम्मेदसिंह ने महाराजा अभयसिंह जोधपुर नरेश को सहायता दी। यद्यपि अभयसिंह ने मराठों से ८०,००० रुपये देकर सन्धि करली परन्तु उम्मेदसिंह के इस व्यवहार से मराठे अप्रसन्न हो गए। ऐसा अवसर देखकर शत्रुशाल ने मराठों की सहायता प्राप्त कर उम्मेदसिंह को दण्ड देने की सोची। सन् १८६२ में महादजी सिन्धिया से सहायता प्राप्त की गई और कोटा सिन्धिया की संयुक्त सेना ने बून्दी को घेर लिया। हारकर उम्मेदसिंह ने सिन्धिया से सन्धि करली।† सिन्धिया को बून्दी की चौथ का अधिकार दिया गया। सिन्धिया ने महाराव शत्रुशाल को १७,१२०) रुपये चालीस दिन साथ रहने का सैनिक खर्च दिया।‡

इसके बाद जसवन्तराव होल्कर तथा महादजी सिन्धिया समय-समय पर बून्दी से चौथ वसूल करते रहे। बून्दी के शासक मरहठों की निरंकुश धन लेने की प्रणाली का विरोध न कर सके।§ जब भारत में अंग्रेजी सरकार की स्थापना हो गई और लार्ड वेलेजली की सहायक प्रथा ने मराठों को छोड़ सब

---

* टाड : राजस्थान तीसरा भाग, पृष्ठ १५०५ फुटनोट

† वंशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० ३७१०

‡ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृष्ठ ४५१, फुटनोट २

§ नाना फड़नवीस के मन्त्री काल में पाटण का परगना जो पेशवा को उम्मेदसिंह ने जयसिंह के विरुद्ध सहायता देने पर दिया था, होल्कर व सिन्धिया में विभाजित कर दिया गया। एक तिहाई भाग होल्कर को तथा दो तिहाई भाग सिन्धिया को प्राप्त हुआ। एचिसन : ट्रीटीज़, जिल्द ३ पृ० २१७

प्रकार की शक्तियों को अपनी ओर कर लिया उन्ही दिनों में बून्दी के राव उम्मेदसिंह की मृत्यु हो गई।

महाराव विष्णुसिंह मराठों से तंग आ चुका था। इसी समय सिन्धिया ने अंग्रेजों से हारकर सुर्जी अजनगाँव के स्थान पर १८०३ ई० में सन्धि करली। होल्कर पर विजय प्राप्त करने के लिए दिल्ली से कर्नल मानसन भेजा गया जो केप्टन लूकन की सहायता से कोटा की ओर चला ताकि वहाँ से पश्चिम की ओर से वह होल्कर पर हमला कर सके। कोटा के जालिमसिंह ने मानसन को सहायता पहुँचाई। बून्दी के राव विष्णुसिंह ने उस समय तो मानसन को कोई सहायता नहीं पहुँचाई जब कि वह सफलता प्राप्त कर रहा था। परन्तु जब मुकन्दरा की घाटी में जसवन्तराव होल्कर ने मानसन को बुरी तरह हराया और वह रक्षार्थ मारा-मारा फिर रहा था तब बून्दी के राव ने उसे शरण दी और दिल्ली की ओर उसे जाने दिया।* वंश प्रकाश में इस बात का उल्लेख है कि होल्कर के विरुद्ध मानसन की सहायता के लिए वकील सादुल्लाखाँ और टोकरा-वास के मगनसिंह, छगनसिंह, तलोदा के तिलोकसिंह, सांवत के हरिसिंह और गौड़ धीरसिंह आदि के साथ बून्दी की फौज को भेजा जो सिन्धिया और होल्कर की फौज का रास्ता रोकते रहे।† मुकन्दरा की हार के बाद मानसन तो दिल्ली चला गया। बून्दी की ख्यात तथा टाड ने इस बात का उल्लेख किया है कि बून्दी नरेश को दंड देने के लिए होल्कर और सिन्धिया ने बून्दी पर आक्रमण कर उसे अपने आधीन कर लिया। महाराव नाम के राजा रहे।

बून्दी के राव ने १८१७ ई० में अंग्रेजी सरकार को पिंडारियों के विरुद्ध पूर्ण सहायता दी। १८१८ ई० में बून्दी सरकार ने अंग्रेजों से मातहती की सन्धि कर ली। जो खिराज बून्दी नरेश होल्कर को देते थे वह माफ कर दिया गया और होल्कर से उनके परगने बून्दी को दिलाये गये। सिन्धिया के खिराज का हिस्सा ८०,००० रुपया सालाना अंग्रेजी सरकार को देना तय किया गया जिसके एवज में परगना पाटख जो सिन्धिया व होल्कर के कब्जे में था, बून्दी को दिलाया गया। बाद में पाटण का हिस्सा सिन्धिया ने अंग्रेजों को दे दिया और सन् १८४७ ई० में कुल पाटण अंग्रेजों की ओर से बून्दी को इस शर्त पर मिला कि वे उसकी एवज में ८०,०००) रुपया सिन्धिया को देते रहेंगे। १८६० ई० में यह पाटण का खिराज ८०,०००) का तथा १८१८ की सन्धि के

---

* टाड : राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५१६-१७

† वंश प्रकाश, पृष्ठ ११२

अनुसार ४०,००० रुपया अंग्रेजी सरकार के खजाने में जाने लगा।*

बून्दी राज्य का अंग्रेजों से सम्बन्ध

हाड़ा चौहानों की भूमि बून्दी और उसके शासक जो सदियों तक मुगल सल्तनत के सहायक बने रहे, वे बिना युद्ध किए अंग्रेजों के अधीन हो जाए; इस पृष्ठभूमि में मराठों का प्रभाव इस युग की दर्दनाक कथा है। अंग्रेजों और बून्दी के राव का प्रथम सम्बन्ध ई. सन् १८०४ में होल्कर के विरुद्ध मानसन के मुकन्दरा युद्ध में हुआ था जबकि लौटती हुई थकी व हारी हुई सेना को बून्दी महाराव ने सहायता दी। इसके बदले में उन्हें सिन्धिया व होल्कर का कोप भाजन बनना पड़ा।† ई. सन् १८१७ के पिण्डारी युद्ध में भी बून्दी के राव ने अंग्रेजों को सहायता दी। इस प्रकार बून्दी के राव के मराठी विरोधी दृष्टिकोण व नीति से अंग्रेजों को उत्तरी भारत में मराठों व पिण्डारियों को नष्ट करने में सहायता प्राप्त हुई। बून्दी के महाराव मराठा पतन के समय स्वतन्त्र इकाई के रूप में रखने की शक्ति नहीं रखते थे और न अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति भारतीय शासकों को इस रूप में रखना चाहती थी। अतः अंग्रेजी सरकार ने बून्दी महाराव को अंग्रेजों से सन्धि करने को बाध्य कर दिया। यह सन्धि महाराव विष्णुसिंह से १० फरवरी सन् १८१८ ई० में हुई। इस सन्धि की निम्नलिखित शर्तें थी—

(१) महाराव बून्दी व उसके उत्तराधिकारियों और अंग्रेजी सरकार के बीच मित्रता और सहयोग बना रहेगा।

---

* टाड : राजस्थान भाग ३, पृ. १५१८, फुटनोट १

† टाड : उपरोक्त पृ. १५१६–१५१७, वंश प्रकाश : पृ. सं. ११२

(२) अंग्रेजी सरकार बून्दी महाराव को अपनी सुरक्षा के अन्तर्गत रखेगी।

(३) बून्दी का महाराव अंग्रेजों की सार्वभौमिकता को स्वीकार कर उनसे हर रूप में सहयोग करेगा। बून्दी का शासक अंग्रेजी सरकार की सहमति के बिना किसी अन्य राज्य पर हमला नहीं करेगा। यदि ऐसा हुआ तो अंग्रेजी सरकार के निर्णय को स्वीकार करेगा। राजा अपने राज्य में स्वतन्त्र रहेगा और अंग्रेजी सत्ता का उसमें प्रवेश नहीं होगा।

(४) अंग्रेजी सरकार बून्दी के राजा का वह खिराज जो होल्कर महाराजा को दिया जाता था, और जो होल्कर ने अंग्रेजी विजय पर उन्हें दे दिया था, मुक्त करेगी। अंग्रेजी सरकार बून्दी का वह भाग जोकि होल्कर के आधीन था वह बून्दी को लौटा देगी।

(५) बून्दी महाराव अंग्रेजों को वही खिराज देगा जोकि वह सिन्धिया को दिया करता था। यह खिराज इस प्रकार था—

पूर्ण खिराज · · · · ८०,०००) (दिल्ली सिक्का)
पाटण परगना का दो-तीहाई हिस्सा ४०,०००)
परगना आरेला, समन्दी, कुरवार आधा
बूरन्दून का एक तिहाई का खिराज
बून्दी की चौथ   ४०,०००)
                    ————
                    ८०,०००)

(६) अपनी शक्ति के अनुसार बून्दी के महाराव अंग्रेजी सरकार को आवश्यकता पड़ने पर सहायता देते रहेंगे।

इस सन्धि के बाद अंग्रेजी सरकार को यह ज्ञात हुआ कि पाटण का परगना होल्कर और सिन्धिया ने बून्दी से जबरदस्ती नहीं छीना था बल्कि महाराव उम्मेदसिंह ने पेशवा को जयपुर के विरुद्ध सहायता देने पर दिया था और नाना फड़नवीस के मंत्रित्व काल में इस परगने का एक तिहाई भाग होल्कर और दो तिहाई भाग सिन्धिया में विभाजित कर दिया गया था। इस क्षेत्र से बून्दी होल्कर और सिन्धिया को कोई खिराज नहीं देता था। होल्कर के अंग्रेजों की मन्दसौर सन्धि तथा ग्वालियर के साथ सन्धि में केशोराय पाटण के खिराज का

उल्लेख नहीं था सिर्फ बून्दी के खिराज का ही उल्लेख था। अतः जब बून्दी का पाटण का भाग अंग्रेजों को सन्धि के द्वारा प्राप्त हुआ तो यह होल्कर व सिन्धिया की सन्धियों के अनुसार अवैध हो जाता था। अतः पाटण से ४०,००० खिराज अंग्रेजी सरकार ने नहीं लिया परंतु बून्दी को होल्कर का जो एक तिहाई भाग दिया गया था, वह पुनः होल्कर को लौटाया गया और अंग्रेजी सरकार ने होल्कर को इसके मुआवजे के प्रतिफल स्वरूप ३०,०००) रुपया वार्षिक देना तय किया।*

महाराव विष्णुसिंह की मृत्यु १८२१ ई० में हो गई। उसका पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा परन्तु वह १० वर्ष का ही होने के कारण राज्य का शासन भार चार सरदारों की एक परिषद् को सौंपा गया जो अंग्रेजी रेजीडेन्ट के तत्वावधान में कार्य करने लगी। सन् १८३१ में राव रामसिंह ने अजमेर में राजपूताने के राजाओं के सम्मेलन में उपस्थित होकर लार्ड विलियम बैंटिङ्क को जोकि उस समय अंग्रेजी भारत का गवर्नर जनरल था और अजमेर आया हुआ था, अपनी राज्य भक्ति प्रदर्शित की। १८४४ में सिंधिया ने अंग्रेजी सरकार को केशोराय पाटण के परगने का खिराज देना स्वीकार किया। बून्दी के महाराव ने इस क्षेत्र को तब उनसे मांगा परंतु सिंधिया अपनी सार्वभौमिकता इस क्षेत्र से हटाना नहीं चाहता था। बाद में २९ नवम्बर, १८४७ई० को बून्दी, सिंधिया और अंग्रेजों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार केशोराय पाटण का परगना बून्दी को दे दिया गया। इसके बदले में बून्दी द्वारा ८०,०००) रुपया अंग्रेजों को खिराज के रूप में देना निश्चित हुआ। इसके अलावा ३४३०।≡)।।। इस परगने के कर्मचारियों की पेन्शन भी देने का इकरार महाराव बून्दी ने किया। पाटण परगने के सम्बन्ध में सिंधिया ने जिस प्रकार की सार्वभौमिकता अंग्रेजों की स्वीकार की, उसी प्रकार की सार्वभौमिकता बून्दी के शासक ने भी स्वीकार की।

महाराव रामसिंह के काल में अंग्रेजों के विरुद्ध १८५७ ई० की क्रांति हुई। इस क्रांति का प्रभाव राजपूताने में भी पड़ा। नसीराबाद की छावनी तथा नीमच में विद्रोह हुए। जोधपुर के आउवा ठाकुर ने क्रांति में भाग लिया। कोटा 'कन्टीन्जेन्ट' ने कोटा में अंग्रेजों की सत्ता को उखाड़ फेंका। बून्दी के महाराव का कोटा के शासक रामसिंह से अनबन हो गई थी। अतः बून्दी के महाराव की सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ रही। इस पर अंग्रेजी सरकार ने

---

* एचीसन ट्रीटीज तृतीय भाग, पृष्ठ २१७–२१८

महाराव रामसिंह से पत्रव्यवहार तीन साल तक बन्द रक्खा ।* वंश प्रकाश में इस बात का उल्लेख है कि नीमच के विद्रोही तत्वों को शान्त करने मेजर बर्टन जब गए तो बून्दी की सेना ने उन्हें सहायता दी और जब विद्रोहियों ने बून्दी पर धावा किया तो बून्दी की सेना ने उन्हें परास्त किया ।†

१८५७ की क्रांति के बाद १८५८ में महारानी विक्टोरिया ने जो घोषणा की उसमें ईस्ट इंडिया कम्पनी का अन्त हो गया तथा भारतीय नरेशों को गोद लेने की की अनुमति प्राप्त हो गई ।‡ १८६२ ई० में बून्दी के शासकों व उनके उत्तराधिकारियों को गोद लेने का अंग्रेजी आज्ञापत्र प्राप्त हुआ । १८६६ की सन्धि से दोनों शक्तियों ने बून्दी के शासक व अंग्रेजी राज्य—एक दूसरे के अपराधी को सौंपने का वादा किया परन्तु इस सन्धि में ई. सन् १८८८ में यह संशोधन कर दिया गया कि अंग्रेजी राज्य से भागे हुए अपराधी जो बून्दी में प्रवेश करेंगे उन्हें अंग्रेजी सरकार को सौंपा जायगा । ई. सन् १८६७ में अंग्रेजी सरकार ने राव रामसिंह को १७ तोपों की सलामी देकर सम्मानित किया । ई. सन् १८७७ में लॉर्ड लिटन ने देहली दरबार के अवसर पर बून्दी नरेश को जी. सी. एस. आई. का पदक दिया और महारानी के परामर्शदाता की उपाधि भी दी गई । ई. सन् १८८२ में बून्दी राज्य में नमक उत्पादन करने का पूर्ण अधिकार अंग्रेजी राज्य को सौंप दिया गया जिसके बदले में अंग्रेजी सरकार ने वार्षिक आठ हजार रुपया बूंदी को देना तय किया ।

१८६० तक अंग्रेजी प्रभाव बूंदी पर स्थायी रूप से जम गया था परंतु केवल कानूनी तौर पर अंग्रेज समय समय पर बूंदी राव से सुविधा प्राप्त करने की संधि करते गए । इस प्रकार की एक संधि महाराव रघुवीर सिंह के साथ १६०५ में हुई जिसके द्वारा नागदा–मथुरा रेल मार्ग के निर्माण के लिए बूंदी का मार्ग प्राप्त किया गया । प्रथम महायुद्ध (१६१४–१६१६) के समय महाराव रघुवीरसिंह ने बूंदी के समस्त साधन अंग्रेजी सरकार को सौंप दिये थे जिससे युद्ध में सहायता दी जा सके । युद्ध के बाद १६२० ई. में महा-राव बूंदी ने केशोराय पाटण की सार्वभौमिकता प्राप्त करने व १८४७ की संधि

---

* एचीसन जिल्द ३, पृ. २१८

† वंश प्रकाश पृ. १२१–१२३

‡ लार्ड डलहौजी ने ई. सन् १८४७ ने गोद न लेने की प्रथा प्रारम्भ की जिससे कुछ भारतीय नरेशों ने क्षुब्ध हो ई. सन् १८५७ की क्रान्ति में भाग लिया था ।

की धारा ५ को समाप्त करने की प्रार्थना अंग्रेजी सरकार से की ।* इस संबन्ध में एक नई संधि २६ अप्रेल, १६२४ में हुई जिसके आधार पर केशोराय पाटण के परगने का पूर्ण अधिकार बून्दी को दिया गया और ८०,००० रु. जो नाम मात्र का लगान था, वह खिराज में बदल दिया गया यह धनराशि दो किश्तों में देनी तय हुई—जो जनवरी व जुलाई माह में कोष में जमा होती थी। यह भी तय हुआ कि पेन्शनरों के वंशजों को व उनके उत्तराधिकारियों को ६६६) रु. तेरह आना वृत्ति के रूप में बून्दी राज्य दिया करेगा ।† रघुवीरसिंह की मृत्यु (१६२७) के बाद उसका भतीजा ईश्वरीसिंह बून्दी की गद्दी पर बैठा । उसे अंग्रेजी राज्य ने बून्दी का शासक २८ नवम्बर, १६२७ के फरमान द्वारा स्वीकार किया । इसके काल में दूसरा महायुद्ध हुआ । सन् १६४२ ई. में इसने अपने दत्तक पुत्र बहादुरसिंह को युद्ध में सक्रिय भाग लेने के लिए भेजा । बहादुरसिंह बर्मा के युद्ध क्षेत्र में जापानियों के विरुद्ध लड़ा और विजय प्राप्त की । १६४५ में ईश्वरीसिंह की मृत्यु के बाद बहादुरसिंह गद्दी पर बैठे । उन्होंने बून्दी में राजकीय सुधारों की घोषणा कर शासन को उदारवादी बना दिया । उन दिनों भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था । बून्दी उससे अछूता न रहा । जब ई. सन् १६४७ में भारत से अंग्रेजों ने प्रस्थान किया तो बून्दी के शासक को यह स्वतन्त्रता देदी गई थी कि वे भारत में सम्मिलित हों या स्वतंत्र रहें लेकिन बून्दी के महाराव बहादुरसिंह ने संयुक्त राजस्थान के निर्माण में पूर्ण सहयोग दिया। २५ मार्च १६४८ ई. को बून्दी, छोटा राजस्थान जो कोटा के नेतृत्व में निर्मित हुआ था, विलीन हो गया ।

बून्दी में राजनैतिक चेतना

बून्दी में राजनैतिक जागृति ई. सन् १६३१ से आरम्भ हुई जब यहां की फौज के एक उच्च अधिकारी श्री नित्यानन्द नागर ने प्रसिद्ध नमक आन्दोलन

* इस धारा के अनुसार यदि महाराव बून्दी व उसके उत्तराधिकारी ने अपने खिराज को निर्धारित समय पर नहीं देंगे या १८४७ की शर्तों को अमान्य करेंगे तो वे केशोराय पाटण का दो तिहाई भाग व बाकी एक तिहाई भाग जो स्वयं महाराव के पास था, अंग्रेजों को दे दिया जावेगा ।

† एचीसन जिल्द ३, पृ. २३७–२३८

में भाग लिया। श्री नागर की जागीर व सम्पत्ति इस कारण जब्त करली गई।* १९४२ ई. के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' पर यहां के लोगों ने भी उसके समर्थन में जलूस निकाले। इसके बाद १९४६ में और रियासतों की भांति यहाँ भी प्रजा परिषद् की स्थापना हुई। अन्य परिषदों की तरह इसकी स्थापना का उद्देश्य उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था। उत्तरदायी शासन की मांग पर एक संविधान का मसविदा तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई लेकिन इस समिति की रिपोर्ट पर अमल नहीं किया गया। जनता ने बाद में अपने शासक के प्रति असंतोष प्रदर्शित करने को सार्वजनिक सभाएं की। इन सभाओं पर सरकार की ओर से लाठियां भी चलाई गई। अतः ई. सन् १९४७ में महाराव ने सुधारों की घोषणा की। सुधारों की घोषणा के बाद ही १५ अगस्त. १९४७ को भारत स्वतंत्र हो गया। तब महाराव बून्दी ने राजस्थान प्राँत के निर्माण में पूर्ण सहयोग दिया। २५ मार्च १९४८ को यह राज्य राजस्थान संघ में सम्मिलित हो गया।

बून्दी राज्य के सामन्त

बूंदी राज्य के जागीरदारों और सरदारों को अपनी जागीरों पर वंश परम्परागत अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उन्हें नकद भत्ता या जागीरें सेवाओं के

* श्री नागर का स्वर्गवास अभी २६-१२-१९५९ को ८० वर्ष की आयु पाकर हुआ है। अपनी स्वतन्त्रता की अदम्य लालसा के कारण उन्होंने वर्षों तक अपना जीवन जेल में ही बिताया! महात्मा गांधी के महाप्रयाण के पश्चात उन्होंने अपना व अपने समस्त परिवार का कांग्रेस से सम्बन्ध यह कह कर कि "हम जैसों के लिये कांग्रेस में स्थान नहीं रहा" सदा के लिये अलग कर लिया था।

बदले में मिलती हैं। इन जागीरों का रखना या जब्त करना दरबार की मर्जी पर निर्भर हैं।* जागीरदार के सबसे बड़े पुत्र की जानशीनी होती है और वह भी बूंदी नरेश की मंजूरी से। दरबार से मंजूरी हासिल किये बिना किसी सरदार को गोद लेने का अधिकार नहीं है।

इस राज्य में कुल २७ मुख्य सरदार हैं, जिनमें से १७ हाड़ा चौहान और ३ राजाओं के अनौरस पुत्रों की सन्तान में हैं। इन २० सरदारों को दरबार में नरेश के दाहिनी तरफ बैठने का अधिकार है। अनौरस पुत्रों (खवास वालों) की जागीरें उनके वंश में केवल तीन पीढ़ी तक रहती हैं। इसके बाद उन पर राज्य का हक हो जाता है और वास्तविक अधिकारियों को नीचे लिखे अनुसार गुजारे की रकम मिल जाती है—

(१) चौथी पीढ़ी में अर्थात् जिसको सर्वप्रथम जागीर मिली थी उसके प्रपौत्र के पुत्र को जागीर की आय का तीसरा हिस्सा,

(२) पांचवी पीढ़ी में चौथा और छठी पीढ़ी में आठवां हिस्सा,

इसके बाद किसी प्रकार की रकम नहीं दी जाती है और न उन्हें गोद लेने का हक रहता है। ऐसे जागीरदारों के ऋण का उत्तरदायित्व राज्य पर नहीं होता है और जागीर जब्त हो जाने के बाद ऐसा कर्जा राज्य से वसूल नहीं किया जा सकता है।†

शेष ७ सरदारों में से पाँच सोलंकी, एक राठौड़ तथा एक शेखावत (कछवाहा) वंश का है जो बांई ओर बैठते हैं। मुख्य सरदार इस प्रकार है—

दुगारी—यहाँ के सरदार महाराज इन्द्रसिंह हाड़ा, जुनिया ठिकाने के उमराव के तीसरे पुत्र हैं। इनका जन्म सं. १९४५ वि. (ई. सन् १८८०) में हुआ। इस जागीर के उत्तराधिकारी सं. १९६३ चैत्र (ई. सन् १९०० मार्च) मास में हुए जबकि दुगारी के महाराज शंभूसिंह निःसन्तान गुजर गये। इस ठिकाने की आय ९ हजार रु. सालाना है और यह ठिकाना सर्व प्रथम सं.१८२६ (ई. सन् १७६९) में महाराव राजा उम्मेदसिंह के पुत्र महाराव सरदारसिंह को मिला था। यह ठिकाना राज्य को कोई खिराज न देकर केवल चाकरी (सेवा) देता है।

---

* अब कुल जागीरें राजस्थान भूमिसुधार व जागीर पुनर्ग्रहण एक्ट के अन्तर्गत पुनर्ग्रहित कर ली गई हैं।

† बून्दी एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सन् १९४०–४१ पृ. १४

जुनिया—यहां के सरदार महाराज शिवराजसिंह अपने पिता शिवदानसिंह के उत्तराधिकारी हुए। यह जागीर दुगारी जागीर का ही हिस्सा है, जो दो भाई शंभूसिंह और शिवदानसिंह ने अपने पिता महाराव देवीसिंह की मृत्यु पर आपस में बांट ली। इस ठिकाने की आय ३,७५०) रु. सालाना है। राज्य को खिराज नहीं दिया जाता है पर चाकरी देनी पड़ती है।

जजावर—यहां के महाराज अखेराजसिंह महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र महासिंह के वंशज हैं। अपने पिता महाराज बैरीशालसिंह के ये वि. सं. १९७६ कार्तिक (ई. सन् १९१९ नवम्बर) मास में उत्तराधिकारी हुए। ये जागीर सं. १६५८ (ई. सन् १५७१) में स्थापित हुई। जागीर की आय ६,५००) रु. है। खिराज की रकम ३९०) रु. है। तारागढ़ किले में पहले यहां से ४५ पैदल सिपाही भेजे जाते थे। उसके बदले में ४२२) रु. सालाना दिया जाता है।

पागरण—यहां के सरदार ठाकुर सिंहसाल सोलंकी वंश के राजपूत हैं। ये सं. १९७१ (ई. सन् १९१४) में अपने पिता ठाकुर इन्द्रसाल के उत्तराधिकारी हुए। सं. १८१५ (ई. सन् १७५८) में यह जागीर इस घराने को इनायत हुई थी। इसकी आमदनी ५,३००) रु. सालाना है तथा यहां से राज्य को खिराज के ३००) रु. और ९ घुड़सवारों के बदले ३५० वार्षिक मिलते हैं।

बरूंधा—यहां के ठाकुर शंभूसिंह १८ वर्ष की आयु में ई. स. १९२५ में अपने पिता स्वर्गीय ठाकुर शिवदानसिंह के उत्ताराधिकारी हुए। यह जागीर सं० १८०५ (ई. स. १७४८) में महाराव उम्मेदसिंह को मिली थी। यहां की आमदनी २९,००) रु. सालाना है और राज्य को कोई खिराज नहीं दिया जाता है।

धोवड़ा—यहां के महाराज शिवदानसिंह ई. सन् १९१८ अक्टूबर मास में अपने पिता महाराज मोड़सिंह के उत्तराधिकारी हुए। ये महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र महासिंह के वंशज हैं। सं. १८०४ (ई. स. १७४७) में यह जागीर इस घराने को इनायत हुई थी। यहां के स्वामी १७ घुड़सवारों की सेवा के बदले में ६००) रु. और खिराज के ५४०) रु. सालाना राज्य को देते हैं।

खरेड़ का पीपल्दा—यहां के स्वामी श्यामसिंह बून्दी नरेश रावरतन के पुत्र हरिसिंह के वंश में है। महाराज जसवन्तसिंह के निःसंतान गुजरने पर सं. १९८२ (ई. सन् १९२५) में जागीर इन्हें मिली। ये जागीर सं० १६२७ (ई. स. १७७०) में पहले पहल इनायत हुई थी। इसकी वार्षिक आय दो हजार

रु. है । यहां से खिराज के १२०) रु. तथा चाकरी सेवा के बदले १३०) रु. बून्दी सरकार को मिलते हैं ।

सोरां—यहां के स्वामी महाराज चन्द्रभानसिंह हैं । इनकी आय ३०००) रु. है और ये खिराज के १८०) रु. तथा चाकरी के बदले २००) रु. सालाना देते हैं ।

बावड़ी खेड़ा—यहां के जागीरदार महाराज पृथ्वीसिंह हैं । जागीर की आय ३०००) रु. सालाना हैं । राज्य को कुछ भी खिराज का नहीं देते हैं ।

जैतगड़—यहां के स्वामी महाराज हरिनाथसिंह महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र महासिंह के वंशज हैं । यह जागीर सं. १८०६ (ई. स. १७४९) में इनायत हुई । यहां की सालाना आय ४६००) रु. है । ६ घुड़सवारों की चाकरी के बदले में ३००) रु. तथा खिराज के २७६) रु. यहां से राज्य को मिलते हैं ।

दातूड़ा—यहां के सरदार रावत शिवसिंह शेखावत कछवाहा राजपूत हैं । वि. सं. १९७१ चैत सुदि ६, गुरुवार (ई. सन् १९१४ ता० २ अप्रेल) को रावत मुकन्दसिंह की मृत्यु पर ये इस ठिकाने के स्वामी हुए । यह जागीर इस वंश को सं. १८८० वि. (ई. सन् १८२३) में इनायत हुई । इस ठिकाने की सालाना आय ३०००) रु. हैं और खिराज के १८६) रु. और ३ सवारों की चाकरी के बदले २००) रु. सालाना राज्य को देते हैं ।

नैगढ—यहां के ठाकुर धूलसिंह अपने पिता ठाकुर छत्रसिंह के उत्तरकारी हुए । इस ठिकाने की आय १७५०) है और ये खिराज के १०५) रु. तथा चाकरी के बदले १२०) रु. सालाना राज्य को देते हैं ।

अजाता—यहां के जागीरदार ठाकुर जवाहरसिंह हैं । आपको इस जागीर से सालाना दो हजार रु. की आय है । ये खिराज के ११०) रु. व चाकरी (सेवा) के बदले १२०) रु. राज्य में भरते हैं ।

मालकपुरा—यहां के शिवराजसिंह को इस जागीर से ३७५०) रु. की आय है । खिराज के २२५) रु. और चाकरी के बदले में २००) रु. ये राज्य को देते हैं ।

बून्दी राज्य का वंश वृक्ष

(Contd. in last page)

(२१) विशनसिंह
(२२) रामसिंह
गोपालसिंह
भीमसिंह
रंगनाथसिंह
(२३) रघुवीरसिंह
रंगराजसिंह
रघुराज
रघुवीर
रघुवेन्द्रसिंह
(२४) ईश्वरीसिंह
(२५) बहादुरसिंह (दत्तक)
म. कु. रणजीतसिंह
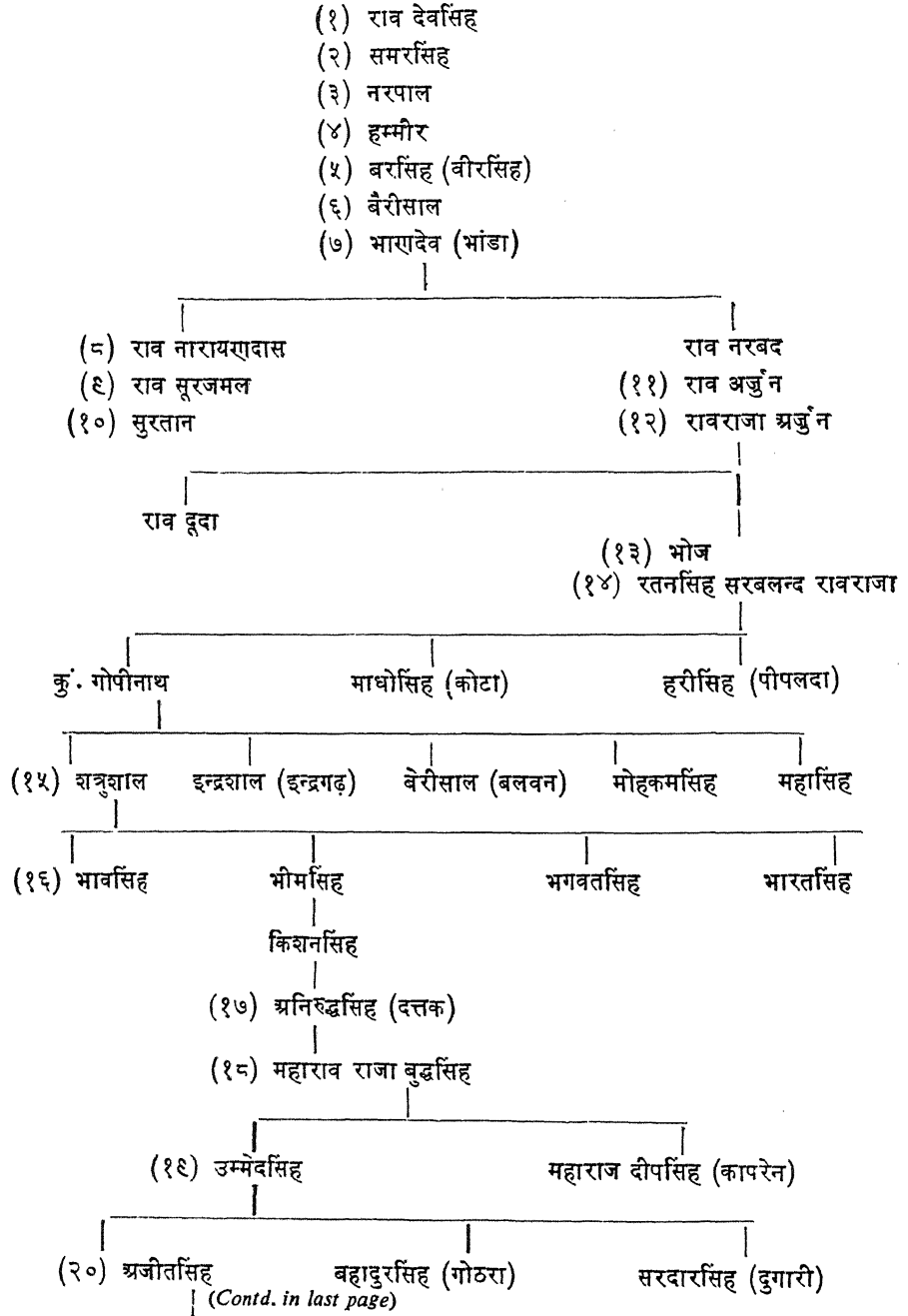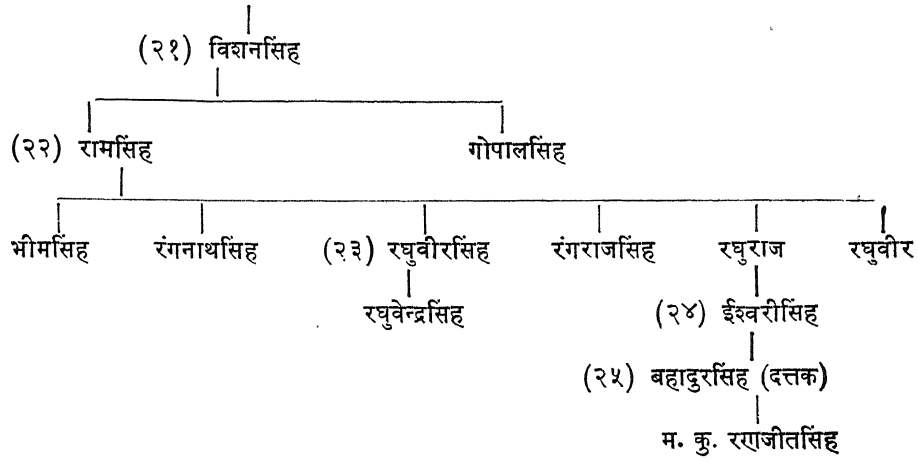
शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१६	२५	अधिक सिंचित	अधिक कर सिंचित
१७	११	एक सेनापति	एक अन्य सेनापति
३०	४	संवत १६८१ में	संवत १६८१ (सन् १६२४ ई०) में
३०	फुटनोट‡	जिल्द	जिल्द ३, पृ० २४४
३२	फुटनोट*	आदि पर्व पृ० ४६५१	आदि पर्व ४६-५१
३७	६	पन्द्रह वर्ष	बीस वर्ष
३७	७	वि० स ६२५ (ई० सन ८६८)	वि० सं० ८६० (ई० सन् ८३३)
३७	फुटनोट‡	१५×७=१०५=१०३० —१०५=६२५ वि० स०	२०×७=१४०; १०३७— १४०=८६० वि० सं०
३८	१	पुत्र गुवक	पुत्र गुमद्द
३८	३	वि० स० ८०० (ई० स० ७४३)	वि० सं० ८७२ (ई० सन् ८१५)
३८	४	का है।	का है।*
३८	१६	शासक हुआ	शासक हुआ¶
३८	फुटनोट	*बिजोलिया शिलालेख Their Cradle.... Suchtract Dr. D. R. Sharma Early Chohan Dynasties Page10	*Indian Antiquity vol. XL. Pp. 239-240. and vol. XLII Page 58 ¶Their Cradle...Such Tract *बिजोलिया शिलालेख
३९	२३	महम्मद गोरी	मोहम्मद गौरी
४०	२	बन्धु घाटी	बन्दु घाटी
४०	१२	राव लखण था या	राव लखण या
४०	१२	माणिक्य रहा।	माणिक्य रहा हो।
४०	२६,२७	केलख	कोलण
४१	१	केलण	कोलण
४३	फुटनोट १	की कल्पना मानकर इसे	की इसे कल्पना मानकर
४४	फुटनोट* ३	तिथि से	इस तिथि से
४६	५	अधिपति मानते भी	अधिपति मानते हुए भी

४६	६	(ई. सन् १४५६ ई. ८६३)	(ई. सन् १४५६)
५२	फुटनोट$ ३	१५६० ई०	१५३३ ई०
५३	फुटनोट†	टाड जिल्द ३ पृ० ७४६७	पृ० १४७६
५६	७	सं० १६११	सं० १५८८
५७	१	राजच्यूत	राजपूत्र न
६१	२२	बनाना शुरू किया	रचना शुरू किया
६२	१६	उसके अपराध	दूदा के अपराध
६५	१	इसी अहमदनगर के युद्ध	अहमदनगर के इस युद्ध
६५	५	किलों की बुर्ज	किले की एक बुर्ज
६५	फुटनोट‡ ४	अकबर ने	बाद में अकबर ने
६६	१२-१३	बाद में सं० १६७१ वि०	बाद में वि० सं० १६७१
६७	१०	भांसी	भूँसी
६७	११	१८८०	१६८०
६७	फुटनोट १	(जहांगीर का चौथा पुत्र)को	शहरयार (जहांगीर का चौथा पुत्र) को
६७	फुटनोट २	अतः शहरयार खुर्रम को कन्धम	अतः खुर्रम को कन्धार
६७	फुटनोट‡	जहांगीरी जिल्द	तुजके जहांगीरी
६८	३	गागरूया	गागरोण
६८	फुटनोट	वंश-भास्कर	*वंश-भास्कर
६९	६	ये राव...थे	यह राव........था।
६९	१५	और देकर बूस्दी	और बून्दी
७०	१	खानेजमा	खानेजहां
७१	फुटनोट†	भाग ४	भाग १
७३	१	नाराज था लेकिन इसके	नाराज था। इसके
७४	फुटनोट† १	मनुर्खा	मनुषी
७६	४	दुर्जनसिंह मडग्ठो	दुर्जनसिंह मरहठों
७९	१२	देखा कि मैं फर्रूखसियर	वह फर्रूखसियर
	१३	और मेरी जान	और उसकी जान
८०	२७	अनौरस बतलाता था	बतलाने लगा।
८७	१५	मगकेर शुक्ला	मिगसर शुक्ला
	१६	मरवाड़ा	भटवाड़ा
९१	२०	हमारे छुट भैया	उनके छुट भैया
	२८	सूदि १० को	सुदि १०
९२	१	हटाया जाकर	हटाया गया और
	५	(ई० स० १०९८)	(ई० मन् १७९८)
९३	५	शिर	सिर
	६	और श्रीजी	श्रीजी

९३	७	मैं अब	वह अब
	८	सकूंगा	सकेगा
	११	पर अपना अधिकार	पर अधिकार
	१७	१८३०	१८६७
	२७	तथा संधिया	तथा सिंधिया
९४	६	१८ हजार रु०	८० हजार रु०
	१०	वार्षिक सिन्धिया को देते	वार्षिक देते ।
	१९	अधीनस्थ	अधीन
९५	२	(१८२३ A.D.)	(ई० सन् १८२३)
	६	चले आया ।	चला आया ।
	१९	इसने एक इन्द्रजीत	इसने इन्द्रजीत
	२२	इसलिए दूसरे	इसलिए
९७	१७	अधिक थी और इन	अधिक होने से इन
९८	११	इन्सने	इसने
१०३	१६	इन्सने	इसने
१०५	२४	बून्दी को	बून्दी के
१०६	४	९४५	१९४५
१०८	८	१० लाख	२० लाख
१०९	६	४००(३४३ ई०)	१४००(१३४३ ई०)
	१५	१४५९	१४४९ ई०
	१६	१४५९ के	१४५९ में
	२०	मुसलमाने अमरकन्दी और समरकन्दी रखा ।	मुसलमानों ने अमरकन्दी और समरकन्दी रखा
११२	७	नागोर के	आमेर के
११३	२२	राव सुजान	राव सुर्जन
११४	१४	१६७०	१६००
	२३	स्थापित कर लिया	स्थापित किया ।
११७	४	शत्रुशाल ने दिल्ली के की हैसियत से,	शत्रुशाल दिल्ली का सुबेदार था,
१२७	१३	महाराजा अभयसिंह	महाराजा विजयसिंय
	१४	अभयसिंह ने मराठों से	विजयसिंह ने मराठों को
१२८	१६	मानसन तो दिल्ली	मानसन दिल्ली
	२५	पाटख	पाटण
	२९	यह पाटण	पाटण

कोटा राज्य

भौगोलिक व आर्थिक विवरण[1]

नाम—आधुनिक राजस्थान के पांच डिवीज़नों में कोटा डिवीजन भी एक है। इसमें भूतपूर्व राजपूताने की ३ रियासतें—कोटा, बून्दी व झालावाड़ शामिल हैं। कोटा राज्य राजपूताना प्रान्त के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। इस राज्य की राजधानी कोटा का नाम कोटिया नाम के भील नेता के कारण पड़ा और इसी से इस राज्य का नाम कोटा है।

सीमा—इस राज्य के उत्तर पश्चिम में चम्बल नदी है जो इसे बून्दी राज्य से अलग करती है। इस राज्य के उत्तर में जयपुर और टोंक राज्य; पश्चिम में बून्दी और उदयपुर राज्य; दक्षिण-पश्चिम में इन्दौर, झालावाड़ राज्य और ग्वालियर राज्य की आगरा तहसील है; दक्षिण में खिलचीपुर और राजगढ़ राज्य; और पूर्व में ग्वालियर राज्य और टोंक राज्य की छबड़ा तहसील है। इस राज्य का आकार चतुष्पद के समान है।

विस्तार—इस राज्य का क्षेत्रफल (आठ जागीर की कोटरियों सहित) ५,७१४ वर्ग मील है। यह २४ अंश, २७ कला तथा २५ अंश ५१ कला उतरांश और ७५ अंश ३७ कला तथा ७७ अंश २७ कला पूर्व रेखांश के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक—कोटरी इंद्रगढ़ के उत्तरी सिरे से निजामत मनोहरथाने के दक्षिणी सिरे तक—लगभग ११५ मील और अधिक से अधिक चौड़ाई पश्चिम से पूर्व तक—निजामत लाडपुरा के पश्चिमी सिरे से निजामत शाहपुरा के पूर्वी सिरे तक—११० मील है। इस राज्य में एक नगर, ४ कस्बे और २,५२५ गांव हैं।

पहाड़—कोटा राज्य का अधिकतर भाग पहाड़ी है। ये पहाड़ ज्यादातर दक्षिण की ओर हैं। ये निजामत लाडपुरा के दक्षिणी कोने से आरम्भ होकर

१ कोटा राज्य का भौगोलिक व आर्थिक विवरण १९४७ के अनुसार है जब कि यह एक अलग इकाई था।

निजामत चेचट और असनावर की उत्तरी सीमा बनाते हुए निजामत हकलेरा, बकानी, मनोहरथाना और छीपाबड़ौद में फैले हुए हैं। ये पहाड़ मालवा घाट के उत्तरी भाग में हैं। यों कोटा राज्य का क्षेत्र प्राचीन काल में मालवा का ही एक भाग था। पहाड़ी भाग सम्पूर्ण राज्य का चौथाई भाग था। ये पहाड़ अरावली और विन्धयाचल पर्वत को मिलाते हैं। इनकी एक ऊँची चोटी लाडपुरा तहसील के दक्षिण में समुद्र की धरातल से १६०६ फुट ऊँची है। मालवा जाने का रास्ता इन पहाड़ियों में से ही होकर है। सबसे अच्छा व सुगम रास्ता निजामत चेचट के उत्तार पूर्वी भाग में मुकन्दरा (दर्रा) घाटी है। अभी रेल मार्ग इसी घाटी में से होकर निकाला गया है। इस पर्वत शृंखला की लम्बाई ६० मील के लगभग है। उत्तर की ओर इन्द्रगढ़ की पहाड़ियां हैं जो १५०० फुट के लगभग ऊँची हैं। सबसे ऊँची पहाड़ी इस राज्य के पूर्व में शाहबाद क्षेत्र में है जो भामूती की पहाड़ी कहलाती है और १८०० फुट ऊँची है। ये पहाड़ घने जंगलों से घिरे और झाड़ियों से ढके हैं।

नदियाँ—इस राज्य की मुख्य नदियाँ चम्बल (प्राचीन नाम चर्मणवती), काली, सिंध और पार्वती हैं जो बारहों महीने बहती हैं। अन्य छोटी नदियाँ आहू, परवन, अण्डेरी और कूर्ना हैं। ये सब नदियाँ उत्तर या उत्तर पूर्वी दिशा में
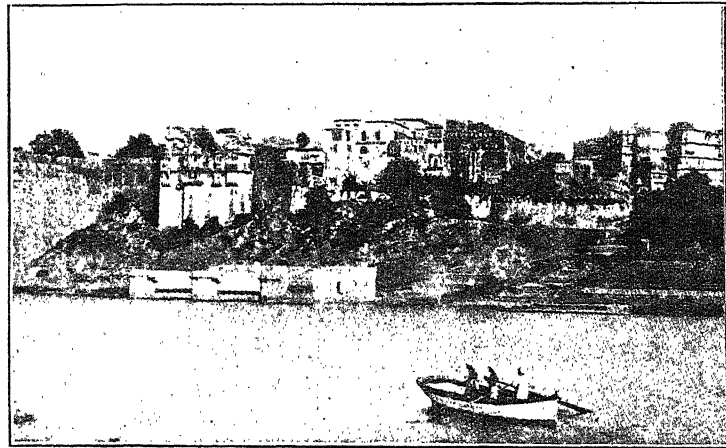
बहती हैं। चम्बल इन नदियों में सब से बड़ी और मुख्य नदी है। कोटा राज्य में यह लगभग ६० मील बही है। इस नदी में १९७० फुट लम्बा तथा १२० फुट ऊँचा एक बांध कोटा नगर के पास बनाया जा रहा है। इससे राजस्थान राज्य की लगभग ७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी तथा दो लाख तीस हजार

टन अतिरिक्त अनाज पैदा हो सकेगा और एक लाख किलोवाट बिजली तैयार की जा सकेगी। यह बांध १९६२ तक तैयार हो जायेगा।[1]

इस राज्य में चम्बल की दो बड़ी सहायक नदियाँ हैं—कालीसिन्ध और पार्वती जो विन्धयाचल पर्वत से निकल कर इस राज्य के दक्षिण में होकर प्रवेश करती हैं। कालीसिन्ध गागरोण के किले के पास तथा पार्वती निजामत कुंजड़ के दक्षिण पूर्वी कोने से प्रवेश करती है। कालीसिन्ध के तट पर इस राज्य के प्रसिद्ध स्थान गागरोण, पलायता तथा बड़ौदा हैं। पार्वती के किनारे पर जलवाड़ा, फूसोद और खातोली हैं। कालीसिंध लगभग ३५ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर, इन्दौर व झालावाड़ राज्यों से अलग करती हुई बहती है और पार्वती लगभग ४८ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर और टोंक राज्य से अलग करती है। छोटी नदियों में आहू नदी महत्वपूर्ण है जो कोटा और झालावाड़ राज्य की सीमा नदी बन कर गागरोण के पास आकर कालीसिंध में मिल जाती है।

जलवायु—इस राज्य में तापक्रम गर्मी में अधिक से अधिक ११९० तथा सर्दी में कम से कम ४४० फारनहीट तक चला जाता है। इस राज्य में पानी का फैलाव ज्यादा रहता है अतः मच्छर ज्यादा होते हैं और इस कारण मलेरिया का प्रकोप बहुत रहता है। वर्षा का औसत ३० इंच है। कभी-कभी तो इतनी ज्यादा वर्षा होती है कि चम्बल में बाढ आ जाती है और कोटा नगर के कई हिस्सों में पानी भर जाता है।

भूमि व उपज—इस राज्य की ज्यादातर भूमि उपजाऊ और काली है। ऐसी भूमि चम्बल, पार्वती और अण्डेरी नदियों तथा दर्रे के पर्वत-श्रेणियों और कोटरियों के बीच में स्थित है। इसमें बारां, अन्ता, मांगरौल, इटावा, बड़ोद, दीगोद, लाडपुरा, कनवास, सांगोद, खानपुर और कुन्जेड़ की रियासतें आती हैं। यह भाग ज्यादातर मैदानी और उपजाऊ है। इसमें ईख, अफीम, तम्बाकू, रूई, तथा सब प्रकार के अनाज पैदा होते हैं। अफीम पहले यहां बहुत ज्यादा पैदा होती थी लेकिन अब सरकार के आदेशों के अनुसार उत्पादन कम किया जा रहा है। बारां में केन्द्रीय सरकार का अफीम का गोदाम है जहां से विभिन्न स्थानों को अफीम भेजी जाती है। अफीम बेचने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार का है।

यह राज्य राजपूताने का धान्य-भण्डार है। पश्चिमी राजपूताने के लोग अकाल के वक्त इस क्षेत्र में ही शरण लेते हैं। नदी व कुओं से काफी भाग में

---

१ चम्बल नदी के लिये विस्तृत विवरण बून्दी राज्य का इतिहास के पृ. ४–५ पर देखिये।

सिंचाई होती आई है। अब चम्बल नदी पर बांध बन जाने पर काफी सिंचाई होने लगेगी। अतः फिर तो यह क्षेत्र राजस्थान का सबसे बड़ा धान्यागार हो जायेगा।

जंगल—पार्वती नदी के पूर्व की ओर जंगल घने हैं। जंगलों में घास, लकड़ी, गोंद, महूवा, मोम, शहद आदि पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इनसे यहां के निवासी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं क्योंकि जंगली भागों में खेती कम होती है। अधिकतर पेड़ बबूल, गूलर, ढाक, बड़, सागवान, शीसम आदि के पाये जाते हैं। इन जंगलों में हिंसक पशु बहुत रहते हैं। सिंह, बाघ, चीता, रींछ, सांभर, हरिण, नीलगाय, बारहसिंहा, सूअर आदि बहुतायत से पाये जाते हैं। शाहबाद, किशनगंज, खानपुर, हकलेरा, कनवास और असनावर जंगली जानवरों के मुख्य आवास हैं। दर्रे की घाटी के आसपास इन जानवरों का अधिक शिकार किया जाता है। जंगली पक्षियों में चील, मोर, सिकरा, बाज, तोता, तीतर, गिद्ध, बटेर आदि होते हैं। गागरोण का तोता सर्वत्र प्रसिद्ध है। जल-पक्षियों में सारस, बगुला, बतक, जलमुर्ग आदि अधिक पाये जाते हैं।

संचार व्यवस्था—व्यापार की तरक्की के लिए तथा जनता की सुविधा के लिए यातायात की सुविधा होनी नितान्त आवश्यक है। रेल, सड़कों, तार, डाक आदि से ही राज्य की प्रगति सम्भव हो सकती है। कोटा राज्य में संचार व्यवस्था की प्रारम्भ से ही कमी रही है। महाराव भीमसिंह के शासन-काल में यहां हवाई अड्डा बनाया गया है परन्तु उसका विशेष उपयोग नहीं होता। केवल शोकिया हवाई जहाज उड़ाये जाते हैं। नदियों का, नावों द्वारा व्यापार नहीं होने के कारण कोई विशेष उपयोग नहीं होता है। वर्षा के दिनों में तो इनमें बाढ आ जाने के कारण खेती नष्ट हो जाती है। आवागमन के मार्ग रुक जाते हैं। सामान्य संचार-व्यवस्था के साधन रेल व सड़कें ही हैं और वे भी पर्याप्त नहीं हैं।

इस राज्य में दो रेल्वे लाईनें हैं। एक कोटा-बीना लाइन का भाग और दूसरी नागदा-मथुरा लाइन का भाग। कोटा-बीना लाइन कोटा राज्य में ६६ मील चली है। यह लाडपुरा, दीगोद, अन्ता, बारां और कुन्जेड़ की रियासत में से होकर निकलती है। इस पर कोटा राज्य के कोटा जंक्शन, दीगोद, भौरा, अन्ता, विजौरा, बारां, छजावा, अटरू और सालपुरा कुल ९ स्टेशन हैं। दूसरी रेल्वे लाइन कोटा जंक्शन से दक्षिण की ओर सुकेत तक ४५ मील लम्बी है। यह लाडपुरा, कनवास और चेचट की रियासतों में से गुजरी है। कोटा राज्य की सीमा में इस पर कोटा जंक्शन, कोटा सिटी, डाकन्या तालाब, डाडदेवी,

आलन्या, रांवठा, रोड, दर्रा, मोडक, और रामगंज मण्डी कुल ६ स्टेशन हैं। एक स्टेशन कोटा जंकशन के उत्तर में इन्द्रगढ स्टेशन भी है। इन रेल लाइनों से राज्य को ७० लाख रुपये सालाना की आय है।

कोटा राज्य में १९४७ ई० में पक्की सड़कें २७५ और कच्ची सड़कें ५७० मील लम्बी थीं। कच्ची सड़कें केवल गर्मी और सर्दी की मौसम में काम आती थीं। राज्य की सब तहसीलें सड़कों से सम्बन्धित थीं। वर्षा ऋतु में भूमि चिकनी होने के कारण व नदी-नालों की भरमार के कारण यातायात बन्द रहता था। मुख्य सड़कें निम्नलिखित थीं—कोटा से झालावाड़ (५३ मील पक्की सड़क), कोटा से बून्दी (२२ मील पक्की सड़क), कोटा से बारां (५० मील पक्की सड़क), कोटा से कुवाई (६६ मील सड़क) बून्दी से कोटा होता हुआ झालावाड़ को जाने वाली सड़क राष्ट्रीय राजपथ है। कोटा-बून्दी तथा कोटा-झालावाड़ सड़कों का रास्ता वर्षा के समय चम्बल व आहू नदी आ जाने के कारण रुक जाता है। उस समय नदी पार करने के लिए नावें काम में लाई जाती हैं। अब तो इन सड़कों का काफी विस्तार हो रहा है तथा नदियों में जगह-जगह रपटें बनाई जा रही हैं।

१९४७ में कोटा राज्य में ४५ डाकघर और ५ तारघर थे। अब तो इनकी संख्या निरन्तर बढती जा रही है।

खनिज पदार्थ—कोटा में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। पहले राज्य को इससे काफी आमदनी होती थी लेकिन धीरे धीरे विदेशी प्रतियोगिता के कारण इसकी आमदनी कम हो गई। खनिज पदार्थों में यहां पत्थर मुख्य रूप में मिलता है जो सफेद, लाल और काले रंग का होता है। कहीं-कहीं इसकी लम्बी-लम्बी पट्टियां निकलती हैं तो कहीं-कहीं छोटे-छोटे कातले और कहीं-कहीं केवल टुकड़े। यहां का सफेद पत्थर बहुत सुन्दर होता है। उस पर घड़ाई व छंटाई बहुत बढिया की जा सकती है। इसकी खानें मोडक, रामगंज मंडी व दर्रे तक फैली हुई है। लाल पत्थर की खानें निजामत लाडपुरा, कुन्जेड़ और खानपुर में पाई जाती हैं। लाल इमारती पत्थर लगभग सब जगह पाया जाता है। गेरू, रातई और पीली मिट्टी भी निजामत शाहबाद, इकलेरा और छीपाबड़ौद में पाई जाती है। अन्ता, मोडक, इन्द्रगढ, बारां खेड़ा और जगपुरा कसार में चूना बनाने का पत्थर बहुतायत से मिलता है। मोडक और इन्द्रगढ के पत्थर से सीमेन्ट बनाया जाता है।[1] लोहे की खानें शाहबाद और इन्द्रगढ की पहाड़ियों में स्थित हैं परन्तु उनका उपयोग नहीं किया जाता है क्योंकि आसपास कोयले

१ सवाई माधोपुर तथा लाखेरी में सीमेन्ट के कारखाने हैं

की खानें न होने के कारण लोहा निकालना महंगा पड़ता है। कहीं कहीं पर सुलेमानी पत्थर भी मिलता है। कुन्डी और मोठपुर के पास काच बनाने की रेत भी पाई जाती है। कोटा राज्य के क्षेत्र में खनिज भरे पड़े हैं। यदि इनका पता लगा कर निकाला जाय तो अमूल्य पदार्थ निकलेंगे।

धन्धा—यहां के लोगों का मुख्य धन्धा खेतीबाड़ी है। उपजाऊ काली मिट्टी होने के कारण तथा वर्षा व सिंचाई के पर्याप्त साधन होने के कारण कोटा के ज्यादातर लोग खेती करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यह क्षेत्र राजपूताने का धान्य-भाण्डार कहलाता रहा है। दोनों फसलें—रबी व खरीफ पर्याप्त मात्रा में यहां बोई जाती हैं। यह सब कुछ होते भी यहां का किसान वर्ग गरीबी में ही रहता आया है। इस क्षेत्र में भूमिहीन किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है। राज्य में बड़ी बड़ी धान की मण्डियाँ—कोटा, बारां, अन्ता, मांगरोल, सीसवली, सांगोद, खानपुर, सारोला, रामगंज आदि स्थानों पर हैं। यहां का दूसरा मुख्य धन्धा कपड़ा बुनना है। कोटा की मलमल, महमूदी, डोरिया आदि अपनी बारीकी और रंगों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। बारां के चून्दड़ी के बंधे हुए साफे व दुपट्टे अपनी बन्धाई के लिये प्रसिद्ध हैं। कोयला की रेजी प्रसिद्ध है। कैथून व मांगरोल करघा उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। प्राचीन काल में कोटा की तलवार प्रसिद्ध थी। अब तो तलवारों का कम ही उपयोग होता है।

सामाजिक, धार्मिक व साँस्कृतिक विवरण

निवासी—इस राज्य के अधिकांश निवासी आर्य और सिथियन वंश के है। भारत में जितने विदेशी आक्रमण हुए और विदेशी भारत में बसे वे सब कोटा के क्षेत्र में भी रहे। अतः कोटा जो कि मालवा का अंश कहलाया जाता

है, वहां कई जातियों का संघर्ष-स्थल रहा है। यही कारण है कि यहाँ मिश्रित जातियाँ अधिक पाई जाती हैं।

सामाजिक दृष्टि से आबादी विभिन्न जातियों में बँटी हुई है। इसका मोटा विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, कृषक व श्रमजीवी हैं। कृषकों में धाकड़, कराड़, मीणा व भील हैं। श्रमजीवी जातियों में चमार मुख्य हैं।

राजपूतों ने यहाँ शासन स्थापित कर अपना प्रभुत्व सामाजिक जीवन में भी स्थापित किया। उनके रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा तथा आचार-व्यवहार जनता अपनाने लगी। लोगों की खाँपें राजपूतों की खाँपों की तरह होने लगीं। इनका खाना-पीना बड़ा सादा था। आम जनता व कृषक लोग मक्की, जवार व घाट खाते हैं। माँस व मदिरा का प्रयोग कम किया जाता है परन्तु राजपूत वर्ग में इसका प्रयोग अधिक है। इनकी वेष-भूषा में धोती-अंगरखी तथा साफा मुख्य है। साफे के स्थान पर ज्यादातर पगड़ी बांधी जाती है। बहु शादी करने का रिवाज है। बड़े भाई की स्त्री को देवर से विवाह करने की प्रथा भी है। शादी-गमी के अवसर पर माहिरा किया जाता है। शादी के लिए बचपन में ही मँगनी तय करली जाती है और कभी कभी तो गर्भावस्था में ही शादी के वचन पक्के कर लिए जाते हैं। लड़की का जन्म अशुभ समझा जाता है। समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव अधिक है। अन्धविश्वास व अन्य कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियों के कोटा के लोग शिकार हैं। स्त्रियों का पहनावा घाघरा, काँचली व ओढ़नी होती है जो मोटे कपड़े की होती है। पर्दा-प्रथा व्यापक है। राजपूत स्त्रियें तो बहुत पर्दा करती हैं। आम जनता की स्त्रियाँ सिर्फ घूँघट निकाल लेती हैं। गहने पहनने का बड़ा शौक है। राज्य की तरफ से जिसे सोना बख्शा जाता है, समाज में उसकी इज्जत होती है। महाजन ऋण देने का काम करते हैं। परन्तु समाज में राजकीय पुरुष का प्रभाव अधिक होता है।

लोग अधिक पढ़ेलिखे नहीं हैं। पहली बार राज्य की ओर से शिक्षालय सम्वत् १८७२ में खोला गया जिसमें दो अंग्रेजी, दो फारसी, दो हिन्दी के अध्यापक नियुक्त किए गए और दस रुपये उनका मासिक वेतन था। स्त्री-शिक्षा भी प्रारम्भ की गई। प्रारम्भ में पांच लड़कियें ही पढने आती थीं। सन् १९४७ तक लोक-शिक्षण की अधिक प्रगति नहीं हुई। सम्पूर्ण कोटा राज्य में एक इन्टर कालेज (हरवर्ट इन्टर कालेज), तीन उच्च विद्यालय (हाई स्कूल) थे। हर तहसील में एक मिडल स्कूल तथा एक प्राइमरी स्कूल थी। शिक्षा उन्नति के लिए राजकीय आय का २५ प्रतिशत बजट खर्च किया जाने लगा और सालाना

तीन लाख रुपये शिक्षा के लिए खर्च किये जाते थे। यही अवस्था स्वास्थ्य विभाग की थी। आधुनिक क्षेत्र का एक अस्पताल कोटा में था। बाकी तहसीलों में सिर्फ डिस्पेन्सरी होती थीं। १९४७ तक स्वास्थ्य के लिए १ लाख २० हजार सालाना खर्च किया जाता था।

धर्म—कोटा राज्य में हिन्दू अधिक संख्या में होने के कारण आम धर्म हिन्दू है। यद्यपि हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय पाए जाते हैं परन्तु कोटा के शासक और जनता वैष्णव सम्प्रदाय को अधिक मानते हैं। 'श्रीनाथजी' गोस्वामी वर्ग के वैष्णवों का कोटा में बहुत प्रभाव है और कई मन्दिर इस प्रकार के पाए जाते हैं। कोटा स्थित मथुरेशजो का मन्दिर वैष्णव धर्म का प्रतीक है। यहां के महाराव वैष्णवों को खूब दान देते थे। द्वारिका, हरिद्वार, मथुरा आदि वैष्णव केन्द्रों पर धार्मिक यात्राएँ की जाती थीं। महाराव किशोरसिंह प्रथम ने तो बृज भूमि में जाकर वृज लीला का आनन्द भोग किया था और महाराव रामसिंह ने नाथद्वारा तक पैदल यात्रा की थी। नित्य दो कोस चल कर ढाई मास में नाथद्वारा पहुँचे। महाराव किशोरसिंहजी, जालिमसिंह झाला से अप्रसन्न होकर नाथद्वारा गए और कोटा का राज्य श्रीनाथजी की भेंट कर दिया था।

वैष्णव धर्म के साथ साथ कोटा की जनता शिव व सूर्य की उपासक भी है। झालरापाटन में स्थित सूर्य मन्दिर इस बात का द्योतक है कि हाड़ौती की जनता एक समय में सूर्य की उपासक थी। भीमगढ़ में प्राप्त एक विशाल शिवलिङ्ग पाया गया है जिसका अवशेष इस क्षेत्र में शैव मत प्रभावशाली होना बतलाता है। कोटा में जैन धर्म का प्रचार भी था। शेरगढ़ में ग्यारहवीं शताब्दी की तीन खंडित जैन प्रतिमाएें भी हैं। यह एक राजपूत सरदार द्वारा बनवाई गई। इससे प्रतीत होता है कि जैन धर्म के अनुयायी न केवल व्यापारी वर्ग ही था परन्तु राजपूतों ने भी इसे स्वीकार किया। अन्य धर्मावलम्बियों में मुसलमान अधिक हैं। राज्य की ओर से उन्हें ऊँचे ऊँचे पद दिये जाते थे। इससे स्पष्ट है कि शासकों ने धर्म-सहनशीलता की नीति अपनाई थी। धार्मिक अन्धविश्वास, भूत-प्रेत आदि का प्रभाव जनता पर अब भी है। धार्मिक मेलों में कोटा में दशहरा का मेला अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दशहरा के अवसर पर यह मेला सात दिन लगा रहता है।

भाषा—यहाँ की भाषा राजस्थानी है क्योंकि इसमें राजस्थानी शब्द अधिकतर होते हैं। यहाँ की बोलचाल की भाषा हाड़ोती कही जाती है। कुछ लोग मालवी बोलते हैं। हाड़ोती शुद्ध राजस्थानी भाषा नहीं जिसे डिंगल का स्वरूप

दिया जा सके। हाड़ोती उच्चार और व्याकरण की दृष्टि से गुजराती से मिलती-जुलती है। कुछ यह मालवी भाषा के प्रभावयुक्त हो गई है। मालवी भाषा अधिकतर मनोहरथाना, छीपाबड़ौद, अकलेरा, बकानी, असनावर और चेचट में ज्यादा बोली जाती है और शुद्ध हाड़ोती कोटा व कोटारियों में बोली जाती है। प्रारम्भ में राजकीय भाषा संस्कृत थी लेकिन ई. सन् १८७३ में फारसी हो गई और फिर कालान्तर में हिन्दी ने फारसी का स्थान १८८० में ले लिया। अंग्रेजी राज्यकाल के समय १९०० ई० के बाद राज्य में अंग्रेजी का ज्यादा प्रचार हो गया। शाहबाद में सहरियों की अलग बोली है।

महाराव भीमसिंह ने वल्लभ सम्प्रदाय ग्रहण किया और गढ़ में मन्दिर बनवा कर बृजनाथ की मूर्ति की उसमें प्रतिष्ठा की थी। दुर्जनसालजी के समय सम्वत् १८०१ में मथुरानाथजी बून्दी से कोटा लाए गए। राव दुर्जनसाल बड़े भगवद्-भक्त थे। वि. सं. १७९७ में उन्होंने सप्त स्वरूपों में एक लाख रुपया खर्च किया था। अन्नकूट आदि वल्लभ सम्प्रदाय के उत्सव शुरू कराये।

कोटा राज्य का शासन-प्रबन्ध

कोटा राज्य मुगल सल्तनत की देन है। मुगलों की शासन-व्यवस्था तो कोटा राज्य में नहीं थी परन्तु कुछ उस ढाँचे के आधार पर कालान्तर में अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गई। कोटा का राज्य हाड़ा माधोसिंह के वंश के शासकों का रहा है। यहां के शासकों को 'महाराव' कहा जाता है। महाराव का राज्य-चिन्ह का उद्देश्य 'अग्नेरपितेजस्वी' अर्थात् अग्नि से भी तेजस्वी है। इस राज्य-चिन्ह के मध्य में एक गरुड़ आकृति और इसके आसपास दो उड़ते घोड़े बने हुए हैं।

महाराव कोटा राज्य के अध्यक्ष हैं। राज्य के वह सर्वेसर्वा हैं। राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका शक्तियें राज्य के महाराव के हाथ में निहित हैं। महाराव निरंकुश शासक हैं और आन्तरिक रूप में देवताओं के प्रतिनिधि रूप में देखे जाते हैं परन्तु वे हमेशा ही मुगलों के अधीन रहे हैं। बाद में अंग्रेजों के। मुगलों के वे सिपहसालार व मनसबदार थे। मुगलों और अंग्रेजों को वे हमेशा खिराज देते रहे हैं। मुगल प्रभाव सिर्फ कागजी था।

केन्द्रीय शासन-सत्ता शासक में निहित थी। पूर्ण रूप से हिन्दू कानून प्रचलित था और यहाँ की प्रजा सब भाँति कोटा नरेश की प्रजा थी। राज्य में सरकारी पद पर नियुक्ति महाराव के नाम पर होती थी और आरम्भ में "महाराजाधिराज महाराव श्री''' बंचनाव" ऐसा लिखा जाता था। राज्य की देखरेख करने के लिए दीवान की नियुक्ति होती थी। यह नियुक्ति महाराव करते थे। राज राणा जालिमसिंह के बाद अंग्रेजी गुप्त सन्धि के अनुसार सन् १८१६ से सन् १८३७ तक दीवान का पद झालों के वंश में पैतृक रहा। परन्तु जब मदनसिंह झाला को झालावाड़ का राज्य प्राप्त हो गया तो पुनः यह पद महाराव की शक्ति के अन्तर्गत आ गया। दीवान आय-खर्च, कोष आदि की देखरेख करता था। दूसरा मन्त्री फौजदार होता था जो सेना का अध्यक्ष होता था तथा राज्य की व महाराव की सुरक्षा का भार उसी पर होता था। उसकी नियुक्ति भी महाराव करते थे परन्तु राज राणा जालिमसिंह व उसके उत्तराधिकारियों ने इन दोनों पदों को एक मिला कर अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। दीवान या प्रधान या मुसाहिबआला के साथ ठाकुर, चौधरी और हवालगीर होते थे। पुलिस तथा जुड़िशियल विभाग अलग-अलग नहीं थे। गिरफ्तार करने वाला ही न्यायाधीश बन जाता था।

राज्य कई परगनों में विभक्त होता था। प्रत्येक परगने में एक चौधरी, एक कानूगो और एक हवालगीर रहता था। हवालगीर प्राय: राजपूत होता था और दरबार से नियत किया जाता था। परगने में एक फोतदार भी होता था। हवालगीर को १०) मासिक वेतन मिलता था और सिपाहियों का वेतन ३) मासिक था। कानूगो का कार्य हकत और पड़त जमीन का हिसाब रखना तथा उसकी उन्नति करना था। चूंकि साम्राज्य के प्रत्येक परगने का कानूगो सम्राट द्वारा नियत किया जाता था इसलिए कोटा के परगनों के कानूगो भी शाही फरमान द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इस प्रकार कानूगो शाही प्रतिनिधि होता था। परगने की भूमि लगान, आमद तथा खर्च का हिसाब वह दफ्तेर खाता आली (हिसाब विभाग) में भेजता था। परगने के चौधरी, जागीरदार, प्रजा आदि कानूगो की सलाह से कार्य करती थी। कानूगो का पद परम्परागत था परन्तु एक कानूगो के मरने के बाद उसके पुत्र को शाही फरमान लेना आवश्यक था। इनका वेतन नगद था। परन्तु कालान्तर में आय के अंश के रूप में दिया जाने लगा। कोटा नरेश की आज्ञा का पालन करना उनका एक कर्त्तव्य होता था। परगनों पर कोटा महाराव का अधिकार तीन रूप में था—जागीर, मुकाता और इजारा। कोटा शासक सामन्तों की सेवा के बदले में जागीर देते थे। अपने सम्बन्धियों को जागीर देते थे। जागीर के परगने से मुगलों का सम्बन्ध नाम-मात्र था। जो परगने मुगल बादशाह बखसोस करते थे वे मुकात कहलाते थे। अधिकतर मुगल शासक कोटा नरेश को इनायत के रूप में देते थे। इनकी खिराज मुगलों को दी जाती थी। इसी प्रकार इजारा जागीर कोटा नरेश महाराव को प्राप्त थी। कोटा महाराव इन परगनों का मतालबा मुगल राज्य में साढ़े तीन लाख वार्षिक देते थे जो बाद में मराठों को दिया जाने लगा।

शासन की छोटी इकाई गांव थी। गांव में पटेल का प्रभाव बहुत था। राज्य की भूमि-कर-आय वसूल करने का अधिकारी वही होता था। जालम-सिंह के समय से यह पटेल-प्रथा हटादी गई और पटेलाई व्यवस्था स्थापित की गई। पटेलाई की प्राप्ति के लिए नजराना दिया जाता था। हर नए महाराव के समय पटेलाई नये रूप से नजराना देकर लेनी पड़ती थी। गांव में पंचायत का मुखिया चौधरी कहलाता था। पंचायत सामाजिक व आर्थिक संगठन का केन्द्र था।

भूमि-प्रबन्ध कोटा राज्य में मुगल प्रबन्ध की तरह ही था। लगान उपज का तृतीयांश लिया जाता था। नकद या उपज के रूप में जमा करा दिया जाता था। कोटा में भूमि का विभाग कभी नहीं स्थापित किया गया। खड़ी

हुई फसल को राज्य-कर्मचारी गांव के मुख्य किसानों के सामने कूंता करते थे। इस कूंती हुई उपज का तीसरा हिस्सा राज्य में जाता था। दूसरा जागीरदार ले लेते थे। एक हिस्सा कृषक लेता था। जमीन नापने का काम उसी समय पड़ता था जब कि किसी को माफी दी जाती थी। जागीरदार को ताकीद की जाती थी कि उनके घोड़े फसल को नष्ट न करें। जिन किसानों को बीज नहीं मिलता था उन्हें राज की ओर से दिया जाता था। पटेलों से नजराना प्रति वर्ष लिया जाता था तथा उन्हें राज्य से पगड़ी दी जाती थी जिसका खर्चा परगने के बजट से निकाला जाता था। किसानों को दुर्भिक्ष के समय तकाबी दी जाती थी। राजराणा जालिमसिंह ने पटेलों की कौंसिल, जिस प्रकार कि आधुनिक रेवेन्यू बोर्ड होता है, का निर्माण किया। कृषकों के झगड़ों की यह एक प्रकार से अदालत अपील थी। भूमि का नाप करवाया गया। उपज के अनुसार भूमि बांटी जाने लगी—पीवत, खेड़ा और माल। लगान निश्चित करके यह घोषित कर दिया गया कि कड़ता नकद लिया जावेगा, उपज के रूप में नहीं। प्रति बीघा डेढ़ आना पटेल की रसूम नियत की गई। उन तमाम गांवों में जहाँ की जमीन अच्छी उपजाऊ थी वहां पर जालिमसिंह ने राज के हवाले स्थापित किए। इन हवालों के वास्ते किसानों से जमीन छीन ली जाती थी। कृषि में उन्नति की गई। नाना प्रकार के कर लेने की व्यवस्था कोटा राज्य में थी। मुख्य कर भूमि-कर था जो उपज का एक तिहाई लिया जाता था। यह कर कड़ते के अन्न से वसूल किया जाता था। प्रारम्भ में नकद अनाज के रूप में परन्तु ई० सन् १८०० के बाद नकद के रूप में लिया जाता था। दूसरी प्रकार का कर मुकाता होता था। एक व्यक्ति से गांव का निश्चित लगान वसूल करके उसको यह अधिकार दिया जाता था कि कृषकों से वह स्वयं लगान वसूल कर ले। राज्य द्वारा ऋण अनाज या खेती को गिरवी रखने पर दिया जाता था। माल हासिल के अलावा २५ प्रकार के और कर थे। कँवरमटकी, पटेलखूटी, पटवारी, बलाई, गजबंधनी, सराई, छापों, नापों, जकात आदि। जकातों की नियुक्ति राज्य की तरफ से होती थी। भूमि कर के दो सीगे थे—खालसा और जागीर। खालसा से भूमि कर बटाई या लटाई द्वारा वसूल किया जाता था। जागीरदारों से कर नकदी वसूल किया जाता था। जितना जागीरदार नहीं देता था वह ऋण मान कर इस पर ब्याज लिया जाता था। ये सब कर आय के साधन थे। परगने के अफसरों को वार्षिक बजट के अनुसार परगने की आय में से खर्च करने का अधिकार था। खर्च के बाद रुपया यदि बचता तो राजकीय खजाने कोटा में भेज दिया जाता था। आय और खर्च का हिसाब परगने की

कचहरी में रहता था और प्रति वर्ष दीवान के पास भेजा जाता था। खर्च के मुख्य मद—पुण्यार्थ, दरगाही, हनूरीकातन राजलोक, महल, कारखाना, बोहरा को देना, देश का खर्च, अटाला, आम्बार, सेना आदि थे। बेगार प्रथा द्वारा भी राजकीय कार्य होता था। बेगार में प्रत्येक बेगारी को जबरदस्ती कार्य करना पड़ता था और उसे केवल पेट-पूर्ति के लिए नाम मात्र पैसे दे दिये जाते थे। राजपूताने में जागीर प्रथा का यह एक विशेष अंग था।

न्याय हिन्दू प्रणाली से किया जाता था। परम्पराओं को दृष्टिकोण में रख कर ही दंड दिया जाता था। गांव की पंचायतों को दण्ड देने का अधिकार था। उनकी अपील हो सकती थी। प्रत्येक परगने के मुख्य गांव में कोतवाली का चबूतरा होता था। कोतवाल ही अपराधियों को पकड़ता था और वही उनको दण्ड देता था। न्याय विभाग कोई प्रथक नहीं था। चौधरी, कानूगो और ठाकुर से भी न्याय करने की प्रथा थी। शिकायतों की सुनवाई होती थी। कागजी कार्यवाही कम होती थी। चोरी, डकैती और हत्या के अपराधियों को प्राय: अंग-भंग व प्राण-दण्ड ही दिया जाता था। छोटे अपराधों का अर्थ-दण्ड दिया जाता था। व्यभिचार पर दण्ड जुर्माना होता था। राज-नियम का भंग करना घोर अपराध माना जाता था। राजा की कोप दृष्टि होते ही उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता था। तोप से उड़ा देना, सिर कटवा देना, हाथी के नीचे कुचलवा देना राजा के बांए हाथ का खेल था। इसके विरुद्ध कहीं अपील नहीं की जा सकती थी।

सेना का अध्यक्ष फौजदार कहलाता था। कोटा की सैनिक व्यवस्था मुगल व्यवस्था से मिलती-जुलती थी। कोटा की सेना में भी फौजदारी, फीलखाना, शुतुरखाना, रिसाला, तोपखाना, हरावल आदि होते थे। सेना में दो प्रकार के सिपाही थे। एक तो जागीरदार भेजते थे जिनका खर्चा स्वयं जागीरदार देते थे। दूसरे महाराव स्वयं भर्ती करते थे। महाराव का यह कार्य फौजदार करता था। जालिमसिंह के पहले स्थायी सेना सुव्यवस्थित रूप से रखने की कोई प्रणाली नहीं थी। जालिमसिंह ने छावनी (झालावाड़) में स्थायी सेना का मुख्य केन्द्र स्थापित किया। कवायद, शिक्षा, अनुशासन से सैनिक संगठन में सुधार किये। हाथी, घोड़े, ऊंटों का प्रयोग सेना में होता था। अधिकतर घोड़े काम में लाए जाते थे। पैदल सैनिक को युद्ध की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। अधिकतर सैनिक लोहे के कवच और टोप पहनते थे। तलवार, ढाल, बर्छी, भाला व तोप काम में लाए जाते थे। कोटा के मुख्य किलों का जीर्णोद्धार करवाया जाता था

जिससे राज्य की सुरक्षा हो सके। मुख्य किले शेरगढ, मनोहरथाना, शाहबाद व गागरोण के थे।

सन् १८५७ तक कोटा की उपरोक्त शासन-व्यवस्था बनी रही। सिद्धान्त के रूप में सारा कार्य दरबार की आज्ञा से होता था परन्तु वास्तव में राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी, महाराव के कुटुम्ब के लोग और कृपा-पात्र मनचाहा करते रहते थे। घूसखोरी राज्य का मुख्य अंग था। राजा का कोई सिद्धान्त नहीं था। उसकी समझ में जो आया, चाहे बुरा ही क्यों न हो, राज्य का वह नियम हो जाता था। प्रजा की भलाई का ध्यान राजा को न तो कभी था न कभी वह परवाह करता था। राज्य दरबारी होना इज्जत ही नहीं बल्कि राज्य-शक्ति का स्वरूप था। शासन पूर्ण शिथिल था। अधिकतर राजा बोहरों से ऋण लेकर काम चलाते थे क्योंकि परगनों से कभी बचत की रकम नहीं आती थी। कर इकट्ठा अवश्य कर लिया जाता था परन्तु राजकोष में आते-आते वह कहीं बीच में ही गायब हो जाता था। न कभी सुनवाई हुई न देखरेख। १८५७ के सैनिक-विद्रोह ने इस शासन-प्रणाली की कमजोरिएँ स्पष्ट करदीं। सन् १८६२ में कोटा के तत्कालीन नरेश महाराव रामसिंह ने राज्य-शासन का पुनः निर्माण किया।

राज्य को कई जिलों में विभक्त किया गया। प्रत्येक जिले का एक जिलाधीश नियत किया गया। प्रत्येक जिले में से एक लाख मालगुजारी का आना आवश्यक माना गया। जिलेदार को ये कार्य सोंपे गए—मालगुजारी वसूल करना, जिले की शान्ति बनाए रखना और न्याय करना। वह सौ रुपये तक जुर्माना कर सकता था व एक मास की कैद दे सकता था। घूम-घूम कर वह प्रति सप्ताह जिले का निरीक्षण करता था। प्रत्येक जिले में एक थानेदार नियत किया गया जो जिलेदार के अधीन कार्य करता था। एक थानेदार के अधीन एक उर्दू लेखक, एक नामादार और १५ सिपाही रहते थे। जिले में पुलिस चौकियाँ बनाई गईं। अपने क्षेत्र में चोरी, डकैती या जुर्म का जिम्मेवार चौकीदार व थानेदार समझा जाता था। आवश्यकता पड़ने पर सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी जाती थी। थानेदार को ग्यारह रुपये जुर्माना व १५ दिन की कैद देने का अधिकार था। हर मामले की सूची बना कर दरबार के पास भेजी जाती थी।

कोटा शहर के लिए एक कोतवाल की नियुक्ति की गई। इसको बाईस रुपये जुर्माना और पन्द्रह दिन की कैद का अधिकार दिया गया था। इस से बड़ा मामला होता तो पालखीखाने में चालान किया जाता। मुकदमे की मिसल

बना कर वह कोतवाली चबूतरे पर रख देता था। कोतवाल के पास एक फारसी जानने वाला अहलकार होता था। शहर में चोरी न हो, अशान्ति न हो, इसलिए चौकीदारों की नियुक्ति हर मोहल्ले में होती थी। शहर का सफाई-कार्य भी कोतवाली के सुपुर्द रहता था। राह में व्यापारियों की सुरक्षा के लिए ठहरने व सुरक्षा-स्थान नियत किए गए। कोटा-झालरापाटन के रास्ते में हणोत्या, उम्मेदपुरा, और मुकन्दरा के स्थान पर ऐसी सराएँ बनाई गईं। व्यापारियों को अपने पास के नौकरों की सूची राज्य को देनी पड़ती थी।

न्याय विभाग (पालकीखाना) का संगठन किया गया। कोतवाल और जिलेदार जिसका फैसला नहीं कर सकते थे वे मुकदमे यहाँ निर्णीत होते थे। ५०) जुर्माना और एक महिने की कैद का अधिकार पालकीखाने के अध्यक्ष को दिया जाता था। लिखित शिकायत पेश करनी पड़ती थी। विरोधी पक्ष को परवाने द्वारा बुला कर लिखित रूप से निर्णय किया जाने लगा तथा दरबार की मुहर लगने के बाद निर्णय दिया जाता था। पूरी मिसल पालकीखाने में सुरक्षित रखी जाती थी। दरबार में अपील की जा सकती थी। अन्तिम अपील पोलिटिकल एजेन्ट के दफ्तर तक हो सकती थी। इस सुधार घोषणा में कानून की व्याख्या नहीं थी। यह कार्य कि कौन-सा कानून है कौन-सा नहीं, यह सब कार्य कोतवाल, जिलाधीश व पालकीदार पर छोड़ दिया गया। घूस लेना व देना, लड़की को मारना या बेचना, सती होना घोर अपराध घोषित कर दिए गए।

दफ्तरों का समय निश्चित किया गया। एक पहर दिन चढ़ने पर गढ़ में हाजिर होकर तीसरे पहर तक वहाँ काम करना पड़ता था। शुक्रवार, जन्माष्ठमी, रामनवमी, एकादशी के अवसरों पर व होली-दिवाली-दशहरे पर दफ्तर बन्द करने की आज्ञा भी थी। दफ्तरी अनुशासन कड़ाई के साथ रखने की ताकीद की गई। अफसरों को अपने छोटे कर्मचारियों की सही बात पर ध्यान देने की हिदायत की गई। राज्य-कर्मचारियों की नौकरिएँ लिखित रूप से की जाने लगीं। उनके विरुद्ध शिकायत लिखित की गई। इससे नौकरियों में स्थायित्व आ गया। सेना में भरती करना या सैनिक को नौकरी से हटाना केवल महाराव के अधीन रखा गया और दरबार में अर्जी देने का अधिकार एडजुटेन्ड, मेजर, चौधरी और बखसी को दिया गया। सारे देश का खजाना कृष्ण भण्डार में जमा किया जाने लगा। कोष का अध्यक्ष अलग नियत किया जाता था तथा दैनिक हिसाब सायंकाल से पहले दरबार के सामने पेश किया जाने लगा।

सन् १८६३ का यह शासन-सुधार ठीक नहीं था। कोई जिले छोटे और कोई जिले बड़े थे। अतः जब नवाब फैजअली दीवान नियुक्त हुआ तो सन् १८७३ में

पुनः शासन सुधार किया गया। सम्पूर्ण कोटा को आठ निजामतों में विभक्त किया गया। प्रत्येक निजामत दो तहसीलों में बांट दी गई। प्रत्येक निजामत का प्रधान नाजिम होता था जिसको माल सम्बन्धी, दीवानी व फौजदारी अधिकार दिये गए। तहसील का अध्यक्ष तहसीलदार होता था जो नाजिम के नीचे होता था। प्रत्येक तहसील में कम से कम एक थानेदार नियुक्त किया जाने लगा। नाजिम के पास कई अहलकार होते थे जिनको राज्य की ओर से वेतन मिलता था। नाजिमों को वेतन ८०) तथा तहसीलदारों को ३०) मासिक दिया जाता था।

राज्य के कार्य में सलाह व राय के लिए नबाब फैजअली ने सन् १८७४ में एक कौंसिल का निर्माण किया जिसमें ३ सदस्य थे। इसका कार्य पोलिटिकल एजेन्ट के नेतृत्व में हुआ करता था। यद्यपि वह कौंसिल का प्रधान नहीं होता था। उसका महकमा एजन्टी कहलाता था जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था और वही १८६३ के बाद कोटा राज्य के शासन का सार्वभौम सत्ताधारी था। एजेन्टी के हुक्म को कार्य में परिणित करना कौंसिल का कार्य था।

कौंसिल ने कोटा के शासन को अंग्रेजी शासन की तरह लाने का प्रयास किया। नबाब फैजअलीखां के शासन को १८७७ में परिवर्तित किया गया। आठ निजामतों के स्थान पर १५ निजामतें बनाई गईं। राज्य के महकमे पृथक किए गए। दान सीगे का महकमा पुण्यार्थ के नाम से अलग कर राजा के दान खर्च पर रोक लगाई गई।

भूमि के बन्दोबस्त कराने के लिए एक विभाग खोला गया जिससे २० साल में ३ बार बन्दोबस्त कर राज्य की आय में वृद्धि की गई। न्याय के क्षेत्र में १८७३ के सुधार के अनुसार महकमा अदालत आलिया स्थापित किया गया जिसमें स्वयं नबाब फैजअलीखां काम करता था। उसकी सहायता के लिए ३ सदस्यों की कौंसिल बनाई गई जो स्थानीय समस्याओं से उसको परिचित कराती थी। इस महकमे के अधीन दिवानी व फौजदारी अदालतें थीं। हाकिमअदालत की नियुक्ति महाराव करते थे। नाजिमों की तरह दिवानी व फौजदारी अधिकार अदालतों के हाकिमों को दिए गए। १८७७ में इस महकमे की मिसल बनाने का कार्य सुव्यवस्थित व नियमित किया गया। मनुष्यता की दृष्टि से दण्ड और कारागार के नियम बनाए गए। स्त्रियों को कोड़े लगाने का दण्ड उठा दिया गया। कैदियों को भोजन राज्य की ओर से मिलने की व्यवस्था की गई।

जकात के महकमे में सुधार किए गए। पहले यह महकमा सायरात कहलाता था। सन् १८७२ में इसका नाम बदल कर जकात कर दिया। कौंसिल ने इसके

दो केन्द्र—एक कोटा में और दूसरा बाराँ में कर दिये। कोटा के जकाताध्यक्ष का एक नायब नियुक्त किया गया। कई जगह नई जकातें स्थापित कीं। आय-व्यय का व्यवस्थित निरीक्षण किया गया। कोटा राज्य के भीतर लिया जाने वाला महसूल बन्द कर दिया गया। जंगल का पृथक विभाग १८८१ ई० में किया गया। परन्तु बाद में १८८६ में माल विभाग के साथ कर दिया गया। माल विभाग १८८३ में संगठित हुआ। इसका एक अध्यक्ष बनाया गया जिसके सहायक दो उपाध्यक्ष होते थे। एक कोटा में रहने लगा व दूसरा शेरगढ़ में। उपाध्यक्ष के कर्त्तव्य, नाजिमों पर देखरेख व मालगुजारी के नियम बनाए गए।

सेना में भर्ती के नियम बना कर महाराव के अधीन सैनिक विभाग कर दिया गया। सेना का खर्चा ४ लाख तक बढा दिया गया। पुलिस विभाग पूर्वतः बना रहा। कोटा में एक नई कोतवाली रामपुर में स्थापित की गई। चोरियों, डकैतियों आदि का नक्शा प्रति मास बनाया जाने लगा। थानेदार के पास से मालगुजारी का अधिकार हटा लिया गया। पुलिस के अध्यक्ष का पद बनाया गया और पुलिस प्रबन्ध के लिए कोटा के तीन भाग किए गए। प्रत्येक भाग में एक उपाध्यक्ष होता था।

१९४७ में इस राज्य में कुल १९ निजामतें थीं—लाडपुरा, कन्वास चेचट, दीगोद, बड़ौद, इटावा, बाराँ, किशनगंज, शाहबाद, कुंजैड़, अन्ता, माँगरौल, साँगोद, इक्लेरा, छीपाबड़ौद, मनोहर थाना, बकानी, अस्नावर, और खानपुर।

आय खर्च—

इस राज्य में चार कस्बे और २५२५ गांव थे। न्यूनाधिक आय ५०,४७,-३४९ रुपया वार्षिक थी और खर्च ५३,५१,९४२ रुपया वार्षिक था। राज्य की तरफ से अंग्रेज सरकार को २३४,७२० रुपया सालाना खिराज दिया जाता था। इसके अलावा पहले दो लाख रुपया देवली छावनी के रिसाले के खर्च के भी अंग्रेजी सरकार को दिए जाते थे। सन् १९२३ से सेना वहाँ से हटा दी गई। कोटा राज्य को १४७३९।।।=)।। रु० (जयपुर झाड़शाही सिक्कों में) जयपुर राज्य को ८ कोटड़ियों के खिराज के देने पड़ते थे।[1] ई० सन् १८२३ में कोटा के

[1] ये आठ कोटड़ियें हाड़ों की हैं। इनके जागीरदार बून्दी राज्य के अधीन रणथम्बोर के किले की हिफाजत करते थे। यह किला उन दिनों में दिल्ली सल्तनत के किलों में था। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में जब मरहठों ने रणथम्बोर को घेर लिया तो वहाँ के मुसलमान किलेदार ने दिल्ली सहायता के लिए लिखा परन्तु वहाँ से कोई मदद नहीं मिली इसलिए किलेदार ने जयपुर के महाराजा माधोसिंह की सहायता प्राप्त करके मरहठों को हराया और किला माधोसिंह को दे दिया। तब से इन कोटड़ियों पर माधोसिंह का अधिकार हो गया। इनसे खिराज वसूल करने के लिए जयपुरी सेना हाड़ौती में आया करती थी जिससे कोटा को नुकसान होता था।

दीवान जालमसिंह झाला ने अंग्रेजों के साथ सन्धि करते समय यह स्वीकार किया कि कोटा राज्य १४,३६७।।) रुपये सालाना जयपुर दरबार को इन कोटड़ियों से वसूल कर पहुँचाता रहेगा। मालवा प्रान्त के खिलचीपुर राज्य से
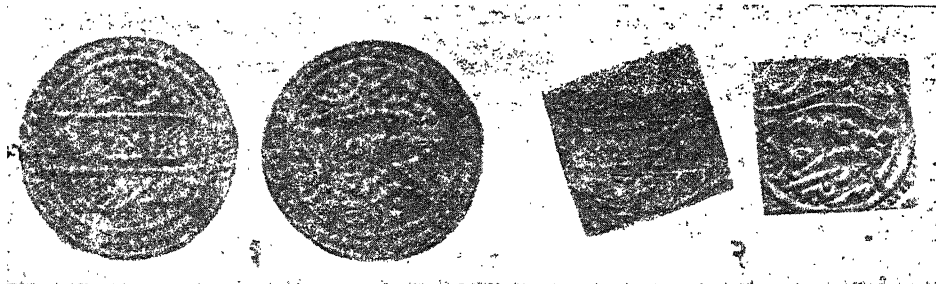
८६६।।।) हुजात वसूल नाम से खिराज कोटा राज्य को सालाना वसूल करना पड़ता था। पहले यहाँ चाँदी का सिक्का बादशाह शाहआलम के समय से कोटा और गागरोण में ढलता था परन्तु १६०१ से यहाँ अंग्रेजी सिक्का जारी कर दिया गया। नया रुपया कलदार कहा जाता था। पहले सिक्के हाली और मदनशाही रुपये थे। सौ कलदार की कीमत ११४ हाली या ११८ मदनशाही रुपये के बराबर थी।

कोटा राज्य के ऐतिहासिक व प्रसिद्ध स्थान

कोटा नगर—यह नगर कोटा राज्य की राजधानी था। अब यह कोटा मण्डल (डिवीजन) का मुख्य स्थान है। यह चम्बल नदी के दाहिने किनारे पर लम्बाकार बसा हुआ है। १६५१ की जनगणना के अनुसार यहाँ की आबादी ६५,१०७ थी। यह नगर पश्चिमी रेलवे की चौड़ी पटरी की नागदा मथुरा रेल

शाखा तथा मध्य रेलवे की बीना कोटा शाखा का जङ्क्शन है। यह दिल्ली से २६१ मील, बम्बई से ५७० मील तथा जयपुर से १४६ मील रेल द्वारा है। पश्चिम रेलवे का डिवीजनल कार्यालय भी कोटा में ही रक्खा गया है।

कोटा नगर का नाम १४ वीं शताब्दी में कोटिया भील के नाम पर पड़ा। तब यहाँ भीलों का राज्य था। वि० सं० १३२१ (१२७४ ई०) में बून्दी के जेतसिंह ने भीलों को हरा कर अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु हाड़ा राजपूतों के स्वतन्त्र राज्द के रूप में वि० सं० १६८८ (सन् १६३१) में शाहजहाँ के काल में राव माधोसिंह ने स्थापित किया था। तब से यह हाड़ा राज-

कोटा नगर
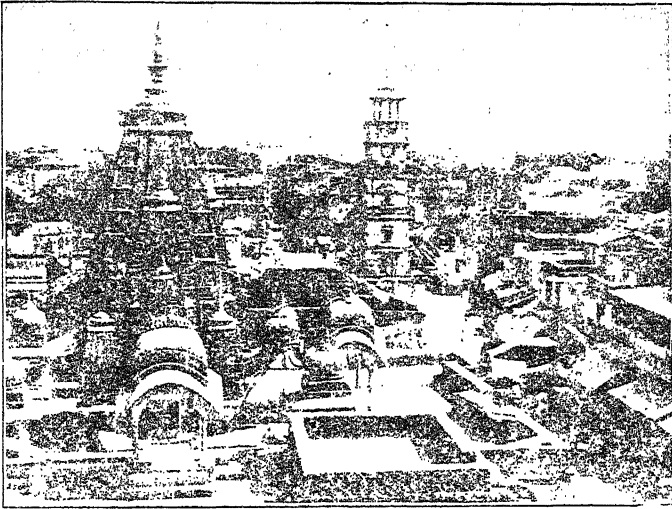
पूतों की माधाणी खांप का राजनैतिक केन्द्र १६४८ ई० तक रहा। नगर से दक्षिण की ओर चम्बल नदी के दाहिने तट पर दो दुर्गों के खण्डहर हैं जिनको अकेलगढ कहा जाता है। ऐसा प्रचलन है कि ये भीलों के दुर्ग थे लेकिन बाद में भीलों के सरदार कोटिया ने कोटा बसाया तो इन दुर्गों को छोड़ दिया। ये दुर्ग सुरक्षा के लिए पूर्ण उपयुक्त नहीं थे।

कोटा नगर के तीन ओर ऊँची और पक्की शहर पनाह है जो अब तोड़ी जा रही है। चौथी ओर पश्चिम में चम्बल नदी बहती है जिसका पाट लगभग ४०० गज चौड़ा होगा। शहर के दक्षिणी कोने पर पुराना महल है जो नदी पर से दिखाई देता है। दक्षिण पूर्व की ओर एक सुन्दर लम्बी-चौड़ी झील है जिसमें नावें चलती हैं जिसके चारों ओर सड़क है। इस झील के पास ही कोटा का

बृहत सार बाग (राजघराने का श्मशान) है जहां राव महारावों तथा उनके कुटम्बियों को जलाया जाता है। उन पर बनी हुई छतरियें देखने योग्य हैं।
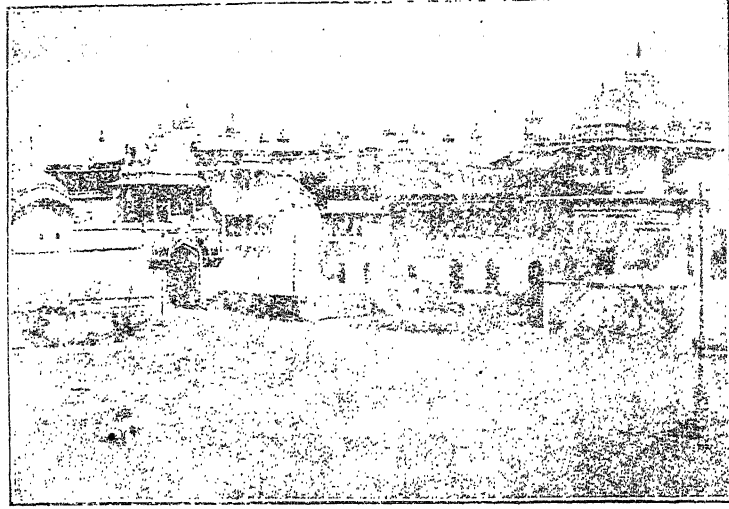
पुराने महल, कोटा

कोटा नगर में दो मन्दिर दर्शनीय हैं। ये मन्दिर मथुराधीश और नीलकण्ठ महादेव के हैं। मथुराधीश बल्लभ सम्प्रदाय के सात स्वरूपों में सर्व प्रथम माने
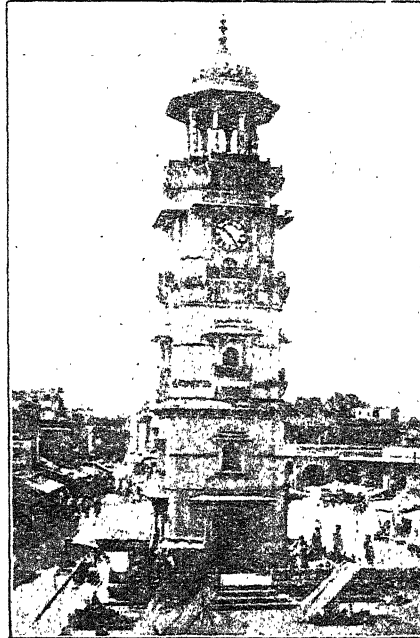
कोटा का घन्टाघर

जाते हैं। यह मन्दिर पाटनपोल दरवाजे के पास हैं। मथुराधीश की प्रतिमा गोकुल के पास करणाबल गाँव से मिली थी। इसको बल्लभाचार्य ने अपने शिष्य पद्मनाभ के पुत्र विट्ठलनाथ को दी। उसने यह प्रतिमा अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरधर को दी जो उसकी बराबर पूजा करता रहा। वि० सं० १७२६ की आसोज शुक्ला १५ को यह प्रतिमा औरंगजेब के अत्याचारों से बचने के लिए बून्दी लाई गई। बाद में वि० सं० १८०१ में कोटा नरेश दुर्जनशाल इसे कोटा ले आए। उस समय के दीवान द्वारकादास की हवेली में यह मूर्ति स्थापित की गई। तब से कोटा बल्लभ-मतानुयायी वैष्णवों का तीर्थस्थान बन गया है। नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर किशोरपुरा द्वार के पास भूमि की सतह से नीचा बना हुआ है।
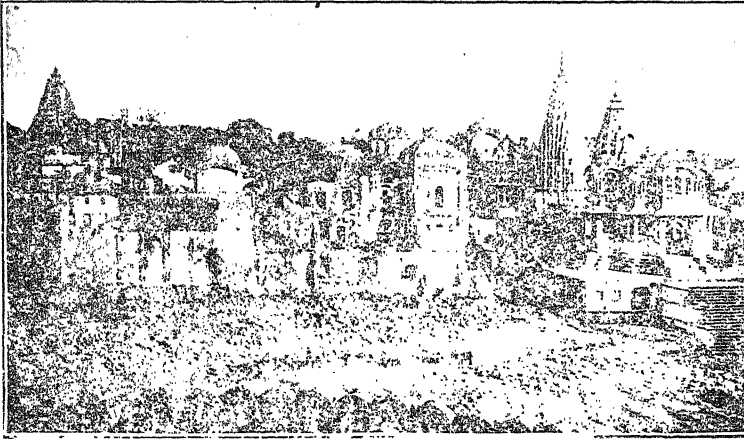
मन्दिर, कोटा नगर

नगर के पास ही लगभग दो मील पर अमरनिवास बाग और महल है।
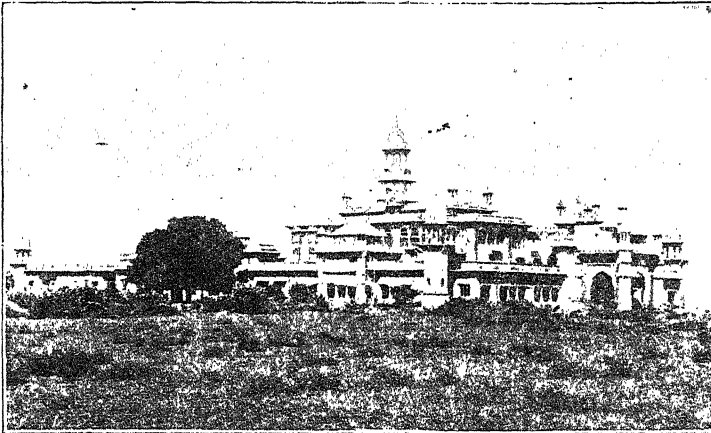
नया महल, कोटा

इसके पास ही एक दरगाह है जिसके झरोखे के ऊपर एक सैकड़ों मन भारी चट्टान बहुत ही साधारण सहारे के खड़ी है। यह अधरशिला कहलाती है। इस झरोखे से नदी का दृश्य बहुत सुन्दर लगता है।

कोटा से चार मील पूर्व की ओर कन्सुवा नामक छोटे से गांव में शिव-मन्दिर में एक शिलालेख है जो मौर्य्यवंशी राजा शिव गण का वि० सं०
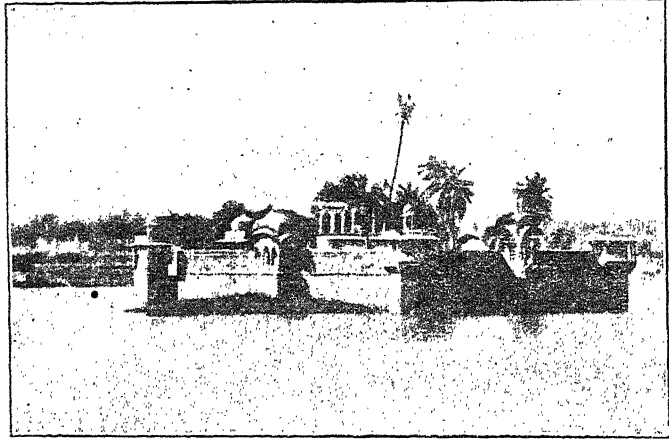
कोटा का तालाब

७९५ का है जिसमें इस मन्दिर के निर्माण का वर्णन किया गया है। बि० सं० १७५१ की कार्तिक सुदि १५ मंगलवार को इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया तथा परकोटा बनाया गया जैसा कि इस मन्दिर के द्वार पर लगे शिलालेख से ज्ञात होता है।
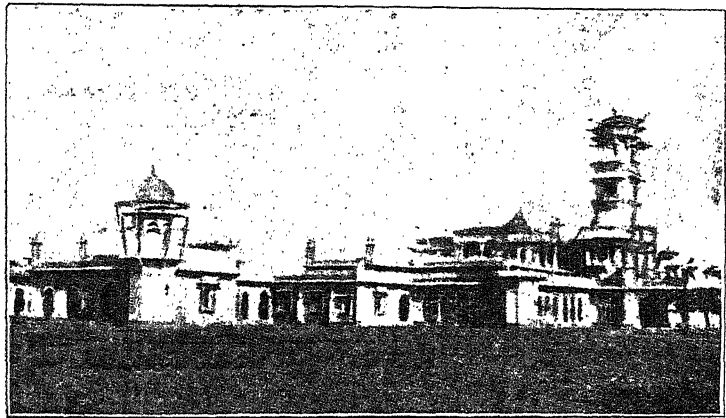
महारानी कॉलेज, कोटा

नगर से एक मील की दूरी पर रामचन्द्रपुरा की छावनी है। सन् १८३७ के बाद राज्य की सेना जो 'कोटा कोन्टीनजेन्ट' के नाम से प्रसिद्ध थी—यहाँ रहती थी। बृजविलास बाग में यहाँ का संग्रहालय तथा पुस्तकालय है। संग्रहालय में लगभग २५० कलापूर्ण प्राचीन मूर्तियां, दर्जनों शिलालेख, सिक्के, चित्र, शस्त्र
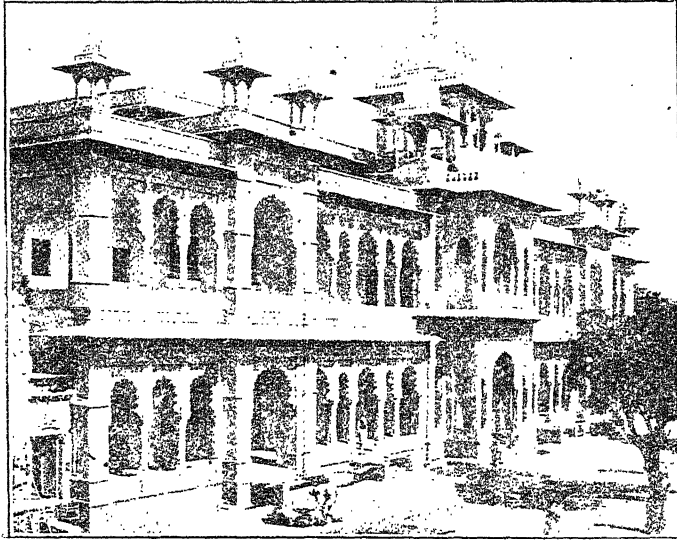
कर्जन तिली मेमोरियल, कोटा

आदि हैं। पुस्तकालय में लगभग ४००० प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इनमें से ४०० अप्रकाशित हैं। कई हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत सुन्दर लिपि में लिखे गये हैं या चित्रित हैं।

कन्सुआ—कोटा से चार मील पूर्व को ओर कन्सुआ (कणस्वा) का वीरान गांव है। यहां आठवीं शताब्दी का महादेव का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यह मौर्य शासक शिव गण ने सम्वत् ७९५ (ई० सन् ७३८) में इस मन्दिर का निर्माण किया था। मौर्यों के प्रभाव में राजपूताना रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १७५१ में कराया गया था।

गैपरनाथ महादेव—कोटा से ९ मील दक्षिण की ओर रतकाकरा गांव के पास गैपरनाथ महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ का झरना बारह मास बहता है। मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० सं० १६३६ में हुई थी जिसका यहाँ एक शिलालेख लगा हुआ है।[1]

---

१ गैपरनाथ का शिलालेख—सम्वत् १६३६ आदितवार बाबाजी श्री दामोदरपुरी गैपर यानि धर्मशाला कुदाई अमल कोट महाराज कंवर श्री भोजजी कु बधाई।...
डा० मथुरालाल शर्मा, परिशिष्ठ संख्या ८

चार चौमा—कन्वास तहसील की उत्तरी सीमा के पास ४ गाँव चौमा कोट, चौमा बीबू, चौमा मालियान व चौमा मुंडली है। इसमें चौमा कोट में महादेव का गुप्तकालीन प्राचीन मन्दिर है। यहाँ पर शिवरात्री को बड़ा मेला लगता है। इस मन्दिर का बहुत बार जीर्णोद्धार हुआ था अतः इसकी प्राचीनता समाप्त हो गई है। मन्दिर के भीतर एक स्तम्भ पर तथा द्वार के बाईं ओर की दीवार पर संस्कृत में गुप्तकालीन लिपि में शिलालेख है।[1] मन्दिर के अन्दर गुप्तकालीन एक शिवलिङ्ग है।

अटरू—यह अटरू तहसील का मुख्य स्थान है। कोटा से ४८ मील पूर्व की ओर पार्वती नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके बाजार में भैसाशाह का बनाया हुआ मन्दिर है। इसकी मूर्ति पर वि० सं० ५०८ की चैत्र सुदि ५ मंगलवार खुदा है। कस्बे के बाहर एक खण्डित मन्दिर है जिसमें केवल ४ स्तम्भ बचे हैं। इसके स्तम्भ पर वि० सं० १३१९ का परमार राजा जयसिंहदेव द्वारा एक कवि चक्रवर्ती पण्डित मोती का भैसड़ा नामक गाँव के दान का उल्लेख है। यह मन्दिर दसवीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ प्रतीत होता है। यहाँ की ज्यादातर मूर्तियाँ अब कोटा के संग्रहालय में हैं। यहाँ दो और भी मन्दिर हैं जो गड़गच के मन्दिर कहलाते हैं। ये मन्दिर भी १०वीं शताब्दी के हैं। इनको ई० सन् १६८० में औरंगजेब ने ढहवा दिया।

रामगढ़—यह तहसील निशनगंज में, मांगरोल से ६ मील पूर्व की ओर सड़क के किनारे बसा छोटा सा गाँव है। इस गाँव का पुराना नाम श्रीनगर कहा जाता है। यहां की पहाड़ी पर एक १५वीं शताब्दी का पुराना टूटा-फूटा दुर्ग है। पहाड़ों से घिरे जंगल में एक भण्डदैवरा नामक शैव मन्दिर भी है। यह दशवीं शताब्दी का है तथा इसका जीर्णोद्धार तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में एक मेव वंशीय क्षत्रिय राजा मलय ने करवाया था। इस मन्दिर के शिखर मण्डप, तोरण आदि प्रौढ हिन्दू कला के सुन्दर उदाहरण हैं। शिखर का आधा भाग गिर चुका है। यहां पहाड़ी पर कृष्णा माता का एक अन्य मन्दिर है। इस पर

१–(१) मुक्ता······मयी भवप्रति कृति लिंग जगत्यद भुतम्
(२) प्रासाद······सम्प्रदायद शिल भम्······प्रायन्ध
(३) धते······गुणान्विताँच वसुधाम्
(८) प्रभावात सर्वस्यकृत दुरित वृते ममवता
(६) नमः स्वाय स्थीनी मरू त्वे प्राणर्थिने प्रीतो दधीचो
(१०) गाधेयाः स
(११) तथा १२—उपरोक्त परिशिष्ठ सं० १

पहुँचने के लिए ७०० सीढियाँ चढ़नी पड़ती हैं। रामगढ़ से प्राप्त अनेक मूर्तियाँ अब कोटा संग्रहालय में रक्खी हुई हैं। रामगढ़ की पहाड़ी तपःस्थली मानी जाती है।

कृष्णविलास—किशनगंज तहसील में विलास नदी के बाएँ किनारे पर कृष्णविलास नगर के खण्डहर हैं। खण्डहरों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग यह एक बहुत ही वैभवशाली नगर रहा होगा। यहां एक प्राचीन दुर्ग है जिसके केवल खण्डहर बच गए हैं। दुर्ग के समक्ष कभी वराह मन्दिर रहा होगा जो अब टूट फूट गया है। वराह की मूर्ति विशाल है और गुप्तकाल की प्रतीत होती है। मन्दिर का सिर्फ रत्न-गृह भाग ही शेष रह गया है जिसकी छत एक ही शिलाखण्ड की बनी हुई है और उसके अन्दर के हिस्से में सुन्दर बेलबूटे खुदे हुए हैं। इस स्थान के खण्डहर और नगर से प्राप्त कई अलङ्कारपूर्ण मूर्तियां कोटा संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

भीमगढ़—तहसील छीपाबड़ौद में सारथल नामक एक बड़ा गाँव है। इस गाँव से लगभग तीन मील दूर परवण नदी के किनारे पर एक प्राचीन दुर्ग तथा तीन मन्दिरों के खण्डहर पाए गए हैं। ये खण्डहर लगभग एक हजार वर्ष पुराने हैं। ये मन्दिर व दुर्ग आठवीं शताब्दी के पूर्व के प्रतीत होते हैं। दो मन्दिरों के प्रत्येक स्तम्भ पर भीमदेव का नाम अङ्कित है जिसके नाम पर इस नगर का नाम भीमगढ़ पड़ा है। इन मन्दिरों में खुदाई व सुन्दर पच्चीकारी का काम किया हुआ है।

माँगरोल—यह कोटा नगर से ३५ मील उत्तर पूर्व में पार्वती नदी की शाखा बाणगंगा के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है और निजामत मांगरोल का सदर मुकाम था। व्यापारिक दृष्टि से यह कस्बा घना बसा हुआ था। इसकी आबादी पांच हजार के लगभग थी। वि० सं० १८७८ आसोज सुदि ५ (ई० सन १८२१ की १ अक्टोबर) को महाराव किशोरसिंह और उनके फौजदार झाला जालमसिंह में युद्ध इसी नगर में हुआ था। इस युद्ध में महाराव हार कर नाथद्वारा भाग गए थे। उनके भाई पृथ्वीसिंह व दो अंग्रेज अफसर लेफ्टीनेन्ट क्लार्क व रीड यहां "बापजी राज" के नाम से काम आए। इनकी समाधिएँ गाँव से कुछ दूर पूर्व में नदी के किनारे पर बनी हुई हैं।

माँगरोल से तीन मील दक्षिण की ओर सड़क के किनारे भटवाड़ा नामक एक गाँव है जहाँ पर कोटा की सेना ने जयपुर महाराजा माधोसिंह को ई० सन् १७६१ में बुरी तरह हराया था। इसी युद्ध में झाला जालिमसिंह ने जिस वीरता

का परिचय दिया उससे उसकी राजनैतिक उन्नति का युग प्रारम्भ होता है। कोटा वालों ने जयपुर से पचरंगा झण्डा इसी स्थान से प्राप्त किया था।[1]

मुकन्दरा—कोटा शहर के दक्षिण में ३२ मील के फासले पर दर्रा स्टेशन से लगभग दो मील दूर पहाड़ों के बीच में बसा हुआ यह एक छोटा सा गाँव है। इसका नाम महाराव मुकुन्दसिंह हाडा (वि० सं० १७०४–१७१५) के पीछे मुकुन्दरा पड़ा। गांव के पास दो पहाड़ों के बीच में, जहाँ दर्रे की घाटी प्रारम्भ होती है, मुकुन्दसिंह ने एक बहुत बड़ा फाटक बनवाया और अपनी उप-पत्नि अबला मीणी के लिए महल वि० सं० १७०८ में बनवाया।[2] इसी घाटे में से रेल मार्ग व पक्की सड़क निकाली गई है। यहाँ कई बार खीचियों और हाड़ों में युद्ध हुआ। सन् १८०४ ई० में जसवन्तराव होल्कर ने कर्नल मानसन की फौज को यहीं तितर-बितर किया था। घाटे के कुछ दूर पर चवरी या भीम की चौरी नाम का मन्दिर है। इस चवरी (बारहदरी) के खण्डहरों को फर्गुशन साहब ने
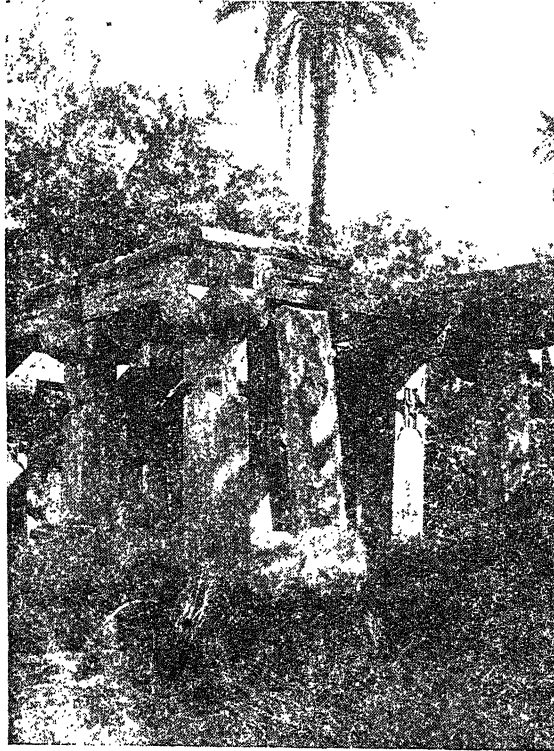
भीमचौरी (मुकन्दरा) कोटा

१—सरकार : फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर : जिल्द द्वितीय, पृ० ५८६
२—एरस्कीन : गजेटियर राजस्थान : पृष्ठ ३८६

इसे ई० सन् ४५० से पूर्व का बतलाया है। इस मन्दिर की खुदाई बड़ी बारीकी से की गई है। इसमें फूलों और पशुओं की आकृतियां बनी हुई हैं। मन्दिर के अन्दर का भाग कलामय उत्कीर्ण फूल पत्तों से अलंकृत है। मन्दिर के स्तम्भ पर गुप्तकालीन लिपि में ध्रुवस्वामी [1] का नाम खुदा है। यह मन्दिर गुप्त वास्तु-कला का सुन्दर उदाहरण है।

बाराँ—पार्वती नदी की शाखा बाण गंगा के बाएँ तट और कोटा शहर से ४५ मील पूर्व की ओर बसा हुआ है। इसी नाम की निजामत का यह सदर मुकाम रहा है। यह व्यापार की एक बहुत बड़ी मण्डी है। यहाँ रेलवे का स्टेशन भी है। १९५१ की जनगणना के आधार पर यहाँ की जन-संख्या २०,४१९ थी। ईसा की १४वीं शताब्दी में यह कस्बा सोलंकी राजपूतों के अधिकार में था और उसके अन्तर्गत बारह गाँव होने से यह 'बाराँ' कहलाया। अनाज और अलसी का यहां मुख्य व्यापार होता है। सन् १९०४ में यहाँ अंग्रेज सरकार का अफीम का गोदाम खोला गया था जहाँ से विभिन्न स्थानों को अफीम भेजी जाती थी। यहाँ कल्याणरायजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसीसे मिली हुई मसजिद भी है।

गागरोन—यह प्रसिद्ध स्थान कोटा शहर से ४५ मील दक्षिण पूर्व में और झालावाड़ नगर से तीन मील उत्तर पूर्व में है। यहाँ का किला कालीसिन्ध और आहू नदियों के संगम पर एक छोटी पहाड़ी पर बसा हुआ है। इसके तीन ओर कालीसिन्ध नदी है। यहाँ पर कालीसिंध अधिक गहरी व भयंकर पहाड़ियों में से होकर बहती है। राजस्थान के किलों में इसका स्थान प्रमुख है। भौगोलिक दृष्टि व सामरिक दृष्टि से इस किले का महत्व मध्य काल में इतना बढ़ गया था कि कोटा राज्य की सुरक्षा पंक्ति का पहला स्तर यहीं था। किले के पास ही गाँव बसा हुआ है। इस किले को डोड (डोडिये) वंश के राजपूतों ने बनवाया था जिनके अधिकार में यह १२ वीं शताब्दी तक रहा। यही कारण है कि इसे डोड-गढ़ भी कहा जाता है। खटकड़ के खीची राजा देवसी ने अपनी बहन गंगाबाई की शादी यहां के शासक बीजल डोडिया से की थी। बहन की सहायता से खीची देवसी ने बीजल को मार कर इस गढ़ पर अधिकार कर लिया था। कहते हैं कि देवसी ने अपनी बहन का नाम चिरस्थायी करने के लिए किले का नाम डोडगढ़ (डोलरगढ़) से बदल कर गंगारूण (गंगारमण) कर दिया और इसे अपनी राज-धानी बनाया। यहाँ के राजा जैतसिंह खीची ने वि० सं० १३०० में बादशाह अलाउद्दीन के घेरे का सफलतापूर्वक मुकाबला किया परन्तु वि० सं० १४८४

१—यह ध्रुवस्वामी बाद के गुप्तों का योद्धा था और हूणों से युद्ध करता हुआ काम आया था। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २५

(ई० सन् १४२६) में राजा अचलदास खीची के समय मालवा के सुल्तान हुसेन-शाह ने यह किला जीत लिया लेकिन सन् १४२८ में अचलदास ने पुनः इस किले पर अधिकार कर लिया और सन् १४४८ तक इसे अपने अधिकार में रक्खा। सं० १५१६ में यहाँ भीमकर्ण शासक हुआ परन्तु मालवा के शासक महमूद खिलजी ने इस पर आक्रमण किया। राजा भीम हार गया। वह कैद कर लिया गया और मार डाला गया। कुछ ही काल बाद सम्वत् १५२१ में उदय-पुर महाराणा संग्रामसिंह ने महमूद खिलजी को हरा कर इस किले पर अधिकार कर लिया। सन् १५३२ तक यह किला सिसोदिया राजपूतों के अधिकार में रहा। सन् १५२६ में महाराणा साँगा की मृत्यु हुई। सन् १५३२ में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसी समय गागरोण पर गुजरात के बादशाह का अधिकार हो गया। सन् १५६० में जब मालवा पर अधमखां (अम्बर का धाभाई) ने आक्रमण किया तो गागरोल मुगलों के हाथ आ गया।[1] अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यह किला मुगलों के अधिकार में रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली की राजनीति में उथल-पुथल होने लगी। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद सैय्यद भाईयों का मुगल राजनीति में प्रभाव बढ़ा। उनको सहायता देने के उपलक्ष में सैय्यद भाईयों ने महाराव भीमसिंह (सम्वत् १७६४-१७७७) को गागरोण का किला दे दिया। तब से यह किला हाडा राजपूतों के अधीन रहा। कोटा के प्रधान मन्त्री झाला जालमसिंह ने इस किले की मरम्मत कराई तथा अपना बारूदखाना तथा रिजर्व सेना का केन्द्र यहीं रक्खा। इसी के पास छावनी बसाई जहाँ कोटा की सेना का मुख्य केन्द्र हो गया।

कोटा दरबार की यहाँ पर पहले टकसाल थी जहाँ मुगलाई सिक्के ढलते थे। यहाँ के तोते अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस किले पर अनेक लड़ाइयाँ हुईं। किले में मिठा शाह की दरगाह[2] भी है जिसके दरवाजे की दाईं दीवार पर फारसी में एक शिलालेख लगा हुआ है जिससे प्रगट होता है कि मियाँ मुअज्जम और मियाँ बजहीन खाँ वहलमी ने हि. सं. ७५० के जिल्हीज (वि. सं० १४०७ फाल्गुण = फरवरी १३५० ई०) में यह गुम्बज बनाया था। दूसरा लेख हि. सं. ९८७ जिल्हीज (वि. सं. १६३७ माघ = ई. सं. १५८० जनवरी) का बीकानेर के

---

१ आइने अकबरी में अबुलफजल ने गागरोण को मालवा का मुख्य जिला लिखा है।

२ यह दरगाह हिन्दू शैली पर बनी है। सम्भव है बनाने वाले कारीगर हिन्दू हों। दरगाह की पच्चीकारी बारीकी से की गई है।

राठौड़ कल्याणमल के पुत्र सुल्तानसिंह का है जो उस समय गागरोण का हाकिम था। उस समय उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा द्वारा दरवाजा बनवाए जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख हि. सं. ६९१ मोहर्रम (वि. सं. १६४० मार्च १५८३ ई.) का यहाँ के हाकिम राठौड़ सुल्तान के समय का है। इससे पाया जाता है कि छत्री थानेश्वर निवासी उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा ने बनाई थी। किले में अनेकों शिलालेख मिले हैं जो इस किले के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। किले में दुर्गा, गणेश, शिव आदि की कई मूर्तियाँ हैं।

मोठपुर—कोटा राजधानी से ५० मील पूर्व और शेरगढ़ से ७ मील पूर्व की ओर यह एक बड़ा गाँव है। यह अटरू तहसील में है। कुछ समय से यहाँ की राम बावड़ी का जल कई प्रकार की बीमारियों को दूर करने के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। यहाँ शक्तिसागर नाम का एक तालाब है जिसे धारू खीची ने खुदाना प्रारम्भ किया था और उसके बेटे शक्तु ने पूरा करवाया। इसके पास ही खीचियों का छार बाग है। उसमें एक बावड़ी के कीर्ति-स्तम्भ पर वि. सं. १५५७ अगहन वद ५ सोमवार का एक लेख है। उसका भावार्थ यह है कि श्री राज श्री धारूदेव के बेटे शक्तुदेव के भाई कुम्भदेव का बेटा श्री वर्मादेव की राणी रावतसिंह की पुत्री उमादे ने बावड़ी बनवाई। एक अन्य शिलालेख है। उसका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है। सं. १५५० (शाके १४१५) आसाढ़ सुदि १०, सोमवार (८ जुलाई १४९३ ई.) को राजाधिराज श्री धारूदेव खीची जायलवाल के साथ धीरादे (धीरा देवी) बागड़नी और सूरतदे कछवाही सती हुई।

सं. १५५५ शाके १४२० श्रावण वदि १० शनिवार (ई. सन् १४९८ की जुलाई) को मोठपुर का राजा श्री कुम्भदेव धीरादेव खीची जायलवाल का बेटा देवलोक हुआ जिसके साथ राणी कछवाही, राणा छात्रवति और दो सोलंकी राणिएँ सती हुईं।

मोठपुर में दस्तकारी की चीजें अच्छी बनती हैं। भादो सुदि ७ को यहां तेजाजी का मेला लगता है। कहा जाता है कि मारवाड़ के तेजाजी मालवा जाते समय और लौटते समय यहां से गुजरते थे।

मनोहर थाणा—परवन नदी के किनारे यह कस्बा बसा हुआ है। इसी नाम की तहसील का सदर मुकाम है। इसे पहले खाताखेड़ी कहते थे। मुगल बादशाहों ने नबाब मनोहर खाँ को अन्य गाँवों के साथ यह भी जागीर में दिया था जिसने इस गाँव को अपने नाम पर बसाया। उसके बाद यह भीलों के

हाथ लगा जिन्होंने एक मजबूत गढ़ बनवाया जो आज तक विद्यमान है। भीलों से यह महाराव भीमसिंह हाड़ा के अधिकार में आया। इसका परकोटा फौजदार जालिमसिंह झाला ने बनवाया था। किले के नीचे पर्वन और काकर नदियाँ शामिल होकर एक बहुत बड़ा कुण्ड बनाती हैं।

रातादेई—असनावर कस्बे से चार मील उत्तर की ओर पहाड़ों के बीच बढिया चासर नाम का भीलों का एक छोटा सा गाँव है। यहां के मानसरोवर नाम के एक सुन्दर तालाब के पूर्वी किनारे पर रातादेवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहां के पुजारी कहते हैं कि जिस देवी का रक्तदान का वर्णन मारकण्ड पुराण में है वह यही देवी है; परन्तु इस प्रान्त के लोग इसको खीची राजा अचलदास की बहिन बताते हैं। निज मन्दिर तो अचला खीची का बनवाया हुआ था। सामने का मण्डप फौजदार जालिमसिंह झाला का तैयार कराया हुआ है। कहते हैं कि मानसरोवर तालाब के दक्षिणी किनारे पर किसी समय श्रीनगर नाम का कस्बा आबाद था। कुछ खंडहर उसी कस्बे के अवशेष के रूप में अब भी बिखरे पड़े हैं। इन खण्डहरों में तीन मन्दिर हैं। सबसे बड़ा मन्दिर महादेव का है जिसको किसी ग्वाले ने बनवाया था। मानसरोवर के दक्षिण तरफ के खण्डहर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह वैष्णव मन्दिर था जिसको शाह दामोदर ने वि. १४१६ कार्तिक वदि १ (ई. सन् १५३६ तारीख ८ अक्टूबर मंगलवार) को बनवाया था। कहते हैं कि यह कस्बा मऊ के खीची राजा का मुख्य स्थान था। तालाब के किनारे पर के चबूतरों व छत्रियों में से कई पर शिलालेख लगे हुए हैं। एक चबूतरे पर चरणपादुका का चिन्ह है और उसके नीचे "चरणपादका नाथ की" लिखा है। परन्तु इसे लोग अचलदास खीची का मृत्यु-स्मारक बताते हैं। अचलदास खीची का देहान्त सं. १४८४ को माघ वदि १२, (१३ जनवरी १४२८) मंगलवार को हुआ। यहां सतियों के कई स्मारक बिखरे पड़े हैं। तालाब से दो मील पश्चिम में उजड़ नदी के दाहिने तट पर खीची राजाओं के बनवाए महलों और मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। पहाड़ी की टेकरी पर किले का दरवाजा अकेला खड़ा है जिसे हथियापोल कहते हैं।

शेरगढ़—यह कोटा से ५० मील दक्षिण में पर्वन नदी के किनारे पहाड़ के निकट बसा है। पहले यह निजामत का मुख्य स्थान था लेकिन अब अटरू तहसील में है। यह कस्बा सातवीं शताब्दी से पहले का बसा हुआ है। इसको प्रारम्भ में कोषवर्धन कहते थे जैसा कि यहां से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है। यहां से प्राप्त वि. सं. ८७० माघ सुदि ६ के शिलालेख से पता लगता है कि यहां के नागवंशी राजा देवदत्त ने, जो स्वयं बौद्धमतानुयायी था, एक बौद्धबिहार

बनवाया था। इस कस्बे में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में शिलालेख भी मिला है। एक शिलालेख में धार के परमार नरेश वाक्पतिदेव से उदयादित्य तक की वंशावली दी हुई है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले सोमनाथ का था पर कैसे व कब लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हो गया यह प्रतीत नहीं होता है। यहाँ तीन टूटी जैन मूर्तियां भी मिली हैं जो एक राजपूत सरदार ने ११ वीं शताब्दी में बनवाई थीं। यहां पहले नागवंशी शासन करते थे। फिर यह डोड राजपूतों के अधिकार में आया जिनसे खीचियों ने छीन लिया। शेरशाह ने इसे जीत कर इसका नाम शेरगढ़ रक्खा। यहां का किला परमार काल से चला आ रहा है। कई सौ वर्षों तक यह किला मुगलों के अधीन रहा। परन्तु सैय्यद भाइयों का पक्ष लेकर जब महाराव भीमसिंह ने फरूखसियार को दिल्ली का सम्राट बना दिया तो फरूखसियार ने इस किले को भीमसिंह को दे दिया। फौजदार जालिमसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करा कर अमीर खाँ पिण्डारी को सौंप दिया। जब १८१७ ई० में पिण्डारियों का नाश हो गया तो इस गढ़ में कोटा की एक सैनिक टुकड़ी रहने लगी।

बड़वा—यह स्थान अन्ता तहसील में है। बड़वा गाँव से पूर्व की ओर लगभग आधा मील दूर कामतोरण स्थान पर ४ प्राचीन यूप पाए गए हैं जिसमें से दो के अवशेष बचे हुए हैं। प्रत्येक यूप १६ फीट लम्बा है। नीचे चौकोर ६ फीट तक तथा इसके ऊपर अठकौना है। ऊपर जाकर फिर चौकोर हो गए हैं। इन पर कुशाण-कालीन ब्राह्मीलिपि में वि. सं. २९५ के लेख खुदे हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी वंश के राजा बल के चारों पुत्रों ने त्रिरात्र यज्ञ करके ये यूप स्थापित किए थे। प्रत्येक ने यज्ञ-समाप्ति पर १००० गायें ब्राह्मणों को दान दीं। राजा बल मालवा के शक क्षत्रिय विजयदामन (२३८-२५० ई.) का सामन्त और माण्डलिक राजा रहा होगा क्योंकि उस समय विजयदामन का राज्य नन्दसा (मेवाड़) तक फैला हुआ था।

कोटा बून्दी का एक अंग

बून्दी, कोटा और झालावाड़ राज्यों का क्षेत्र जिनसे अब कोटा-मण्डल (डिविजन) बना है, हाड़ौती प्रदेश कहलाता है। यह क्षेत्र प्राचीन काल में मीणों व भीलों का प्रदेश था परन्तु धीरे-धीरे इन क्षेत्रों पर मुसलमानों के आक्रमणों के समय राजपूत शासकों ने अधिकार कर लिया। सांभर के चौहानों ने अजमेर पर अधिकार कर पृथ्वीराज तृतीय के काल में अन्तिम बार हिन्दू राज्य स्थापित किया। साँभर से चौहानों की दूसरी शाखा नाडोल (मारवाड़) होती हुई चित्तौड़ के पास बम्बावदा में स्थापित हो गई। बम्बावदा के राव देवा ने सम्वत् १३९८ (१३४३ ई.) में मीणों से बन्दू घाटी छीन कर बून्दी नगर की स्थापना की[1]। राव देवा के बाद राव समरसी बून्दी की गद्दी पर बैठा। उसके राजगद्दी पर बैठने के समय (१४०० वि. सं.) बून्दी का राज्य चम्बल नदी के बाएँ किनारे तक था। नदी के दाहिने किनारे पर भीलों का राज्य था जिसका नेता कोट्या भील था[2]। भील क्षेत्र अकेलगढ़[3] से दक्षिण पूर्व मुकन्दरा पर्वत की श्रेणियों के साथ-साथ मनोहरथाणे तक फैला हुआ था। कोट्या भील के नाम से उसकी शासित भूमि कोटा कहलाने लगी।

समरसिंह ने अपने राज्य-विस्तार करने हेतु चम्बल के उस पार के भील शासक कोट्या पर हमला किया। अकेलगढ़ के पास युद्ध हुआ। इस युद्ध में

---

१ टाड : एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६७।
वंशभास्कर : द्वितीय भाग, पृष्ठ १६२५–२७ के अनुसार राव देवा ने आषाढ कृष्णा नवमी सम्वत् १३९८ (ई० सं. १३४१) को बून्दी पर अधिकार किया था (देखो—लेखक कृत बून्दी का इतिहास, पृष्ठ ४२-४३)

२ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृष्ठ १६७८-७९।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ सं. १४६९ में उल्लेख है कि कोट्या भील जाति का नाम था।

३ कोटा से ५ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर।

६०० भील तथा ३०० हाड़ा सिपाही मारे गए। कोट्या युद्ध से भाग गया और भील क्षेत्र पर बून्दी के हाड़ों का अधिकार हो गया[१] लेकिन समरसी के बून्दी लौटते ही सम्भवतः भीलों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पुनः प्रयास किया होगा। क्योंकि सूर्यमल मिश्रण और टॉड दोनों ही इस बात का उल्लेख करते हैं कि कोटा को पुनः प्राप्त करने का श्रेय समरसी के तीसरे पुत्र जैतसिंह को जाता है। वंशभास्कर में उल्लेख है कि समरसी ने अपने पुत्र जेतसिंह का विवाह कैथुन के तँवर सरदार की पुत्री से कर दिया। जैतसिंह महत्वाकाँक्षी राजकुमार था। उसने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ के भीलों पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसे अपने श्वसुर और पिता दोनों की सहायता प्राप्त थी। भीलों को नष्ट करने में जेतसी ने उन्हीं उपायों को काम में लिया जिनके द्वारा देवसिह ने मीणों से बून्दी छीनी थी[२]। इस युद्ध में जैतसिंह के पक्ष में सैलारखाँ नामक पठान भीलों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई.)[३] में अकेलगढ के भीलों को मार कर जैतसिंह ने कोटा नगर पर अधिकार किया[४]।

जैतसिंह के इस पराक्रम से प्रसन्न होकर राव समरसी ने कोटा जैतसिंह को दे दिया। तब से कोटा बून्दी के राजकुमार की जागीर में रहने लगा। कोटा पर हाड़ा चौहानों का शासन तब ही से चला आ रहा है और जब राव माधोसिंह ने कोटा को बून्दी से स्वतन्त्र करा लिया तो हाड़ों की इस शाखा को माधाणी हाड़ा कहा जाने लगा। कालान्तर में हाड़ाओं की यह शाखा अपने मुख्य शाखा को पृष्ठभूमि में रख कर प्रभावशाली हो गई।

समरसी की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का[५] नापू बून्दी की गद्दी पर बैठा। जैतसिंह कोटा में राज्य करता रहा। जैतसिंह ने अपने बड़े भ्राता की अधीनता

---

१ वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८-७९।

२ मीणों के साथ देवसिंह का विश्वासघात : डा. मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५८।

३ टाड के अनुसार १४२३ वि०सं०।

४ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ. १६७९। ठाकुर लक्ष्मणदास—कोटा राज्य का इतिहास। डॉ० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ. ६२। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६८। टाड वर्णन करता है कि जैतसिंह तँवरों के यहां से लौट रहा था तब भीलों पर चम्बल घाटी के क्षेत्रों के निवासियों ने अचानक आक्रमण कर दिया। इस घाटी के प्रमुख द्वार पर जेतसिंह ने भीलों के नेता को मार कर वहाँ पर एक हाथी (कालभैरों के लिए) निर्मित किया। यह कोटा गढ के मुख्य द्वार के पास चार झोंपड़े में स्थित है।

५ समरसी के ३ पुत्र थे—१ नेपुजी, २ हरपाळ, ३ जेतसी।

स्वीकार की और उसकी सेवा करता रहा। जब नापू ने टोडा के सोलंकी सरदार रोपाल के साथ युद्ध किया तो जैतसिंह ने नापू को सहायता दी तथा रोपाल के विरुद्ध युद्ध करता हुआ मारा गया[1]। जैतसिंह के पश्चात् उसका लड़का राव सुर्जन कोटा में राज्य करने लगा। उसके पुत्र वीरदेह ने १३४६ ई. के आसपास कोटा की जनता के सुख के लिए कई तालाब बनाए। उनमें से कुछ तालाब अब भी बचे हुए हैं। इसी वंश में पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में जेतावतराय हुआ। इसके बाद वीरम गद्दी पर बैठा। वीरम प्रायः बून्दी रहा करता था[2]। इसलिए कोटा का शासन अपने छोटे भाई कान्ह को दे रक्खा था। कान्ह में उस समय की राजनैतिक स्थिति को सम्हालने की योग्यता नहीं थी क्योंकि वह आलसी व आरामपसन्द था। उस समय मालवा में मुसलमान शासकों की शक्ति का राजस्थान की ओर प्रसार हो रहा था। माण्डु के सुल्तानों का सहयोग पाकर केसरखाँ और डोकरखाँ पठानों ने विक्रम सम्वत् १६०३ (सन् १५४६) में कोटा पर अधिकार कर लिया। वीरम की शादी कैथुन के तँवर राजपूतों के यहाँ हुई थी। बून्दी पर इस समय सुल्तानसिंह (सुरथाण) राज्य कर रहा था। राव वीरम का न तो तँवरों ने न बून्दी के सुरथाण ने साथ दिया। मालवा के सुल्तान ने जब बून्दी पर आक्रमण किया तो सुरथाण को भागना पड़ा परन्तु राव अर्जुन ने बून्दी की रक्षा की। राजा वीरम राज्यभ्रष्ट हो मारा-मारा फिरता रहा। टॉड ने कोटा पुनः प्राप्त करने का श्रेय वीरम की पत्नी को दिया है जिसने पद्मिनी की तरह[3] केसरखाँ और डोकरखाँ से होली खेलने की इच्छा की तथा डोले में राजपूत सैनिकों को जनाने कपड़े पहना कर भेज दिया जो गढ़ में घुसने के बाद मुसलमानों को मार कर कोटा पुनः प्राप्त कर लिया। टॉड की यह कहानी सिर्फ राजपूती गौरव को अंकित करती है। इसमें ऐतिहासिक सत्यता नहीं है[4]।

---

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ १७१५।

२ टॉड का कथन है कि भोनोंग (वीरम) अधिक शराब और अफीम के प्रयोग के कारण पागल हो गया था इसलिए उसे बून्दी से निर्वासन दे दिया गया।

टाड : एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, पृष्ठ १४६८ फुट नोट।

३ अलाउद्दीन और मेवाड़ के राणा रतनसिंह की राणी पद्मिनी की कथा कपोलकल्पित सिद्ध हो चुकी है।

४ डा. मथुरालाल शर्मा ने कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ७० में टॉड की इस कथा को चारण भाटों की गढी हुई बतलाया है। उनका कथन है कि (१) एक राजपूत महिला स्वतः ही होली खेलने की इच्छा नहीं कर सकती। (२) यदि ऐसा हुआ तो स्पष्ट ही राणी का उद्देश्य नजर आता है। (३) ३०० सैनिक राजपूत, शत्रु के महिलों में जहां हजारों मुसलमान सैनिक थे, कैसे जीवित वापस लौट सके। (४) इस घटना की जन-परम्परा कहीं प्राप्त नहीं हो सकी है।

वास्तव में १५६० ई० के आस-पास कोटा में मुसलमानों की शक्ति कमजोर होने लगी। मालवा के सुल्तान बाजबहादुर को अकबर के सेनापति अधमखाँ ने हरा मालवा मुगल साम्राज्य में मिला लिया था। कोटा के मुसलमानी शासकों को जो सहायता मालवे से प्राप्त होती थी वह न होने लगी। इसी समय बून्दी के सिंहासन पर राव सुर्जन बैठा। उसने मुसलमानों से कोटा पुनः प्राप्त करने के लिए एक बड़ी सेना तैयार की। इस सेना में उसके लगभग २० जागीरदार भाई और कितने ही अन्य राजपूत सरदार शामिल थे[1]। भदाना से दो मील दूर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई[2]। केसरखाँ व डोकरखाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग कर कोटा नगर में जा घुसे पर हाड़ा राजपूत कीर्तिसिंह ने उनका पीछा किया। केसरखाँ और डोकरखाँ कोटा में युद्ध करते हुए मारे गए। कोटा पर राव सुर्जन का अधिकार हो गया। २६ वर्ष तक मुसलमानो अधिकार में रह कर कोटा पुनः हाड़ाओं का कीर्तिकेन्द्र बना[3]। इस विजय का परिणाम यह हुआ कि राव सुर्जन की बढती हुई शक्ति व भय से मऊ के खीचो रायमल ने सोसवळी, बड़ोद आदि क्षेत्र सुपुर्द कर दिये। परन्तु खीचियों के इस युद्ध में कीर्तिसिंह मारा गया। कोटा का राज्य सुर्जन ने अपने पुत्र भोज को दे दिया जो एक स्वतन्त्र शासक की तरह राज्य करने लगा।

राव सुर्जन की मृत्यु के बाद भोज बून्दी का शासक बना। भोज के तीन पुत्र थे। रतन, हृदयनारायण व केशोदास। राव भोज ने कोटा के शासक का भार अपने द्वितीय पुत्र हृदयनारायण को सौंपा और इस सम्बन्ध में अकबर बादशाह से स्वीकृति का फरमान भी प्राप्त किया[4]। हृदयनारायण ने लगभग १५ वर्ष तक कोटा पर राज्य किया। वह एक स्वतन्त्र शासक था, फिर भी प्रारम्भ में अपने पिता और उसके बाद में अपने भाई राव रतन की आज्ञा का पालन करता रहा।

भोज की मृत्यु के बाद राव रतन बून्दो की गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। उस समय मुगल बादशाह जहाँगीर दिल्ली पर राज्य करता था। जहाँगीर के विरुद्ध उसके लड़के खुर्रम ने विद्रोह कर दिया। राव रतन ने जहाँगीर को सहायता देकर खुर्रम के विद्रोह को दबाया और जहाँगीर

---

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २२३६।

२ वंश भास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २२३७।

३ गैपरनाथ का शिलालेख, वि० सं० १६३६।

४ टाड : राजस्थान (ए० ए०) जिल्द ३, पृष्ठ १४८६ फुटनोट।

के तख्त की रक्षा की[1] । खुर्रम के विद्रोह को दबाने के लिए राव रतन के साथ उसका भाई कोटा का शासक हृदयनारायण भी था । दोनों भाई शाहजादा परवेज् के साथ खुर्रम को दबाने के लिए इलाहाबाद की ओर चले । झूसी के स्थान पर सम्वत् १६८० में भयंकर युद्ध हुआ । खुर्रम तो जान बचा कर दक्षिण की ओर भागा[2] । हृदयनारायण ने इस युद्ध में अत्यन्त कायरता का परिचय दिया । वह भी रण-क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ । जहाँगीर हृदयनारायण पर बहुत क्रोधित हुआ और उसको कोटा गद्दी से उतार दिया । अस्थायी रूप से राव रतन ने कोटा राज्य का शासन अपने अधिकार में ले लिया ।

शाहजादा खुर्रम झूसी में हार कर उड़ीसा, तैलंगाना और गोलकुण्डा को पार करता हुआ पुनः दक्षिण में पहुँचा । उसने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध अहमदनगर के प्रधान मंत्री मलिक अम्बर से मित्रता करली । उस समय मुगल सेना बुरहानपुर में पड़ी हुई थी जिसका नेतृत्व राव रतन कर रहा था । खुर्रम ने मलिक अम्बर की सहायता से बुरहानपुर का घेरा डाल दिया । राव रतन के दो पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह इस युद्ध में उसके साथ थे । इस युद्ध में विजय राव रतन की हुई और खुर्रम भाग निकला । उसके ३०० सिपाही राव रतन ने कैद कर लिए और बहुत सा सामान लूट लिया[3] । माधोसिंह ने इस युद्ध में अपनी वीरता का पूर्ण प्रदर्शन किया । जहाँगीर इस नौजवान राजपूत राजकुमार पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । बादशाह का रुख देख कर सम्वत् १६८१ के बाद राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा का राजा बना दिया तथा इस कोशिश में रहा कि जहाँगीर उसकी स्वीकृति का फरमान देदें ।

जब खुर्रम ने अपना अपराध स्वीकार कर अपने पिता से क्षमा मांग ली तब खुर्रम का भय जहाँगीर को न रहा । खुर्रम के विद्रोह दबाने का श्रेय महाबतखाँ और राव रतन को गया । राव रतन को बुरहानपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया । खुर्रम की देखरेख रखने का भार पहले तो राव रतन के छोटे बेटे हरिसिंह को दिया गया परन्तु वह बहुत अव्यवहारिक था । शाहजादे को उसने बहुत तंग किया । इस पर राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को खुर्रम की

---

१ सागर फूट्या, जळ बहचो, अबकी रसे जतन्न ।
जातो गढ जहाँगीर को, राक्ख्यो राव रतन्न ॥
टाड : एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४८६ ।

२ खफी खां : जिल्द १, पृष्ठ ३४६-३५६ ।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २४९६ ।

३ इलियट एण्ड डाउसन जिल्द ६, पृष्ठ ३९५ तथा ४१८ ।
खफीखाँ : जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५० ।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७, २५००, ९४ ।

निगरानी के लिए रक्खा। माधोसिंह ने खुर्रम की अत्यन्त सेवा की। खुर्रम को आदर-भाव से रक्खा। दिल्ली की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करके राव रतन ने भी अपनी राजनैतिक विचारधारा व दृष्टिकोण बदलना शुरू किया। जहाँगीर के अन्तिम दिनों में १६२२ ई. से उसकी मृत्यु तक राजनैतिक संकट-काल का युग रहा। पहले कन्धार इरानियों के हाथ में चला गया। फिर खुर्रम ने विद्रोह किया। यह शान्त हुआ तो महावतखाँ ने विद्रोह कर दिया। नूरजहाँ बेगम अपने जामाता शहरयार को बादशाह बनाना चाहती थी जो अत्यन्त अयोग्य था। साम्राज्य का शक्तिशाली सामन्त आसफखाँ खुर्रम को दिल्ली तख़्त पर बैठाने की योजना में तल्लीन था। आसफखाँ की पुत्री मुमताजमहल की शादी खुर्रम से हो चुकी थी। राजनैतिक बहाव खुर्रम की ओर अधिक था। नूरजहाँ के शासन से सभी सामन्त तंग आ चुके थे। उससे लोहा लेने वाला खुर्रम ही था। अतः राव रतन का झुकाव खुर्रम की ओर होने लगा और उसने माधोसिंह को खुर्रम की ओर सद्व्यवहार बरतने की अपनी इच्छा प्रकट की।

बुरहानपुर के युद्ध-क्षेत्र में खुर्रम कैद कर लिया गया था जिसकी निगरानी के लिए राव रतन ने माधोसिंह को रक्खा था। जहांगीर ने खुर्रम को दिल्ली बुला भेजा परन्तु राव रतन ने यह कह कर टाल दिया कि शाहजादा खुर्रम बिमार है। पर जब बार-बार शाही पैगाम इस सम्बन्ध के आने लगे तो उसने व माधोसिंह ने मिल कर खुर्रम को कैदखाने से भगा दिया। इस कार्य में बुरहान-पुर के किलेदार द्वारकादास का भी हाथ था[1]। काश्मीर से लौटते समय

---

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २५२३-२६।

यह घटना केवल सूर्यमल मिश्रण द्वारा ही स्पष्ट की गई है। फारसी तवारिखों में इसका उल्लेख नहीं है। सम्भवतः राजपूतों की वीरता का प्रदर्शन करने तथा खुर्रम पर राव रतन के ऐहसानों का मुसलमानी लेखकों ने वर्णन करने का जान बूझ कर प्रयास नहीं किया हो। डाक्टर बेनीप्रसाद ने "हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर" (पृष्ठ ३६३-९५) में इस घटना का यों उल्लेख किया है कि बुरहानपुर में हार जाने के बाद खुर्रम ने जहाँगीर से क्षमा-याचना की। उस समय महाबत खाँ का प्रभाव बढ रहा था। नूरजहाँ उसकी बढती हुई शक्ति को रोकने के लिए खुर्रम (जो कि अब शक्तिहीन हो चुका था) से शान्ति करने के पक्ष में थी। खुर्रम को सद्व्यवहार रखने के लिए अपने दो पुत्र दारा व औरंगजेब को बादशाह के सुपुर्द करना पड़ा तथा रोहतास व असीरगढ़ भी बादशाह को दिये गए। जहाँगीर ने उसे बालघाट का सूबेदार बना दिया।

वंशभास्कर की घटना के उल्लेख की सत्यता पर डा० मथुरालाल शर्मा ने 'कोटा राज्य का इतिहास' (भाग १, पृ० १०३ फुटनोट) में यह लिखा है कि 'राव रतन के जीवन-चरित्र में बुरहानपुर की रक्षा और माधोसिंह को स्वतन्त्र राजा बनाना तो फारसी तवारिखों और

जहाँगीर बीमार पड़ा और लाहौर के पास सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय खुर्रम दक्षिण में था। परन्तु उसके शक्तिशाली श्वसुर आसफखाँ ने खुर्रम को बादशाह घोषित करवा दिया। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। शाहजहाँ ने माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक होने का फरमान दे दिया[1]। उसके साथ ही शाहजहाँ ने बून्दी के आठ परगने जो उसने जब्त किये थे, माधोसिंह को दिए[2]। अब माधोसिंह का मुगल सम्राट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

राव रतन बुरहानपुर में बालघाट की रक्षा करते हुए सम्वत् १६८८ (सन् १६३१) में मारा गया। उस समय उनके साथ माधोसिंह भी था। माधोसिंह ने शाहजहाँ को इसकी सूचना भेजी। शाहजहाँ ने राव रतन के पाटवी पौत्र शत्रु-शाल (राजकुमार गोपीनाथ का पुत्र) को बून्दी का व माधोसिंह को कोटा का राजा पृथक पृथक रूप से स्वीकार किया। पिता की मृत्यु के बाद सम्वत् १६८८ में माधोसिंह ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। शाहजहाँ ने उसे खिल-अत भेजी तथा उसे २५०० जात व १५०० सवार का मनसबदार बना दिया। इस प्रकार वि० सं० १६८८ की पोष बदि ३ को कोटा राज्य अलग स्थापित हो गया।

राव माधोसिंह (वि० सं० १६८८-१७०४)

बून्दी के शासक राव रतन के तीन पुत्र थे, गोपीनाथ, माधोसिंह व हरिसिंह।

प्रत्यक्ष घटनाओं से सिद्ध है ही। विवादास्पद हो सकता है केवल खुर्रम का राव रतन के संरक्षण में कैद रहना और हरिसिंह व माधोसिंह के व्यवहार का हाल। सम्भव है माधोसिंह को अलग विस्तृत राज्य पुरस्कार के समय ही प्राप्त हुआ हो परन्तु शाहजहाँ ने जब गद्दी पर बैठते ही राव रतन को आदेश दिया कि हरिसिंह को दरबार में हाजिर किया जावे और राव रतन ने इस सबब से उसको नहीं भेजा कि दुर्व्यवहार का स्मरण करके ही सम्राट उसको मरवा न डाले……तो सम्राट ने बून्दी के ८ परगने जब्त कर लिए। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट अत्यन्त अप्रसन्न था और माधोसिंह से अत्यन्त प्रसन्न।

१ वंशभास्कर: तृतीय भाग, पृष्ठ २५०६; इलियट व डाउसन, जिल्द ६, पृष्ठ ४१८। टाड लिखता है कि यह फरमान जहांगीर के समय ही प्राप्त हो गया था। जहाँगीर कोटा को बून्दी से पृथक राज्य बनाना चाहता था। उसे भय था कि दोनों के मिलने पर यह शक्ति-शाली जाति कहीं साम्राज्य के लिए खतरा न हो जाए। उसे विश्वास था कि पृथक रहने पर वह दोनों पर आसानी से शासन कर सकेगा। शाहजहाँ ने उस फरमान की पुनरावृत्ति की। टाड: राजस्थान (क्रुक सम्पादित) जिल्द ३, पृष्ठ १४८७।

२ ये आठ परगने निम्न लिखित थे—खजूरी, अरण्डखेड़ा, कैथुन, आँवा, कनवास, मधुरागढ वीगोद, व रहल।

वंशभास्कर: तृतीय भाग, पृष्ठ २५४३।
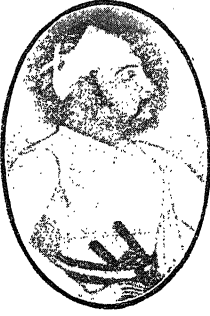
माधोसिंह का जन्म ज्येष्ठ सुदि ३ सम्वत् १६५६ को बून्दी नगर में हुआ था[1] । प्रारम्भ से ही इसकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया गया था । युद्ध-विद्या, घुड़सवारी तथा शिकार के लिए यथोचित शिक्षा दी गई । विद्याभ्यास के लिए इसे संस्कृत का ज्ञान कराया गया । १४ वर्ष की अवस्था तक इसने बून्दी में ही रह कर ज्ञान प्राप्त किया था । टॉड लिखता है कि जब वह १४ वर्ष का ही था तब उसने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे उसे राजा का खिताब प्राप्त हुआ और कोटा का राज्य मिला[2] । परन्तु तत्कालीन फारसी तवारिखों से यह पाया जाता है कि माधोसिंह को कोटा व पलायता के परगने जिस समय मिले उस समय उसकी अवस्था ३२ (१६८८ सम्वत्) वर्ष की थी । टॉड के कथन में इतनी सत्यता प्रतीत हो सकती है कि १४ वर्ष की उम्र में माधोसिंह अपने पिता के साथ पहली बार युद्ध में गया होगा और वहीं अपनी वीरता का परिचय दिया होगा । यह युद्ध जहाँगीर के काल में सम्वत् १६७१ (१६१४ ई०) में हुआ जब कि शाहजादा खुर्रम ने अहमदनगर पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रधान मन्त्री मलिक अम्बर को हराया[3] ।

प्रारम्भ से ही राव रतन माधोसिंह की योग्यता को जान चुका था । अतः जब कभी वह शाही सेना का पक्ष लेकर युद्ध में गया, उसने माधोसिंह को साथ ही रक्खा । राव रतन जब बुरहानपुर का हाकिम हुआ तब माधोसिंह उसके साथ थाँ । खुर्रम के बुरहानपुर घेरे के समय माधोसिंह और उसका छोटा भ्राता हरिसिंह उस युद्ध में बुरी तरह घायल हुए परन्तु विजय हाड़ों की हुई[4] । भूसी के युद्ध में राव रतन का भाई हृदयनारायण भाग गया था । अतः बादशाह जहाँगीर उससे अत्यंत क्रुद्ध हुआ और कोटा का राज्य उससे छीन लिया । अस्थायी रूप से राव रतन को कोटा प्राप्त हुआ । राव रतन ने कोटा अपने

---

१ ई० स० १५९९ ता० १८ मई; टाड के अनुसार इसका जन्म सम्वत् १६२१ (सन् १५६५) में हुआ । टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृष्ठ १५२१ । मुंशी मूलचन्द ने "चरित्र रत्नावली" के आधार पर इसका जन्म सम्वत १६५७ में लिखा है । बख्शी खांन से प्राप्त जन्मकुण्डली प्राप्त हुई उसके अनुसार उपरोक्त तिथि प्राप्त होती है ।

२ टाड : राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५२१ ।

३ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास : प्रथम भाग, पृष्ठ ९२ ।

४ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७ व २५००-०४; खफी खां : जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५० ।

लड़के माधोसिंह को दे दिया और शाही फरमान के लिए प्रयत्न करने लगा जिससे माधोसिंह कोटा का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर लिया जाय। बुरहानपुर के युद्ध में खुर्रम कैद कर लिया गया और प्रारम्भ में हरिसिंह की व बाद में माधोसिंह की निगरानी में रक्खा गया। माधोसिंह ने खुर्रम के साथ सद्व्यवहार किया और अपने पिता की आज्ञा से उसे उस समय भागने का अवसर दिया जब जहाँगीर ने खुर्रम को दिल्ली बुला भेजा जिससे उसे विद्रोह करने के अपराध में दण्ड दे सके। जहाँगीर की मृत्यु (ई. सन् १६२७ के बाद जब खुर्रम शाहजहाँ के रूप में गद्दी पर बैठा तो माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर एक फरमान भेज दिया और साथ में बून्दी के आठ परगने भी उसे दे दिए। राव रतन की मृत्यु सम्वत् १६८८ (१६३१ ई.) के बाद तो माधोसिंह ने कोटा में अभिषेक करा कर महाराजाधिराज की पदवी धारण की।

बादशाह ने माधोसिंह के अभिषेक के समय खिलअत प्रदान की तथा २५०० जात और १५०० सवारों का मनसब प्रदान किया। कोटा राज्य उस समय अति सीमित था। यह उत्तर में बड़ौद तक, पूर्व में पलायथा और माँगरोल तक, दक्षिण में मुकन्दरा पर्वत श्रेणी व शेरगढ तक तथा पश्चिम में चम्बल नदी के बाँए किनारे पर के नान्ता आदि ५ गाँवों तक था[१]। उस समय उस क्षेत्र में ३६० गाँव थे और कुल आमदनी २ लाख रुपये थी[२]।

स्वतन्त्र शासक बनने के कुछ समय पहले से ही वह शाहजहाँ के दरबार में प्रभावशाली व्यक्ति बन गया और समय-समय पर मुगल साम्राज्य की कठिन परिस्थितियों में जो सेवाएँ की, उससे हाड़ा शक्ति का केन्द्र बून्दी न रह कर कोटा हो गया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही उसे खाँजहाँ लोदी के विद्रोह का सामना करना पड़ा। खाँजहाँ लोदी का असली नाम पीरखाँ लोदी था। जहाँगीर के समय उसने पहले खुर्रम के विद्रोह के बाद में महाबतखाँ के विद्रोह को दबाने में मुगल सल्तनत की सहायता की थी। अपने पराक्रम और योग्यता के कारण ही वह पंचहजारी मनसब का अधिकारी हुआ तथा 'खाँजहाँ' की उपाधि धारण की। दक्षिण में बालाघाट की सूबेदारी इसे प्रदान की गई थी। अतः शाहजहाँ

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ १०८।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृष्ठ १५२१। कोटा की सीमा का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि माधोसिंह के शासक बनते समय यह राज्य दक्षिण में गागरोण और घाटोली तक, जहाँ खीची राज्य करते थे; पूर्व में माँगरोल तथा नाहरगढ तक (माँगरोल पर गौड़ तथा नाहरगढ में राठौड़ राजपूतों का राज्य था) जिसमें मुसलमान धर्म स्वीकार कर नबाब बन गया था। उत्तर में सुल्तानपुर और पश्चिम में चम्बल तक था।

से इसकी नहीं बनती थी फिर भी जब शाहजहाँ ने शासक होते ही इसे अपना मुख्य दरबारी नियुक्त किया। परन्तु शीघ्र ही वह शाहजहाँ के विरुद्ध हो गया और विद्रोह कर बैठा। इस विद्रोह को दबाने में माधोसिंह हाड़ा का प्रमुख हाथ था। खाँजहाँ प्रारम्भ में धोलपुर के पास परास्त हुआ। फिर उज्जैन के पास उसने लूट मचाई, और फिर बुन्देलखण्ड में उत्पात करने लगा। कालिन्जर के युद्ध में खाँजहाँ लोदी को बुरी तरह हराया। खाँजहाँ लोदी सम्वत् १६८७ माघ सुदि २ (सन् १६३१ की २४ जनवरी) को अपने दो पुत्रों सहित इस युद्ध में काम आया[1]।

शाहजहाँ ने माधोसिंह को इन सेवाओं का उपयुक्त पुरस्कार दिया। चैत्र कृष्णा ४, सं. १६८८ (११ मार्च १६३१) को नौरोज के उत्सव पर इसका मनसब बढ़ा कर दो हजारी जात और एक हजार सवार कर दिया और एक हजार निशान झण्डा भी दिया[2]। वंशभास्कर में सूर्य्यमल मिश्रण उल्लेख करता है कि बादशाह ने माधोसिंह को जीरापुर, खैराबाद, चैचट और खिलचीपुर के चार परगने दिए पर ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि इस वीरता के उपलक्ष में माधोसिंह को १७ परगने और मिले थे[3]। माधोसिंह की मृत्यु के समय ये सब परगने कोटा के अधीन थे। इसी वर्ष की पोष वदि ३ (३० नवम्बर १६३१) को इसके पिता का देहांत हो गया। दक्षिण की सूबेदारी जब खानदुर्शन को प्राप्त हुई तो उसे दौलताबाद के पास शाहजी भौसला से युद्ध करना पड़ा। माधोसिंह हाड़ा खानदुर्शन की सेवा में उपस्थित था। उसे बुरहानपुर की रक्षा का भार सौंपा गया जिसमें उसे सफलता प्राप्त हुई[4]।

सम्वत् १६९२ (सन् १६३५) में वीरसिंह बुन्देले के पुत्र जूंझारसिंह ने शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का कारण यह कहा जाता है कि जूंझारसिंह ने गोंडों के शासक प्रेमनारायण को मार कर उसके दुर्ग चौरगढ पर

---

१ बादशाहनामा : भाग २, पृष्ठ ३४८-५०।
इलियट व डाउसन : भाग ७, पृष्ठ २०-२२।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २५९५।
शाहजहाँनामा : भाग १, पृष्ठ २७।

२ शाहजहाँनामा : भाग २, पृष्ठ २८; डा० शर्मा का कथन है कि वह तीन हजारी मनसबदार बना दिया गया। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ११२।

३ रामगढ, रहलावरण, कोटड़ा, सुल्तानपुर, बड़वा, मांगरोल, रानपुर, आटोरण, खैरावाद, सुकेत, चेचट, मण्डाना, नीनोदा, ओरसन, पलायथा, कोयला, सोरखण्ड।

४ महासिरूलउमरा, पृष्ठ २८९।

तुर्क व फारसी हमलों का सामना किया। औरंगजेब २५ मई सन् १६४७ को बल्ख पहुँचा परन्तु औरंगजेब भी उस क्षेत्र पर अधिकार न कर सका। परिस्थिति प्रतिकूल होने पर औरंगजेब १० नवम्बर १६४७ को काबुल लौट गया।

रास्ते में शत्रुओं ने कई स्थानों पर शाही सेना पर आक्रमण किए। औरंगजेब को घोर संकटों का सामना करना पड़ा। औरंगजेब के साथ लौटती सेना में माधोसिंह भी था और वह जनवरी १६४८ में कोटा लौटा[1]। कोटा लौटते समय वह दिल्ली में बीमार हो गया था। सन् १६४८ में कोटा पहुँचते-पहुँचते उसका देहान्त हो गया[2]।

माधोसिंह ने अपने राज्य-काल में कोटा का राज्य बहुत ही बढ़ाया। राजगद्दी पर बैठने के समय कोटा राज्य में केवल १४ परगने ही थे। समय-समय पर शाही सेवाएँ करने के उपलक्ष में शाहजहाँ उसे कुछ परगने देता गया। खाँजहाँ लोदी के विद्रोह को दबाने के समय उसे १७ परगने और प्राप्त हुए। बल्ख और बदखशा के युद्धों से लौटने पर इसे बाराँ और मउ के परगने जो बून्दी नरेश के पास थे, इसे दिए गए। अतः इसकी मृत्यु के समय कोटा में ४३ परगने और लगभग २००० गाँव थे[3]।

मुगल साम्राज्य का यह प्रतिष्ठावान् मनसबदार था। शाहजहाँ ने इसको पंचहजारी जात तथा २५०० हजारो सवार दे रक्खे थे। बादशाह की ओर से इसे 'राजा' की पदवी प्राप्त थी। इस प्रकार इतनी बड़ी इज्जत प्राप्त करके यह शाही खजाने से साढे तीन लाख वार्षिक आय प्राप्त करता था। यह इसके मनसबदार होने का वेतन था। उस समय पंचहजारी मनसब का सम्मान हिन्दू सामन्तों को कम मिलता था। उसने यह सम्मान अपनी योग्यता तथा कार्यपटुता व राज्य-भक्ति से प्राप्त किया था। रणकौशल व दुर्गों के घेरे में सफलता पाने की विद्या में वह अत्यन्त निपुण था। यही कारण है कि जहाँगीर व शाहजहाँ

---

१ शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति ने भारत में मुगल साम्राज्य की नीवें हिलादीं। इसमें करीब १२ करोड़ रुपया खर्च हुआ और एक इञ्च भूमि भी हस्तगत न हो सकी। राजनैतिक व सैनिक दुर्बलता ने मुगलों को आ घेरा। इस दुर्बलता ने भावी राजपूत-मुगल-सम्बन्ध को अति प्रभावित किया।

२ टॉड ने लिखा है कि उसका देहान्त सम्वत् १६८७ में हुआ। यह सत्य नहीं है। वंशभास्कर के अनुसार इसका देहावसान सम्वत् १७०७ में हुआ। परन्तु डा० शर्मा ने मुहम्मदवारिस के बादशाहनामा के आधार पर सं० १७०५ के लगभग उसकी मृत्यु-तिथि बतलाई है।

३ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १२८-२९।

ने इसे बुरहानपुर तथा कन्धार जैसे महत्वपूर्ण दुर्ग के घेरे के युद्ध में उत्तरदायित्वपूर्ण भार सौंपा। वह सदा हरावल का अधिकारी रहा और युद्ध में प्रथम पंक्ति में रह कर युद्ध-कौशल प्रदर्शित करता था। माधोसिंह आज्ञाकारी पुत्र, नीतिनिपुण राजा, सन्तान-वत्सल पिता तथा कर्त्तव्यपरायण स्वामीभक्त था। मुगल शासन के प्रति इसकी भक्ति इतनी उच्च थी कि वह इस बारे में जरा भी संकोच नहीं करता था कि उसके कारण राजपूताने के अन्य राजपूत शासकों को भी युद्ध करना पड़ता है। औरंगजेब के वह विश्वासप्रिय व्यक्तियों में से था।

इसके नेतृत्व में कोटा राजपूताने का एक छोटे राज्य से परिणित होकर एक प्रभावशाली राजपूत राज्य बन गया। इसके राज्य में कुल मिला कर ४३ परगने थे। इनमें से कुछ परगने सूबा अजमेर की रणथम्भोर सरकार के नीचे तथा कुछ सूबा उज्जैन की गणरौण सरकार के अन्तर्गत थे। प्रत्येक परगने के लिए बादशाह को मामलात देते थे जो अजमेर तथा उज्जैन के खजाने में जमा होती थी। प्रत्येक परगने में चौधरी, कानूनगो और एक ठाकुर, ये तीन कर्मचारी होते थे। चौधरी व कानूनगो बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इनका पद पैतृक था तथा लगान-वसूली का कार्य करते थे तथा राजा के उस क्षेत्र के सलाहकार होते थे। इनको लगान (राजस्व) वसूली करनें में वेतन के साथ कमीशन भी दिया जाता था। ठाकुर राजा के अधीनस्थ होता था और शांति-रक्षा के लिए जिम्मेदार होता था। इनके नीचे पटेल, रियाआ, काश्तकार होते थे। राज्य का अधिकांश हिस्सा छोटी-छोटी जागीरों में बँटा होता था। जागीरदार राजा के साथ लड़ाइयों में जाते थे तथा राज्य की रक्षा करते थे।

राज्य की रक्षा के लिए एक सेना होती थी। माधोसिंह पंचहजारी मनसबदार था। अतः वह ५००० जात व २५०० सवार रख सकता था। इसके अतिरिक्त जागीरदारों के पास स्वयं की एक सेना रहती थी। युद्ध-काल में सेना एकत्रित कर राजा को सहायता देने का भार जागीरदारों पर था। इसके अलावा राज्य की सेना के कई और अंग थे—पैदल, पीलखाना, शुतुरखाना आदि जिनका पृथक् अध्यक्ष होता था परन्तु यह पद सामन्तों को ही दिया जाता था।

माधोसिंह द्वारा निर्मित कोटा में कई इमारतें अब भी सुरक्षित खड़ी हैं, यथा पाटनपोल, शहरपनाह, केथुनीपोल, किला, किशोरपुरा का दरवाजा, आदि।

माधोसिंह के पाँच पुत्र थे—मुकन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हीराम व किशोरसिंह। मुकन्दसिंह सबसे बड़ा पुत्र होने से माधोसिंह द्वारा उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था। माधोसिंह के युद्ध में लगे रहने के कारण वह ही राज्य

राव जगतसिंह (विक्रम सम्वत् १७१५ से १७४०)

यह राव मुकुन्दसिंह हाड़ा का इकलौता पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १७०१ (सन् १६४४ ई०) में हुआ। जब धर्मत के युद्ध में राव मुकुन्दसिंह रणखेत रहा तब उसकी मृत्यु के बाद वि० सं० १७१४ (सन् १६५८ ई.) में कोटा की राजगद्दी पर आसीन हुआ। औरंगजेब जब सामूगढ़ के युद्ध में विजयी होकर आगरा में अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। उसने राव जगतसिंह को शाही दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचने पर राव जगतसिंह को २००० का मनसब तथा खिलअत प्राप्त हुई[1]। बादशाह का सम्मानित करने का मुख्य तात्पर्य उसको अपने पक्ष में करना था क्योंकि वह जानता था कि बिना राजपूतों की सहायता के वह अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकेगा और राज्य का सही ढंग से प्रबन्ध नहीं कर सकेगा। तब से जगतसिंह औरंगजेब की सेवा में बना रहा। जनवरी १६५९ ई. में औरंगजेब को शाहजादा शुजा का सामना करना पड़ा तब राव जगतसिंह उसका सामना करने को भेजा गया[2]। खजूंह के मैदान में शुजा से सामना हुआ जिसमें विजय शाही सेना की हुई। इस प्रकार राव जगतसिंह के सहयोग का लाभ औरंगजेब को शीघ्र ही प्राप्त हो गया[3]। औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध जब कड़ी कार्यवाही प्रारंभ की तब मरहठों के विरुद्ध राव जगतसिंह को ही भेजा[4]। दक्षिण में ही इसकी मृत्यु सं० १७४० की कार्तिक शुक्ला पंचमी को हुई। इसके कोई पुत्र नहीं था। इसलिए इसके बाद राव माधोसिंह के चौथे पुत्र कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा के सामन्तों ने शासन का भार सौंप दिया।

---

१ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२३; वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २७३८; आलमगीरनामा पृ० १६३-६४।

२ आलमगीरनामा, पृ० २४५-५०।

३ वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृ० २७७०।

४ सम्वत् १७३७ और १७४० (ई० सन् १६८० और १६८३ के बीच) जगतसिंह प्राय: दक्षिण में रहा, कभी औररंगाबाद, कभी बुरहानपुर में और कभी जहानाबाद में। दक्षिण में इसने कई ब्राह्मणों को दान-दक्षिणाएँ दीं। विशेष कर गजगणेश हाथी दान दिया गया। जगतसिंह औरंगाबाद और बुरहानपुर के आसपास किसी लड़ाई में सम्भव है कि हैदराबाद के युद्ध में शेख मिन्हाज से लड़ते हुए मारा गया।

डा० म. ला. शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १८६।

राव प्रेमसिंह (वि० सं० १७४० से १७४१)

राव माधोसिंह के पाँच पुत्र थे। चौथे पुत्र कन्हीराम को कोयला की जागीर प्राप्त हुई थी। जगतसिंह की मृत्यु के बाद उसके कोई पुत्र न होने के कारण कोटा के सरदारों ने वि० सं० १७४० (ई० सन् १६८३) में कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोयला से बुला कर कोटा का शासक नियुक्त किया। परन्तु यह महा मूर्ख और अयोग्य सिद्ध हुआ। इसको कुछ सरदारों की कूटचाल से राज्य मिला था जिनका उद्देश्य एक कमजोर शासक को अध्यक्ष मान कर अपनी शक्ति को सुरक्षित करना था। वास्तविक उत्तराधिकारी पलायथा वाले थे। प्रेमसिंह को इस प्रकार राजगद्दी मिलने के कारण उन सरदारों के कहने में रहना पड़ता था। इससे राज्य-शासन में गड़बड़ी होने लगी। परगनों में लूटमार होने लगी। खजाना खाली होने लगा क्योंकि लोगों ने मालगुजारी आदि देना बन्द कर दिया बाराँ परगने पर गौड़ों ने अधिकार कर लिया। अतः इसके विरुद्ध जन विरोधी आन्दोलन उठा और विरोधी सरदारों ने उसे गद्दी से उतार कर इसे कोयला वापस भेज दिया[1]। और उसके स्थान पर राव माधोसिंह के सबसे छोटे पुत्र किशोरसिंह को ठिकाना साँगोद से बुला कर कोटा की राजगद्दी पर कार्तिक शुक्ला द्वितीया वि० सं० १७४१ को बैठाया।

राव किशोरसिंह (वि. सं. १७४१–१७५२)

प्रेमसिंह को गद्दी से हटा कर जब सामन्तों ने किशोरसिंह को कोटा राज्य सौंपा उस समय यह शासन करने के लिए काफी वृद्ध था परन्तु कोटा की चिंतित राजनैतिक व्यवस्था को सही नेतृत्व इसी के द्वारा प्राप्त हो सकता था। अतः इसने वि० सं० १७४१ में कोटा का शासक होना स्वीकार किया[2]। औरंगजेब ने इसे ३००० की मनसब और खिलअत देकर इसे कोटा का राजा स्वीकार कर लिया। इसकी बहादुरी व पराक्रम तथा योग्यता से वह अत्यंत प्रभावित था। शाहजहाँ के काल में जब बाल्ख और बदक्शा विजय के लिए औरंगजेब को भेजा उस समय औरंगजेब ने माधोसिंह हाड़ा तथा उसके पुत्रों का युद्ध-कौशल देखा था। धर्मत के स्थान पर औरंगजेब के विरोधी राजपूतों में हाड़ाओं ने जिस विरोध

---

१ टाड: राजस्थान, जिल्द ३, पृ० सं० १५२३; ठाकुर लक्ष्मणदान: शाही सनद प्रेमसिंह को प्राप्त नहीं हुई थी इसलिए उमरावों ने प्रेमसिंह को गद्दी से उतार दिया।

वंशभास्कर: तृतीय भाग, पृ० सं० २८८०।

२ जगतसिंह की मृत्यु के समय किशोरसिंह बीजापुर की लड़ाइयों में व्यस्त था। उस समय उसे १००० का मनसब मिल चुका था। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २००।

का प्रदर्शन करते हुए वीरगति को प्राप्त किया। उससे औरंगजेब पर अधिक प्रभाव पड़ा। धर्मत के युद्ध में १५ अप्रेल १६५८ ई. को किशोरसिंह के ४० घाव लगे थे। उसको भली प्रकार सेवा की गई। अतः वह बच गया। अभी उसके घाव भरने भी न पाए थे कि औरंगजेब ने शुजा के विरुद्ध राव जगतसिंह और किशोरसिंह को भेजा। खजुहा के युद्ध में ३ जनवरी १६५६ को उसे शानदार सफलता प्राप्त हुई। औरंगजेब हाड़ा राजपूतों की शक्ति को पहचानता था। इसलिए वह उसे अपनी ओर ही रखने की नीति अपनाता रहा। वह जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह से शंकित रहता था। अतः कहीं राजपूत वर्ग उसके विरुद्ध एक न हो जाय, इसलिए इस दृष्टि को सामने रखते हुए कि फूट डाल कर ही (भेद नीति) शासन किया जाता है, उसने हाड़ा शासकों को अपनी ओर मिलाए रक्खा।

राजगद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद औरंगजेब के आदेशानुसार उसे दक्षिण में जाना पड़ा। अपने चारों पुत्र—विशनसिंह, रामसिंह, अर्जुनसिंह और हरनाथसिंह सहित वह दक्षिण की ओर जाना चाहता था। परन्तु उसके बड़े लड़के विशनसिंह ने दक्षिण में मुगलों के नीचे युद्ध करने में अपना अपमान समझा। उसने मना कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राजगद्दी के अधिकार से वंचित कर दिया और अन्ता की जागीर दी[1]। रामसिंह, जो दक्षिण में उसके साथ लड़ाई में गया था, उसको उत्तराधिकारी बनाया। युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने पर रामसिंह को १००० का मनसब भी मिला था। किशोरसिंह १६८५ ई० में बीजापुर विजय करने के लिए औरंगजेब के साथ गया। औरंगजेब ने जब बीजापुर पर अधिकार कर लिया तब उसने किशोरसिंह को खिलअत, हाथी, घोड़े, और जवाहरात पुरस्कार स्वरूप दिए तथा कुलाई का परगना भी उसको दिया गया।

औरंगजेब के साथ दक्षिण में यह अपने अन्तिम समय तक रहा। गोलकुण्डा-विजय के समय (ई. सन् १६८४-८५), हैदराबाद का घेरा (ई. सन् १६८६) उसके बाद मरहठा राजा शंभाजी व राजाराम के विरुद्ध शाही युद्ध में (१६८८ १६९५ ई.) बराबर औरंगजेब का साथ देता रहा[2]। औरंगजेब की क्षीण शक्ति को

---

१ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० सं० १५२३।

२ किशोरसिंह ने १२ वर्ष तक राज्य किया। वह केवल दो चार बार कुछ महिनों के लिए कोटा आया। शेष समय दक्षिण में ही बीता। मेवाड़ के राणा और शाहजादा आजम के बीच सुलह कराने में किशोरसिंह का मुख्य हाथ था। यह सुलह की बातचीत सम्वत् १७३७ के चैत्र मास में प्रारम्भ हुई। आजम से मिलने श्रावण कृष्णा ३ सम्वत् १७३७ को राणा जगतसिंह आया। किशोरसिंह हाड़ा वहाँ उसके स्वागत के लिए उपस्थित था।

ओझा : राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ८९७।

दृढ़ बनाने की श्रृंखला हाड़ा राजपूत ही थे। औरंगजेब जब दक्षिण में ही था तो उत्तरी भारत में जाटों ने विद्रोह कर दिया। सिनसिनी (भरतपुर) के जाट शासक राजाराम ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सिर खड़ा किया। जाट शासक के विद्रोह को दबाने के लिए औरंगजेब ने राव किशोरसिंह को दक्षिण से भेजा। जुलाई १६८८ को इसने जाट शासक को बुरी तरह हराया। राजाराम युद्ध करता हुआ मारा गया। किशोरसिंह के इस युद्ध में २८ घाव लगे तथा युद्ध करते-करते वह बेहोश हो गया[1]। इस युद्ध में इसके साथ औरंगजेब का पोता शाहजादा बेदारबक्स तथा खानजहाँ बहादुर जफरजंग भी था—बून्दी का राव राजा अनिरुद्धसिंह भी साथ था पर वह मैदान छोड़ कर भाग गया था[2]। बादशाह औरंगजेब ने किशोरसिंह को इस विजय पर बधाई दी और बून्दी का परगना केशोरायपाटण बून्दी से छीन कर किशोरसिंह को दिया। इस युद्ध में साथ वालों में से घाटी का रावत तेजसिंह, राजगढ का सरदार गोवर्द्धनसिंह, पानाहाड़ा का ठाकुर सुजानसिंह सोलंकी, बारज•का ठाकुर राजसिंह आदि मारे गये थे।

भरतपुर के युद्ध से सीधे यह स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करने के लिए कोटा लौट आया। दक्षिण में औरंगजेब मरहठो की शक्ति नष्ट करने पर तुला हुआ था। अतः करनाटक पर आक्रमण करने के समय उसने किशोरसिंह को बुला भेजा। वह पुनः दक्षिण में लौटा और अरनी (अकार्ट) के युद्ध में लड़ते हुए अप्रेल १६९६ (वि० सं० १७५२ के चैत्र मास) को इसे वीर गति प्राप्त हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त इसका द्वितीय पुत्र रामसिंह जो इसके साथ ही अरनी के युद्ध में था, राजगद्दी पर बैठा। इसके राज्यकाल में औरंगजेब का विरोध होने पर भी चाँदखेड़ा का जैन मन्दिर एक बधेरवाल जैन व्यापारी ने खानपुर के पास सम्वत् १७४६ में बनवाया था[3]।

---

१ औरंगजेबनामा : भाग ३, पृ० ५६।

२ वंशभास्कर में लिखा है कि अनिरुद्धसिंह के भागने पर बून्दी नरेश की पगड़ी गोवर्द्धनसिंह अपने सिर पर रख कर लड़ने लगा। वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृ० २८८८।

३ चाँदखेड़ी का शिलालेख, वि. सम्वत् १७४६।

राव रामसिंह (वि. सं. १७५२-१७६४)

किशोरसिंह अधिकतर युद्ध क्षेत्र में रहता था। अतः कोटा के शासन की देखरेख का पूर्ण भार अपने पुत्र रामसिंह को सौंप कर जाया करता था परन्तु किशोरसिंह की अंतिम दक्षिण यात्रा के समय रामसिंह अपने पिता के साथ था। अर्काट के युद्ध में राव किशोरसिंह की सम्वत् १७५२ (अप्रेल सन् १६९६) में मृत्यु हो गई[1]। अतः जब यह सूचना कोटा पहुँची तो रामसिंह की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर उसके बड़े भाई विष्णुसिंह ने कोटा पर अधिकार कर लिया व स्वयं शासक बन बैठा। औरंगजेब ने उसको मान्यता नहीं दी, बल्कि रामसिंह को तीन हजार मनसब तथा तीन हजारी सवारों का अधिकारी बना कर शाही सेना के साथ कोटा पर अधिकार करने भेजा[2]। विष्णुसिंह और रामसिंह दोनों भाइयों में आँवा गाँव में युद्ध हुआ। इस लड़ाई में इसके एक भाई हरनाथसिंह की मृत्यु हो गई और विष्णुसिंह घायल होकर अपनी ससुराल मेवाड़ राज्य के पाँडेर स्थान में चला गया जहाँ वह तीन वर्ष के बाद मर गया। इस प्रकार रामसिंह कोटा राज्य का स्वामी हुआ। कोटा राज्य पर सुरक्षित आसीन होने के बाद यह दक्षिण में शाही सेना में जा उपस्थित हुआ। दक्षिण करनाटक तथा मरहठों से जिञ्जी प्राप्त करने का भार जुलफिकारखाँ को दिया गया था। राव रामसिंह जुलफिकारखाँ के नेतृत्व में मरहठों के सरदार सन्ताजी घोरपड़े के पुत्र राणु से जा भिड़े। विजय इसकी रही जिसके सम्मान में सम्वत् १७५७ (ई० सन् १७००) में बादशाह से इसे नक्कारा प्राप्त हुआ[3]। दक्षिणियों से दूसरा

---

१ डा० मथुरालाल शर्मा का ऐसा मत है कि जुलफिकारखाँ ने अरनी का किला विजय कर रामसिंह के सुपुर्द कर दिया था। वहीं पर लड़ते हुए किशोरसिंह का देहान्त हुआ था। दक्षिण के युद्धों में रामसिंह ने आड़ोमी विजय (१६८७), पन्हाला विजय (१६८९) में भाग लिया। रामसिंह उस समय युवराज पद पर था। अतः कोटा नरेश की हैसियत से वहाँ पर उसने कई पट्टे परवाने और ताम्रपात्र जारी किए थे। बीजापुर विजय के बाद रामसिंह को १००० की मनसब प्राप्त हुई। कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२१-२२२।

२ उपरोक्त, पृ० २२३।

३ महासिरुलउमरा, पृ० ३४९। जुलफिकार खाँ के नेतृत्व में जिञ्जी के प्रसिद्ध घेरे में (१६९७) रामसिंह को 'शैतानदरी' हरावल पर भेजा गया। विजय रामसिंह की रही। राजाराम (शिवाजी का दूसरा पुत्र) जिञ्जी से भागने के समय अपना परिवार जिञ्जी में ही छोड़ गया। रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और पालकियों में उन्हें बिठा कर जिञ्जी से रवाना किया।

युद्ध अरनखेड़े के पास सन् १७०४ में हुआ जहाँ हाड़ा राजपूतों के आगे दक्षिणी टिक न सके। शाहजादा आजम अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने पिता से सिफारिश की कि इसका मनसब बढा दिया जाय। इसके मनसब में वृद्धि की गई और बून्दी के मऊ मैदान का परगना, सरबल, छीपाबड़ोद, व रतनपुर जागीर रूप में इनायत हुए[1]।

औरंगजेब की मृत्यु ३ मार्च १७०७ में अहमदनगर में होते ही उसके पुत्रों में दिल्ली के सिंहासन प्राप्त करने के लिए युद्ध हुआ। रामसिंह ने उस समय शाहजादा आज़म का पक्ष लिया। आज़म ने इसका मनसब चार हजारी का कर दिया। शाहजादा मुअज्जम जो कि औरंगजेब की मृत्यु के समय उत्तर पश्चिम सूबे में था, दिल्ली प्राप्त करने के लिए लश्कर सहित चला। दोनों भाइयों के बीच धौलपुर व आगरा के बीच जाजउ के स्थान पर १८ जून १७०७ को युद्ध हुआ। इस युध्द में बून्दी के हाड़ा शाहजादा मुअज्ज़म के पक्ष में लड़े और कोटा वाले शाहजादा आज़म की ओर से लड़े[2]। प्रथम बार हाड़ों की दोनों शाखाओं में विरोधी दलों में सम्मिलित होकर आपस में युद्ध हुआ। इस युध्द में शाहजादा मुअज्ज़म मारा गया। आज़म विजयी होकर दिल्ली के सिंहासन पर बहादुरशाह के नाम से बैठा। राव रामसिंह जाजड़ के इस युध्द में सन् १७०७ की २० जून (आसाढ वदि ४ सम्वत् १७६४) को मारा गया[3]।

इसी समय से बून्दी व कोटा के बीच युध्दों का श्रीगणेश हुआ। इसका शासन शान्तिकाल के लिए प्रसिध्द है। केवल एक बार मऊ में उपद्रव हुआ; वह भी दबा दिया गया। मेवाड़ के राणा व आमेर के राजा इसका सम्मान करते थे।

---

१ महासिरूलउमरा, पृ० ३४६।

२ शाहजादा आज़म १४ मार्च १७०७ को शाही तख्त पर अहमदनगर में बैठा और शादजादा मुअज्जम ने १२ जून १७०७ को आगरा पहुँच कर शाही कोष पर अधिकार कर लिया। रामसिंह आज़म से २ अप्रेल १७०७ को औरंगाबाद में मिला और आज़म का साथ देने का निश्चय किया।

३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० २६६७।
इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृ० २५१३०।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२४।

महाराव भीमसिंह (वि० सं० १७६४ से १७७७)

राव रामसिंह के जाजव के रणक्षेत्र में वि० सं० १७६४ (ई० सन् १७०७) को वीरगति प्राप्त होने पर उसका पुत्र भीमसिंह कोटा की राजगद्दी पर बैठा। इसने भील और खीची राजपूतों के बहुत से इलाकों को दबा कर अपना राज्य बढ़ाया। खीचियों से गागरोन का किला लिया। बाराँ, माँगरोल, मनोहरथाना, और शेरगढ़ के परगनों पर भी अधिकार जमाया। भीलों के राजा चन्द्रसेन को, जिसके पास ५०० घुड़सवार और ८०० तीरन्दाज रहते थे, निर्दयता से मार करके उसका राज्य इसने कोटा राज्य में मिलाया। इसके सिवाय औनारसी, पीडावा, डीग और चन्द्रावलों की भूमि पर भी इसने अधिकार किया[1]। परन्तु इसकी मृत्यु के बाद ही यह प्रदेश फिर से निकल गए।

जाजव की लड़ाई से कोटा व बून्दी में पारस्परिक शत्रुता हो गई। जाजव के युद्ध में शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह) का विरोध रामसिंह ने किया और बून्दी के बुद्धसिंह ने पक्ष लिया। बहादुरशाह कोटा के हाड़ाओं को शंका की दृष्टि से देखने लगा। बून्दी नरेश ने इस नई राजनैतिक व्यवस्था का पूरा लाभ उठाया। बहादुरशाह ने बुद्धसिंह को कोटा बून्दीमें मिलाने की आज्ञा देदी[2]। बुद्धसिंह ने अनुमति पाकर अपने मंत्रियों को कोटा राज्य पर अधिकार करने के लिए लिख दिया और स्वयं ने आमेर (जयपुर) जाकर वहां जयसिंह महाराज की बहिन से विवाह कर लिया। इसके बाद वह बेगूं (मेवाड़) की ओर होता हुआ बहादुरशाह के साथ दक्षिण की ओर चला गया[3]। इधर बून्दी के मंत्रियों ने कोटा पर आक्रमण कर दिया[4]। इस सेना को भीमसिंह ने बुरी तरह से हराया। बून्दी की सेना भाग खड़ी हुई[5]। एक बार भीमसिंह ने बड़ी चतुराई

---

१ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५२४-१५२५।

२ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९९८-९९ बहादुरशाह को महाराजा राव की पदवी दी तथा कोटा के ५४ परगने मिलाने का फरमान दिया था।

३ उपरोक्त, पृ० ३०००-१० बेंगू के राव की लड़की से भी बुद्धसिंह ने विवाह किया और कहाँ से अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कोटा पर आक्रमण किया जाय।

४ यह कार्य जोधराज वैश्य, गंगाराम का भाई और कनकसिंह के पुत्र जोगीराम के नेतृत्व में हुआ था। वंशभास्कर : पृ० ३००८।

५ डा० शर्मा का मत है कि युद्ध के पहले भीमसिंह ने बालकृष्ण व्यास और फतेहचन्द कायस्थ को भेज कर शान्ति रखने का प्रयास किया था पर असफल रहा। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २५६।

(१७१६ ई०) में बाराँ और मउ के परगने भी बादशाह के आदेश से बुध्दसिंह को लौटा दिये गये[1] । इस पर भीमसिंह व फरुखसियार का विरोध हो गया ।

फरुखसियार की सैयद बन्धुओं से नहीं बनी । अतः २८ फरवरी सन् १७१९ में सैयदों ने फरुखसियार को कैद कर मार डाला । बादशाह को कैद करने के समय सैयद भाइयों को डर था कि बुद्धसिंह और जयसिंह बादशाह के मित्र होने के नाते उसे पुनः तख्त पर बैठाने का प्रयत्न न करें । अतः उन्होंने बुद्धसिंह को, जो उस समय दिल्ली ही था, मार डालने की योजना बनाई । सैयद हुसेनअली के साथ जोधपुर के अजीतसिंह, किशनगढ के राजसिंह तथा कोटा के भीमसिंह ने बुद्धसिंह के डेरे पर हमला किया । बुध्दसिंह के कई वीर मारे गए । बुध्दसिंह लाहौरी दरवाजे होता हुआ भाग निकला[2] । इसके बाद फरुखसियार को मार डाला गया । बेदारबख्स के पुत्र बेदारदिल को रफीउद्दरजात के नाम से राजगद्दी पर बैठाया गया । रफीउद्दरजात ने भी ४ जून सन् १७१८ को राजगद्दी छोड़ दी और उसके बाद बहादुरशाह का पोता रफीउद्दोला गद्दी पर बैठाया गया । वह १८ सितम्बर १७१९ में मर गया । इसके बाद उसका भाई मुहम्मदशाह तख्त पर बैठाया गया । इस प्रकार सैयद बन्धु दिल्ली की राजनीति के सर्वेसर्वा थे । राजनैतिक उथल-पुथल से शासन में ढिलाई आने लगी । शाही फरमानों की अवहेलना की जाने लगी[3] । ऐसे समय में साम्राज्य में विद्रोह होने लगा । बादशाह के आदेशों की कोई परवाह नहीं की जाने लगी । इलाहबाद के सूबेदार छबेलाराम ने सैयदों के विरुध्द विद्रोह कर दिया । बून्दी का बुध्दसिंह हाड़ा उससे जा मिला[4] । इस पर सैयदों ने १७ नवम्बर १७१९ को दिलावरखाँ के

---

१ फरुखसियार के काल में राजधानी में ३ दल थे—मुगल, तुरानी व इरानी । फरुखसियार सैयद भाइयों से मुक्त होना चाहता था । उसने दक्षिण के सूबेदार निजाममुल्क से साँठ-गाँठ की । सैयद भाइयों में बड़ा भाई अब्दुला खाँ वजीर था और छोटा भाई हुसेनअली सेनापति । हुसेन अधिक चालाक था । जयसिंह व बुद्धसिंह उसके विरोधी थे । अतः फरुखसियार ने हुसनअली को दक्षिण का सूबेदार बना कर मराठों के विरुद्ध भेज दिया । इसी प्रकार लाभ उठा कर जयसिंह ने बुद्धसिंह को फरुखसियार से पुनः बून्दी दिलादी ।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२५ ।

वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०६५-६७ ।

३ इरविन : लेटर मुगल्स, भाग १, पृ० ८८६ ।

४ इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० १०-११ ।

साथ बून्दी पर शाही सेना भेजदी। शाही सेना के साथ नरवर के राजा गजसिंह व कोटा के भीमसिंह भी थे। बुध्दसिंह बुरी तरह से पराजित हुआ[1]।

दक्षिण में सूबेदार निजामुल्मुल्क स्वतन्त्र शासक बनने की चेष्टा करने लगा। फरुखसियार के समय वह दक्षिण का सूबेदार बनाया गया था। वहाँ उसने बड़ी कुशलता से शासन को सुव्यवस्थित व सुसंगठित किया। सैयदों ने उसे शीघ्र ही वहाँ से हटा कर मुरादाबाद और फिर मालवा का सूबेदार बनाया। इससे वह सैय्यदों का विरोधी बन गया। मालवा पहुँच कर वह गुप्त रूप से सैय्यदों के विरुद्ध सैनिक तैयारी करने लगा। निजाम को काबू में रखने के लिए सैय्यदों ने बून्दी से दिलावरखाँ व भीमसिंह को मालवा जाने की आज्ञा दी। इस समय भीमसिंह को यह प्रलोभन दिया गया था कि निजामुल्मुल्क के विरुध्द सहायता देने पर उसे 'महाराजा' की पदवी, सात हजार की मनसब तथा सात हजार सवारों का भी अधिकारी बना दिया जायेगा तथा उसको शाही मरातिब भी मिलेगा। दिलावरखाँ को मालवा का सूबेदार बनाना तय किया गया[2]।

निजामुल्मुल्क भी सेना के साथ उज्जैन की ओर बढा। उसने असीरगढ व बुरहानपुर के किलों पर पहले से ही कब्जा कर रक्खा था। बादशाही सेना को देख कर पहले तो निजामुल्मुल्क ने सन्धि का प्रस्ताव किया लेकिन दिलावर खाँ ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर निजामुल्मुल्क ने एक चाल चली। महाराव भीमसिंह और निजामुल्मुल्क पगड़ीबदल भाई थे। इसलिए निजाम ने महाराव को पत्र लिखा कि आपके चालाक महाराजा जयसिंह के कहने पर यध्द न करें। वह आपको आपस में लड़ा कर नष्ट करना चाहता है। परन्तु भीमसिंह अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा और लिख भेजा कि कल ही हम तुम पर हमला करेंगे[3]। भीमसिंह की निष्कपटता और सत्यता निजाम की चालाकी के सामने नहीं चल सकी। बुरहानपुर के पास गाँव कुरवाई के मैदान में निजाम ने पड़ाव डाला। झाड़ियों में निजाम ने तोपें छिपा कर मोर्चा बाँधा। जिस समय भीमसिंह प्रातःकाल ही हाथी पर चढ कर आगे बढा तो निज़ाम की तोप के गोले से ज्येष्ठ सुदि १४ (ई० सन् १७२० ता० ८ जून) को मारा गया। राजा गजसिंह

---

१ खफीखां लिखता है कि यह युद्ध १६ फरवरी १७२० को हुआ और बुद्धसिंह का काका व ६ हजार राजपूत मारे गए। खफीखाँ, जिल्द २, पृ० ८४४-४५।

२ खफीखाँ, जिल्द २, पृ० ८५१। भीमसिंह २००० राजपूतों को व नरवर के राजा गजसिंह ३००० राजपूतों को लेकर निजाम के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने पहुँचे थे।

३ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५२५-२६।

नरवरी भी इस समय काम आया। दिलावरखाँ भी एक गोले की चोट से मारा गया। शाही सेना तितर-बितर हो गई। विजयनिजाम की रही[1]।

भीमसिंह बड़ा वीर और धैर्य्यवान् नरेश था। इसके शरीर पर कई युध्दों में भाग लेने के कारण, कई घाव थे। अन्तिम समय में कुरवाई के रण-क्षेत्र में इन घावों को देख कर लोगों ने आश्चर्य किया। परन्तु मरते समय भी भीमसिंह ने यही कहा कि हाड़ा के राज्य व देश की रक्षा करने वालों के ऐसे निशान मिलते ही हैं तथा राजपूत सन्तान का धर्म है कि वह युध्द में सदा आगे रहे। कोटा के नरेशों में भीमसिंह ही पहला नरेश था जिसने महाराव की पदवी धारण की। इसके पहले ये 'राव' कहलाते थे। इसका अधिकांश समय युध्दों में ही बीता। अतः अपने राज्य का आन्तरिक प्रबन्ध ठीक नहीं कर सका। ज्यादातर राज्य जागीरदारों में बँटा था। अतः कोटा का शासक एक प्रकार से जागीरदारों के ही हाथ में था। यों अत्याचारी जागीरदारों की जागीरें जब्त कर ली जाती थीं। इसने साँवलजी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह वल्लभ सम्प्रदायवादी था[2]। भीमसिंह ने जजिया कर भी माफ करवाया था।

महाराव भीमसिंह के समय हलवर (धागधड़ा राज्य) का झाला भाउसिंह अपने पुत्र माधोसिंह सहित दिल्ली जाता हुआ कोटा आया। वह अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा नरेश की सेवा में छोड़ कर आप आगे दिल्ली चला गया। उसके साथ २५ घुड़सवार भी थे। यह माधोसिंह झाला अपने ननिहाल ठिकाना सावर (अजमेर) में ही छोटे से बड़ा हुआ था। माधोसिंह बहुत ही साहसी, पराक्रमी और चतुर था। भीमसिंह इस समय योग्य राजपूतों को इकट्ठा कर रहा था क्योंकि उसे सैय्यद बन्धुओं की सहायता में निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई करनी थी। माधोसिंह झाला को अपनी सेना में नौकर रख लिया। थोड़े ही समय में अपनी चतुराई व वीरता से महाराव को प्रसन्न कर लिया। अतः उसकी बहिन का विवाह महाराव ने अपने युवराज अर्जुन से करा दिया[3]। इससे

---

५ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३०७८-७९।
इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० २८-३१।
टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, १५२६।

२ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३०८। वीर विनोद भाग ३, पृ० १४७२।

३ वीरविनोद में यह उल्लेख है कि महाराव अर्जुनसिंह की शादी माधोसिंह झाला की बेटी से हुई थी।

टाड के कथनानुसार बहन लिखा है। टाड : जिल्द २, पृ० ५६५-६६।
झालावाड़ गजेटीयर, पृ० १९१ के अनुसार 'झाला माधोसिंह की बहन युवराज अर्जुनसिंह धाटी" लिखा मिलता है।

माधोसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। कुछ दिनों महाराव ने उसे फौजदार के पद पर नियुक्त किया और उसको कोटा के पास नानता की जागीर देदी। इस जागीर की आय १२,०००) रु. थी। आगे चल कर माधोसिंह झाला के परिवार ने कोटा की राजनीति में प्रमुख भाग लिया और झालावाड़ की रियासत अलग से स्थापित की।

महाराव भीमसिंह के अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुर्जनशाल नामक तीन पुत्र थे। भीमसिंह की मृत्यु के बाद अर्जुनसिंह वि० सं० १७७७ में गद्दी पर बैठा। यह केवल ३ वर्ष तक ही राज्य कर सम्वत् १७८० (सन् १७२३ ई० में स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण इसने अपने छोटे भाई दुर्जनशाल को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा राज्य के प्रमुख सरदारों के समक्ष प्रकट की। इसके समय बून्दी राज्य पुनः बुद्धसिंह को प्राप्त हो गया तथा बून्दी के सब परगनों से कोटा के थाने उठवा दिये गये।

महाराव दुर्जनशाल (वि. सं. १७८०-१८१३)

अर्जुनसिंह की अन्तिम इच्छानुसार राव दुर्जनसाल कोटा की राजगद्दी पर बैठा। उसका राज्याभिषेक वि०सं० १७८० (ई० सं० १७२३) माघशीर्ष वदि ५ में हुआ। गद्दी पर बैठते ही इसे एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। महाराव दुर्जनसाल का बड़ा भाई श्यामसिंह इस समय यह विचार कर रहा था कि अर्जुनसिंह के बाद कोटा की राजगद्दी पर उसका अधिकार है अतः अपने भाई दुर्जनसाल के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। राजगद्दी के लिये इस युद्ध को प्रोत्साहन देने का कार्य जयपुर के शासक सवाई जयसिंह ने किया था। अर्से से वह इस ताक में था कि बून्दी व कोटा के राज्य उसके प्रभाव में रहें। अतः उसकी राजनैतिक सफलता इस बात में थी कि कोटे का राजा ऐसा व्यक्ति बने जो उसके इशारों पर चलता रहे। गृह-युद्ध के इस अवसर पर सवाई जयसिंह ने श्यामसिंह का साथ दिया। जयपुर की सेना की सहायता पाकर श्यामसिंह ने कोटा पर आक्रमण कर दिया। दोनों भाइयों में अभलिया[1] गांव के पास

---

१ उदयपुरया का युद्ध सं० १७८५ में।

सं० १७८५ (ई०सं० १७२८) में युद्ध हुआ जिसमें श्यामसिंह मारा गया[1]। श्यामसिंह की मृत्यु पर महाराव दुर्जनसाल को बहुत दुःख हुआ और कहा कि यदि मुझे ऐसा मालूम होता तो मैं अपना राज्य छोड़ देता। बाद में इसने वि० सं० १७९७ में श्यामसिंह की मृत्यु के स्थान पर एक छत्री भी बनवाई[2]। इस गृह-कलह का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ था कि कोटा राज्य की शक्ति कमजोर हो गई। इस विजय के पहले ही मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने हाथी, खिलअत और मसनदन शीनी भेज कर राव दुर्जनसाल को कोटा का शासक स्वीकार कर लिया था[3]।

महाराव दुर्जनसाल का मुगल दरबार में काफी प्रभाव था। शाह मुहम्मद शाह में वह व्यक्तित्व व शक्ति नहीं थी जिससे मुगलों की परम्परा की शक्ति निभा सके[4]। दरबार में उसकी कोई परवाह नहीं करता था। गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद जब दुर्जनसाल से मिलने के लिये दिल्ली गया[5] तब गायों की रक्षा के हेतु वहां के कुछ कसाइयों और नगर कोतवाल को मार डाला था। ये गायें शाही रसोईघर के लिये कटने वाली थीं। लेकिन इसने बादशाह की कोई परवाह न कर गायों को कोटा भेज दिया। इसके अलावा गायों का जो कसाई-खाना यमुना नदी के किनारे था उसे वहाँ से हटवा दिया क्योंकि यमुना नदी के किनारे होने से गायों का रक्त यमुना में जा मिला था[6]।

मराठों के पेशवा बाजीराव प्रथम की प्रधानता में मराठों ने पहले-पहल कोटा पर, वि० सं० १७९५ में, धावा किया। उस समय दुर्जनसाल ने मरहठों को

---

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०९४।
श्यामरु दुर्जनसल्लके, भो भूहित घमसान।
अग्रज श्यामसिंह मारिके, भौ नृप दुर्ज्जनसाल ॥

२ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३३९।

३ टाड : राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

४ खफीखाँ : मुहम्मद शाह की पतित स्थिति का वर्णन करते लिखता है कि वह (बादशाह) नपुंसकों की संगति में अधिक रहता था, और उन्हीं लोगों को राज्य के ऊँचे पद दिये जाते थे। (पृ० ९४०)

५ मुहम्मदशाह के विरोधियों में मारवाड़ के शासक अजीतसिंह व मेवाड़ के महाराणा थे। जयसिंह, जयपुर नरेश ने प्रत्यक्ष रूप में बादशाह का विरोध नहीं किया था परन्तु धीरे २ वह अपनी स्वतंत्र नीति अपनाने लगा, मराठों से मित्रता करली और हिन्दूपद पादशाहीं का स्वप्न देखने लगा। सिर्फ कोटा का शासक दुर्जनसाल ही उसका मित्र रह गया था।

६ टाड : राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

भोजन तथा युद्ध-सामग्री से सहायता की इसलिए उन्होंने भी मित्रता का परिचय दिया और नाहरगढ का किला जो मुसलमानों के अधिकार में था, छीन कर महाराणा दुर्जनसाल को दे दिया[१]।

जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह[२] की वृहत् जयपुर की नीति का अनुसरण उसके पुत्र ईश्वरसिंह ने भी किया[3]। उसने हाड़ोती को अपने अधिकार में रखने का पूर्ण प्रयत्न किया। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि कोटा तथा शाहपुरा की सहायता से रावराजा उम्मेदसिंह हाड़ा ने बून्दी राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया तो ईश्वरसिंह ने वि० सं० १८०१ (ई० सं० १७४४) में बून्दी की तरह कोटा को भी अपने अधीन करने के लिये चढाई की। इस समय महाराजा ईश्वरसिंह ने जयप्पा सिंधिया, मल्हारराव होल्कर तथा सूरजमल जाट की सहायता लेकर कोटा शहर का घेरा डाल दिया जो ६१ दिन तक रहा। कोटा के पास कोटड़ी नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में जयप्पा सिंधिया

---

१ पेशवा बाजीराव ने १७२९ ई० के बाद अपनी प्रसिद्धि उत्तरी भारत में प्रसार की नीति के अन्तर्गत मालवा, बुन्देलखण्ड व गुजरात पर मराठी प्रभाव स्थापित करना आरम्भ किया। ये तीनों सूबे मुगल साम्राज्य के अंग थे। मालवा की सूबेदारी जयसिंह को प्राप्त हुई कि वह मरहठों को वहाँ से हटा दे। पर जयसिंह ने मरहठों से मित्रता की नीति ही अपनाई। इस पर मुहम्मदशाह ने वजीर कमीरुद्दीन व बक्शी सानेदोरान को मराठों को दबाने भेजा। सम्वत १७९१ (सन् १७३४) में खानेदोरन ने राजस्थान के शासकों से जयसिंह, अभयसिंह व दुर्जनसाल से सहायता लेकर रामपुरा में पड़ाव डाला। होल्कर व सिंधिया ने खानेदोरान को बुरी तरह तंग किया। आठ दिन तक उनके पास रसद नहीं पहुँचने दी। बाजीराव ने खानेदोरान को संधि के लिये बाध्य किया। होल्कर व सिंधिया ने मारवाड़, जयपुर, सांभर आदि को लूटा। कोटा ने संधि करली जहाँ महाराव दुर्जनसाल ने मरहठों की सेवा-सुश्रुषा की। बाद में होल्कर व सिंधिया सहित बाजीराव ने कोटा का घेरा डाला। यह घेरा ४० दिन तक रहा। १७९५ में बालाजी यशवन्त की मध्यस्थता से बाजीराव व तुर्जनसाल के बीच मित्रता हो गई। बाजीराव को ४० लाख रु. प्राप्त हुए।

२ बून्दी को कोटा से मुक्ति दिलाने के बाद जयसिंह ने बुद्धसिंह को पुनः बून्दी का शासक बना दिया था। परन्तु उसका मंत्री नागराज जयसिंह के प्रभाव में ही कार्य करने लगा जिससे जयसिंह का प्रभाव बून्दी पर स्थाई रूप से बना रहा (वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ५०९४)।

३ जयसिंह का बून्दी पर अधिकार : बून्दी का इतिहास, पृ० संख्या...... ।

बुद्धसिंह ने कोटा नरेश की सहायता प्राप्त कर बून्दी पुनः लेनी चाही पर वह असफल रहा। इस पर जयसिंह दुर्जनसाल से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने दलेलसिंह को बून्दी का राजा बना दिया तथा दुर्जनसाल को उसे शासक मानने के लिये बाध्य किया। दुर्जनसिंह ने दलेलसिंह के लिये एक सिरोपाव व एक घोड़ा भेजा।

का एक हाथ तोप के गोले से पोष शुक्ला १५ को उड़ गया। अन्त में किलेदार हिम्मतसिंह की चतुराई और हाड़ों की वीरता से आपस में सुलह हो गई। महाराव ने बून्दी के पाटया और काचरण परगने तथा ४ लाख रुपये फोज-खर्च देकर मरहठों से पीछा छुड़वाया।

गुगोर का ठाकुर भीमसिंह के देहांत पर कोटा से अलग हो गया अतः सं० १८१० (ई० स० १७५३) में महाराव ने गढ़ गुगोर को वापस लेना चाहा पर इसमें सफल नहीं हुआ। खीचियों के राजा बलभद्र ने सामना किया। यहाँ तक कि रामपुरा, शिवपुर व बून्दी के सरदारों ने दुर्जनसाल का सामना करना चाहा परन्तु इसी समय बून्दी के रावराजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सहायता की, जिससे कोटा राज्य खीचियों के हाथ में जाने से बच गया[1]।

सं० १८१३ के श्रावण शुक्ला ५ (ई० स० १७५६) को महाराजा दुर्जनसाल का स्वर्गवास हुआ। इन्होंने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इनका विवाह सं० १७९१ आषाढ कृष्णा ९ (सन् १७३४ जून) को उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दूसरे की बहिन राजकुमारी ब्रजकुँवरबाई के साथ हुआ था इसलिये महाराणा ने गद्दी पर बाईं तरफ बैठने की इज्जत महाराव को दी और दूसरे नरेशों की भाँति उदयपुर से महाराव के नाम पर भी लिखा जाने लगा[2]।

इसके कोई पुत्र नहीं था। इससे निराश होकर ये कभी-कभी कह बैठते थे कि दूसरे का हक छीनने वाले के उत्तराधिकारी कहाँ से आवें? इसलिये महाराव के पीछे अन्ता ठिकाने का जागीरदार अजीतसिंह गोद आकर राजगद्दी पर बैठा[3]। दुर्जनसाल बड़ा ईश्वर-भक्त था। वि० सं १७९८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उसने नाथद्वारे में एक धार्मिक उत्सव का आयोजन किया तथा वहाँ शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के ७ स्वरूपों—बिट्ठलनाथजी, नवनीतप्रियाजी, द्वारिकारूपजी, गोकुलचन्दजी, मयूरनाथजी, गोकुलनाथ, मदनमोहनजी, को एकत्र करवाया। इस अवसर पर जयपुर के सवाई जयसिंह, करोली के राजा गोपालसिंह, उदयपुर के महाराणा जगतसिंह, द्वितीय, भरतपुर के जाट जवाहरमल, भैसरोड़ के

---

१ टॉड : राजस्थान, पृ० १५३०।

२ ओझा : राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ९३३। यह रानी महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की पुत्री थी। संग्रामसिंह का देहान्त माघ सम्वत १७९० में ही हो चुका था, अतः ब्रजकुंवरबाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंह ने किया।

३ गोद तो अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को लेना चाहता था परन्तु हिम्मतसिंह झाला (जो कि उस समय सेनापति था) ने जोर दिया कि पिता होते हुए पुत्र को किस प्रकार गद्दी दी जा सकती है। अतः अजीतसिंह वृद्धावस्था में गोद आया।

सूरतसिंह चूड़ावत, बेगू के देवसिंह, आदि को सपरिवार आमन्त्रित किया गया। इस उत्सव पर दुर्जनसाल ने लगभग १ लाख रुपये खर्च किये[1]।

उसने अन्नकूट आदि बल्लभ सम्प्रदाय के कई उत्सव भी जारी किये थे। उसके समय विक्रम सं० १८०१ में मथुरानाथजी बूंदी से कोटा आये थे। मथुरानाथजी के लिये राज्य मंत्री द्वारिकादास की हवेली अर्पण की गई जिसमें अब तक मथुरानाथजी प्रतिष्ठित हैं। इस मन्दिर के खर्च के लिये १२००० रु. की जागीर के गाँव प्रदान किये। वि०सं० १८१२ में महाराव दुर्जनशाल द्वारिका की यात्रा करने भी गया था।

महाराव दुर्जनशाल एक बहादुर नरेश था। उसके अंदर राजपूतों के गुण विद्यमान थे। मिलनसारी, दयालुता और वीरता के लिये वह प्रसिद्ध था। उसे सूअर के शिकार का बड़ा शौक था और शिकार के समय अक्सर रानियों को अपने साथ रखता था[2]।

महाराव अजीतसिंह (वि०सं० १८१३-१८१५)

दुर्जनशाल के कोई पुत्र नहीं था। अतः उसके बाद उसका निकटतम संबंधी विशनसिंह का जेष्ठ पौत्र और अन्ते का जागीरदार अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठा। यों तो दुर्जनशाल ने अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को गोद लिया था क्योंकि उस समय अजीतसिंह दुर्जनशाल की महाराणी से भी आयु में बड़ा था। लेकिन हिम्मतसिंह झाला ने यह नहीं चाहा कि अजीतसिंह के जीवित रहते शत्रुशाल गद्दी पर बैठे। अतः उसने यही निश्चय कराया कि पहले अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठे और फिर उसका लड़का शत्रुशाल।

अतः दुर्जनशाल की मृत्यु के ८ मास बाद यह निश्चय हुआ और इसके फलस्वरूप १८१३ की फाल्गुन में अजीतसिंह कोटा की गद्दी पर बैठा। इस आठ मास के समय राजमाता ने शासन का संचालन किया।

अजीतसिंह के राजगद्दी पर बैठने के बाद ही राणोंजी सिंधिया, जो इस समय मरहठों में सबसे अधिक शक्तिशाली था, ने कोटा पर आक्रमण कर दिया[3]। मरहठे यह नहीं चाहते थे कि बिना उनकी अनुमति लिये कोई राजगद्दी पर

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३३१२।

२ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५३०-३१।

३ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १४।

बैठे। इस समय तक मुगलों का स्थान मरहठों ने ले लिया था। अतः मरहठों की सेनाका सामना करना कोटा के लिये एक बड़ी विषम समस्या बन गई। राजमाता ने इस समय बड़ी चालाकी से काम लिया। उसने राणाजी सिंधिया को राखी भेज कर अपना धर्मभाई बनाया[1]। सिंधिया ने राज हड़पने का विचार त्याग दिया लेकिन धन का लोभ नहीं छोड़ा अतः यह निश्चय किया गया कि अजीतसिंह ४० लाख रु. नजराने के देगा। इस नजराने की ४ किश्तें की गई। इन किश्तों में से अन्तिम किश्त में २ लाख रुपये छूट के दिये गये। बाद में अजीतसिंह ने मरहठों को जयपुर लूटने के समय घोड़ों को नालें आदि भेज कर सहायता दी[2]।

अजीतसिंह ने लगभग डेढ वर्ष राज्य किया। १९५० की अमावश्या को हुआ। इनके साथ इनकी रानी सती हुई। इनके तीन पुत्र—शत्रुशाल, गुमानसिंह व राजसिंह थे।

महाराव शत्रुशाल (वि० सं० १८१५-१८२१)

शत्रुशाल को दुर्जनशाल ने गोद लिया था और उसकी मृत्यु के बाद यही राजगद्दी पर बैठने वाला था लेकिन हिम्मतसिंह झाला की चाल के कारण यह राजगद्दी पर बैठ न सका अतः अपने पिता अजीतसिंह की मृत्यु के बाद, बड़ा लड़का होने के कारण वि० सं० १८१५ में गद्दी पर बैठा।

इस समय मरहठों का राजपूताने पर बोलबाला था। मुगलों की अब कोई पूछ नहीं थी। शत्रुशाल के गद्दी पर बैठते ही जवरोजी सिंधिया और मल्हारराव होल्कर कोटा आ धमके और नजराना मांगने लगे। दोनों ने मिल कर शत्रुशाल से २ लाख रु० नजराने के ले लिये[3]।

इसके राज्यकाल में सबसे विकट युद्ध मरवाड़े का हुआ। यह युद्ध इसके और जयपुर नरेश माधोसिंह के बीच हुआ। इस युद्ध का मुख्य कारण रणथम्बोर का किला था। वि० सं० १८११ में जब रणथम्बोर के किले पर माधोसिंह का

---

१ उपरोक्त; फाल्के : जिल्द प्रथम, टिप्पणी १९४।

२ यह आक्रमण सं० १८१३ में हुआ। इसमें लगभग ७००० रु. खर्च हुए। राजकीय कोष की हालत ठीक न होते हुए भी यह सहायता दी गई थी।

३ सरकार : फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, पृ० १९४-९५।

अधिकार हो गया[1] तब उसने चाहा कि कोटा और बून्दी वाले उसकी अधीनता स्वीकार करलें। जैसे कि वे पहले मुगलों के समय में रणथम्बोर की अधीनता में रहते थे। वास्तव में कोटा और बून्दी वाले मुगल सम्राट की अधीनता में रहते थे न कि रणथम्बोर के अतः इसकी परवाह नहीं की। कोटा और जयपुर में पहले से ही शत्रुता थी अतः अब फिर बढ़ने लगी[2]। इसके अलावा रणथम्बोर के आसपास के इन्द्रगढ, खातोली, गैंता, बलवन आदि के हाड़ा जागीरदारों ने भी अब जयपुर वालों को कर देना बंद कर दिया क्योंकि वे भी तब मुगलों को ही कर देते थे। इन हाड़ा सरदारों पर ज्यादा सख्ती की जाने लगी। तब ये कोटा नरेश के पास सहायता के लिये गये[3]। शत्रुशाल ने इनको इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि वे कोटा को नालू, बून्दी देंगे। इससे जयपुर और कोटा के बीच युद्ध होना अनिवार्य हो गया। जयपुर के महाराजा माधोसिंह ने एक बड़ी सेना कोटा के विरुद्ध वि० सं० १८१७ में रवाना की। रास्ते में इस सेना ने उणिआरा पर कब्जा कर वहाँ के ठाकुर से अपनी अधीनता स्वीकार कराई। वहाँ से यह सेना लारबेरी पहुँची। वहाँ से भी मरहठों का कब्जा हटा कर अपना आधिपत्य स्थापित किया[4]। यह सेना आगे बढ कर चम्बल और पार्वती नदी

---

१ उपरोक्त : जिल्द १, पृ० सं० ५०१-४। इस किले पर अकबर के काल से मुगलों का अधिकार चला आ रहा था। अजमेर के सूबेदार के अधीन यहां का शासन होता था। जयसिंह, आमेर-शासक इसे हस्तगत करना चाहता था, पर वह असफल रहा। नादिरशाह के आक्रमण के बाद (१७३९) मुगल शक्ति का प्रभाव सर्वदा के लिये समाप्त हो गया। १७४९ में मुगल बादशाह मोहम्मदशाह मर गया। अहमदशाद गद्दी पर बैठा। उसके समय में (१७५१-५२) उसके और उसके वजीर सफदरजंग के बीच युद्ध हो गया। जयपुर नरेश माधोसिंह ने प्रयत्न कर बादशाह और वजीर के बीच सुलह करादी। इस सेवा के उपलक्ष में रणथम्बोर का किला माधोसिंह को दे दिया परन्तु रणथम्बोर के फोजदार ने युद्ध के बाद यह किला माधोसिंह को सौंपा।

२ जयपुर-कोटा शत्रुता बून्दी के युद्ध (बुद्धसिंह व जयसिंह के बीच में) के समय हो गई थी, जब कि राव दुर्जनशाल ने बुद्धसिंह की सहायता कर उसे बून्दी का राज्य दिलाने का प्रयत्न किया और बुद्धसिंह के बाद उम्मेदसिंह बून्दी नरेश कोटा के शासकों की सहायता से ही हुआ था।

३ डा० मथुरालाल शर्मा कृत कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ४४१।

४ माधवसिंह ने यह हमला सन् १७६०-६१ में किया था जब कि मराठे अहमदशाह अब्दाली से पानीपत के मैदान में संलग्न थे। मरहठों को इस प्रकार व्यस्त देख कर जयपुर-कोटा संघर्ष पुनः प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार राजपूत शासक अप्रत्यक्ष रूप में अहमदशाह अब्दाली की विजय के कारण बन गये। पेशवा ने माधोसिंह को पानीपत के युद्ध में सहायता

के संगम स्थान पालीघाट[1] होती हुई कोटा राज्य की सीमा में घुस गई। इस पर कोटा की सेना की झालमसिंह तथा राय अहृतमराय की अध्यक्षता में इस सेना से टक्कर हुई। इस सेना का मांगलोर तहसील के भटवाड़े नामक स्थान पर सामना हुआ। कोटा की सेना में १५००० सवार तथा जयपुर की सेना में ६० हजार सवार थे। उस समय मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य के पास ही अपनी सेना का पड़ाव डाले पड़े थे[2]। झालमसिंह झाला ने उससे सहायता चाही लेकिन उसने प्रत्यक्ष सहायता देने से इन्कार कर दिया। उसने यही स्वीकार किया कि उसकी सेना रणभूमि के पास पड़ी रहेगी और यदि जयपुर की सेना हारने लगी तो उनको लूट लूँगा। इससे कोटा की सेना को बड़ी सहायता मिली। इससे जयपुर वालों का साहस कम हो गया। उनको यह बराबर डर लगा रहा कि कभी होल्कर उन पर टूट न पड़े। यह लड़ाई वि० सं० १८१८ की आश्विन शुक्ला ४ (ई०स० १७६१) को हुई। उसमें बून्दी की सेना भी आई थी लेकिन वह किसी ओर से लड़ी नहीं।

भटवाड़े[3] के युद्ध में जयपुर की सेना को हार कर भागना पड़ा व उसे काफी हानि उठानी पड़ी। मल्हारराव होल्कर की सेना ने भी जयपुर के डेरे बहुत लूटे। कोटा वाले जयपुर वालों के १७ हाथी, १८०० घोड़े, ७३ तोपें तथा एक पंचरंगा लूट कर कोटा ले आये। इस युद्ध में कोटा के ३५,५,००० खर्च हुए थे[4]। इस युद्ध के विषय में कहा जाता है कि—

जंग भटवाड़ा जीत, तारा जालिम झाला।
रिग एक रंगजीत, चढियो रंग पचरंग के[5] ॥

यह युद्ध जयपुर व कोटा के बीच का अंतिम युद्ध था। महाराव शत्रुशाल ने

देने के लिये लिखा था, परन्तु मरहठों से बार २ शोषित होने के कारण राजपूत शासकों ने मरहठों की कोई सहायता नहीं की। पानीपत के युद्ध के बाद मरहठों ने जो राजस्थान को रोंद डाला, इस नीति का परिणाम ही था।

१ इन्द्रगढ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर।

२ मल्हारराव होल्कर पानीपत के मैदान से ७ जनवरी १७६१ को भाग कर राजस्थान की ओर आ चुका था। इसकी हारी हुई सेना किसी का पक्ष लेना नहीं चाहती थी।

३ भटवाड़े का युद्ध जनवरी १७६१ को हुआ था। विजय की यह लूट इसी युद्ध में ही प्राप्त हुई थी (उपरोक्त पृ० १५३४)।

४ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४४७।

५ इसका अर्थ है मरवाड़ा के युद्ध में जालिमसिंह का सौभाग्य रूपी सितारा उदय हुआ। उस रण-क्षेत्र में एक रंग रहा। पंचरंग पताका को डाल दिया। इस युद्ध के समय जालिमसिंह २१ वर्ष का युवक था। व्यक्तिगत वीरता के कारण ही उसे सफलता प्राप्त हुई।

इस युद्ध में विजयी होने के कारण वीर जालिमसिंह झाला के सम्मान में वृद्धि की और उसे कोटा राज्य का मुसाहिब (प्रधान मन्त्री) बनाया। इस युद्ध के पश्चात शत्रुशाल ने माधवराव सिंधिया तथा केदारजी सिंधिया को बून्दी पर चढाई करने में वि० सं० १८१६ में सहायता दी। बून्दी का घेरा डाला गया। लेकिन उसे जीत नहीं सके। अन्त में संधि हो गई। माधवराव सिंधिया ने शत्रु-शाल को सेना खर्च के १७१२० रु० दिये[1]।

कोटा राज्य होल्कर व सिंधिया के राज्यों से मिला हुआ था। इसके अलावा मालवा से दिल्ली के बीच में कोटा पड़ता था। इस कारण मरहठों को कोटा बराबर आना-जाना पड़ता था। मरहठे अपनी सेना का खर्चा लूटमार से ही चलाते थे, अत: कोटा पर मररठों की बराबर आँख लगी रहती थी। कोटा वाले भी सामदाम की नीति से काम चलाते थे। शत्रुशाल के राज्यकाल में सं० १८१५ में मल्हारराव की सेना द्वारा सुकेत को घेरने पर कोटा ने ८००० रु० खर्च किये[2]। इसके बाद मल्हरराव होल्कर दिल्ली जाते हुए कोटा में होकर निकला तब शत्रुशाल ने अपने प्रधान को भेज कर होल्कर की सेना की बड़ी खातिरदारी की तथा नजर भेंट की। जब वह आषाढ मास में वापस लौटा तब फिर ५१ हजार रु० होल्कर को दिये। इस बार वह फिर उज्जैन की ओर से आया तब १४००० रु० भेंट किये। वि० सं० १८१६ में होल्कर को १५२००० नजराने दिये गये। इसके अलावा बून्दी के मोर्चे के समय कोटा से १८०००० लिये गये। यह रकम दुर्जनशाल ने जब उम्मेदसिंह को गद्दी पर बैठाया तब से बाकी चली आ रही थी। इस प्रकार शत्रुशाल ने मरहठों को काफी धन देकर राज्य की शांति खरीदी[3]। इस धन की पूर्ति के लिये कोटा में कई नये कर लगाये गये। करों को सख्ती से वसूल किया गया[4]। शत्रुशाल केवल ६ साल तक राज्य कर वि० सं० १८२१ की पोष कृष्णा ९ (१७६४ ई०) को स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र न होने के कारण इसके छोटे भाई गुमानसिंह को राजगद्दी प्राप्त हुई।

---

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३७१०; डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४५१।

२ उपरोक्त, पृ० संख्या ४४८।

३ उपरोक्त : पृ० संख्या ४५१-५२।

४ जो नये कर लगाये गये उनमें मुख्य ये थे : चोथान (जागीरदारों से लिया जाता था) पेशकसी, कोटा नगर पर मरहठों ने कर लगाया, (इसकी रकम ४८००० थी) नगर में जाति पंचायतों पर कर, बीघेड़ी और जामदारी कठोरता से वसूल किये गये। बीघेड़ी प्रति बीघा ४ आना व जामदारी प्रति कुटुम्ब १ रुपया।

गुमानसिंह (वि० सं० १८२१-१८२७ई० स० १७६४-१७७०)

महाराव शत्रुशाल की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई गुमानसिंह पोष शुक्ला ६, वि० सं० १८२१ (ई. सं० १७६४) को गद्दी पर बैठा। यह नौजवान, उत्साही और बुद्धिमान व्यक्ति था। उस समय फौजदार जालिमसिंह झाला की शक्ति बढ रही थी। जालिमसिंह की बहिन की शादी गुमानसिंह से हो जाने के कारण वह राज्य का सर्वेसर्वा हो गया[1]। परन्तु महाराव और जालिमसिंह में अधिक समय तक नहीं पटी। इसका कारण यह था कि महाराव का प्रेम एक सुन्दरदासी (दरोगण) से था और वही युवती जालिमसिंह की नजरों में भी चढ गई थी। इससे साले बहनोई में मनमुटाव हो गया[2]। मौका पाकर झाला के द्वेषी हाड़ा सरदारों ने महाराव को उसके विरुद्ध बहका कर उसके कामों में हस्तक्षेप करना शुरू किया। झाला ने इस पर विरोध प्रकट करना शुरू किया तब महाराव ने उसकी मुसाहिबी और नानते की जागीर छीन ली[3]।

निराश होकर जालिमसिंह कोटा से चल दिया। जयपुर का दरवाजा तो उसके लिये पहले से ही बन्द था। मारवाड़ में उसकी तदवीरें नहीं चलीं। मेवाड़ में उस समय मरहठों ने लूट मचा रखी थी। वहाँ उस जैसे कूनीतिज्ञ की आवश्यकता थी अतः वह मेवाड़ चला गया[4]।

मेवाड़ में वह देलवाड़ा पहुँचा जहाँ के झाला सरदार राधादेव के द्वारा महाराणा अरिसिंह से परिचय प्राप्त किया। वहाँ पर भी अपनी राजनीति को वह भूल न सका। अपने शुभचिंतक राघवदेव झाला के साथ विश्वासघात करके उसे मरवा डाला। इस पर महाराणा बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि अरिसिंह राघवदेव के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। महाराणा ने जालिमसिंह को 'राजराणा' की पदवी दी और चीतखेड़ा की जागीर भी[5]। मेवाड़ में जब माधवराव

१ ठाकुर लक्ष्मणदान द्वारा उल्लेख है कि जालिमसिंह की बहिन का विवाह गुमानसिंह के साथ हुआ था।

२ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५३७।

३ उपरोक्त : जालिमसिंह के स्थान पर ठाकुर भोपतसिंह भंकरोत को फौजदार नियुक्त किया। यह गुमानसिंह का मामा था। बाद में यह पद काका स्वरूपसिंह को दिया गया। वह भी मरहठों को रोकने में असफल रहा, अतः जालिमसिंह पुनः उस पद पर लाया गया।

४ उपरोक्त।

५ उपरोक्त, पृ० १५३८।

सिंधिया[1] का हमला हुआ तब वह लड़ते-लड़ते घायल होकर कैद हो गया। बाद में एक मरहठा सरदार अम्बाजी इंगले ने ६०००० रु० देकर इसे कैद से छुड़वाया। कैद से छूट जाने पर मेवाड़ में अपना प्रभाव लुप्त होते देख कर वह मरहठे वल्लाल के साथ वापस कोटा आ गया[2]।

उस समय तक मरहठे कोटे को दक्षिणी सीमा तक पहुँच गये थे। मल्हरराव होल्कर ने बकानी के किले को जो कोटा से दक्षिण में ६० मील पर था, घेर लिया। वहाँ हाड़ों और मरहठों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में सेनापति माधोसिंह, सावंतसिंह बड़ी वीरता से, मय अपने चारसौ हाड़ों के साथ काम आये। होल्कर विजयी होकर कोटा की ओर आगे बढा[3] तब महाराव गुमानसिंह ने अपने मामा बासीहेड़ा के भोपतसिंह फौजदार को संधि के लिये भेजा परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसलिये लाचार होकर महाराव ने जालिमसिंह से स्थिति सम्हालने को कहा। जालिमसिंह इस अवसर की प्रतीक्षा में था हा। उसने होल्कर के साथ संधि की वार्ता प्रारम्भ की। ६ लाख रु. उसे देकर शाँति खरीदी गई। इसलिये महाराव ने प्रसन्न होकर जालिमसिंह झाला को पुन: मुसाहिब का पद और नानता की जागीर देदी[4]। इसके बाद जालिमसिंह का बोलबाला दिनोंदिन बढता ही गया। यहाँ तक कि कोटा की चार पीढी तक जालिमसिंह ही राज्य का कर्ताधर्ता मुसाहिब रहा[5]। जब महाराव गुमानसिंह लगभग ७ वर्ष राज्य करके सख्त बिमार हुआ तो इसने अपने बालक पुत्र

---

१ महाराणा अरिसिंह के विरुद्ध राणा रत्नसिंह ने विद्रोह कर सलूम्बर, घाणेराव, बद्नीर व कानोड़ के जागीरदारों की सहायता से कुम्भलगढ में अपने को महाराणा घोषित कर दिया और महारानी सिंधिया की सहायता से मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया।

२ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३७३८-३९।
वीरविनोद, भाग २, पृ० १५५६-५८।
टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५३८।
उज्जैन के पास मेवाड़ की हार से राणा की स्थिति कमजोर हो गई। जालिमसिंह ने ऐसी स्थिति में वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

३ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५३९।

४ उपरोक्त, पृ० १५४०। डा० शर्मा का मत है कि झाला जालिमसिंह को पुन: फौजदार बना कर भी महाराजा स्वरूपसिंह को अपने पद से नहीं हटाया। वह भी जालिमसिंह के साथ राज्य-प्रबंध करता रहा।

५ १७६६ ई० में महाराव गुमानसिंह ने नाथद्वारा की यात्रा की थी। वहाँ महाराणा अरिसिंह व जोधपुर नरेश महाराजा विजयसिंह से मिले। नाथद्वारे में तीनों नरेशों ने मरहठों के विषय में परामर्श किया, पर क्या निर्णय हुआ यह ज्ञात नहीं है।

रखते थे। प्रत्येक परगने पर एक कमविसदार नियत था। ये वर्तमान तहसीलदार की भाँति थे। मराठों की नीति खूब मामलात वसूल करने की थी, शासन-संचालन की ओर कम ही ध्यान दिया जाता था। यह सब कुछ होते हुए भी मरहठे सरदार जब तक कोटा पर आक्रमण कर देते थे। वे ज्यादातर वसूली के लिये ही इधर आते थे। इनको साम और दाम द्वारा वापस किया जाता था। जालिमसिंह जानता था कि इनका सामना करना कतई हितकर नहीं है। अतः वि०सं० १८३४ में जीवाजी अप्पा को, सं० १८४१ में नरहरराव को, सं० १८४२ में खांडेराव को, नकदी देकर कोटा को मरहठों के आक्रमण से बचाया गया[1]। जालिमसिंह तुकोजी होल्कर की भी बड़ी खुशामद करता था। वि० सं० १८३६ में उसके पुत्र के विवाह पर कोटा की ओर से ७००० न्योते के भेजे गये। कोटा राज्य यों प्रति वर्ष कई लाख रु. का कर मरहठों को देता था। यह कर सिंधिया का वकील वसूल कर के भेजता था। यह कर आपसी करार से मरहठे परस्पर बाँट लेते थे[2]।

इस समय अंग्रेज राजस्थान की ओर बढने का विचार कर रहे थे[3]। अब तक राजस्थान व पंजाब ही अंग्रेजों के अधिकार से बचे हुए थे। वि०सं० १८६१को अंग्रेजी सेना ने प्रथम बार कोटा में प्रवेश किया[4]। यह सेना कर्नल मानसन की अधीनता में होल्कर के विरुद्ध लड़ने के लिये कोटा राज्य में से होकर निकली। जालिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये राज्य को सेना भी पलायथे के आपा अमरसिंह के नेतृत्व में भेजी।

यह सेना पहले होल्कर के राज्य में घुस गई। होल्कर ने कहीं सामना नहीं किया! होल्कर अपनी बड़ी सेना की सहायता से अंग्रेज सेना को घेरना चाहता

---

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४८३ से ४८५।

२ यह विभाजन इस प्रकार होता था—सिंधिया व होल्कर का हिस्सा बराबर रहता था तथा बचा हुआ पँवार, पेशवा व रामचन्द्र पंडित में बांटा जाता था।

३ १८०३ ई० तक अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत तथा पूर्वी भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया था। १८०३ में सिंधिया हार गया। १८०४ में होल्कर-अंग्रेज युद्ध चल रहा था। सिंधिया व होल्कर से पीड़ित राजपूतों के राज्यों से सहायता की आशा अंग्रेजों ने की थी अतः इसी दृष्टिकोण से उन्होंने राजपूताने की ओर कदम बढाया पर वास्तव में उनका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण इससे प्रकट होता है। कोटा होल्कर के राज्य के पास था, अतः होल्कर से युद्धकाल में पहली बार राजपूत शासकों से मुलाकात की।

४ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ४८६ व ४९०।

जालिमसिंह ने भी सहायता मांगे जाने पर देने का वायदा किया। कम्पनी की ओर से वायदा किया गया कि चोमहला के परगने, जो कि फिलहाल कम्पनी की ओर से उसे इजारे पर दिए हुए थे। उनको उसे जागीर में दे दिया जायेगा। बाद में जब जालिमसिंह को ये चारों परगने दिये जाने लगे तो उसने अपनी स्वामीभक्ति का परिचय देते हुए कहा कि ये परगने कोटा राज्य में मिलाये जाने चाहिये क्योंकि सहायता कोटा नरेश ने दी है तथा उसने तो केवल कम्पनी की सेवा की है। कम्पनी ने उस पर चारों परगने कोटा राज्य में मिला दिये[1]।

कर्नल टाड ने जब जालिमसिंह से कम्पनी की पिण्डारियों को दमन करने की योजना बताई तथा सहायता मांगी तबभी उसने सहायता देना स्वीकार किया यों जालिमसिंह ने ही पिण्डारियों को अपने राज्य में शरण दे रखी थी। लेकिन वह अब क्या करता? कर्नल टाड ने भी उसे स्पष्ट रूप से कह दिया कि कम्पनी पिंडारियों का दमन देश में शाँति स्थापित करने के लिये कर रही है। राज्य-विस्तार के लिये नहीं कर रही है। तब जालिमसिंह ने वापस उत्तर दिया—"मैं जानता हूँ कि १० वर्ष बाद सम्पूर्ण भारत में कम्पनी का ही राज्य हो जाना है[2]।" पिंडारियों के दमन के लिये जालिमसिंह ने अंग्रेजों को १५०० पैदल, तथा सगर और चार तोपें कम्पनी को सुपुर्द की। १८१७ ई० में पिंडारी समाप्त कर दिये गये। पिंडारियों को कुचलने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मरहठों की शक्ति को समाप्त कर दिया। जालिमसिंह ने कोटा और अंग्रेजों के बीच में २६ दिसम्बर सन् १८१७ को संधि कराई थी। इसकी निम्नलिखित शर्तें थीं।

(१) अंग्रेजी सरकार और महाराव उम्मेदसिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों केबीच में मित्रता के संबंध और हितसमता रहेगी।

(२) दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र माने जायेंगे।

(३) अंग्रेजी सरकार कोटा राज्य को अपने संरक्षण में लेना कबूल करती है।

(४) महाराव और उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजी सरकार के साथ मातहत रहते हुए सदा सहयोग करेंगे। तथा उसके आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में

---

१ टाड: राजस्थान, तीसरी जिल्द, पृ० १५८१ ये चार परगने जब जालिमसिंह के वंशजों को नया राज्य दिया गया तो वे परगने झालावाड़ राज्य में मिला दिये गये।

२ उपरोक्त, पृ० १५८०।

उन राजाओं और रियासतों से कोई संबंध नहीं रखेंगे जिनके साथ अब तक कोटा राज्य का संबंध रहा है।

(५) अंग्रेज सरकार की अनुमति के बिना महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राणा या रियासत के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे।

(६) महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि महाराव को युद्ध की स्थिति में प्रवेश करना पड़ेगा तो अंग्रेज सरकार के परामर्श से ही ऐसा हो सकता है।

(७) कोटा राज्य जो कर अब तक मरहठों को देता था वह अंग्रेज सरकार को देगा।

(८) कोटा राज्य अन्य किसी राज्य को कर नहीं देगा। यदि कोई ऐसा अधिकार प्रस्तुत करेगा तो अंग्रेज सरकार उसका उत्तर देगी।

(९) आवश्यकता पड़ने पर कोटा राज्य अंग्रेजी सरकार को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। उसके राज्य में अंग्रेज सरकार का दीवानी या फौजदारी अमल जारी नहीं किया जायेगा[1]।

इस संधि के तीन माह बाद मार्च १८१८ में उपरोक्त संधि में २ शर्तें और बढा दी गईं।

(१) महाराव उम्मेदसिंह और उसके उत्तराधिकारी कोटा के राजा माने गये।

(२) जालिमसिंह और उसके वंशज सम्पूर्ण अधिकार-सम्पन्न राज्य मंत्री बने रहेंगे[2]।

जालिमसिंह के सुधारः—जालिमसिंह ने कोटा राज्य का प्रसार किया। उदयपुर से कई परगने प्राप्त किये। इन्द्रगढ, खातोली, करवाड़, गैंता आदि

---

१ टाड : राजस्थान : भाग ३, पृ० १८३३, परिशिष्ट ६।

एचिशन : ट्रिटीज सनद एण्ड एनगेजमेंट भाग ३, पृ० ३५७।

२ जालिमसिंह के साथ यह अलग सन्धि हुई। उपरोक्त पृ० ३६१। कोटा के महाराज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि कर राजपूताने को अंग्रेजी प्रदेश में सहूलियत स्थापित करदी। बाद में धीरे २ राजपूताने के सब शासकों ने मरहठों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये ठीक इसी प्रकार की संधियां कीं। अंग्रेजी सार्वभौमिकता ने धीरे २ इन शासकों को नपुंसक बना दिया। जालिमसिंह का यह कार्य कोटा के लिये कितना लाभप्रद हो सकेगा इसका प्रमाण तो उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद राज्य उत्तराधिकार का युद्ध है।

उसके अधीन रहे। पाटणी खिलचीपुर मरहठों को न लेने दिया। इतना बड़ा राज्य का संगठन उनकी सैनिक व्यवस्था पर आधारित था।

सैनिक व्यवस्था—वह हाड़ा जागीरदारों को और यथासंभव किसी भी राजपूत सरदार को सेनापति नहीं बनाता था। सेना का संचालन या प्रबंध मुसलमान या कायस्थों को सौंपा जाता था। प्रधान सेनानायक दलेलखां पठान था। मुख्यपद भी पठाणों को सौंपे गये। उसकी सेना में २०,००० सैनिक थे व १०० से अधिक तोपें थीं जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजी जा सकती थीं घुड़सवार व पैदल उसकी सेना के मुख्य अंग थे। उसकी सेना के अलावा रण क्षेत्रों में जागीरदारों की सेना का भी प्रयोग किया जाता था। अंग्रेजों से मित्रता होने पर अपने यहाँ २ अंग्रेज सैनिक अफसर रखे तथा पश्चिमी ढंग से सैनिक कवायद तथा शिक्षा देनी शुरू की। राज्य में नये किले बनवाये गये। पुराने किलों की मरम्मत की गई। कोटा नगर का शहर पनाह सं० १८३६ में सुरक्षा के लिये बनवाया गया। मुख्य किलों को—जागरोण, नाहरगढ़, केलवाड़ा, शाहाबाद आदि, सैनिक दृष्टि से सुरक्षित किया गया। प्रत्येक किले में नयी तोपें व बारूद, खाना तथा सुरक्षित (Reserve) सेना रखी गई। सं०१ ८५६ (१८०० ई०) के बाद उनकी खोज का मुख्य केन्द्र छावनी था जो गगरो व किले के पास थी[1] भूमि कर प्रबंध सुधार[2] । लगातार युद्धों के कारण तथा सैनिक नवसंगठन से कोटा राज्य का कोष खाली होने लगा। राज्य की आय मरहठों को मामलात के रूप में देनी पड़ती थी तब ही राज्य में शाँति रह सकती थी। अतः आय वृद्धि के लिये जालिमसिंह ने भूमि कर सुधार किये। सर्व प्रथम जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था में सुधार किये। पटेल, राज्य व जनता के बीचमें संस्था के रूप में कार्य करते थे। प्रजा से अधिक कर वसूल किया जाता था। अत्याचार और अनाचार के वे प्रतीक थे। राज्य की आय को वे कम बतलाते थे। बाकी धन वे स्वयं हड़प जाते थे। प्रति तीसरे वर्ष एक कर पटेलों से लिया जाता था जिसे बराड़ कहा जाता था। पटेल यह कर भी जनता से वसूल करते थे। जालिमसिंह ने पहली घोषणा तो यह की कि जो पटेल राज्य को बराबर उसका हिस्सा देंगे, उनसे बराड़ नहीं लिया जायेगा। पटेलों की रसूम नियत करदी। राज्य के सब पटेलों को एकत्र किया गया और उन्हें पटेली के पट्टे दिये गये। यह पटेलों की एक संस्था बन गई। सब पटेलों में से ४ सबसे योग्य

---

१ टाड : राजस्थान, जिल्द तीन, पृ० १५४६-५०।

२ उपरोक्त : पृ० १५५०-१५६७।

पटेल छाँटे गये। उनकी एक समिति बनाई गई जिसका अध्यक्ष स्वयं जालिमसिंह था। इसका कार्य मालगुजारी वसूल करना तथा जमीन को आबाद रखना था। बाद में इस समिति को गाँव का पुलिस कार्य भी सौंप दिया गया तथा गाँव की पंचायतों से असंतुष्ट व्यक्तियों की अपील पर निर्णय करना भी इसका काम रखा गया। गाँव के पटेल पर गाँव की शाँति, न्याय तथा मालगुजारी का कार्य सौंपा गया। इसके अलावा गाँव का पटेल विदेशियों के प्रवेश व चाल-चलन पर भी निगरानी रखता था। इन पटेलों व पटेल समिति पर नियंत्रण रखने के लिये उसने कठोर गुप्तचर व्यवस्था का संगठन किया।

भूमि की पैदाइश—पटेल सम्मेलन के समय जालिमसिंह ने तत्कालीन भूमि-व्यवस्था की पूर्ण रिपोर्ट प्राप्त की। कर कैसे वसूल किया जाता है? कितना? कब? भूमि कैसी है? खेती में क्या बोया जाता है? यह सूचना प्राप्त करने के बाद उसने जमीन को नपवाया। जमीन की चकबंदी की गई। उसको तीन भागों में विभक्त किया गया। पीवत, गौरमा और मौमभी। इसके अनुसार लगान निश्चित किया गया। साथ ही घोषणा की गई कि लगान नकद लिया जायेगा। पटेल की वसूली प्रति बीघा डेढ आना की गई। इससे राजकीय आय बढने लगी[1]।

कर व्यवस्था—जालिमसिंह के इन सुधारों से कृषक वर्ग को कष्ट से छुटकारा प्राप्त हो गया हो, ऐसी बात तो नहीं है। पटेलों के पास कुछ ताकतें ऐसी थीं जिससे वे खेत काटने से पहले धन प्राप्त कर सकते थे। इस अवस्था में किसान उधार रुपया लेकर पटेल को प्रसन्न रखता था। कभी उपज का कुछ भाग पहले ही पटेल का हो जाता था। क्योंकि पटेल ही किसान को रुपये उधार देता था। अत: जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था का ही अन्त करने का निश्चय कर लिया। सं० १८६७ (ई०स० १८१०) में सब बड़े २ पटेल राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी सम्पति पर राज्य का अधिकार कर लिया गया। जमीनों पर राज्य के हवाले स्थापित किये गये। राज्य का हिस्सा सख्ती से वसूल किया जाता था। जो किसान विलम्ब करता उसकी जमीन खालसा करली जाती थी। राज्य की ओर से खेती होने लगी। सन् १८२०-२ में राज्य के द्वारा संचालित ४ लाख बीघा जमीन थी और १६ हजार बैल थे। बैलों की खरीद व बिक्री के लिये नये २ मेले व उत्सव आयोजित किये गये। उपज बढने लगी। प्रति वर्ष

१ ४००० हल ४,००,००० बीघा भूमि जोतते थे। और दूसरी फसल में भी इतनी ही भूमि जोती जाती थी। प्रति बीघा ४ मण अनाज पैदा होता था। इस प्रकार ३२ लाख मण अनाज पैदा होता था। टाड: पृ० १५६२।

३२ लाख मण अन्न पैदा होने लगा। अन्न बेचने का अधिकार भी राज्य को था। दुर्भिक्ष के समय कोठारों में भरे हुए अन्न को मंहगे भावों पर बेचा जाता था। किसानों और व्यापारियों को व्यक्तिगत रूप से अन्न बेचने पर एक प्रकार का कर देना पड़ता था जिसे लट्टा कहते हैं। सीगोंटी, बोघोटी, घाणी, नापो, छापो, बेसक, कंवरमट आदि कर तो परम्परा से ही चले आ रहे थे। जालिमसिंह द्वारा लगाये गये नये करों में विधग, बगड़, तूम्बा, बराड़, झाड़ू बराड़, चूल्हा बराड़, कागली, कूलड़ी, जागीरदार आदि थे। इनके अतिरिक्त पटेलों, बोहरों व व्यापारियों की आय से तिसाला दण्ड के रूप में कर लिया जाता था। इन करों को किस प्रकार एकत्र किया जाता था, इनका हिसाब खाता व खर्च का बंटवारा कैसे होता था, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

आर्थिक मेलों की व्यवस्था—अधिक कर लेने की प्रथा के कारण अशांति फैलने लगी और सं० १८८० से १८८५ में राज्य के विरुद्ध कई विद्रोह होने लगे। जालिमसिंह को इस अप्रियता के विरुद्ध कर-मुक्ति की नीति अपनानी पड़ी। पटेल व पटवारियों को जनता से सद्व्यवहार करने की हिदायत दी गई। इसका आर्थिक स्थिति पर असर पड़ा। जुवार का भाव वि० सं० १८३८ में साढे तीन रु० मण था। धान अधिक तो था पर लोगों के पास खरोदने को पैसे नहीं थे। राज्य का कोष मरहठों व लगातार युद्धों के कारण खाली हो रहा था। मरहठों को धन देने के लिये व्यापारियों से ब्याज पर ऋण लेना पड़ता था। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये जालिमसिंह ने पशुओं व साधारण व्यापार के मेले प्रारम्भ किये। विशेषकर उम्मेदगंग और नांता का बृजनाथजी का मेला व झालरापाटन का मेला प्रारम्भ किया। इन मेलों में आने वाली वस्तुओं पर कर नहीं लिया जाता था। दूर-दूर से व्यपारियों को आने का निमन्त्रण दिया जाता था। अपने आदमियों को डाक द्वारा सूचना भेजी जाती थी। यह काम सेठ किशनदास हल्दिया किया करता था।

उम्मेदसिंह का देहान्त—महाराव उम्मेदसिंह ५० वर्ष तक राज्य करके सं० १८१७ के मार्गशीर्ष शुक्ला २ शनिवार (ई० स० १८१६ की २१ नवम्बर) को एकाएक रामशरण हो गये। उस समय मुसाहिब जालिमसिंह झाला झालरापाटण की छावनी में रहता था। महाराव की मृत्यु सुन कर वह तुरन्त कोटा गया और कर्नल टाड को महाराव के देहान्त की सूचना देते हुए यह पत्र लिखा कि "महाराव उम्मेदसिंह शनिवार की शाम तक पूर्णरूप से स्वस्थ थे, सूर्यास्त के बाद श्रीबृजनाथजी के मन्दिर में गये और छः बार दण्डवत की। सातवीं बार दण्डवत करने के लिये झुकते ही उनको मूर्छा आ गई और उसी दशा में रात को दो बजे

उनका देहान्त हो गया। यहाँ उनके जेष्ठ राजकुमार किशोरसिंह को गद्दी पर बैठा कर आपको मित्रता के नाते यह सूचना दी है[1]। महाराव उम्मेदसिंह के किशोरसिंह, विष्णुसिंह और पृथ्वीसिंह नाम के ३ पुत्र थे।

महाराव किशोरसिंह दूसरा (वि० सं० १८७६-१८८४)

इसका जन्म वि० सं० १८३६ (ई० स० १७८१) में हुआ था। गद्दी पर बैठने के समय इसकी अवस्था ४० वर्ष की थी[2]। सम्वत् १८७६ मार्गशीर्ष सुदि १४ को इसका राज्याभिषेक हुआ। इसके समय में मुसाहिबआला का पद जालिमसिंह झाला को ही दिया गया था। अंग्रेजी सरकार की गुप्त संधि के अनुसार[3] यह पद झाला वंश का पैतृक हो गया था। जालिमसिंह कोटा राज्य का सर्वेसर्वा था। वृद्धावस्था में इसकी नजर अति कमजोर हो गई थी। अतः इसने अपने पुत्र कुंवर माधोसिंह झाला को मुसाहिब बना दिया था तथा स्वयं छावनी में रहने लगा था। फिर भी बिना उसकी सलाह से कोई निर्णय या नीति राज्य निश्चित नहीं करता था। महाराव किशोरसिंहजी जालिमसिंह के प्रभाव से मुक्त होकर स्वयं शासक के रूप में राज्य करना चाहता था। परन्तु जालिमसिंह का समर्थक अंग्रेजी सरकार का राजदूत कर्नल टाड था जो कि कोटा-अंग्रेज-संधि के अनुसार जालिमसिंह की स्थिति बनाए रखना चाहता था।

जालिमसिंह के दो पुत्र थे। एक माधोसिंह और दूसरा औरस पुत्र गोवर्धन दास। था माधोसिंह कुछ गर्विला और राजमद में छका हुआ था। उसके और गोवर्धनदास के बीच में अनबन थी[4]। इससे गोर्वधनदास महाराव से जा मिला।

---

१ कर्नल टाड की यह सूचना उस समय प्राप्त हुई जब वह मारवाड़ से मेवाड़ जा रहा था। उदयपुर कुछ दिन ठहर कर वह कोटा पहुँचा जहाँ गद्दी के लिये युद्ध की संभावना थी। टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५८५ व फुटनोट में पत्र का उल्लेख है।

२ राजकुमार के रूप में किशोरसिंह अधिक उदार प्रवृत्ति का था। अधिकतर समय इसका एकान्त में बीतने के कारण धार्मिक प्रवृत्ति अधिक थी। अपने कुटुम्ब पर इसे गर्व था जिसे जागृत करने पर यह जालिमसिंह से लड़ पड़ा।

३ २१ मार्च १८१८।

४ गोवर्धनदास तथा पृथ्वीसिंह (महाराव किशोरसिंह का छोटा भाई) में घनिष्टता थी जिसे माधोसिंह पसन्द नहीं करता था। एक बार माधोसिंह ने गोवर्धनदास को गिरफ्तार करके हवालात में भी रखवा दिया था जिससे दोनों भाइयों की शत्रुता बढ़ गई। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५८४।

सन्धि के कारण महाराव किशोरसिंह को अधिक दिनों तक शरण न दे सका। महाराव बून्दी से देहली पहुँचा। वहां अंग्रेजी सरकार के उच्चाधिकारियों से मिल कर स्थिति को साफ करवाना चाहा परन्तु वहां पर भी उसे कोई सहारा प्राप्त न हुआ। तब वह मथुरा-वृन्दावन चला गया। महाराव की यह दशा देख कर राजपूताने के कई राजा उससे सहानुभूति रखने लगे[१]।

वृदावन में खर्च से तंग आकर महाराव हाडोती की तरफ १८२१ ई० में रवाना हुआ। हाडोती के बहुत से जागीरदार और हाड़ा सरदार लगभग तीन हजार हाड़ा राजपूतों के साथ महाराव की सहायता के लिये उपस्थित हुए और ये सब सीधे कोटे के किले में प्रविष्ट हुए। १६ सितम्बर १८२१ में महाराव ने पोलिटिकल एजेन्ट को सूचना दी कि मामा जालिमसिंह का तो मुझे भरोसा है। वह अपनी मृत्युपर्यन्त राज्य का काम किया करे, परन्तु माधोसिंह से मेरी नहीं बनती है इसलिये उसको जुदा जागीर देदी जावेगी और उसका पुत्र वापूलाल (मदनसिंह) मेरे साथ रहेगा। सेना तथा खजाना आदि मेरे हाथ में रहेंगे[२]। इस पत्र में लिखी हुई शर्तें कर्नल टाड ने स्वीकार नहीं की। एक बार पुनः किशोरसिंह को अंग्रेजों की पूर्ण मातहत में रहने का और माधोसिंह को जालिम-सिंह के कहने के अनुसार चलने का आदेश दिया गया परन्तु महाराव को जो नई शक्ति राजपूताने के शासकों व हाड़ा सरदारों से प्राप्त हो रही थी उसके आधार पर उसने अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाये रखने का प्रयास किया। अंग्रेजों को यह कब सहन हो सकता था। कर्नल टाड ने अंग्रेजी सरकार से फौजें मंगवाईं और जालिमसिंह को साथ लेकर वह कोटा गया। नदी में बाढ आ जाने के कारण कालीसिन्ध के किनारे कई दिन तक उन्हें वहाँ ठहरना पड़ा। इस बीच में कर्नल टाड ने महाराव को पुनः इस बात पर राजी करने को तैयार किया कि जालिमसिंह व माधोसिंह से झगड़ा नहीं किया जावे। महाराव का यही उत्तर मिला, "प्रतिष्ठा बिना जीवन और अधिकार के बिना मालिक कहलाने में कोई महत्व नहीं है। इसलिए मैंने अपने पिता, पितामहों की तरह राज्य करना या मर मिटना ही निश्चय किया है[3]।" उस समय जालिमसिंह ने चाहा कि सरकारी सेना ही महाराव से युद्ध करे और वह स्वयं युद्ध में प्रविष्ट न हो जिससे कोटा नरेश के विरुद्ध हरामखोरी करने का कलंक तो न लगे लेकिन कर्नल टाड ने इस बात

---

१ टाड : जिल्द ३, पृ० १५६७-६८।

२ उपरोक्त, पृ. १५६६ : फुटनोट : यह पत्र किशोरसिंह ने मिती आसोज पंचमी १८७८ १६ सितम्बर १८२२ को लिखा।

३ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १६०१।

पर अधिक दबाव डाला कि या तो महाराव के प्रति राज्य-भक्ति ही प्रदर्शित हो सकती है या अपने अधिकार ही सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जालिमसिंह ने अपने अधिकारों को सुरक्षित बनाए रखना ज्यादा उचित समझा और महाराव के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार हो गया।

महाराव के पास ७-८ हजार सेना ग्रामीण-हाड़ा-राजपूतों की थी पर उनके पास तोपखाने की कमी थी। उधर दीवान जालिमसिंह झाला के पास उसकी आठ पल्टनें, चौदह रिसाले, और ३२ तोपें थीं। इसके अलावा जालिमसिंह की सहायता के लिये दाहिनी तरफ अंग्रेजों की ओर से एम. मिलन की अध्यक्षता में २ पल्टनें, ६ रिसाले और एक बड़ा तोपखाना था। नदी के उस पार महाराव की फोज थी! अंग्रेजी फोज आगे बढी चली गई। इस फोज और महाराव की फोज के बीच सिर्फ २०० गज का फासला रह गया। उस समय भी आगे बढ़ कर कर्नल टाड ने महाराव को सुलह कर लेने के लिये समझाया परन्तु महाराव युद्ध करना अधिक पसंद करते थे। टाड ने पौन घंटे की मोहलत दी। यह समय व्यतीत होने पर युद्ध आरम्भ हुआ[1]। अंग्रेजी तोपें आग उगलने लगीं। महाराव के हाड़ों ने भी अपनी वंश परम्परागत बहादुरी व रण-कौशल का परिचय देना आरम्भ किया। महाराव के साथियों ने हमला करके तोपखाने को छीनना चाहा और कई राजपूत तोपों के मुंह तक पहुँच कर मारे गये। यदि उस समय अंग्रेजी रिसाले का धावा उन पर न होता तो वे अवश्य फोजदार जालिमसिंह झाला को नीचा दिखा देते। परन्तु उनके भाग्य में पराजय लिखी थी। सैकड़ों वीर हाड़ा खेत रहे। महाराव जल्दी से नदी उतर कर ५ कोस दूर जा ठहरे। अंग्रेजी फोज ने पीछा किया और रिसाले का पुनः हमला आरम्भ हुआ। इस बार अंग्रेजी सेनापति को विश्वास हो गया कि महाराव की फोज भाग जावेगी परन्तु राजपूत लोग लोहे की लाट की तरह मैदान में डटे रहे व दुश्मनों को पास आने दिया और फिर एक एक कर उन पर टूट पड़े। इस द्वन्द युद्ध में कोयला के जागीरदार राजसिंह और गेंता के कुंवर बलभद्रसिंह व सलावतसिंह तथा उसके चाचा दयानाथ, हरीगढ के चन्द्रावत अमरसिंह और उसके छोटे भाई दुर्जनसाल आदि ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे अंग्रेजो फोज के पैर उखड़ने लगे। ठाकुर राजसिंह ने लेफ्टीनेंट क्लार्क और कुंवर बलभद्रसिंह ने लेफ्टीनेंट रीड का काम तमाम कर दिया। उनका बड़ा अफसर लेफ्टीनेंट कर्नल जेरिज युद्ध-क्षेत्र में घायल

---

१ उपरोक्त : पृ० १६०२-३, डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द तीन, पृ० ५७१-५७२।

होकर गिर पड़ा[1] । विजय महाराव को सेहरा बाँध रही थी । इस स्थिति का लाभ उठा कर महाराव कोटा गुप्त रूप से लौट जाना चाहता था । वह एक मक्का के खेत की ओट लेकर निकल गया परन्तु इस तरह रण-क्षेत्र से भाग जाने में अपने कुल को कलंक लगने का खयाल कर महाराव का छोटा भाई पृथ्वीसिंह लौट पड़ा । उसने राजगढ के जागीरदार देवसिंह आदि २५ राजपूत वीरों के साथ दूसरी तरफ से दिवान जालिमसिंह पर आक्रमण कर दिया । इस समय जालिमसिंह के पास ३०० सिपाही थे । २५ वीरों के युद्ध-कौशल से जालिमसिंह की सेना में हड़बड़ाहट तो फैल गई परन्तु वे कहां तक लड़ते । उनके साथी मारे गये । देवसिंह घायल हुआ । महाराव पृथ्वीसिंह भी घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा । उसकी पीठ में एक रिसालेदार के हाथ का बर्छा लगा । वह एक खेत में बाद में पड़ा मिला । टाड उसको पालकी में लिटा कर अपने डेरे तक लाया और बड़ी हिफाजत के साथ इलाज करना शुरू किया परन्तु वह दूसरे दिन ही मर गया[2] मरते समय भी उस वीर राजपूत ने हिम्मत न हारी । उसकी तलवार तथा अंगूठी तो कोई ले गया था परन्तु मेरा देश, कंठमाला और दूसरा जेवर जो वह पहने हुए था वे सब एजेंट को देते हुए कहा कि, "मेरा पुत्र आपके भरोसे है" । कर्नल टाड ने इस युद्ध में प्रदर्शित हाड़ा राजपूतों की वीरता का अवर्णनीय शब्दों में उल्लेख किया है । यह घमासान युद्ध राजधानी कोटा से ३५ मील उत्तर पूर्व वाणगंगा के तट पर गांव मांगरोल में वि०सं० १८७१, आश्विन सुदि ५ सोमवार (ई०स० १८२१ १ अक्तूबर) को हुआ था । इसमें विजय फोजदार जालिमसिंह झाला को ही मिली ।

फिर महाराव किशोरसिंह किसी तरह रणक्षेत्र से निकल कर पार्वती नदी को पार कर खेतों में होते हुए गोड़ों के ठिकाने शिवपुर बड़ाटे की तरफ चला गया । वहाँ से नाथद्वारा (मेवाड़) गया[3] जहाँ उसने कोटा राज्य को भगवान श्रीनाथजी के नाम पर अर्पण कर दिया । यही कारण है कि दूसरी जागीर के सिवा अब तक ५००० रु. वार्षिक नाथद्वारे को कोटा से उस भेंट के एवज में दिया जाता है । विजय के बाद कर्नल टाड व जालिमसिंह ने विरोधी पक्ष वालों के प्रति उदारवादी नीति अपनाई । महाराव के पक्ष वालों को क्षमा प्रदान की

---

१ टाड : पृ० १६०३ ।

२ कहा जाता है कि घायल पृथ्वीसिंह को जब टाड के कैम्प में लाया गया तो जालिमसिंह ने उसके घावों पर विष की पट्टी चढवा दी थी जिससे यह शीघ्र ही मर गया । पर टाड को इसका ज्ञान नहीं था ।

३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ४१००-४१०२ ।

गई और उन्हें पुनः उनकी जागीरें दे दी गई। हाड़ों ने इसे स्वीकार किया और वे अपनी २ जागीरों में चले गये। महाराव किशोरसिंह और जालिमसिंह झाला के बीच में समझौता कराने का कार्य उदयपुर के महाराणा भीमसिंह ने किया था[1]। यह समझौता २२ नवम्बर १८२१ में हुआ। इस समझौते के अनुसार महाराव का खास खर्च महाराणा उदयपुर के बराबर कर दिया गया और महाराव के निजी कामों में दिवान और दिवान के रियासती कामों में महाराव का हस्तक्षेप नहीं करने का समझौता हुआ[2]। महाराव कर्नल टाड के साथ पोष वदि ९ ता० ३१ दिसम्बर को वापस कोटा आया[3]। इसके २ वर्ष बाद वि० सं० १८८० जेष्ठ सुदि ८ (ई० स० १८२४ ता० १५ जून) को ८५ वर्ष की आयु में मुसाहिब जालिमसिंह का स्वर्गवास हुआ और उसका पुत्र माधोसिंह झाला राज्य का दीवान व फौजदार बना। यह अपने पिता के काल में ही कोटा राज्य का सब प्रकार का प्रबंध करता था परन्तु महाराव से जो पिछली नाराजगी हुई उस विषय में जालिमसिंह ने माधोसिंह को बहुत झिड़कियां दीं और कहा कि यह सब उपद्रव तेरी खराब आदतों के कारण हुआ है। इसी शर्म से माधोसिंह ने अपनी आयुभर महाराव को हर प्रकार से प्रसन्न रखा[4]। वि०सं० १८२४ आषाढ सुदि ८ (ई० स० १८२८ ता. २२ अगस्त) को महाराव किशोरसिंह भी परलोक सिधारे। उसके कोई पुत्र नहीं था। असली हकदार उसका छोटा भाई अणता का महाराज विष्णुसिंह था पर महाराव ने अपने तीसरे भाई महाराज पृथ्वीसिंह के पुत्र रामसिंह को युवराज बनाया, अतः रामसिंह ही उत्तराधिकारी हुआ। इसका एक यह भी कारण था कि विष्णुसिंह ने फोजदार जालिमसिंह झाला का पक्ष लिया था[5]।

---

१ भीमसिंह, किशोरसिंह की बहन से शादी कर चुका था, अतः ऐसी अवस्था में मध्यस्थ बनना पड़ा।

२ टाड : जिल्द ३, पृ० १६०९।

३ महाराव इस विश्वास पर कोटा पुनः लौटा कि उसके प्रति विश्वासघात न हो और अंग्रेजी सरकार इस बात की जिम्मेदारी ले।

४ डा० शर्मा कोटा : राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ५८०।

५ जालिमसिंह का चरित्र:—

१८ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण और १९ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में राजपूताने के प्रमुख राजनीतिज्ञ के रूप में जालिमसिंह झाला हमारे समक्ष उपस्थित होता है। उसने अपनी योग्यता, नीतिज्ञता, वीरता और क्षमता के बल पर ही यह उच्च पद प्राप्त किया। वह उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। कोटा के महारावों के प्रति भक्त होते हुए भी वह अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखना चाहता था। एक ही बार होल्कर और अंग्रेजों से (जो

महाराव रामसिंह (दूसरा) (वि० सं० १८८४-१६२२)

इसका जन्म वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में हुआ था। यह महाराव किशोरसिंह के लघु भ्राता महाराजा पृथ्वीसिंह का पुत्र था। किशोरसिंह के कोई पुत्र नहीं होने के कारण अपने बाद रामसिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया। इसका राज्याभिषेक सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में हुआ था। इसका शासन प्रारम्भ में शांति व अन्य राज्यों से मित्रता का काल था। सं० १८८८ (ई० स० १८३१) में अपने मुसाहिब सहित अजमेर लार्ड विलियम बैंटिंग से मिले[1]। उस समय इसको चंवर इनायत हुआ। माधोसिंह अपनी पिछली करतूतों के प्रायश्चित्त के रूप में इसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयास करता था, परन्तु सं० १८६० (ई० स० १८३३) में मुसाहिब झाला माधोसिंह का देहान्त हो गया। अंग्रेजों के साथ

आपस में युद्ध कर रहे थे) मित्रता बनाये रखना, अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को कोटा के पक्ष की ओर बनाना उसी व्यक्ति का काम हो सकता है। वह एक योग्य सेनापति तथा साहसी सिपाही था। युद्ध क्षेत्र में प्रथम पंक्ति में लड़ना तथा हारे हुए युद्ध को विजय में बदलना, यह उसकी विशेषता थी। अपनी राजनीति की सफलता के लिये मित्रता को भी वह ठुकरा सकता था। अम्बाजी इंगले उसकी इस नीति का शिकार था। अपने पुत्र गोर्धनदास को जिसे कि वह अत्यन्त प्यार करता था। अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखने के लिये उसने उसका देश त्याग करवाया। देश की परिस्थितियों का उसे सही ज्ञान था। कोटा को कभी अपने पेशवा, सिंधिया, अंग्रेज और पिंडारियों की उलझनों में इतना नहीं फँसने दिया कि वह उसे न बचा सके। उसमें क्षत्रियोचित वीरता थी और मरहठों की सी नीति। विजय पराजय, दोनों का वह लाभ उठाना जानता था।

वह एक उच्च कोटि का प्रशासक था। उसके सैनिक-सुधार, भूमि-प्रबंध, राजकीय खेती प्रणाली, कर-व्यवस्था, आधुनिक अर्थ-व्यवस्था से मिलती-जुलती है, परन्तु उस युग में यह सुधार जनप्रिय न हो सके। क्योंकि यह धारणाएं समय से आगे की थीं। जन-कल्याण जालिमसिंह का उद्देश्य नहीं था। वह सिर्फ इन साधनों द्वारा अपनी शक्ति का संचय करना और अपना प्रभाव विस्तार करना चाहता था। वही पहला राजस्थानी था जिसने राजस्थान के द्वार अंग्रेजों के लिये खोल दिये। अंग्रेजों ने भी उसकी स्थिति मजबूत बनाने का भरसक प्रयत्न किया।

१ इसके काल में प्रथम बार अंग्रेज सरकार के गवर्नर जनरल ने राजस्थान व देशी रियासतों के शासकों से मुलाकात की। अजमेर में वह उन नरेशों से मिल कर अंग्रेजी सत्ता के प्रति वफादार रहने और अंग्रेजों द्वारा इन्हें आन्तरिक शान्ति बनाए रखने में मदद का आश्वासन दिया। सन् १८३४ में महाराणा उदयपुर कोटा आये। इस प्रकार राज्यों के अध्यक्षों की मिलन-प्रथा प्रारम्भ हुई जिससे शान्ति और मित्रता बनी रहे।

की हुई गुप्त संधि (मार्च १८२१) के अनुसार मुसाहिब पद पर माधोसिंह का पुत्र मदनसिंह नियुक्त किया गया। प्रारम्भ में तो दोनों युवक शासनकर्ताओं में बनी रही परन्तु धीरे २ दोनों की शत्रुता इतनी बढ गई कि कोटा का विभाजन करना पड़ा।

मदनसिंह जब किले में प्रवेश करता तो महाराव की तरह तोपें दगवाता था। यह इज्जत शक्ति का प्रदर्शन समझी जाती थी। ऐसी ही कई हरकतों से[1] महाराव और उसमें गहरी अनबन हो गई। कोटा की प्रजा झाला मदनसिंह मुसाहिब आला को नहीं चाहती थी। आम विद्रोह होने का भय हो गया। ऐसी अवस्था में अंग्रेजी सरकार ने मध्यस्थता द्वारा प्रधान मंत्री व शासक के बीच समझौता करा दिया जिससे मदनसिंह झाला को कोटा की पैतृक मुसाहिबी से त्याग पत्र देना पड़ा। उसके स्थान पर उसे कोटा राज्य की एक तिहाई आमदनी का भाग दिया गया। इस प्रदेश में १७ परगने थे और वार्षिक आमदनी १२ लाख रु. थी[2]। अंग्रेजी सरकार ने मदनसिंह झाला से एक प्रथम सन्धि करली जिसके अनुसार इस भाग (जिसका नाम झालावाड़ रखा गया) का स्वतंत्र शासक मदनसिंह झाला को स्वीकार कर लिया गया[3]। कोटा की खिराज में से ८० हजार रु. सालाना घटा कर झालावाड़ की तरफ जोड़े गये। एक नयी सरकारी

---

१ मदनसिंह झाला की कई अन्य हरकतों को महाराव पसन्द नहीं करते थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहनशील, शीघ्रगामी और स्वतंत्र प्रकृति का था। रामसिंह की आज्ञाओं का वह पालन नहीं करने लगा। गढ़ में उसका जन्म-दिवस धूमधाम से मनाया जाता था। राजाज्ञाओं पर नरेशों की तरह उसका नाम भी लिखा जाने लगा। अंग्रेजी राज्य की पूर्ण शक्ति झाला के पीछे होने पर महाराव सिर्फ नाम मात्र के शासक थे। अतः महाराव उससे अधिक नाराज हो गये। मदनसिंह ने अंग्रेजों से कोटा कान्टीनजेन्ट का निर्माण-कोण कोष से कर दिया। यह भी अनबन का एक कारण था।

२ उन परगनों में चौमहला व शाहबाद के परगने झाला जालिमसिंह ने कोटा राज्य में मिलाए थे। इनकी आमदनी पांच लाख ही थी। परन्तु मदनसिंह ने १७ परगने लिए व १२ लाख के स्थान पर १७ लाख की आय के परगने लिये। चेचट, सकेत, आवर, डग, गंगराड, झालरापाटन, रींधवा, बफानी, बाहलनपुर, कोटड़ा, भाजन, सरडा, रटलाई, मनोहरपाना, फूलबड़ादे, चाचोरोनी, गुंजारी, छीपाबड़ोद, शाहबाद। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास २, पृ० ५९६।

३ इस राज्य की निर्माण तिथि वैसाख शुक्ला ३, सम्वत् १८९४ (सन् १८३७) की है। इसके नरेशों को राजराणा की उपाधि से विभूषित किया जाता है जो कि झाला जालिमसिंह को महाराणा उदयपुर श्री अरिसिंह ने उसके प्रति की गई सेवाओं के बदले दी थी। झालावाड़ को छावनी या बृजनगर भी कहा जाता है।

फौज कोटा के लिये तैयार की गई। उसका खर्च ३ लाख रु. वार्षिक कोटा से लिया जाना तय हुआ। महाराव रामसिंह ने जब इसका कड़ा विरोध किया तो सं० १६०० (ई० स० १८४३) में यह रकम घटा कर २ लाख रु. करदी गई। यह सेना कोटा कान्टिन्जेंट कहलाती थी और इसका मुख्य स्थान छावनी, कोटा से एक मील दूरी पर रामचन्द्रपुरा नामक गाँव में रखा गया।

सम्वत् १६१४ (सन् १८५७ की मई १०) को उत्तरी भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। उस समय नीमच में भारतीय सैनिकों के विद्रोह का भय था। तब मेवाड़, कोटा और बूंदी राज्यों की सेनायें वहां पर अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिये पहुँची। हाड़ोती का पोलिटिकल एजेन्ट मेजर ब्रिटन भी कोटा से सेना लेकर नीमच पहुँचा। नीमच के विद्रोहियों को दबा कर तीन सप्ताह बाद १२ अक्टूबर १८५७ को कोटा लौटा। अपना कुटुम्ब नीमच के अंग्रेजों के भरोसे छोड़ कर महाराव से मिलने आया। १३ अक्टूबर को ब्रिटन की महाराव से मुलाकात हुई, जिसमें कोटा विद्रोही सामंतों व व्यक्तियों को दण्ड देने (मृत्यु दण्ड या निर्वासित) का आदेश महाराव को दिया गया। जब सामंतों को यह मालूम हुआ तो वे और उनके सिपाही अंग्रेजो सत्ता के विद्रोही होकर रेजिडेन्सी हॉस्पीटल पर हमला कर बैठे। सर्जन सेडलर और डाम्ट सेविल मार डाले गए। फिर रेजिडेन्सी पर हमला कर मेजर ब्रिटन और उसके दो पुत्रों को जो उसके साथ थे, तलवार के घाट उतार दिये गये[1]। राजकीय सेना के नायक जयदयाल और महराबखाँ ने विद्रोहियों से मिल कर महाराव रामसिंह को भी कैद कर लिया। कोटा महाराव ने ऐसी स्थिति में गुप्त रूप से पत्र भेज कर[2] करौली राज्य से सहायता प्राप्त की[3]। करौली की सेना ने पहुँच कर विद्रोही सेना से महाराव को मुक्त कराया। किला, महल व आधे

---

१ विस्तृत विवरण के लिये देखो—फोरेस्ट; हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ५५५-५५६।

२ गुप्त रूप से महाराणा खरीता भेज कर भिन्न-भिन्न स्थानों से सहायता मंगवाता था। एक खरीता जयदयाल के हाथ पड़ गया जिससे उसके लेखकों का बुरा हाल किया। कई ठाकुरों ने विशेष कर भैंसरोड़, गेता, पीपल्दा आदि ठाकुरों ने गुप्त रूप से महाराणा के पास सैनिक भेजने शुरू किये जो लगभग १५०० तक पहुँच गये थे। अंग्रेजी सरकार को सहायता के लिये खरीते लिखे गये। यह कार्य खांडेराव दक्षिणी को सौंपा गया।

३ करौली के महाराजा मदनसिंह रामसिंह के समधी थे। रामसिंह के पुत्र शत्रुशाल की शादी करौली राजकुमारी से हुई थी। यह सम्बन्ध इस समय काम में आया। लगभग १५०० सैनिक महाराणा ने भेजे थे। इसके नायक ठाकुर नालूकचालजी और छितरपालजी थे।

शहर और नदी के घाट पुनः महाराव के अधिकार में आ गए[1] । इसी बीच में नसीराबाद की अंग्रेजी छावनी से अंग्रेजी सेना लेकर राबर्ट ता० २२ मार्च १८५८ को कोटा पहुँचा । करौली और अंग्रेजी सेना ने मिल कर कोटा विद्रोहियों के विरुद्ध २९ मार्च से गोलाबारी शुरू करदी। विद्रोही कोटा छोड़ कर भाग गए। उनकी ५० तोपें छीन ली गईं[2] । महाराव के राज्य में पूरा अधिकार और शान्ति स्थापित कर अंग्रेजी सेना वापिस नसीराबाद चली गई ।

अंग्रेज सरकार ने यद्यपि महाराव रामसिंह को निर्दोष समझा[3] । परन्तु उन्होंने विद्रोह को मिटाने और सरकारी अफसरों को बचाने की पूरी कोशिश नहीं की थी इसलिये सरकार ने अप्रसन्न होकर महाराव की सलामी के लिये १७ तोपों के स्थान पर घटा कर १३ तोपें करदीं[4] । सम्वत् १९२३ में अन्य नरेशों की तरह इसे भी गोद लेने की सनद अंग्रेजी सरकार द्वारा प्राप्त हुई । इसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पहले ही कोटा का राज्य-प्रबंध बिगड़ चला था और मनमानी करने वाले मेमियों की कार्यवाहियों से राज्य पर २७ लाख रुपयों का कर्ज बढ़ गया था ।

३८ वर्ष राज्य करके ६४ वर्ष की आयु में सम्वत् १९२३ चैत्र सुदि ११ (ई० स० १८६६, २७ मार्च) को महाराव रामसिंह का स्वर्गवास हुआ । इसकी एक शादी उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहिन से हुई थी । ऐसे समय में महाराणा ने इससे यह शर्त लिखवाई थी कि उदयपुरी रानी से उत्पन्न

---

१ कहा जाता है, महाराव ने विद्रोहियों से सुलह करनी चाही । कुछ दिनों के लिये अल्पकालीन शान्ति रही । इस शान्ति की सुलह कराने का श्रेय मथुरेशजी के मन्दिर के गुसांई कन्हैयालाल को दिया जाता है ।

२ विद्रोहियों के नेता मोहम्मदखां, अम्बरखां, गुलमुहम्मदखां युद्ध में मारे गये । पकड़े हुये कैदियों के सिर कटवा दिये गये और नदीशेख आदि को तोप से उड़ा दिया गया ।

३ सन् १८५७ में अंग्रेज सरकार का कोटा नरेश के नाम एक खरीता आया जिसमें गदर की शान्ति के लिये उनको बधाई दी गई । डा० शर्मा; कोटा राज्य का इतिहास : पृ० ६२८ ।

४ विद्रोह के बाद कोटा राज्य में परिणाम:—

(i) विद्रोही नेता मेहराबखां और लाला जयदयाल पकड़े गये तथा उन्हें ऐजन्टी बंगले के पास फांसी दी गई । (ii) रामसिंह को मेजर बर्टन की विद्रोहियों द्वारा हत्या को न रुकवाने के कारण उसकी सलामी की तोपें १७ से १३ करदीं । (iii) मेजर बर्टन का स्मारक राजकीय कोष से बनवाया गया । (iv) शहर का व्यापार नष्ट हो गया, राज्य को आर्थिक क्षति पहुँची । चोरियों व डकैतियों का राज्य कायम हो गया । (v) शहर पर महाराव का प्रभाव हो गया, पर सुदूर गावों में विद्रोहियों का ही कई वर्ष तक हुक्म बना रहा । उपरोक्त पृ० ६२९-६३० ।

पुत्र ही चाहे वह छोटा हो राज्याधिकारी होगा, उदयपुर की राजकुमारी की प्रतिष्ठा सब रानियों से बढ़ कर रहे, उदयपुर की राजकुमारी को ५०,०००) रु. सालाना आमदनी की जागीर अलग मिले तथा उदयपुर की राजकुमारी की ड्योढ़ी या नोहरे में कोई अपराधी शरण लेवे वह सजा से बचाया जावे। ये शर्तें महाराणा ने एजेन्ट गवर्नरजनरल राजपूताना के पास स्वीकृति के लिए भेजी लेकिन उक्त साहब ने प्रथम शर्त के सिवाय सब शर्तों को मंजूर करके कहा कि यह पहली शर्त महाराणा अमरसिंह द्वितीय तथा जगतसिंह द्वितीय के समय में तय हुई थी[1]। उसका फल अच्छा नहीं निकला क्योंकि किसी दूसरी रानी से उत्पन्न हुआ ज्येष्ठ पुत्र हो तो भी वह राज्य से वंचित रहे तो झगड़े की संभावना होती है। इससे राजपूतों में पहले भी फूट पड़ गई थी और मरहठों की शक्ति बढ़ कर राजपूताना को विनाश की ओर ले गयी। अंग्रेजी सरकार ऐसे झगड़ों की जड़ कायम करना नहीं चाहती थी। अतः यह शर्त अस्वीकृत की गई।

महाराव शत्रुशाल (वि० सं० १९२३-१९४६)

रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका गोद लिया हुआ पुत्र भीमसिंह गद्दी पर बैठा। वि० सं० १९२३ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८६६)। बाद में इसका नाम बदल कर शत्रुशाल रख दिया गया। इसकी सलामी की तोपें अंग्रेजी सरकार ने पुनः १७ कर दीं। पहले तो इसने राज्य का सुप्रबन्ध किया परन्तु बाद में कुसंगत और मदिरापान के कारण शासन कार्य में उदासीनता लाने लगा। परिणामस्वरूप शासन का प्रबन्ध बिगड़ गया। लूट-मार और रिश्वत का बाजार गर्म हो गया। यात्रियों और सौदागरों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। हर जगह हर बहाने से कुछ न कुछ महसूल ले लिया जाता था। अदालतों में न्याय नहीं होता था[2]। पटेल पटेली से हटा दिये गये। जिसने नजराना दिया उसे पुनः

---

१ महाराजा जगतसिंह द्वितीय की बहिन की शादी रामसिंह से हुई। उस समय तय हुआ कि उदयपुरी महारानी से ही उत्पन्न हुआ पुत्र राज्यगद्दी पर बैठेगा। कोटा के राव दुर्जनशाल, मारवाड़ के अमरसिंह ने इस परम्परा को स्वीकार कर लिया। इसी परम्परा के कारण जयपुर नरेश जयसिंह द्वितीय की मृत्यु के बाद (सन् १७४३) ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह और उदयपुरी राणी के पुत्र माधोसिंह के बीच गद्दी के लिये संघर्ष हुआ जिससे राजपूताने में मरहठों का प्रवेश हो गया। राजपूत शासकों ने मरहठी शरण में जाकर अपनी राजनीति व जातीयता का पतन कराया।

२ 'राजा करे सो न्याय और पासा पड़े सो दाव' वाला न्याय था।

पटेली दी गई[1] । कोटा राज्य आर्थिक संकट से गुजर रहा था । अंग्रेजी सरकार का खिराज, फौज खर्च, सन् १८५७ के विद्रोह को दबाने का खर्च, उससे अस्त-व्यस्त आयकर, झालावाड़ का निर्माण। अतः आमदनी के क्षेत्र की कमी आदि स्थितियों ने कोटा की आर्थिक दुर्दशा को और भयंकर बना दिया था । राज्य का कर्जा बढ़ गया जो ६० लाख तक पहुँच गया[2] । अयोग्य मनुष्यों के हाथ में शासन का उत्तरदायित्व होने से प्रजा पर अत्याचार होने लगे । राज्य के परगने ठेके पर दिये जाते थे । अंग्रेजी सरकार ने बार-बार शत्रुशाल को शासन-प्रबंध ठीक करने के लिये समझाया परन्तु उसने प्रभावशाली व्यक्तियों से मुक्ति नहीं पाई । अन्त में शत्रुशाल ने अंग्रेजी सरकार को एक सुयोग्य प्रबन्धकर्ता को कोटा भेजने की प्रार्थना की । अंग्रेजी सरकार ने मुसाहिब के पद पर नबाब फैज-अलीखां को नियुक्त किया ।

नबाब फैजअलीखां प्रबन्धक के रूप में अक्टूबर १८७४ (सम्वत १६३०) के आसोज में कोटा आया[3] । नबाब ने आय-वृद्धि की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया । खजाने में उस समय ६३२२७ रु. ही जमा थे और कर्जा ६० लाख रुपये का था । ऊपर से दुर्भिक्ष, भारी कर से किसान तंग आ चुके थे। राज के नौकरों को तनख्वाह कई मास से नहीं मिली थी । खर्च का कोई हिसाब नहीं था । नबाब साहिब ने आज्ञा दी कि स्वीकृत चालू खर्च के सिवाय जिलेदार और कुछ खर्च न करें और यदि ऐसा हुआ तो वसूली उसी कर्मचारी से ही की जायेगी । बाद में चालू खर्च की भी स्वीकृति लेनी पड़ने लगी । प्रति मास कर्मचारियों को वेतन देने की व्यवस्था की गई । बकाया लगान की किश्तों को वसूल किया गया और ब्याज सहित राजकोष में जमा करने की आज्ञा दी गई। कर-संग्रह का कार्य जिलेदार को सुपुर्द कर दिया गया । भिन्न २ विभागों से वसूली करने का काम हटा दिया गया । नजराना के एक लाख रुपये जो बकाया

---

१ नजराना ८ आ० प्रति बीघे के हिसाब से लिया जाता था । डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, ६४० ।

२ सम्वत १६०३ (सन १८४६) के आसपास राज्य की यह स्थिति थी । शत्रुशाल के समय राज्य की आय २१ लाख रुपये थी जिसमें १४ लाख लगभग तोपखाना, मामलात और कर्ज की किश्तों तथा काज में खर्च होता था। उपरोक्त, पृ० ६५४-५५ ।

३ मदनसिंह झाला जब कोटा का मुसाहिब न रहा तो महाराव रामसिंह ने पांडे गोपाल को मुसाहिब का पद दिया पर वह सफलतापूर्वक कार्य न कर सका । शत्रुशाल ने गणेशलाल बीजा को मुसाहिब पद दिया । आर्थिक स्थिति को सुधारने का कार्य बीजा से न हो सका अतः नबाब फैजअली बुलाया गया । यह पहले जयपुर का एक मन्त्री रह चुका था । अंग्रेजी सरकार ने इसे ६ तोपों की सलामी दी तथा इस पर चंवर ढुलता था ।

थे, भूमि-कर के कई वर्षों के जो रु. बाकी थे, राज्य कभी-कभी तकाबी ऋण देता था वे भी वापिस न आये थे, टम्कीबराड व जगीरबराड कर तो पूर्णतया बाकी थे। जिलेदारों को इन बकाया रुपयों को शीघ्र तथा सख्ती से प्राप्त कर हिसाब पेश करने की आज्ञा दी गई। एक बकाया महकमा अलग स्थापित किया गया। सरकारी बचत के लिये टप्पण की कचहरी[1] तोड़दी और सीमे की आमदनी सीधी राज्य-कोष में जमा करनी शुरू की। गुप्त हरकारे जो राज्य के लिये सूचना इकट्ठी करते थे, खूब रिश्वत लेते और आतंक जमा बैठे थे, यह आज्ञा निकाल दी गई कि लोग इन्हें घूस न दें। न हरकारे घूस लें। अन्यथा कठोर दण्ड दिया जायेगा[2]।

नबाब ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुधार कर कोटा राज्य की स्थिति में प्रगति करनी चाही। सम्वत् १९३० में डाकखाने का प्रबन्ध किया गया। तोल पर डाक महसूल लिया जाता था जो एक आग तोला था। सरकारी व कामिगत डाक की भिन्न २ व्यवस्था की गई। प्रत्येक जिले को गजेटियर बनाया गया[3]। मुकाता प्रथा को व्यवस्थित कर दिया गया। वार्षिक कर तीन किश्तों में दिया जाना था। जिला-प्रबन्ध में भी सुधार किया गया। कोटा राज्य ८ निजामतों में बांटा गया। प्रत्येक निजामत पर एक नाजिम होता था जिसकी आमदनी ८० रु थी। प्रत्येक निजामत में दो तहसीलें होती थीं। तहसीलदार को ३० रु. मासिक वेतन दिया जाता था। इसके अलावा खर्च पर नियंत्रण करने के लिये प्रत्येक विभाग का बजट तैयार किया गया। वि० सं० १९३१ में लड़के व लड़कियों के स्कूल जारी किये गये जहाँ अंग्रेजी, हिन्दी व फारसी पढ़ाई जाती थी[4]। शिक्षा पर कुल खर्च ३७६० रु. होता था[5]। पहला सुव्यवस्थित अस्पताल कोटा में सम्वत् १९३० में खोला गया और नगर सफाई के प्रबन्ध के लिये एक अलग कर्मचारी नियत किया गया। राजधानी में सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। अत: सड़क

१ सरकारी कार्य के लिये यात्रा करने वालों के दैनिक खर्च का हिसाब रखने वाली कचहरी थी। यह दैनिक खर्च जिसके यहां कर्मचारी जाता था, देता था। कर्मचारी वहां खाना खाने भी जाता और पैसे भी लेता। यह पैसे इस कचहरी में जमा होते थे जिसे कि गैरी आमदनी कहते थे।

२ गुप्त हरकार प्रथा मुसाहिब जालिमसिंह ने स्थापित की थी।

३ यह गजेटियर सिर्फ जनगणना तक ही आधारित थे–गांव के स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चे, कुए, बावड़ी, पक्के मकान, खेती की भूमि, मन्दिर, मस्जिद आदि पर यह योजना सफल नहीं हो सकी।

४ अध्यापिकाओं और अध्यापकों का वेतन १० रु. मासिक होता था।

५ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६६९।

इमारत विभाग स्थापित किया गया। उर्दू भाषा राज्य की भाषा बनाई गई। जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध में भी सुधार किये गये। पुन: जमीन की पैमाइश हुई तथा लगान नियत किया गया। इस कार्य के लिये सम्वत् १९३१ में २४०० रु. बजट में रखे गये थे[1]।

नबाब फैजअलीखां दो वर्ष तक ही कार्य कर सका। महाराव से उसकी बनती नहीं थी[2]। अत: सं० १९३३ (सन् १८७६ की १ दिसम्बर) को इस्तीफा देकर नबाब चला गया। अंग्रेजी सरकार ने शासन भार स्थानीय राजनैतिक ऐजेन्ट को सौंप दिया। नबाब ने सम्वत् १९३१ में ३ सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण किया था[3]। यह न्याय सम्बन्धी कार्य की देखरेख भी करती थी। एजेन्ट की एक सलाहकार समिति के रूप में इसका विकास हुआ। यह कौंसिल सम्वत् १९५३ तक कार्य करती रही। एजेन्ट कर्नल बेन्ती के तत्वावधान में कौंसिल ने कोटा राज्य के शासन में सुधार करने की कोशिश की। इस कौंसिल ने कोटा को ऋण-मुक्त कराया। नबाब फैजअली के समय ९० लाख रुपये ऋण में थे। परन्तु बोहरों से ऋण की विगत मांगी गई तो ४७ लाख रु. ही निकले[4]। इस कौंसिल ने अपने अन्तिम समय में बर्खास्त होने से पहले राज-कोष में १७ लाख रु. बचाया था। यह सब बचत जनहित कार्य के कामों में खर्च करने के बाद बची थी। नबाब ने जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध में सुधार करने का प्रयास किया पर अपने सुधारों को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के पहले ही वह इस्तीफा देकर चला गया। इस पर कौन्सिल ने वह कार्य पूरा किया। कौन्सिल में कर्नल पोलिट ने यह कार्य मुन्शी दुर्गाप्रसाद को सौंपा जिसने सम्वत् १९३३ में कार्य प्रारम्भ किया और सम्वत् १९४३ को कार्य समाप्त किया। प्रत्येक बीघे

---

१ उपरोक्त पृ० ६७०।

२ महाराव नबाब की नियुक्ति से पसन्द नहीं था क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने इस मुसाहिब आला को जो सम्मान व पद दे रखे थे वे महाराव को अच्छे नहीं लगते थे। कहा जाता है कि प्रथम दिन के मिलन से ही महाराव नबाव से अलग रहने लगा और गढ़ में उसके प्रवेश करने पर उसकी सलामी में तोपें नहीं दगवाई थीं। अंग्रेजों के दबाव में आकर महाराव ने इस प्रबन्धक को स्वीकार किया था परन्तु जब नबाब ने सम्वत १९३३ में झालावाड़ के राजराणा पृथ्वीसिंह की मृत्यु पर कोटा में झालावाड़ मिलाने का प्रयास किया तो रावराजा उससे पूर्ण अप्रसन्न हो गया।

३ प्रथम तीन सदस्य पलायथ के आप श्री अमरसिंह, राजगढ़ के आप श्री कृष्णसिंह और पं० श्री रामदयालजी। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६७२।

४ कुछ इतिहासकारों का मत है कि ऋण तो ९० लाख रु. ही था पर बोहरों को चुकाने के लिये ९ या १० आना रुपये में से ही पैसे दिये गये।

का नाप सब स्थान पर एक सा कर दिया। सैकड़ों प्रकार की डोरियां समाप्त करके केवल ११ प्रकार की रहने दीं जिनका नाप १३० फिट ५ इंच से १४६ फिट ८ इंच तक रखा[1]। इससे राज्य के १० वर्ष में ४ लाख रु. खर्च हुये। और १ लाख रु. की वार्षिक वृद्धि हुई। इसके अलावा कृषकों को कम ब्याज पर रुपये राज्य द्वारा देने तथा बीज देने की प्रथा भी जारी की गई। सिंचाई के लिये नहरों का निर्माण किया गया। पार्वती नहर, अकलेरा का सागर, रामगढ़ की नहर आदि निर्मित हुई जिसमें सवम्त् १६५२ से साढ़े ११ हजार बीघे भूमि की सिंचाई होने लगी[2]।

कौंसिल द्वारा न्याय क्षेत्र में भी सुधार किये गये। सम्वत् १६३६ में औरतों को कोड़े लगाने बन्द किये गये। पुरुषों के कोड़े लगाने से पहले उनका डाक्टरी मुआयना किया जाता। कैदियों को राज्य की ओर से खुराक मिलने लगी। अन्य सुधारों में जगात विभाग में सुधार किया गया। राज्य के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने पर जो महसूल लिया जाता था वह सम्वत् १६३५ में बन्द कर दिया गया। सम्वत् १६४० में जगात विभाग और माल विभाग पृथक कर दिये गये। सम्वत् १६३३ में कौन्सिल ने जंगल के ठेके देने के नियम बनाए और सम्वत् १६५३ में इसकी आय ५० हजार के ऊपर हो गई। कोटा में अफीम की खेती को कम कर दिया गया। पहले से सम्वत् १६५० में २५ % कम की गई। कोटा राज्य में नमक बनाने का कार्य जब भारत-सरकार ने ले लिया तब मुआवजा प्रति वर्ष १६ हजार रु. दिया जाने लगा।

सम्वत् १६३७ में सेना का पुनः प्रबन्ध किया गया। सेना का खर्च चार लाख रु. से ऊपर किया जाने लगा। नगर पुलिस व जिला पुलिस में सुधार करने के लिये सम्पूर्ण राज्य के तीन विभाग किये गये और प्रत्येक डिवीजन में एक उपाध्यक्ष पुलिस नियुक्त किया। थानेदार जो मालगुजारी वसूल करते थे, वह कार्य उनसे अलग किया गया। कई अन्य प्रकार के नियम बनाये गये। जमीन छोड़ने, बेचने व गिरवी रखने के नियम बने। माल विभाग में नये तरीके का प्रबन्ध किया गया। अध्यक्ष के नीचे दो उपाध्यक्ष रखे गये। एक कोटा में और दूसरा शेरगढ़ में जंगल माल से अलग किया गया परन्तु पुनः शामिल कर दिया गया। पशु-बाड़े बने। खेतों का लगान नकद दिया जाने लगा। सम्वत् १६४७ में कौन्सिल ने राज्य-कर्मचारियों की पैन्सन

१ इसे हाथी वाला बन्दोबस्त भी कहते क्योंकि यह बन्दोबस्त मुन्शी देवीप्रसाद ने हाथी पर बैठ कर किया था। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६७७।

२ उपरोक्त पृ० ६७८-६७६।

के नियम बनाये। अंग्रेजी सरकार का सिक्का जारी होने के बाद कोटा की टकसाल बन्द करदी गई। शिक्षा की उन्नति के लिये सम्वत् १९५० में शिक्षा का बजट २० हजार तक बढ़ गया और प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र पर एक-एक स्कूल खोला गया। अजमेर के मेयो कालेज में एक छात्रालय कोटा राज्य की ओर से निर्मित हुआ और कालेज को आर्थिक सहायता दी गई। प्रजा की सेहत के लिये तहसीलों में अस्पताल खोले गये[1]।

इस प्रकार कौन्सिल की संरक्षता में कोटा राज्य ने उन्नति की। महाराव शत्रुशाल ने अपना राज्य-प्रबन्ध अंग्रेजी सत्ता पर छोड़ कर ऐश्वर्य में जीवन व्यतीत किया। इसके कोई सन्तान नहीं थी। वह सदा बीमार रहता था। अतः अपने जीवन-काल में ही उसने अपना कोई पुत्र नहीं होने के कारण, कोटड़ा के जागीरदार महाराज छगनसिंह के दूसरे पुत्र उदयसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसकी मृत्यु ज्येष्ठ सुदि १३, सम्वत् १९४६ (ई० सन् १८८९ ता० ११ जून) को हुई[2]।

महाराव उम्मेदसिंह (वि० सं० १९४६-१९९७)

महाराव शत्रुशाल के कोई सन्तान न होने से कोटड़े के जागीरदार का पुत्र भीमसिंह गोद लिया गया[3]। राज्याभिषेक के समय इसका नाम बदल कर उम्मेदसिंह रखा गया। इसका जन्म सं० १९३० भादवा सुदि १३ शुक्रवार (सन् १८७३ ता० ५ सितम्बर) को हुआ। राज्याभिषेक १६ वर्ष की आयु में ही जेष्ठ सुदि १३ सं. १९४६ (सन् १८८९ को ११ जून) को ही हो गया था

---
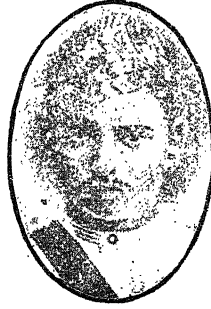
१ उपरोक्त, पृ० ६७९-६९६।

२ कहते हैं इसको मारने के लिये कुछ कामियों ने जहर दे दिया था। इस सम्बन्ध में धाय माय घोसा और वैद्य रामचन्द्र गिरफ्तार कर लिये गये। वैद्यराज की मृत्यु तो जेल में ही हो गई। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिले हैं।

३ कुछ इतिहासकार इनका आदि नाम उदयसिंह भी कहते हैं : किशोरसिंह
विशनसिंह : (अन्ता के जागीरदार, दक्षिण में पिता के साथ न जाने कारण गद्दी से वंचित)
चैनसिंह (पांचवां पौत्र, विशनखेड़ी का जागीरदार)
छगनसिंह : (कोटड़े का जागीरदार)
उदयसिंह : या भीमसिंह : या उम्मेदसिंह

परन्तु नाबालिग होने के कारण राज्य-कार्य कौन्सिल के हाथ में रहा। राजकाज के अधिकार इसे वि० सं० १९४९ को पोष सुदि २ बुधवार (ई० सन् १८९२ ता० २१ दिसम्बर) को दिये गये[1]। और सं० १९५३ में कौन्सिल की समाप्ति कर कोटा राज्य के शासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व इसने अपने ऊपर ले लिया। इसकी शिक्षा मेयो कालेज अजमेर में हुई थी।

शासन कार्य प्रारम्भ करते समय इसने जन-कल्याण की प्रथम घोषणा की। पूर्ण शासन-प्राप्ति के दिवस 'क्रोस्तवेट इन्स्टीटयूट' की स्थापना की जो कि एक सार्वजनिक पुस्तकालय, खेल-कूद के मैदान के रूप में स्थापित हुआ[2]। कालांतर में शासन-कार्य से प्रसन्न होकर समय २ पर अंग्रेजो सरकार इसे अपनी पदवियों से सुशोभित कर इसका अंग्रेजी सरकार की सेवाओं का, आदर करती रही। सं० १९५७ (ई० सन् १९००) में इसे के. सी. एस. आई. की पदवी दी गई[3]। जून १९०७ को जी. सी. आई. ई.[4] और १ जनवरी १९१८ को जी. बी. ई.[5] की उच्च पदवियां दी गईं। सन् १९१३ में सम्राट एडवर्ड सप्तम ने इसे देवली रेजीमेंट का आनरेरी मेजर नियुक्त किया और सन् १९१४ में आनरेरी लेफ्टीनेंट कर्नल बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में समय २ पर दान-दक्षिणा देने की प्रथा कोटा में महाराव उम्मेदसिंह ने शुरू की। काशी विश्व विद्यालय की स्थापना के समय इसने मदनमोहन मालवीयजी को डेढ लाख रु. दिया। और दिल्ली को लेडी हार्डिंग मेडीकल कालेज को १ लाख रु. दिये। सन् १९२७ में काशी विश्व विद्यालय ने महाराव उम्मेदसिंह को एल. एल. डी. की उपाधि दी।

महाराव उम्मेदसिंह का शासन-काल सुधार और प्रगति का शासन-काल था। वह अन्य रियासतों से मित्रता, प्रेमभाव तथा सहयोग की नीति का अनुसरण करता था। जनता के सुख और उन्नति के मार्ग की बाधाओं को दूर करने की नीति इसने अपनाई थी। इसके शासन-कार्यों में मुख्य सलाहकार चौबे सर रघुनाथदास, सी. एस. आई. और मुंशी शिवप्रताप थे। कोन्सिल के कार्य-काल में

---

१ इस समय इसे सेना, कोर्ट रियाह, पुण्य विभाग और महलों के प्रबंध का अधिकार दिया गया।

२ यह संस्था कोटा निवासियों की भाषा में यादघर है। ३० नवम्बर १८९६ में राजनैतिक प्रतिनिधि सर रावर्ट क्रोस्तवेट महाराव को पूर्ण शासन-भार सौंपने को आया। उसकी स्मृति में यह संस्था स्थापित की।

३ नाइट कमाण्डर : स्टार आफ इण्डिया।

४ जनरल कमाण्डर आफ इण्डियन इम्पायर।

५ जनरल ब्रिटिश इम्पायर।

रघुनाथदास माल विभाग का अध्यक्ष था। धीरे-धीरे अपनी योग्यता के कारण कौंसिल की सहायता प्राप्त की और सं० १९५३ में इसे कोटा राज्य का दीवान बनाया। इस पद पर यह सम्वत् १९८० तक रहा जबकि इसका देहांत हो गया। २७ वर्ष तक यह राज्य का दीवान रहा। मुन्शी शिवप्रताप महाराव का प्राइवेट सेक्रेटरी था। बाद में इसे शिक्षा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। राज्य-शासन में दीवान इसकी सलाह लिया करता था। दीवान रघुनाथ का देहावसान हो जाने के बाद दीवान पद पर पलायथे के ठाकुर ओंकारसिंह को नियुक्त किया गया। आप ओंकारसिंह ने भी कोटा राज्य में गढ़ कमेटी के सदस्य के रूप में प्रारम्भ कर धीरे-धीरे माल विभाग के उपाध्यक्ष, गिराही महकमा (पुलिस विभाग) के अफसर व आइ. जी. के रूप में कार्य करने के बाद सेनाध्यक्ष और फिर दीवान का पद प्राप्त किया। यह पद ६ जनवरी १९४२ तक संभाला। महकमा खास का अन्य सदस्य राय बहादुर पं० विशम्भर भी था। यह सर रघुनाथ का पुत्र था। परन्तु सं० १९९२ में इसने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर सं० १९३६ में सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई।

महाराव उम्मेदसिंह ने पड़ौसी राज्यों से मित्रता की नीति अपनानी प्रारम्भ की। बून्दी के हाड़ा शासकों से अनबन सन् १७०८ से चली आ रही थी[1]। इस वैमनष्य को दूर करने का प्रयास महाराव ने किया। सं० १९८० (सन् १९२३) में बून्दी के नरेश बीमार पड़े। स्वास्थ्य-लाभ पूछने के लिये महाराव उम्मेदसिंह बून्दी गया। वर्षों की वैमनष्यता का अंत हो गया और पुनः हाड़ाओं में मेलजोल व भाईचारा स्थापित हो गया। इसी प्रकार कोटा-जयपुर में भी वैमनष्य था[2]। इस अनबन को दूर करने के लिये कोटा नरेश ने वैवाहिक संबंध स्थापित किये। जयपुर के प्रसिद्ध ठिकाने ईशरदा के ठाकुर की बहिन से इसने विवाह कर लिया। जयपुर के राजा मानसिंह ईशरदा ठाकुर के कनिष्ट पुत्र थे[3]। कोटा

---

१ जाजव का युद्ध: मार्च १७०८, औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके बड़े शाहजादा युवराज मुअज्जम और दक्षिण का सूबेदार शाहजादा आजम दिल्ली पर अधिकार के लिये लड़े जिसमें मुअज्जम का पक्ष बून्दी वालों ने तथा आजम का पक्ष कोटा वाले हाड़ाओं ने लिया। जिसमें मुअज्जम की जीत हुई। बून्दी के राव बुद्धसिंह अर्थात मुअज्जम से कोटा प्राप्त करने का फरमान ले लिया।

२ सन् १७६१ के मरवाड़ा के युद्ध में कोटा से जयपुर हार गया। तब से दोनों राज्यों में अनबन बढ़ती रही।

३ महाराव के ३ विवाह हुए। पहला विवाह उदयपुर महाराणा फतहसिंह की पुत्री नन्दकुंवर के साथ सन् १८९२ में हुआ। परन्तु वह प्रसव-वेदना से १८९५ में मर गई। दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की पुत्री से हुआ जिसकी सन् १९२३ में मृत्यु हो गई. तीसरी शादी ईशरदा ठिकाणा के ठाकुर की बहिन से किया। इसके एक पुत्र भीमसिंह है।

राज्य से अलग झालावाड़ राज्य की स्थापना हुई। झाला मदनसिंह को सं० १८९४ (ई० सन् १८३७) में झालावाड़ का राज्य दिया गया। स० १९५३ (ई० सन् १८९६) में झालावाड़ के तत्कालीन राजराणा जालिमसिंह का शासन-प्रबंध बुरा होने के कारण उसे गद्दी से उतार दिया और उसके कोई पुत्र न होने के कारण ये जो १७ परगने थे उनमें से १५ परगने सन् १८९९ में कोटा राज्य को दे दिये गये। ये परगने कोटा में मिल जाने से झालों व हाड़ों में अनबन होगई। परन्तु १९२४ में महाराव उम्मेदसिंह ने महाराज राणा झालावाड़ से मित्रता करली और झालावाड़ का नरेश उम्मेदसिंह से मिलने कोटा आया[1]।

अंग्रेजी सरकार के प्रति महाराव कोटा ने सहयोग व राजभक्ति का प्रदर्शन किया। लार्ड कर्जन ६ नवम्बर १९०२ को कोटा आया और महाराव का ४ दिन तक मेहमान रहा। इसी तरह लार्ड लिटन १९२५ में कोटा आया और मार्च १९२६ को लार्ड रीडिंग ने कोटा-यात्रा की। सब वायसरायों ने कोटा राज्य की शासन प्रगति की प्रशंसा की। कोटा में हाड़ोती एजेन्सी का प्रमुख केन्द्र करीब १०० वर्ष, सं० १८७४ से १९७९ तक रहा। महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती कोटा में सं० १८९६ में धूमधाम से मनाई गई। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया मरी तो राज्य में शोक की छुट्टियें की गईं व ८१ तोपें चलाई गईं। एडवर्ड सप्तम की गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य में महाराव को स्वर्ण-पदक दिया गया। सं० १९११ में जार्ज पंचम ने दिल्ली में आम दरबार किया। महाराव वहाँ उपस्थित था। उसे के. सी. एस. आई. की पदवी से विभूषित किया गया। महाराव ने सम्राट को कोटे आने का निमन्त्रण भेजा। सम्राट तो न आया परन्तु साम्राज्ञी मेरी २४ दिसम्बर १९११ को कोटा आई। महाराव ने अंग्रेजों को युद्धों में हमेशा सहायता दी। स० १८९९ में अफ्रीका में अंग्रेज का बोअरों से युद्ध छिड़ गया[2]। कोटा राज्य ने अंग्रेज़ों को आर्थिक व रसद की सहायता दी। प्रथम महायुद्ध १९१४ से १९१९ तक यूरोप में हुआ। भारत में अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों से सहायता चाही। कोटा नरेश ने अप्रेल १९१७ में अंग्रेजी सरकार को युद्ध में ५ लाख और राजमहिलाओं ने १ लाख रु. दिये। कोटा की जनता से धन इकट्ठा करने के लिये एक समिति बनाई गई जिनसे ३ लाख रु. इकट्ठा किया। अन्य प्रकार के फण्ड खोले गये। भारतीय रिलीफ फण्ड,

१ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७१५।

२ यह प्रसिद्ध द्वितीय बोअर का युद्ध था। (१८९९ से १९०२) जबकि ट्रांसवाल का फ्री आरेंज के बोअर राज्य अंग्रेजों ने विजय कर दक्षिणी अफीका में मिला लिये। इसी युद्ध में महात्मा गांधी स्वयंसेवक बन कर घायलों की सेवा-सुश्रूषा करते थे।

वायुयान फण्ड आदि, रेडक्रास ग्रादि में भी धन दिया गया। कोटा से करीब १५ लाख का धन गया[1]। युद्ध-समाप्ति के बाद राष्ट्र संघ १६१६ ई० में निर्माण हुआ। जन-कल्याण के लिये इस संघ ने नशे की वस्तुग्रों का उत्पादन रोकना चाहा। कोटा में भी अफीम का उत्पादन कम किया गया। १६१६ के भारतीय संविधान के कानून (चेंम्सफोर्ड मांटेग्यू सुधार) के अनुसार नरेन्द्र मण्डल की स्थापना हुई। महाराव इस मण्डल का सदस्य बना। १६३५ के संघीय विधान में कोटा राज्य के सम्मिलित होने की स्वीकृति महाराव ने देदी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ में महाराव ने प्रथम महायुद्ध की तरह अंग्रेजों को भरपूर सहायता दी।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन-काल में कई सुधार हुए। भूमि-प्रबंध आधुनिक ढंग से सुव्यवस्थित किया गया। राजकीय लगान निश्चित किया गया। भूमि की उपज ग्रौर पीवत के ग्रनुसार साढे छ (६।।) रु. बीघा से लेकर ६ ग्राने तक नियत की गई। सेर के बाट नये जारी किये गये। पड़त जमीन उपजाऊ कराई गई। यह बन्दोबस्त का कार्य १६०० में प्रारम्भ हुग्रा और १६१६ में समाप्त हुग्रा। मि० बटलर ने यह कार्य किया। राजकीय ग्राय में ३ लाख रु. की वृद्धि हुई[2]। इस प्रकार हर १०वें साल बन्दोबस्त की प्रथा शुरू की। तीसरे बन्दोबस्त में जमींदारी जमीन का भी बन्दोबस्त किया गया। कृषि में सुधार किये गये। कृषकों को तकाबी दी जाने लगी। नये प्रकार के बीज दिये गये ग्रौर वैज्ञानिक ढंग से खेती करने को प्रोत्साहन दिया गया। पटेलों को भारत के भिन्न २ कोनों में होने वाली कृषि-प्रदर्शनियां देखने भेजा गया। वहाँ से राज्य के लिये नये कृषि यंत्र खरीदे गये। कोटा में समय २ पर ग्रकाल पड़ते थे। सम्वत १६५६ में, १६६१ में, १६७५ में भयंकर ग्रकाल पड़े। राज्य ने दुर्भिक्ष सहायता के लिये कमेटी निर्मित की। ग्रन्न को निकासी पर भारी कर लगा दिया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में महाराव उम्मेदसिंह के समय काफी उन्नति हुई। सम्वत् १६५० में राज्य भर में १८ पाठशालाएं थीं। ग्रौर १०८५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे व ३४ ग्रध्यापक थे ग्रौर ८ हजार ७ सौ १० (८७१०) रु. शिक्षा पर खर्च

---

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७४६-७४७।

२ १६०४ में भूमि कर की ग्राय २२ लाख १६ हजार १ सौ ४४ रु. थी। १६०६ में २४ लाख ३७ हजार ४ सौ ६४ हो गई ग्रौर इसमें खर्च ३ लाख ५६ हजार ३ सौ ४६ हुग्रा। उपयोगी जमीन १६०४ में १८६२०२७ बीघा थी। १६२० में २४३०८४६ बीघा होगई डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७५६-६०।

होता था। अंग्रेजी शिक्षा राजधानी में ही थी। स्त्री-शिक्षा नाम मात्र को थी। अब शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने लगी। १९५३ में हाई स्कूल खुला। बाद में यह कालेज बन गया जिसे आज हरबर्ट कालेज कहते हैं। स्त्री-शिक्षा के लिये महारानी कन्या पाठशाला की स्थापना हुई। नार्मल स्कूल स्थापित किये गये। विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये छात्र-वृत्तियाँ दी जाने लगीं। चिकित्सा विभाग के अन्तर्गत कोटा राज्य में स्थान २ पर अस्पताल खुलने लगे। सम्वत् १९५६ में पांच सफाखाने थे पर सन् १९४० तक हर तहसील में १-१ अस्पताल खुल गया। कई सामाजिक सुधार हुए।

सम्वत् १९८० में बेगार-प्रथा बन्द करदी गई। सन् १९२७ में यह कानून बना दिया गया कि १२ वर्ष से पहले लड़की और १६ वर्ष से पहले लड़के का विवाह करना जुर्म है[1]। कोटा में पहली रेलवे लाइन सम्वत् १८५६ में बारां तक बनी थी। कोटा राज्य ने इसका खर्च दिया। सम्वत् १९६३ में कोटा तक यह लाइन खुल गई। सं० १९६५ में मथुरा, नागदा रेलवे मार्ग खुल गया। इसी प्रकार कोटा राज्य ने इस काल में डाक, तार का भी प्रबन्ध किया। सन् १९०० में कोटा राज्य का डाक विभाग अंग्रेजी सरकार ने ले लिया। कोटा में पहली तार लाइन २१ मई १८९२ में देवली से कोटा तक खोली गई। सहकारी समितियां, बैंक १९२३ ई. में स्थापित किये गये। रेल के आने पर रूई के पेच, तेल की फैक्ट्री, पत्थरों की खानें आदि व्यवसाय जारी हुए। बारां और रामगंज मण्डी इन व्यवसायों के मुख्य नगर थे। कोटा में पहले हालो और मदनशाही रुपये चलते थे। सन् १९०० में कलदार रुपये शुरू किये। उम्मेदसिंह के समय बनने वाली इमारतों में हरबर्ट कालेज, कर्जन वाचली स्मारक, क्राथपेस्ट इन्स्टीटच्यूट, महारानी कन्या पाठशाला (आजकल कॉलेज) राजकीय भवन आदि प्रसिद्ध हैं। कोटा में प्रथम बार राजनैतिक चेतना का प्रारम्भ इसके समय में हुआ। सन् १९१४ में जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त पं० अर्जुनलाल सेठी बी.ए. तथा शाहपुरा (मेवाड़ निवासी) केसरीसिंह बारहठ, कोटा के हीरालाल जालोटी आदि आरा विहार महन्त हत्या-केस तथा जोधपुर महन्त हत्याकेस नाम के राजनैतिक मुकदमे अंग्रेजी सरकार के इशारे से कोटा राजधानी में चलाये गये और इन अभियुक्तों को दोषी करार देकर कई वर्षों की सजा दी गई। राजपूताने के राज्यों में यह पहला ही राज-नैतिक षड़यन्त्र का मामला था।

---

१ १९२० में केन्द्रीय धारा-सभा ने शारदा कानून बना कर विवाह की उम्र निश्चित करदी। लड़के की कम से कम १८ वर्ष और लड़कियों की १४ वर्ष होने पर ही विवाह करने का कानून बना। यह कानून सफल न हो सका। इसी प्रकार कोटा राज्य का यह कानून भी असफल रहा।

महाराव उम्मेदसिंह का देहान्त सन् १९४० की २७ दिसम्बर को हुआ। इसके बाद उसके पुत्र भीमसिंह राजगद्दी पर बैठे। महाराव उम्मेदसिंह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। सम्वत् १९७१ (ई० सन् १९१४) में इसने द्वारिका-यात्रा की। सन् १९१७ में यह हरिद्वार गया और वहाँ पुण्यदान दिया। अपने राज्य में पुराने मन्दिरों व मस्जिदों का जीर्णोद्धार करवाया।

महाराव भीमसिंह—वि० सं० १९९७-२००४

राजस्थान-निर्माण के समय कोटा के राज्य पर महाराव भीमसिंह विराजमान थे। इसका जन्म सं० १९६५ (सन् १९१८) में हुआ था। प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा मेयो कॉलेज अजमेर में हुई। शिक्षा-प्राप्ति व खेलकूद में इन्होंने अपना नाम विद्यार्थी जीवन में उच्च स्तर तक पहुँचा दिया था। मेयो कॉलेज के १९१७ से १९२९ तक विद्यार्थी रहे। बाद में शासन-प्रबंध की शिक्षा प्राप्त करने के लिये महकमा खास और महकमा माल का काम देखने लगे। इनका विवाह महाराजा बीकानेर श्री गंगासिंह की पुत्री से ३० अप्रेल १९३० को हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के बाद (२७ दिसम्बर १९४०) कोटा की राजगद्दी पर आप बैठे। इनका शासनकाल राजनैतिक उथल-पुथल का काल था। गद्दी पर बैठते ही द्वितीय महायुद्ध का सामना करना पड़ा। युद्ध-काल में अंग्रेजों के प्रति इन्होंने वही नीति अपनाई जो कि इनके पिता ने अपनाई थी। १९४५ में युद्ध समाप्त होगया तो भारत का राजनैतिक वातावरण क्रांति की ओर अग्रसर होने लगा। कोटा भी इससे अछूता न बच सका। कोटा में अखिल भारतीय लोक परिषद् की शाखा खुली। कोटा में स्वशासन स्थापित करने की मांग पर जन आंदोलन हुए। यद्यपि जन आंदोलन कमजोर था परन्तु महाराव समय की गति को देख रहे थे। अगस्त १९४१ में 'भारत छोड़ो आँदोलन' की देखादेखी यहां के प्रताप मण्डल ने भी पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग की। तथा रियासत का अंग्रेजी सरकार से संबंध विच्छेद के लिये महाराव को कहा गया। इस पर कोटा में उपद्रव हुए। नेता गिरफ्तार किये गये। इस पर जनता ने बहुत विरोध किया। महाराव ने किसी प्रकार जनता से समझौता कर लिया। १५ अगस्त १९४७ को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महाराव कोटा ने अपने यहां १९४७ के प्रारम्भ में ही जन-प्रिय सरकार की स्थापना की। सरदार पटेल, केन्द्रीय ग्रहमंत्री की देशी राजनीति पर छोटे २ राज्यों का एकीकरण प्रारम्भ हुआ। राजस्थान के छोटे राज्यों ने भी बड़ा राजस्थान बनाने में सहायता दी। महाराव कोटा इस काम में अग्रणी थे। २५ मार्च १९४८ को स रियासतों को छोटे राजस्थान का निर्माण हुआ[1]।

[1] इसमें बांसवाड़ा, बून्दी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा टोंक सम्मिलित हुए थे।

बाद में इसमें उदयपुर के १८ अप्रेल १९४८ को शामिल हो जाने पर उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह राजप्रमुख बनाये गये और कोटा महाराव भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। जब वृहत राजस्थान ३० मार्च १९४९ को बना[1] तो जयपुर के शासक मानसिंह राजप्रमुख बने और महाराव भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। यह पद उन्होंने ३१ अक्टूबर १९५६ तक संभाला। बाद में १ नवम्बर १९५६ से राजप्रमुख प्रथा समाप्त करदी गई।

महाराव भीमसिंह शिक्षा-प्रेमी रहे हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की चेयर की स्थापना के लिये धन देकर राजस्थान के इतिहास व खोज के लिये विद्यार्थियों को उत्साहित किया है।

कोटा राज्य का मुगलों से संबंध

१३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण, १२७४ ई० में बून्दी के शासक राव समरसिंह के पुत्र जैतसिंह ने कोट्या भील से अकेलगढ़ के युद्ध में कोटा छीन कर हाड़ाओं का राज्य वहाँ स्थापित किया। यद्यपि कोटा पृथक राज्य केन्द्र हो गया था परन्तु कोटे के शासक बून्दी नरेश की अधीनता में रहा करते थे। ई० १५४६ में कोटे पर मालवा के कैसरखाँ और डोकरखाँ पठान सैनिकों का अधिकार हो गया। राव सुर्जन हाड़ा ने इनसे कोटा सन् १५६१ में छीन लिया और अपने पुत्र भोज के सुपुर्द कर दिया[2]। जब राव सुर्जन ने अकबर के साथ रणथम्बोर समर्पण करने की संधि १५६९ ई० में की तो सम्भव है कि कोटा

१ इसमें बीकानेर, जयपुर, जयसलमेर व जोधपुर की रियासतें भी शामिल हो गई।

२ बून्दी राज्य का इतिहास, बून्दी राज्य का मुगलों से सम्बन्ध।

राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त कर कोटा का कानूनी अधिकार स्थापित किया हो। सं० १६३६ (१५७९ ई०) के गेपरनाथ के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोटा में राजकुमार भोज का राज्य स्वतन्त्र रूप से था। जब भोज बून्दी की गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान प्राप्त किया[१]।

(क) मुगल राजनीति की देन—'कोटा'—कोटा की स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापना मुगल सम्राटों की देन कहा गया है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के कारण बादशाह जहाँगीर की स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने लगी थी। उस समय बून्दी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता की[२]। इस सेवा से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने कोटा राज्य का फरमान राव रतन को दे दिया। राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को उस राज्य का अधिकारी बना दिया। राव रतन की मृत्यु के बाद माधोसिंह एक स्वतन्त्र शासक के रूप में कोटा पर शासन करने लगा।

जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभावशाली अधिकार था। १६२२ ई० तक नूरजहाँ मुगल परम्पराओं के अनुसार राज्य करती परन्तु उसके बाद उसकी गर्वीली तथा महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों के कारण झगड़े उत्पन्न होने लगे। जहाँगीर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। नूरजहाँ को भय हुआ कि कहीं जहाँगीर की मृत्यु के बाद वह राज्य सत्ता से पृथक न करदी जाय। वह यह पद मृत्युपर्यन्त तक चाहती थी। जहाँगीर के बाद शाह बनने की योग्यता शाहजादे खुर्रम में ही थी और खुर्रम नूरजहाँ के प्रभाव में रहने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः नूरजहाँ खुर्रम को राज्य प्राप्ति से दूर रखने के लिए योजनाएँ बनाने लगी। जहाँगीर का सबसे छोटा पुत्र शहरयार था। वह अयोग्य और निकम्मा था। उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना कर नूरजहाँ स्वयं शासन करना चाहती थी। इसके अलावा नूरजहाँ और खुर्रम धार्मिक दृष्टि से एकमत नहीं हो सकते थे। नूरजहाँ शिया मत की थी तो खुर्रम सुन्नी[३]। अतः शहरयार को राज्यारूढ़ करने की योजना को सफल बनाने के लिए उसने शेर-अफगन से उत्पन्न अपनी कन्या लाड़ली बेगम की शादी शहरयार से अप्रेल १६२१

---

१ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८६ फुटनोट नं० २।

२ सागर फूट्यो जल बह्यो, अबकी करो जतन।
जातो गढ़ जहाँगीर को, राख्यो राव रतन ॥ टाड : पृ० १४८६।

३ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, पृ० ३२३-३२४।

ई० में करदी। शहरयार ८००० जात व ४००० सवार का मनसबदार बनाया गया। इसी वर्ष नूरजहाँ के माता-पिता का देहांत हो गया। ये दोनों व्यक्ति नूरजहाँ की निरंकुशता को रोके हुए थे। नूरजहाँ का भाई आसफ़खाँ खुर्रम का स्वसुर था इसलिए उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। खुर्रम और नूरजहाँ की अनबन के कारण राज्य शक्ति शिथिल होने लगी और ठीक इसी समय फारस के शाह ने १६२२ ई० में कन्धार पर अधिकार कर लिया।

कन्धार की पुनः-प्राप्ति का उत्तरदायित्व खुर्रम पर सौंपा गया परन्तु वह इस योजना को नूरजहाँ का षड़यन्त्र समझ कर अपनी सुरक्षा के लिए सेना पर पूर्ण नियन्त्रण, पंजाब पर अधिकार व रणथम्भोर के किले को प्राप्त करना चाहा। खुर्रम की यह मांग नूरजहाँ के लिए चुनौती थी अतः उसने शहरयार को कन्धार-विजय का भार सौंपा। धौलपुर की हाकिमी के लिए भी नूरजहाँ और खुर्रम में मनमुटाव था। खुर्रम की ओर से दरियाखाँ व शहरयार की ओर से शरीफ-उल-मालिक धौलपुर की हुकूमत पर अधिकार करने चले। दोनों में मुठभेड़ हो गई। नूरजहाँ ने सारा दोष खुर्रम का बतला कर जहाँगीर को खुर्रम से पृथक कर दिया। इसी समय नूरजहाँ ने काबुल से महावतखाँ को बुला भेजा। उसके पद में वृद्धि की गई। शाहजादा परवेज को बंगाल से बुला लिया गया। इसी समय खुर्रम ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। माण्डु को अपना मुख्य केन्द्र बनाया। मेवाड़ के राणा से पगड़ी-बदल भाईचारा स्थापित किया। उसके राजकुमार भीमसिंह को अपना सेनापति बनाया[१]।

ऐसी स्थिति में बून्दी का राव रतन तथा कोटे का हृदयनारायण नूरजहाँ व जहाँगीर की सहायता को पहुँचे। राव रतन के साथ उसके दो पुत्र माधोसिंह व हरिसिंह भी थे[२]। खुर्रम के विरुद्ध महावतखाँ व शाहजादा परवेज भेजा गया। परवेज को ४०,००० जात व ३०,००० सवार का मनसब दिया गया। मांडु के घेरे में राव रतन भी शामिल था। खुर्रम हार कर भाग गया। वह नर्मदा पार कर असीरगढ की ओर चला। खुर्रम ने राव रतन को मध्यस्थ बना कर संधि की बातचीत करनी चाही परन्तु शर्तें तय नहीं[३] होने के कारण खुर्रम को भाग कर

---

१ विद्रोह की ध्वजा फहरा कर खुर्रम ने पहले आगरा लेना चाहा पर १६२३ ई० में बिल्लोचपुरे में उसकी हार हुई। उपरोक्त, पृ० ३२६।

२ ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इन्डिया, पृ० ५१४-५१५।
गौरीशंकर ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ३, पृ ८२५।

३ वेणीप्रसाद : जहाँगीर, पृ० ३७०।

असीरगढ़ के किले में शरण लेनी पड़ी। अपने कुटुम्ब को वहीं छोड़ कर वह बुरहानपुर चला गया। उसने अहमदनगर से मलिम अम्बर की सहायता प्राप्त करनी चाही परन्तु उसे सहायता न मिली। मुगल-राजपूत सेना ने बुरहानपुर घेर लिया। खुर्रम भाग कर गोलकुण्डा पहुँचा। बुरहानपुर विजय का मुख्य श्रेय राव रतन को दिया गया। अतः उसे बुरहानपुर का हाकिम नियुक्त किया गया। उसके दोनों पुत्रों ने भी युद्ध में भाग लिया था। गोलकुण्डा से खुर्रम उड़ीसा होकर बंगाल पहुँचा। वहाँ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। उसके सेनापति भीमसिंह सिसोदिया ने बिहार पर अधिकार कर लिया। विद्रोही सेना भीमसिंह के नेतृत्व में इलाहाबाद की ओर बढ़ने लगी। इस पर जहाँगीर ने दक्षिण से महावतखां और परवेज को खुर्रम का रास्ता रोकने के लिए बुला भेजा। परवेज ने बुरहानपुर के पास के इलाकों का शासक राव रतन को नियुक्त किया[1]। हृदयनारायण परवेज के साथ पूर्व की ओर खुर्रम के विरुद्ध गया। भूंसी के स्थान पर खुर्रम हार कर भाग गया। हृदयनारायण भी युद्ध के समय भाग चुका था अत. जहाँगीर ने उससे कोटा छीन कर अस्थायी रूप से राव रतन को सौंप दिया।

ज्योंही महावत खां और परवेज दक्षिण से हटे, अहमदनगर के मलिक अम्बर ने शाही सेना पर हमला करना आरम्भ किया। पर राव रतन ने बुरहानपुर पर शाही अधिकार बनाए रखा। भूंसी के युद्ध में हार कर खुर्रम पुनः उड़ीसा, तेलंगाना और गोलकुण्डा होता हुआ अहमदनगर पहुँचा। इस बार मलिक अम्बर से मित्रता स्थापित हो गई। दोनों ने बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। घोर संग्राम हुआ। राव रतन ने अत्यन्त कठिनाई में होते हुए भी विजय प्राप्त की। महावत खां व परवेज पुनः दक्षिण की ओर चले। इस पर खुर्रम ने घेरा उठा लिया। इस युद्ध में राव रतन को बहुत सा धन प्राप्त हुआ। शत्रु के ३०० सैनिक कैद कर लिए गए। माधोसिंह व हरिसिंह युद्ध करते हुए घायल[2] तो अवश्य हुए परन्तु माधोसिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर जहांगीर ने १६२४ ई० में कोटा का राज्य माधोसिंह के नाम पर स्वीकार करने की अनुमति देदी।

बुरहानपुर से हार कर खुर्रम दक्षिण की ओर भागने लगा परन्तु इसमें

---

१ खफीखां : जिल्द १, पृ० ३४८।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८७।

२ इलियट डाउसन : जिल्द ६, पृ० ३६५ तथा ४१८।
वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २४८७, २५००—०४

वह सफल न हो सका। वह कैद कर लिया गया[1]। राव रतन व महावतखां दोनों ही बुरहानपुर के शासक नियुक्त हुए। महावतखां को जब शाही दरबार में बुलाया गया तो राव रतन को बुरहानपुर का फौजदार बनाया गया[2]। खुर्रम की देख-रेख का भार हरिसिंह पर छोड़ा गया परन्तु उसका व्यवहार खुर्रम के साथ नौकरों जैसा था। इस पर माधोसिंह को यह कार्य सौंपा गया। माधोसिंह ने उसके साथ मित्रता व प्रेम का व्यवहार रख कर खुर्रम को अपनी ओर कर लिया[3]। मार्च १२, १६२६ को नूरजहाँ ने खुर्रम को यह आदेश देकर क्षमा देनी चाही कि रोहतासगढ़ व असीरगढ़ के दुर्ग जहांगीर को सौंप दे। उसने यह स्वीकार किया परन्तु दिल्ली में हाजिर न होने की आज्ञा चाही। आज्ञा न मिलने पर खुर्रम बुरहानपुर की कैद से भाग खड़ा हुआ। राव रतन व माधोसिंह का इस घटना में हाथ रहा हो क्योंकि भागने के पूर्व खुर्रम ने राव रतन को पत्र लिखा कि "कारागार में माधोसिंह ने मुझे बहुत आदरपूर्वक रखा है और मालिक समझा है। मैं इसको विशेष राज्य देकर सम्मानित करूंगा[4]।" इस घटना का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। वंशभास्कर के रचयिता सूर्यमल्ल मिश्रण की कल्पना हो सकती है पर खुर्रम ने शाहजादा बनते ही हरिसिंह को बुला भेजा। इस भय से, कहीं पुराने व्यवहार के कारण उसे दण्ड प्राप्त न हो इसलिए राव रतन ने उसे उपस्थित नहीं किया। इस पर शाहजहाँ ने बून्दी के ८ परगनों को जप्त कर लिया।

जहांगीर काश्मीर से लौटता हुआ लाहोर के पास ७ नवम्बर १६२७ ई० को मर गया। खुर्रम ने अपने स्वसुर आसफजहाँ की सहायता से दिल्ली की राज्य-गद्दी प्राप्त करली। वह शाहजहाँ के नाम से १६२८ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। राव रतन ने शाहजहाँ का माधोसिंह की सेवाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। शाहजहाँ ने कोटे राज्य का फरमान माधोसिंह के नाम पर कर दिया[5]। राव रतन ने बून्दी के आठ परगने भी माधोसिंह को दे दिए। राव रतन के देहान्त के बाद (१६३१ ई०) माधोसिंह ने अपना राज्याभिषेक किया और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। इस अवसर पर शाहजहाँ ने माधोसिंह को खिलअत प्रदान की और उसको २५०० जात व २५०० सवारों का मनसबदार बना दिया। इस तरह कोटा का स्वतन्त्र राज्य मुगल राजनीति की देन कहा जा सकता है।

---

१ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २४९९।
२ इलियट डाउसन : जिल्द ६, पृ० ४१२-४१५।
३ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २५१०-२५१२।
४ उपरोक्त : पृ० २५२३-२६।
५ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २५४०-४१-४३।

माधोसिंह की मुगल साम्राज्य-सेवा:—राव माधोसिंह अपनी राज्य-भक्ति के कारण शाहजहाँ का कृपापात्र बन गया। अब तक शाही दरबार में जोधपुर, जयपुर, बीकानेर व जैसलमेर आदि राजपूताने की रियासतों के शासकों का ही प्रभाव था परन्तु प्रथम बार बून्दी और कोटा के हाड़ा राजपूतों ने साम्राज्य-सेवा में प्रवेश कर शाहजहाँ व उसके बाद की मुगल राजनीति को प्रभावित करना शुरू किया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही उसे कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा। पहला विद्रोह खानजहां लोदी का था जिसने १६२८ ई० में दक्षिण में बालघाट की सूबेदारी से हटाने पर विद्रोह कर दिया। धौलपुर के पास युद्ध में माधोसिंह हाड़ा के नेतृत्व में मुगल सेना से वह हार गया। खानजहां इस पर दक्षिण की ओर भाग गया और निजाम शाही सुल्तानों से वह मिल गया। माधोसिंह ने खानजहाँ का पीछा किया। उज्जैन के पास पुन: दोनों की सेनाओं में भिड़न्त हुई। वह बुन्देलखंड जा पहुँचा। वहां जुझारसिंह बुन्देला भी शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोही हो रहा था। खानजहाँ कालिन्जर के उत्तर में तालसिंघाड़े के पास मुगल सेना से घिर गया। इस युद्ध में माधोसिंह हाड़ा ने खानजहाँ को अपनी बर्छी से छेद दिया। उसके दोनों पुत्रों के टुकड़े कर डाले गए। तीनों के सिर बादशाह के समक्ष नजर किए गए[1]। शाहजहाँ ने इस विजय के उपलक्ष्य में जीरापुर, खैराबाद, चेचट और खिलचीपुर के चार परगने माधोसिंह को दिए और उसे तीनहजारी मनसबदार बना दिया[2]।

शाहजहाँ के समय वीरसिंह बुन्देला के पुत्र जुझारसिंह ने भी अपनी स्वतंत्र इकाई के लिए मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का मुख्य कारण उससे बुन्देलखण्ड के हिसाब की जांच की आज्ञा कहा जाता है। इसे अपना अपमान समझ कर १६३५ ई० में उसने ओरछा में स्वतन्त्र ध्वजा फहरा दी। इस विद्रोह को दबाने के लिए शाहजहाँ ने माधोसिंह हाड़ा से सहायता की आशा की। माधोसिंह १५०० हाड़ा सैनिकों को लेकर बुन्देला-विद्रोह दबाने चला। जुझारसिंह पर उसने शानदार विजय प्राप्त की, इससे मुगल दरबार में माधोसिंह की प्रतिष्ठा

---

१ बादशाहनामा : जिल्द १, भाग २, पृ० ३४८-५०; वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ० २५६५। डा. ए. एल. श्रीवास्तव लिखते हैं कि खानजहाँ लोदी बांदा जिले के सिंहसदा नामक स्थान पर पकड़ा गया और मारा गया। (मुगलकालीन भारत : पृ० ३५१); इलियट व डाउसन : जिल्द ७, पृ० २०-२२।

२ ठाकुर लक्ष्मणदास ने कोटा राज्य की ख्यात में इस वीरता के उपलक्ष्य में माधोसिंह को १७ परगने देना लिखा है। फारसी तवारीखों में इसका उल्लेख नहीं है। पर माधोसिंह की मृत्यु के समय कोटा राज्य में ये परगने सम्मिलित थे। डा० एम. एल. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ११२।

बढ़ने लगी। १६४१ ई० में पंजाब में कांगड़ा में विद्रोह हुआ। वहाँ के सूबेदार जगतसिंह ने मुगलाई सार्वभौमिकता से अपने को स्वतन्त्र कर लिया। शाहजादा मुराद के नेतृत्व में कांगड़ा पर आक्रमण करने के लिए एक बहुत बड़ी सेना भेजी गई। माधोसिंह भी मुराद के साथ चला। आक्रमण की सफलता के बाद माधोसिंह के मनसब में ५०० की वृद्धि की गई।

कोटा के हाड़ा शासकों ने मुगल शक्ति को मध्य एशिया तक पहुँचाने में पूर्ण मदद की। शाहजहाँ मुगलों की मातृभूमि समरकन्द पर अधिकार करने की योजना निर्मित की। इसी समय समरकन्द की राजनैतिक स्थिति मुगल आक्रमण के पक्ष में थी। समरकन्द के शासक इमामकुली के भाई नजरमोहम्मद ने काबुल पर अधिकार करने की कई बार चेष्टा की। उसकी इन हरकतों को रोकने के लिए सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ स्वयं काबुल गया और समरकन्द विजय का भार मुराद को सौंपा। उसे ५०,००० सैनिक-शक्ति दी गई। उस समय माधोसिंह लाहोर में था। समरकन्द विजय में शामिल होने का उसे फरमान भेजा गया[1]। काबुल पहुँचने पर माधोसिंह को हरावल में रखा गया। शाही सेना के ३ भाग कर दिए गए। एक भाग में रावराजा शत्रुशाल, दूसरे भाग में विट्ठलदास राठौड़ व तीसरे भाग का नेतृत्व माधोसिंह को दिया गया। इस सेना ने कन्दल के किले पर २२ जून को आक्रमण कर अधिकार कर लिया। २ जुलाई १६४६ को बाल्ख में यह सेना प्रवेश करने लगी। नजरमोहम्मद भाग गया। उसका कुटुम्ब गिरफ्तार कर लिया गया। सारा शहर लूट लिया गया। अतुल धन प्राप्त कर तिरमिज पर अधिकार हो जाने पर मुराद बिना शाही आज्ञा के भारत लौट आया। बाल्ख की रक्षा का भार माधोसिंह हाड़ा को सौंपा गया। मुराद की अनुपस्थिति में नजरमोहम्मद और तुरान के शासक अब्दुलअजीज ने बाल्ख लेना चाहा परन्तु माधोसिंह ने बाल्ख और उसके आसपास के क्षेत्रों से मुगलों का अधिकार नहीं हटने दिया। इसी बीच शाहजहाँ ने औरंगजेब को अतिरिक्त सेना देकर बाल्ख भेजा। मार्ग में शत्रुओं को हराता हुआ औरंगजेब २५ मई सन् १६४७ ई० को बाल्ख पहुँचा। शाहजहाँ ने माधोसिंह के लिए चाँदी के आभूषणों से अलंकृत एक घोड़ा भेजा। औरंगजेब ने भी बाल्ख की किलेदारी माधोसिंह पर छोड़ तथा साथ में शाही खजाना, रसद आदि का भार भी छोड़ कर औरंगजेब नजरमोहम्मद को पूर्ण शिकस्त देने चला। कभी नजरमोहम्मद विजयी हुआ तो कभी औरंगजेब। ७ जून १६४७ ई० को बाल्ख के पास भयंकर युद्ध हुआ। इसमें बाल्ख, बदकशां का शासक अब्दुलअजीज व कई उजबेक सरदार शामिल

---

१ अब्दुलहमीद : जिल्द २, पृ० ४२३।

थे। दोनों ओर से शान्ति-प्रयास किया। नजरमोहम्मद इसके लिए तैयार नहीं था। शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया-विजय महंगी पड़ रही थी। अतः उसने औरंगजेब को लिखा कि यदि नजरमोहम्मद क्षमा-याचना करले तो संधि कर लेना। बाध्य होकर औरंगजेब ने नजरमोहम्मद से सन्धि कर १० नवम्बर १६४७ ई० को काबुल लौट जाना पड़ा। इस लौटती हुई सेना पर उजबेगों ने कई बार आक्रमण किया। मध्य एशिया की नीति शाहजहाँ के लिए महंगी पड़ी। कई करोड़ रुपयों की हानि के बाद भी मुगलों ने एक इन्च की भूमि प्राप्त नहीं की। उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। बाल्ख से लौटने पर राव माधोसिंह की मृत्यु सन् १६४८ ई० में कोटे में हो गई। माधोसिंह मरते समय ३००० का मनसबदार था[१]। बाल्ख और बदकशां आक्रमण के समय उसके दो पुत्र मोहनसिंह व किशोरसिंह साथ थे जो क्रमशः ८०० और ४०० के मनसबदार थे[२]।

मुकुन्दसिंह और मुगल—सन् १६४६ ई० में राव मुकुन्द कोटे की गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ ने उसे खिलअत दी व उसे ३००० का मनसबदार बनाया। गद्दी पर बैठते ही उसे मुगल-सेवा में बुला लिया गया। १६२३ ई० में शाह अब्बास, फारस सुल्तान ने कन्धार को अपने अधिकार में कर लिया था। १६३५ ई० में कन्धार के सूबेदार अलीमर्दनखां ने शाह अब्बास से क्रोधित होकर कन्धार मुगलों को सौंप दिया परन्तु १६४८ ई० में फारस के शासक ने पुनः कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने तीन बार कन्धार लेने का प्रयत्न किया। सन् १६४६ व १६५२ में औरंगजेब के नेतृत्व में और १६५३ ई० में दारा के नेतृत्व में। तीनों बार असफलता प्राप्त हुई। मुकुन्दसिंह ने कन्धार-प्राप्ति के लिए दारा की हरावल में युद्ध में भाग लिया[३]।

मुकुन्दसिंह के समय सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के चारों पुत्रों—दारा, शुजा, औरंगजेब व मुराद में राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ[४]। दारा ने औरंगजेब व मुराद के विरुद्ध जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को भेजा। मुकुन्दसिंह को भी शाही फरमान प्राप्त हुआ कि जसवन्तसिंह की सहायता के लिए फौजें

---

१ अब्दुलहमीद : जिल्द २, पृ० ७२२; डा० एम. एल. शर्मा, कांगड़ा-विजय के बाद माधोसिंह को ४५०० का मनसबदार लिखते हैं (कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १३०)

२ मुंशी मूलचन्द : पृ० ६६।

३ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृ० १४२; परन्तु इनायतखां ने कन्धार के घेरे के वर्णन में मुकुन्दसिंह का कहीं उल्लेख नहीं किया है (शाहजहाँनामा, पृ० ८८)।

४ डा० ए. एल. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, पृ० ३७२-३८०।

भेजे। मुकुन्दसिंह ५००० सैनिकों और अपने भाई मोहनसिंह, जुझारसिंह, कनीराम और किशोरसिंह को साथ लेकर जसवन्तसिंह से जा मिला। धर्मत के स्थान पर मुगल-राजपूत सेना ने औरंगजेब-मुराद की सेना का सामना किया। मुकुन्दसिंह व उसके भाई युद्ध करते हुए मारे गए। सबसे छोटा भाई किशोरसिंह घायल होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़ा[1]। जसवन्तसिंह जोधपुर भाग गया। औरंगजेब ने इस युद्ध के बाद इस स्थान का नाम फतेहाबाद रखा।

औरंगजेब व कोटा के हाड़ा शासक—शाहजहाँ के पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के युद्ध में औरंगजेब सफल हुआ। २१ जुलाई १६५८ को दिल्ली के सिंहासन पर वह बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने राजपूत शासकों के प्रति मित्रता की नीति अपनायी। यद्यपि कोटा का राजा मुकुन्द उसके विरुद्ध धर्मत के युद्ध में लड़ा था फिर भी गद्दी पर बैठते ही उसने राव मुकुन्द के उत्तराधिकारी जगतसिंह को दिल्ली बुला भेजा। जगतसिंह औरंगजेब के फरमान को पाकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। उस समय औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ पंजाब की ओर गया हुआ था। जगतसिंह भी पंजाब की ओर चला। सतलज के समीप जगतसिंह ने औरंगजेब से मुलाकात अगस्त १६५८ ई० को की। इस अवसर पर औरंगजेब ने खिलअत देकर जगतसिंह को २००० का मनसबदार बनाया[2]। पंजाब से लौट कर औरंगजेब शुजा की ओर चला। शुजा शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र था। बंगाल का वह सूबेदार बनाया गया था। शाहजहाँ की बीमारी के समय वह वहां का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और दिल्ली-प्राप्ति के लिए दारा के विरुद्ध चढ़ आया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। समूगढ़ के मैदान में दारा औरंगजेब से हार गया। वह पंजाब की ओर भागा। औरंगजेब ने उसका पीछा किया। इसका लाभ उठा कर शुजा ने दिल्ली लेने का पुनः प्रयास किया। वह दिल्ली की ओर बढ़ा। औरंगजेब दारा का पीछा छोड़ शुजा को रोकने के लिये आगरे की ओर गया। कोटा के शासक जगतसिंह हाड़ा व उसके चाचा किशोरसिंह हाड़ा को शाही फरमान प्राप्त हुआ कि वे शुजा को आगरे की तरफ बढ़ने से रोके। खजुहा के रणक्षेत्र में शुजा से भयंकर युद्ध हुआ। जोधपुर नरेश इस युद्ध में औरंगजेब का साथ दे रहा था परन्तु गुप्त रूप से वह शुजा के पक्ष में योजना बना रहा था अतः युद्ध के पहले ही उषाकाल के समय शाही फौज को लूटता हुआ वह आगरे की तरफ चला गया[3]। जगतसिंह ने औरंगजेब का साथ

१ आलमगीरनामा : पृ० ५६-५७; टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५-२२।

२ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ० २७३८; टाड : राजस्थान : जिल्द ३, पृ० १५२३।

३ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब : जिल्द २, पृ० १३३-१३४।

नहीं छोड़ा। विजयश्री औरंगजेब को हाड़ा राजपूतों की वीरता के कारण प्राप्त हुई।

राजपूतों का सहयोग पाकर औरंगजेब ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करली। परन्तु शीघ्र ही बाद में कट्टर सुन्नी होने के कारण वह राजपूतों को दूर रख कर मुसलमानी शासन व्यवस्था के आधार पर राज्य करने लगा। हिन्दुओं के विरुद्ध ध्वंसात्मक नीति अपनाई गई। जब उसने १६७९ ई० में मारवाड़ पर आक्रमण किया[1] तो राजपूताने के राजपूत शासकों को यह मुगलाई चुनौती थी परन्तु फिर भी कोटा के शासक जगतसिंह ने मुगलाई सेवा में तन, मन, धन लगा दिया। दक्षिण में शिवाजी के विरुद्ध मुगल शक्ति को हाड़ा राजपूतों से सशक्त करने का भार उस पर सौंपा गया। जगतसिंह औरंगाबाद में रह कर दक्षिणी युद्धों में भाग लेने लगा। मारवाड़ में औरंगजेब ने मन्दिर-ध्वंस करने की नीति अपनाई। कोटे का शासक अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था। अतः कहीं औरंगजेब की इस नीति का शिकार उसके गृह-देवता श्रीनाथजी का मन्दिर नहीं हो जाय, उसके लिए उसने अपने मन्त्रियों को सूचना भेजी कि श्रीनाथजी की प्रतिमा बोरावां के स्थान पर सुरक्षित की जावे। जगतसिंह दक्षिण में हैदराबाद के घेरे के युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया[2]। सम्भवतः उसकी मृत्यु सन् १६८३ ई० में हुई हो[3]।

जगतसिंह के कोई पुत्र न होने के कारण उसका चाचा किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। वह मुगल सेवा में रहता आया था। खजुहा के रणक्षेत्र में शुजा के विरुद्ध उसने युद्ध किया। दक्षिण में मराठों के विरुद्ध मुगलाई स्वामी-भक्ति का परिचय उसने दिया। बीजापुर, गोलकुण्डा को विजय करने के लिए उसने मुगलों के लिए हाड़ा-रक्त बहाया। राज्याभिषेक के कुछ समय पहले हो उसे एक हजार का मनसब प्राप्त हुआ था। राज्याभिषेक के बाद दक्षिण की ओर वह प्रस्थान करने लगा। वह अपने सब पुत्रों को अपने साथ ले जाना चाहता था परन्तु उसके ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह ने मुगल सेवा में रहने से इन्कार कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राज्य-च्युत कर दिया और अन्ते का जागीरदार बना दिया।

---

१ जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु १६७८ ई० में जमरूद (काबुल के पास) में हो जाने के कारण मारवाड़ की गद्दी पर उसका पुत्र अजीतसिंह शासक घोषित किया गया परन्तु औरंगजेब ने इसे स्वीकार न कर मारवाड़ को अपने अधीन कर लिया।

२ टाड : राजस्थान : जिल्द ३, पृ० १५२३।

३ टाड के अनुसार इसकी मृत्यु सम्वत् १७२६ वि० स० को हुई परन्तु सम्वत् १७४० में दक्षिण के एक फर्राश की जमानत देने का उल्लेख राजकीय कागजों से प्राप्त हुआ है अतः सम्वत् १७४० के आसपास वह जीवित था।

बीजापुर के घेरे में किशोरसिंह ने औरंगजेब का पूर्ण विश्वास जीत लिया था। इब्राहिमगढ़ और हैदराबाद के घेरे में जगतसिंह ने मुगलाई-शक्ति को दृढ़ बनाया था। मराठा शासक शंभाजी से रायगढ़ व वसन्तगढ़ छीनने में कोटा के महाराव का प्रमुख हाथ रहा। जिस समय दक्षिण में औरंगजेब युद्ध कर रहा था, उत्तर में जाटों ने विद्रोह कर दिया। शाहजादा बेदारबख्त व किशोरसिंह जाटों के विद्रोह को दबाने के लिए भेजे गए। सन् १६८८ ई० में वह पुनः दक्षिण की ओर चला गया और अर्काट में राजाराम भोंसले से युद्ध करता हुआ घायल हो गया। टाड का कथन है कि किशोरसिंह दक्षिण में अर्काट के किले पर दीवार चढ़ते हुए गिर कर मर गया था। शिवाजी का द्वितीय पुत्र राजाराम जिन्जी में रहा करता था। मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ ने जिन्जी का घेरा डाल कर राजाराम को मुगलाई अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य करने लगा। यह घेरा कई वर्षों तक चलता रहा। जिन्जी के क्षेत्रों में अर्काट पर मुगलाई अधिकार करने में किशोरसिंह ने प्रमुख सहायता दी। जिन्जी में मुगलों की सफलता अत्यन्त कठिनाई से हो रही थी। मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ अर्काट में शरण लेकर जिन्जी युद्ध का संचालन करता रहा। मरने के समय किशोरसिंह चारहजारी मनसबदार था।

किशोरसिंह के मरते ही सन् १६९५ ई० में कोटा गद्दी के लिए उसके पुत्रों में गृह-युद्ध छिड़ गया। ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह ने अपना अधिकार प्रस्तुत किया। औरंगजेब ने रामसिंह को कोटा का शासक स्वीकार कर उसे ३००० का मनसबदार बनाया। मुगलाई सहायता से रामसिंह कोटा के इस गृह-युद्ध में सफल हुआ। सन् १६९६ ई० में रामसिंह का राज्याभिषेक हुआ। वह पुनः दक्षिण की ओर चला गया। कर्नाटक में अरनी को अपना गृह-केन्द्र बना कर[1] मुगल सेना को सहायता देने लगा। दक्षिण में रहते रामसिंह ने मराठा शासक राजाराम से मित्रता स्थापित करली। जब राजाराम जिन्जी के किले में घिर गया और उसके सेनापतियों सन्ताजी घोरपड़े व धन्नाजी जादव में संघर्ष होने शुरू हुए तो राजाराम ने जुल्फिकार से संधि की वार्ता शुरू की। अगस्त सन् १६९७ ई० में राजाराम ने रामसिंह के मार्फत शान्ति-प्रस्ताव मुगल सेनापति के पास भेजे। औरंगजेब शान्ति के पक्ष में न था। वह जिन्जी पर मुगलाई अधिकार चाहता था। राजाराम में नेतृत्व व साहस की कमी होने के कारण ऐसी स्थिति में जिन्जी से भाग निकला और अपने कुटुम्ब को वहीं छोड़ दिया। जिन्जी पर १६९८ ई०

१ सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग २, पृ० १०४।

में मुगलों का अधिकार हो गया। रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा कर उन्हें उत्तर में राजाराम के पास भिजवा दिया। इसके बाद औरंगजेब की मृत्यु तक रामसिंह दक्षिण में ही रहा। वहाँ शाहजादा आजम से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

औरंगजेब की मृत्यु अहमदनगर में मार्च १७०७ ई० को हुई। उसकी मृत्यु के बाद दिल्ली सिंहासन के लिए शाहजादा आजम और मुअज्जम में युद्ध की सम्भावना बढ़ने लगी। दक्षिण में शाहजादा आजम ने अपने को सम्राट घोषित कर दिया[1]। रामसिंह ने उसे सम्राट स्वीकार कर उसे सहायता दी। मुअज्जम ने भी उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से रवाना होकर १ जून १७०७ ई० को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब की मृत्यु के समय रामसिंह जुल्फिकार के साथ कर्नाटक में था। वहाँ से वह चल कर २ अप्रेल को औरंगाबाद में आजम से मिला। १४ मई को शाही सेना के साथ सिरोंज पहुँचा। सीरोंज से जुल्फिकार व रामसिंह के नेतृत्व में ४५००० सेना चम्बल के थागों पर कब्जा करने के लिए भेजी गई। उधर मुअज्जम के पुत्र अजीम चम्बल के थागों पर अधिकार करने आ रहा था। रामसिंह व जुल्फिकार का नूराबाद[2] के पास चम्बल नदी पर अजीम से संघर्ष हुआ जिसमें अजीम का सेनानायक मोहतशखां तोपें छोड़ कर भाग गया। मुअज्जम ने औरंगजेब के वसियतनामे के अनुसार साम्राज्य का विभाजन कर राज्य करने की सन्धि करनी चाही पर आजम ने इसे स्वीकार नहीं किया[3]। बूंदी से राव बुद्धसिंह ने मुअज्जम का साथ दिया। इस प्रकार हाड़ा राजपूतों की दोनों शाखाओं ने प्रथम बार एक दूसरे के विरुद्ध लड़ना तय किया। वास्तव में दोनों राव 'पाटन' पर प्रभुत्व के लिए मुगलाई सहायता चाहते थे। आजम ने औरंगाबाद में रामसिंह को वचन दिया था कि "मुअज्जम की सहायता से बुद्धसिंह ने तुमसे पाटन छीन लिया है, मैं तुमको बूंदी देता हूँ। तुम मेरे पक्ष में लड़ो[4]।" जून १८, १७०७ ई० को जाजव के रणक्षेत्र में औरंगजेब के पुत्रों में संघर्ष हुआ। आजम हार गया व मारा गया[5]। रामसिंह भी इस युद्ध में

---

१ १४ मार्च १७०७ ई०।

२ ग्वालियर से १६ मील उत्तर की ओर।

३ इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृ० २२।

४ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९४७।

५ जुल्फिकार भाग कर ग्वालियर चला गया और जयपुर नरेश जयसिंह अपने सिर पर दुशाला लपेट कर चपके से मुअज्जम से जा मिला। (वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९८०-२९८३।

वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया। युद्ध की समाप्ति पर मुअज्जम के आदेश से रामसिंह का शव रणक्षेत्र से उठा कर नूराबाद लाया गया और वहाँ उसका दाह-संस्कार हुआ। रामसिंह मुगलों का तीनहजारी मनसबदार था तथा मुगल दरबार में वह अपने तोपखाने के कारण भड़बाया कहलाने लगा था।

मुगलों का पतन और कोटा के हाड़ा शासक—औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल राजनीति का दिवाला स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। प्रान्तीय शक्तियां स्वतन्त्र होने लगीं। केन्द्रीय शक्ति में शिथिलता आई और राज्य में ऐसा कोई कूटनीतिज्ञ नहीं था जो सही नेतृत्व दे सके। जाजव के युद्ध के बाद मुअज्जम विजयी हो बहादुरशाह के नाम पर दिल्ली-सिंहासन पर बैठा। बूंदी के राव बुद्धसिंह ने बहादुरशाह से कोटे पर अधिकार करने का फरमान प्राप्त कर लिया[1]। कोटा का रामसिंह व उसके उत्तराधिकारी मुअज्जम-विरोधी होने के कारण कोटा को मुगलाई कोप से बचा न सके। बुद्धसिंह ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि आक्रमण कर नव शासक राव भीमसिंह से कोटा छीन ले। बुद्धसिंह स्वयं जयपुर और वेंगू विवाह करने चला गया। बूंदी के मन्त्रियों ने दो बार कोटे पर चढ़ाई की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। बहादुरशाह अधिक समय तक शासन न कर सका। फरवरी १७१२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद जहांदारशाह गद्दी पर बैठा। वह कुछ मास के लिए ही शासन कर सका क्योंकि सैयद भाई अब्दुला व हुसैनअली की सहायता से फरूखसियार ने फरवरी १७१३ में दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

फरूखसियार के गद्दी पर बैठने पर राजनैतिक स्थिति ने पलटा खाया। बुद्धसिंह ने फरूखसियार को कोई सहायता नहीं दी। कोटा के राव भीमसिंह ने सैयद-बन्धुओं का पक्ष लिया था। इस सहायता के बदले में पुरस्कारस्वरूप भीमसिंह को बूंदी पर अधिकार करने का मुगल फरमान दिया[2]। भीमसिंह ने बूंदी पर आक्रमण कर उस पर सन् १७१३ ई० के अन्तिम माह में अधिकार कर लिया। भीमसिंह का बूंदी पर अधिक समय तक अधिकार न रह सका। जयसिंह की मध्यस्थता द्वारा बुद्धसिंह पुनः मुगल शासक का प्रिय पात्र बन गया। बूंदी पर पुनः बुद्धसिंह का अधिकार हो गया। बारां व मऊ के परगने भी बुद्धसिंह को दे दिए गए। भीमसिंह व बुद्धसिंह की शत्रुता का अन्त फिर भी न हुआ। सन् १७१९ ई० को सैयद-बन्धुओं ने मराठी व राठौड़ी सहायता से फरूखसियार

---

१ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९९८-९९।

२ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३०४०-४२।

को गद्दी से उतार दिया। भीमसिंह ने बुद्धसिंह के विरुद्ध सैयद-भाइयों की सहायता प्राप्त की। भीमसिंह की सलाह पर, कि कहीं बुद्धसिंह और जयसिंह फरूखसियार का पक्ष न लेलें। अत: उनका काम तमाम कर देना चाहिए। सैय्यद बन्धुओं ने २२ फरवरी १७१९ ई० को फरूखसियार पर दबाव डाला कि जयसिंह व बुद्धसिंह को दिल्ली से चले जाने का आदेश देदे। इसी दिन भीमसिंह ने बुद्धसिंह की हत्या करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। बुद्धसिंह का दीवान व कई आदमी मारे गए। भीमसिंह को विजय प्राप्त हुई और बुद्धसिंह अपने बचेबचाए सैनिकों को लेकर सराय अलीवर्दीखां में जाकर जयसिंह का आश्रय प्राप्त किया[1]। सैय्यदों का पक्ष ग्रहण करने से भीमसिंह का शाही दरबार में बहुत सम्मान बढ़ा। उसको पंचहजारी मनसब दिया गया। बूंदी राज्य, पठार, मांडलगढ़ से बूंदी तक के इलाके और खींचीपाड़े तथा उमटवाड़े का उसको पट्टा दे दिया गया[2]। इसी अवसर पर गागरोण का किला भी उसे सुपुर्द किया गया। फरूखसियार को गद्दी से उतारने में (२८ फरवरी १७१९ ई०) भीमसिंह ने सैय्यद अजीतसिंह की सहायता की। उसके एक दिवस पहले २७ फरवरी को ही शाही किले पर अधिकार भीमसिंह व कुतुबमुलमुल्क ने कर लिया था। फरूखसियार के बाद मुगलों की राजधानी दो दल—इरानी व तुरानी—में बंट गई। सैयद-बन्धुओं ने एक के बाद एक नया शासक मुगल गद्दी पर बैठाया। दक्षिण का सूबेदार निजाममुल्मुल्क सैयदों का प्रभाव नष्ट करने के लिए तैयारी करने लगा। इसी बीच में इलाहाबाद का सूबेदार छबेलाराम ने सैयदों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। राव राजा बुद्धसिंह ने छबेलाराम को दस हजार सैनिकों की सहायता दी। इस पर सैयदों ने भीमसिंह और दिलावरखां को १५००० सैनिक देकर बूंदी पर आक्रमण करने भेजा। १२ फरवरी १७२० के आसपास यह युद्ध हुआ, जिसमें ६००० राजपूत काम आए[3]। इसी समय निजामुल्मुल्क दक्षिण से मालवा पहुँचा। सैयदों का हुक्म आया कि दिलावरखां, भीमसिंह और गजसिंह का साथ लेकर वह अपनी सेना का पड़ाव मालवा प्रान्त की सीमा पर डाले। इस अवसर पर भीमसिंह को वचन दिया गया कि निजाम का दमन होने के पश्चात् उसको उच्च कोटि का महाराजा बनाया जावेगा,

---

१ खफीखां : जिल्द २, पृ० ८०६ :

वंशभास्कर के अनुसार यह युद्ध सन् १७१७ में हुआ। यह असत्य है, क्योंकि फारसी तवारीखों में सन् १७१९ ई० में फरूखसियार का राज्यगद्दी पर से उतरना लिखा है।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२८।

३ खफीखां : जिल्द २, पृ० ८४४-८५१।

सातहजारी मनसब दी जावेगी। साथ ही शाही मरतब भी मिलेगा[1]। भीमसिंह २००० राजपूतों सहित व गजसिंह ३००० राजपूतों सहित युद्धक्षेत्र में जा डटा। पन्धार के स्थान पर १६ जून १७२० ई० को युद्ध हुआ। युद्ध के पहले निजाम ने भीमसिंह को एक पत्र लिख कर अपनी ओर करना चाहा[2] परन्तु भीमसिंह अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहा। कोराई बोरासा के क्षेत्र में युद्ध करते हुए तोप के गोले लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। भीमसिंह मरने के समय पंचहजारी मनसबदार था और उसे फर्रूखसियार ने महाराव की पदवी से विभूषित किया था।

भीमसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अर्जुनसिंह गद्दी पर बैठा। मुहम्मदशाह ने उसे खिलअत और मसनदनशीनी भेजी। १७२० ई० में सैयद-भाइयों का पतन हो गया। अर्जुनसिंह सैयदों का खैरख्वाह होने से मुहम्मदशाह ने उसे कोई तरक्की नहीं दी। अर्जुनसिंह के बाद दुर्जनशाल कोटे का शासक हुआ। इस समय मुगल शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चली थी। प्रांतीय शक्तियों को स्वतन्त्र होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो रहा था। जयपुर का जयसिंह वृहत् जयपुर-निर्माण का स्वप्न देखने लगा। उसने बूंदी व कोटा पर अधिकार करने का प्रयास किया। मुगल शक्ति इन राजपूत शासकों की अनुशासनहीनता को दबाने में अशक्त थी। दक्षिण में मराठे शक्तिशाली हो रहे थे। वे मुगल शक्ति के अवशेषों पर हिन्दूपद बादशाही की स्थापना में संलग्न थे। राव दुर्जनशाल कोटा का अंतिम शासक था जिसने मुगलों से संबंध बनाए रखा। मुहम्मदशाह ने राव दुर्जनशाल को टीके का हाथी, खिलअत तथा मनसदनशीनी भेजी। दुर्जनशाल जब दिल्ली गया तो वहाँ का गौवध उसे बुरा लगा। उसने शाही कोतवाल और कसाइयों को मार डाला, पर बादशाह ने उसको कोई दण्ड नहीं दिया।

इसी समय मराठे उत्तर भारत में मालवा व बुन्देलखण्ड से प्रवेश कर रहे थे। मालवा का सूबेदार जयसिंह मराठों को रोकने में असफल हो रहा था। १७३५ ई० में वजीर कमरूद्दीन व खानदौरान को बुन्देलखण्ड व राजपूताने की ओर भेज कर मराठों के प्रसार को रोकना चाहा। रास्ते में महाराव दुर्जनशाल खानदौरान की सेना से जा मिला। परन्तु जब यह सेना मुकन्दरा घाटी पार करके रामपुरे की ओर जाने लगी तो दुर्जनशाल कोटा रुक गया और अपनी सेना को शाही सेना के साथ कर दिया। रामपुरे में खानदौरान, जयसिंह, अभयसिंह को सिंधिया व होल्कर ने आठ दिन तक घेरे रख कर लूटपाट की।

---

१ खफीखां, जिल्द २, पृ० ८५१।

२ निजाम व भीमसिंह पगड़ीबदल भाई थे। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२६।

दुर्जनशाल सेना लेकर खानदौरान की सहायता को पहुँचाने के लिए प्रयाण करने लगा परन्तु होल्कर व सिन्धिया ने उसको शाही लश्कर तक नहीं पहुँचने दिया। हार कर दुर्जनशाल कोटा लौट गया[१]। खानदौरान ने कोटा में मरहठों से सन्धि करली। जयसिंह के प्रयत्न से यह सन्धि की गई थी कि मरहठों को २२ लाख रुपयों की चौथ दी जायेगी। इस घटना के बाद कोटा पर मुगल प्रभाव समाप्त हो गया और उसका स्थान मरहठों ने ले लिया।

मुगल शासन का कोटा पर प्रभाव—सन् १६२४ ई० में जहाँगीर की आज्ञा से माधोसिंह कोटा का राजा हुआ और मुगलों की देन कोटा, मुगल राज्य-शक्ति की सेवा में प्रवेश होकर सन् १७३५ ई० तक बना रहा। एक सदी में कोटा मुगलाई ढंग में रंग गया। कोटा के शासक तीनहजारी मनसबदार से बढ़ कर पंचहजारी मनसबदार बन गए। 'राव' से वे 'महाराव' की पदवी धारण करने लगे। तीनहजारी मनसबदार को प्रथम श्रेणी के रूप में २४,६०० रुपये मासिक मिलते थे। कोटा नरेशों ने मुगलाई सेवा में रह कर अटूट स्वामिभक्ति का परिचय दिया। सारा राजपूताना मुगल राज्य का एक सूबा माना जाता था जिसका सूबेदार अजमेर में रहता था। यह प्रान्त कई परगनों में विभक्त था। सूबेदार की नियुक्ति शाही फरमान द्वारा होती थी। प्रत्येक कोटा शासक को गद्दी पर बैठते समय शाही फरमान लेना पड़ता था। यह मुगल नियन्त्रण का सूचक था पर मुगलों का नियन्त्रण इस सीमा तक ही सीमित था कि वहाँ के शासक शाही सेवा में उपस्थित रहें तथा शाही आज्ञाओं से नियुक्त अफसरों से सहयोग करते रहें। आन्तरिक रूप में वे स्वतन्त्र थे। कोटा राज्य में तीसरा अंकुश मुगलाई सिक्कों की सभ्यता के रूप में था। गागरोण के किले में इसके निर्माण की एक टकसाल भी थी।

कोटा के प्रत्येक परगने में हकत व पड़त जमीन का हिसाब, उसकी वृद्धि तथा कृषि की उन्नति करने का कार्य कानूगो के हाथ में रहता था। यह कानूगो शाही अफसर होता था जिसकी नियुक्ति शाही फरमान से होती थी। जागीरदारों के अन्याय व कठोरता का हाल लिख कर वह सम्राट को भेजता था। भूमि का लगान, आमद व खर्च का हिसाब लिख कर प्रति वर्ष वह दफ्तरखाना-आली में भेजता था। परगने के हाकिम, आलिम उसकी सलाह से कार्य करते थे। यह पद वंश-परम्परानुगत था। भूमि कर का दो प्रतिशत कानूगो की रसूम होती थी। कोटा में नकद वेतन की प्रणाली नहीं थी। केन्द्रीय सता का व्यक्ति होते

१ इरविन : लेटरमुगल्स जिल्द, २, पृ० ३०४।

हुए भी वह कोटा-राव की आज्ञा से कार्य करता था। राजपूताने की रियासतें प्रति वर्ष मुगल साम्राज्य को खिराज देती थीं। यह खिराज अजमेर का सूबेदार इकट्ठा करता था। पूर्वी राजपूताने की रियासतों को उज्जैन के सूबे में मतालबा (खिराज) जमा करा देने की सुविधा दी गई थी। कोटा के शासक कभी अजमेर, कभी उज्जैन के शाही कोष में यह धनराशि जमा कराते थे। मतालबा किश्तों में जमा कराया जाता था। सम्भवत: कोटे के शासकों को वार्षिक साढ़े तीन लाख रुपये खिराज के देने पड़ते थे।

मुगलों का कोटे के धार्मिक क्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ा। कोटे से जजिया कर लिया जाता था। यह कर सम्राट के कर्मचारी वसूल करते थे। मन्दिर तोड़ कर मस्जिदें बनाई जाती थीं। यदि शाही फौज कोटे में से गुजरती तो उसके आस-पास शंख व घंटे नहीं बज सकते थे। कोटा में रहने वाले मुसलमानों के न्याय के लिए शाही फरमान द्वारा काजी नियुक्त किए जाते थे। मुहर्रम, ईद आदि मुस्लिम त्यौंहार उसके नेतृत्व में मनाये जाते थे। त्यौंहारों के समय राज्य की ओर से हाथी, घोड़े, सिपाही शोभा के लिए दिए जाते थे। यद्यपि महाराव भीमसिंह के राज्य-काल से काजियों का प्रभाव कम होने लगा था परन्तु कई दरगाहों और मस्जिदों को राज्य की ओर से नकद या जमीन मिलती थी।

कोटा राज्य का शासन मुगलाई ढांचे का था। केन्द्रीय शासन राज्य, परगने व गांवों में विभक्त था। राज्य-भाषा हाड़ोती थी परन्तु उसमें ज्यादातर फारसी शब्दों का प्रयोग किया जाता था। भूमि, सेना, और न्याय का प्रबन्ध मुगलाई ढंग का था। टोडरमल के समय की लगान लेने की प्रणाली कोटा राज्य में प्रचलित थी। सेना में हाथी, पैदल, घोड़े और तोपखाने की व्यवस्था मुगलों की देन थी। ऊंटों का रिसाला कोटा वालों ने जयपुरियों व बीकानेरियों की तरह संगठित किया था। राजपूतों ने युद्धक्षेत्र में स्त्रियों को लेजाने की प्रथा मुगलों से सीखी थी। मुगलों की तरह युद्ध का बाना पहनना तथा उनकी तरह के शस्त्र, कवच, तलवार, ढाल, भाला, बर्छी, तोप आदि का प्रयोग कोटा वालों ने अपनाया। फीलखाना, शुतुरखाना, तोपखाना, हरावल जैसे सैनिक विभाग जो कोटा की सेना में पाए गए हैं वे मुगलों के ही स्वरूप थे। युद्ध का ढंग भी कोटा वालों ने परिवर्तित कर दिया और राजपूत युद्ध प्रणाली के स्थान पर मुगल युद्ध प्रणाली काम में लाई जाने लगी। किलों का घेरा डालना, सुरंग लगा कर किले की दीवार को उड़ा देना, तोपखाने की आड़ में वार करना, दायें बाएँ बाजू पर सेना जमाना (तुलगमा रणनीति) यह सब मुगल देन है। न्याय के क्षेत्र में मुगलों की तरह दण्ड पर आधारित न्याय था। न्याय विभाग

पृथक नहीं था। अपील का व्यवस्थित रूप नहीं किया गया था। दण्ड का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया था। राजाज्ञा से ही दण्ड दिया जाता था। पुलिस कोतवाल ही न्यायाधीश बन जाता था। अतः कोतवाली-चबूतरा न्यायालय और भय का केन्द्र हो गया था। अपील जब कभी होती तो लिखित नहीं होती थी। तुरन्त न्याय की व्यवस्था थी। मुगल बादशाहों की तरह कोटा नरेश की कोप-दृष्टि ही सब कुछ थी।

साधारण जीवन व दरबारी जीवन में मुगलों के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई दे सकती थी। रावों के दरीखाने की बैठक मुगल दरबार की बैठक के समान थी। मुगलों में मनसब के अनुसार खड़े रहने की व्यवस्था की जाती थी। कोटा के राज्य दरबार में यह ध्यान रक्खा जाता था कि कौनसा जागीरदार किस हैसियत का है और वह अपने स्थान पर बैठता है या नहीं। जागीरदारों को सेवाओं के बदले ताजीम दी जाती थी। कोटा में राजकीय पुरुषों का पहनावा मुगलों जैसा था। चूड़ीदार पायजामा, घाघरकोट, मुगलाई-पगड़ी, बगलबंदी आदि सरदार पहनते थे। उत्सव व मेले मुगलों की तरह होने लगे। गणगौर मीना बाजार की तरह, हाथियों की होली, नावडे की होली आदि सब मुगलों की तरह होते थे। महफिल व दावतों में मुगल शिष्टाचार का प्रचार हो गया था। हुक्का और इत्र, हलुवा और खिचड़ी मुगल प्रभाव से बनने लगी। राज्य में फारसी का प्रयोग होने लगा, विशेष कर अन्य रियासतों से पत्र-व्यवहार करते समय। कला के क्षेत्र में गृह-निर्माण कला में महराबें तथा मीनाररूपी स्तम्भ-प्रणाली, छज्जे और जालिएँ मुगलों के सम्पर्क में आने के बाद ही कोटे में बनने लगीं। कोटा में मुगल सांस्कृति का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि मराठों व अंग्रेजों के प्रभाव काल में रहते हुए भी आज वे स्पष्ट रूप से जन-जीवन में देखे जा सकते हैं।

कोटा राज्य का मरहठों से सम्बन्ध

दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीयता की लहर उठ खड़ी हुई। शिवाजी के नेतृत्व में मराठी सामाजिक व धार्मिक प्रवृतियाँ संयुक्त व संगठित होकर एक राजनैतिक शक्ति बन गयी। शिवाजो ने सन् १६४७ में प्रथम बार बीजापुर के सुल्तान के विरुद्ध एक राजनैतिक बगावत कर नए स्वतन्त्र राज्य की स्थापना प्रारम्भ की। १२ वर्ष तक, १६५६ तक बीजापुर-मराठा संघर्ष होता रहा। अन्त में नव-चेतित मराठा शक्ति विजयी रही। १६६० से १७०७ तक मुगल मराठा संघर्ष चलता रहा। शिवाजी की राजनैतिक शक्ति को कुचलने का प्रयास औरंगजेब ने तीन बार किया। १६६२-६३ में शायस्तखां को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। १६६५ में जयसिंह ने शिवाजी पर विजय प्राप्त कर उसे आगरा जाने को विवश किया जहां औरंगजेब ने उसे हमेशा के लिये समाप्त कर देना चाहा, और १६६८ से १६७४ तक मुगल-मराठा भयंकर संघर्ष चलता रहा। सफलता शिवाजी को प्राप्त हुई और १६७४ ई० में उन्होंने मराठा राज्य की स्थापना कर-ही डाली। जिसका उद्देश्य हिन्दू-पद-पादशाही था। परन्तु सन् १६८० में उसकी मृत्यु हो गयी। मराठा राज्य तो स्थापित हो चुका था पर मुगलाई आंतक वना रहा जिसने १६८९ में शम्भाजी की हत्या कर मराठा राज्य का अन्त कर दिया। यद्यपि राज्य का रूप तो नष्ट हो गया परन्तु राष्ट्रीय शक्ति नष्ट न हो सकी। पहले राजाराम के नेतृत्व में, उसकी मृत्यु के बाद उसकी स्त्री ताराबाई के नेतृत्व में मराठी राष्ट्रीयता मुगलों से बराबर टक्कर लेती रही। २० वर्ष के इस लम्बे युद्ध में औरंगजेब की सारी शक्ति नष्ट हो गई। वह स्वयं मराठों को दबाने दक्षिण की ओर गया परन्तु इस 'दक्षिणी फोड़े' ने उसे बर्बाद कर दिया। १७०७ ई० में वह अहमदनगर में मर गया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके लड़कों में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतः मराठों को कई अर्से के बाद अपने शत्रु से मुक्ति मिली। उस गृह-युद्ध में शाहजादा मुअज्जम जाजव के युद्ध में (मार्च १७०७) सफल हो बहादुरशाह के नाम से मुगल सम्राट बना। दक्षिण में ताराबाई के नेतृत्व में मराठा शक्ति राष्ट्रीय युद्ध तो कर रही थी पर राजा के रूप में जब संगठित होने का अवसर आया तो एक राजनैतिक स्थिति पैदा हो गई। बहादुरशाह दक्षिण में मुगलाई प्रभाव रखना चाहता था परन्तु मराठों से युद्ध करने के लिये उसके पास न शक्ति थी, न योग्यता। अतः जुल्फिकारखां की सलाह पर उसने शम्भाजी के लड़के शाहू को, जो १६८९ में कैद कर लिया गया था और अब तक मुगल जीवन में रम रहा था, मुक्त कर दिया गया। जिससे शाहू-ताराबाई संघर्ष में मराठी जन-जीवन पड़ा रहे और मुगल उसका लाभ उठा सकें। शाहू में रक्त तो मराठी था, वह भी शिवाजी का परन्तु मराठी गुण एक भी नहीं था। वह तो मुगलाई तौर-तरीके, आरामपसन्द जीवन का व्यक्ति था। शिवाजी की गद्दी जब उसने १७०८ में मांगी तो ताराबाई ने देने से इन्कार कर दिया। ताराबाई एक राजनैतिक औरत थी पर नेतृत्व करने के गुण से अनभिज्ञ थी। अतः कई मराठा सरदार उससे अप्रसन्न थे। उन्होंने कमजोर शाहू का नेतृत्व स्वीकार किया जिससे अपनी मन-मानी कर सकें। मराठी गृह-युद्ध (१७०८ ई०) में सफल हुआ।

शाहू सफल तो होगया परन्तु मराठों की राजनैतिक स्थिति से वह अनभिज्ञ था। उसकी कई समस्याएँ थी। उसका व्यक्तित्व उन समस्याओं को सुलझाने में पूर्ण अयोग्य था। मराठा सरदार कभी ताराबाई, कभी शाहू का साथ देकर अपनी शक्ति का प्रसार कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में शाहू के सेवक और भक्त के रूप में बालाजीविश्वनाथ पेशवा के पद पर नियुक्त किया गया। पेशवा की संरक्षकता में मराठी पुनः संगठित और केन्द्रित होने लगे। यह काल मुगल-पतन काल था। मुगलों के पतन काल में दक्षिण की (व्यवहारिक रूप से) सार्व-भौमिक शक्ति मराठों ने १७१९ में मराठा-मुगल सन्धि द्वारा प्राप्त करली। वास्तव में यह सन्धि १७१९ के भारतीय राजनैतिक इतिहास में एक नये युग को जन्म देती है जबकि मुगलों के बाद अखिल भारतीय शक्ति के रूप में मराठे प्रवेश करते हैं। बालाजी विश्वनाथ ने स्वयं दिल्ली आकर यह सन्धि मुगल शासकों से की। लौटते समय वह राजपूताने की ओर से जाने लगा। धौलपुर, जयपुर होता वह दक्षिण को लौट गया। उसके साथ उसका पुत्र बाजीराव था। जो हिन्दू-पद-पादशाही का निर्माता कहा जा सकता है। मुगल काल की पत-नावस्था में दक्षिण भारत में तो मराठा शक्ति सार्वभौमिक हो गयी परन्तु उत्तरी

भारत में राजपूतों की शक्ति सार्वभौमिक हो सकती थी पर यह नहीं हुआ। जब बाजीराव पेशवा बना तो उसने राजपूत-मराठा सहयोग नीति अपनानी चाही पर शीघ्र ही राजपूती रियासतों के आपसी झगड़ों ने उसे बतला दिया कि राजपूत मराठों का साथ नहीं दे सकते। अतः एकाकी रूप में बाजीराव ने उत्तरी भारत में मराठी शान स्थापित करनी चाही। राजपूत शासक, विशेष कर जयपुर और जोधपुर के शासक मुगल सूबेदार बन कर मराठों के प्रसार को रोकते रहे लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उल्टे मराठों को विरोधी बना लिया। मुगलों को पतन से वे बचा न सके। १७४१ में बालाजी बाजीराव पेशवा ने मुगलों से उतरी भारत की प्रभुता छीनना प्रारम्भ कर दिया तो वे राजपूताने के शासकों के आपसी झगड़ों के न्यायकर्त्ता के रूप में प्रगट हुए और मराठे-राजपूत जहाँ मैत्री और सहयोगी होकर भारत में राज्य पर बढ़ती हुई अंग्रेजी शक्ति का विरोध कर सकते थे वह नहीं कर सके। मराठे राजपूताने के शासकों का धन शोषण करने में लग गये।

मराठों-राजपूतों का प्रथम सम्पर्क दो विरोधी शक्तियों के रूप में हुआ। राजपूतों ने मराठी राष्ट्रीयता को दबाने के लिये मुगल सम्राटों को तन, मन, धन से सहयोग दिया। कोटा के महाराव भी इससे वंचित नहीं थे। शिवाजी के विरुद्ध राव जगतसिंह ने औरंगजेब को पूर्ण सहायता दी। औरंगजेब ने जब सन् १६८९ में रायगढ़ पर अधिकार कर मराठा राजा शम्भाजी को गिरफ्तार कर उसका सिर कटवा लिया तो उस समय किशोरसिंह भी औरंगजेब के साथ लड़ा था[1]। वसन्तगढ़ के घेरे में तथा उस पर शाही सेना का अधिकार कराने में किशोरसिंह ने अपने हाड़ा राजपूतों का रक्त बहाया था। किशोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र विष्णुसिंह ने अपने पिता के साथ दक्षिण में जाकर मराठों से लड़ने को इन्कारी करदी तो उसे राज्यच्युत कर दिया और अन्तें की जागीर देदी[2]। उसका दूसरा पुत्र रामसिंह मराठों के विरुद्ध शाही सेना में बना रहा। उसने दक्षिण भारत में राजाराम के विरुद्ध मुगल सेनापति जुल्फिकारखां के नेतृत्व में युद्ध किया। सन् १६९६ से १७०७ तक वह मराठों से लड़ता रहा।

दक्षिण में अरनी (कर्नाटक) के किले में रामसिंह ने अपना निवास-स्थान बनाया जहां से मराठों की दक्षिण की राजधानी जिन्जी का घेरा निर्देशन हो सके। मुगलों की स्थिति से एक लाभ इस बात से पहुँचा कि राजाराम के दोनों सेनापति सन्ताजी घोरपड़े और धन्नाजी जादव आपस में लड़ पड़े। राजाराम ने

१ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृ० ७।

२ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२३।

अपनी स्थिति को बचाने के लिये अगस्त सन् १६९७ में रामसिंह द्वारा मुगलों से सन्धि करनी चाही पर औरंगजेब ने इसे स्वीकार नहीं किया[1]। जिन्जी का पुनः घेरा डाला गया जो दो माह तक चलता रहा। रामसिंह इस घेरे में 'शेतानी दरी' नामक दरवाजे के सम्मुख मुगल पंक्ति का अध्यक्ष था। राजाराम को २ जनवरी १६९८ को जिन्जी छोड़ कर भागना पड़ा परन्तु उसका कुटुम्ब पीछे ही रह गया। उस कुटुम्ब की सुरक्षा का भार रामसिंह ने लिया और सकुशल उन्हें उत्तर की ओर राजाराम के पास भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद भी रामसिंह औरंगजेब के देहावसान तक दक्षिण में लड़ता रहा और बीजापुर, रामगढ़, वसन्तगढ़-विजय में सहायता देता रहा।

सन् १७०७ से १७३४ तक कोटा नरेश उत्तर में मुगल राजनीति के दांव-पेच में फंसे रहे। दक्षिण में मराठे पेशवाओं के नेतृत्व में अपनी शक्ति का प्रसार करते रहे। कोटा के शासक मुगलों के अत्यन्त भक्त थे। अत: जब पेशवा बाजीराव गुजरात, मालवा, बुन्देलखंड में मराठी प्रसार कर रहा था, उस समय वे मुगल शक्ति को सैनिक व आर्थिक सहायता देते रहे। मराठों की नीति कभी स्थिर नहीं रही। जिन राज्यों ने या क्षेत्रों ने उनकी आधीनता स्वीकार करली थी वहाँ वे अपना साम्राज्य या स्थायी प्रबन्ध नहीं करते थे। अकारण लूटमार करने में व धन वसूल करने में वे नहीं हिचकते थे। वे चौथ और सददेशमुखी तो प्राप्त करते ही थे, इसके अलावा कई प्रकार का कर भी लेते थे जिनमें नजराना व जुर्माना मुख्य थे। जो राज्य उनका सामना करते, उस पर तो टिड्डी-दल की तरह टूट पड़ते थे। उनके गांवों, खेतों और खलिहानों को नष्ट कर देते थे।

मालवा पर अधिकार हो जाने से कोटा पर उनकी आंख बराबर पड़ती रही। क्योंकि कोटा मालवा का पड़ोसी प्रान्त था। मराठों का प्रथम आतंकीय सम्पर्क कोटा राज्य के महाराव शत्रुशाल के समय में हुआ। राजस्थान में मराठों का प्रवेश बूंदी, जयपुर और जोधपुर के उत्तराधिकारी युद्धों से प्रारम्भ होता है। १७३४ ई० में पिलाजी जादव ने कोटा और बूंदी पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी पर वह योजना योजना ही रही। होल्कर और सिन्धिया ने कुछ लूट-पाट अवश्य की[2]। सन् १७३५ में पेशवा बाजीराव के मालवा-प्रसार को रोकने के लिये मुगल बादशाद मोहम्मदशाह ने वजीर कमरुद्दीन को बुन्देलखंड की ओर, और बख्शीखाँ खानदौरान को राजपूताना और मालवे की ओर भजा। सदाराव दुर्जनशाल ने अपनी सेना खानदौरान की सेवार्थ में भेजी। मुकन्दरे

१ सरकार : जिल्द ५, पृ० १०५।

२ सरकार : फाल ऑफ-दी मुगल अम्पायर, पृ० २४९।

की घाटी में होल्कर, सिन्धिया व पंवार ने खानदौरान को जा घेरा। कोटा से दुर्जनशाल खानदौरान की सहायता के लिये चला पर होल्कर और पंवार ने कोटे के महाराव को शाही लश्कर तक नहीं पहुँचने दिया[1]। खानदौरान ने परेशान होकर भोपाल की तरफ चला गया। चूंकी इस युद्ध में जयपुर नरेश जयसिंह व जोधपुर नरेश अभयसिंह मुगलों को सहायता दे रहे थे अतः होल्कर और सिन्धिया ने नये-नये राज्यों को लूटना प्रारम्भ किया। विशेष कर सांभर से तीन लाख रुपयों की सम्पत्ति प्राप्त की[2]।

मराठों का कोटा में प्रवेश:—सन् १७३६ में पेशवा बाजीराव ने राजस्थान की यात्रा की और महाराणा उदयपुर से मिला। मराठा-मेवाड़ सन्धि हुई। वार्षिक खिराज १ लाख ६० हजार प्रति वर्ष तय हुआ। फिर नाथद्वारा होते हुए बाजीराव सवाई जयसिंह से किशनगढ़ के पास बम्भोला गांव में मुलाकात की। मुगल सम्राट और मराठों के बीच वार्ता की शर्तें तय हुई पर वे मुगल सम्राट को स्वीकार न थीं। अत. दिल्ली पर आक्रमण करने की योजना बनी। वह भी एक वर्ष के लिये स्थगित कर दी गई। मुहम्मदशाह ने बाजीराव की हरकतों को रोकने के लिये उसे मालवा का उप-सूबेदार ही बनाना चाहा परन्तु बाजीराव इससे प्रसन्न नहीं हुआ अतः उसने १७३६ में दिल्ली पर आक्रमण करने का निश्चय किया। मालवा के मार्ग में कूच करता हुआ बाजीराव कोटा राज्य में घुसा। तारज दर्रे के पास अपनी सेना का पड़ाव डाल कर उसने महाराव दुर्जनशाल से रसद मांगी। दुर्जनशाल के लिये अस्वीकार करना कोटा में मृत्यु को वृहत् रूप से निमन्त्रण देना था। अतः उसने बाजीराव की पूर्ण सेवा की। इसके बदले में बाजीराव ने सन् १७३८ में नाहरगढ़ विजय करके दुर्जनशाल को दे दिया[3]। यह कोटा और मराठों का पहला सम्पर्क था।

यद्यपि दुर्जनशाल ने बाजीराव को रसद पहुँचाई थी और बाजीराव ने नाहरगढ़ का किला महाराव को दिया था परन्तु महाराव व बाजीराव राजनैतिक मित्र नहीं बन सके। दुर्जनशाल अब भी मुगलों की सेवा में रहना चाहता था और बाजीराव को यह स्वीकार न था कि उसके विरुद्ध राजपूत शासक हों। भोपाल के युद्ध में जब बाजीराव ने निजाम को बुरी तरह हरा दिया तो उसकी शक्ति उत्तरी भारत अजेय हो गई और उसके बाद मल्हारराव होल्कर और जसवन्तराव पंवार को लेकर कोटा पर आक्रमण कर दिया व शहर का घेरा

---

१ इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० ३०४।

२ सिपरंउल : मुताखिरिन, जिल्द २, पृ० ८३।

३ टाड : राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२६।

डाल दिया। चालीस दिन तक घेरा पड़ा रहा। अन्त में महाराव ने सन्धि करली। इस सन्धि के अनुसार महाराव ने पेशवा को दस लाख रुपये दिये। आठ लाख रुपये तत्काल व २ लाख का दस्तावेज लिख दिया[1]। कोटा मरहठों में राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। पेशवा ने बालाजी यशवन्त नामक एक सारस्वत ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया[2]। इस कोंकणी ब्राह्मण ने दुर्जनशाल को बरखेड़ी नामक परगना उरमाल में जागीर में दे दिया। इस प्रकार महाराव दुर्जनशाल ने भी मरहठों के विरुद्ध राजपूतों के हुरडा सम्मेलन (सन् १७३४) के संयुक्त निर्णय—कि मरहठों के विरुद्ध राजपूत संयुक्त कारवाई की जावे—का अन्त कर दिया। बालाजी यशवन्त कोटा की मामलात को सिन्धिया, पंवार तथा होल्कर तीनों में विभक्त कर देता था परन्तु यह दशा भी साफ नहीं होने पायी। बूंदी पर जयसिंह ने अपना अधिकार स्थापित करने के लिये बुद्धसिंह को हटा कर दलेलसिंह को राजा बना दिया। बुद्धसिंह और उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने मरहठों की सहायता तथा कोटा के राव दुर्जन की सहायता से पुनः बूंदी पर अधिकार कर लिया। इसी बीच १८४३ ई० में जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसके पुत्र इश्वरीसिंह और माधोसिंह में गद्दी के लिये युद्ध हुआ। महाराणा उदयपुर, महाराव कोटा व उम्मेदसिंह ने माधोसिंह का साथ दिया। राजमहल की लड़ाई सन् १७४३ में जहाँ मल्हारराव का पुत्र खांडेराव २ लाख रुपये देकर बुलाया गया था, माधोसिंह हार गया, परन्तु पेशवा के बीच में पड़ जाने के कारण माधोसिंह को जयपुर के चार परगने दिए तथा उम्मेदसिंह को बूंदी का राजा ईश्वरीसिंह ने मान लिया। सन्धि हो जाने पर भी ईश्वरीसिंह पुनः दलेलसिंह को बून्दी की गद्दी पर बैठाना चाहता था। अतः उसने होल्कर से सहायता मांगी। बूंदी के सहायक कोटा महाराव पर ईश्वरीसिंह व होल्कर ने आक्रमण कर दिया। ६१ दिन तक यह लड़ाई चली। हार कर सन् १७४८ में दुर्जनशाल ने सन्धि की बातचीत की। जिसके अनुसार दलेलसिंह को कापरण और केशोराय पाटन दिए गये तथा—कोटा ने चार लाख रुपये देने का वचन दिया परन्तु कुछ दिन बाद सिन्धिया के साथ पत्र व्यवहार करके कोटा के फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने ये रुपये माफ करवा दिये[3]।

कोटा में मरहठी प्रभुत्व—सन् १७५६ में महाराव दुर्जनशाल की मृत्यु के पश्चात् उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसने अन्ता के ठाकुर अजीतसिंह के

१ इरविन लेटर मुगल्स: जिल्द २, पृ० ३०४। वंशभास्कर: चतुर्थ भाग, पृ० ३२४१।

२ फाल्के : शिंदेशाही इतिहास चीं साधणे, जिल्द १, पृ० ३ नो. सै. ४.।

३ डा. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३६२।

पुत्र शत्रुशाल को गोद लेने की इच्छा प्रकट की परन्तु फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने पिता के रहते पुत्र को गद्दी देने की व्यवस्था ठीक नहीं समझी अतः अजीतसिंह १७५६ ई० में कोटे का शासक बना। उस समय मरहठे कोटा के 'बादशाह' थे अतः जब सिन्धिया को मालूम हुआ कि अजीतसिंह बिना उससे पूर्व स्वीकृति कोटे की गद्दी पर बैठ गया तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और एक वृहत् सेना लेकर कोटे पर चढ़ आया। होल्कर और पंवार भी आ पहुँचे। ऐसी परिस्थिति देख कर महाराणी माता (महाराव दुर्जनशाल की रानी) ने राणोजी सिन्धिया को राखी भेज कर भाई बना लिया और नजराने के रूप में राज्य की ओर से चालीस लाख रुपया मरहठों को दिया गया[1]। यह धनराशि चार वार्षिक किश्तों में दी गई। वार्षिक खण्डी इसी में मान ली गई। अन्तिम किश्त के दो लाख रुपये छूट के दिये गये। तथा मरहठों को राजपूताने के अन्य भागों को विजय करने में सहायता देने का वचन अजीतसिंह ने दिया। जयपुर में गर्दिश के वक्त तथा ढूंढार लूटते समय अजीतसिंह ने करीब सात हजारी रुकी नाले तथा मूछणे मरहठी सेना को भेजी थी[2]।

मरहठों को विशेष कर पेशवा बालाजी बाजीराव को हर समय धन की आवश्यकता रहती थी। शासन, युद्ध आदि के लिये धन-प्राप्ति उत्तरी भारत से ही हो सकती थी। होल्कर और सिन्धिया को राजपूताने से धन-प्राप्ति की आशा रहती थी। ये मरहठे सेनापति जब चाहते राजपूताने में प्रवेश कर लेते जब चाहा, जिससे चाहा धन प्राप्त करते थे। न देने पर युद्ध स्वाभाविक था। राजनैतिक सन्धियों को बनाए रखना कोई महत्ता नहीं रखता था। अजीतसिंह के बाद जब सन् १७५८ में शत्रुशाल गद्दी पर बैठा तो जनकोजी सिन्धिया व मल्हारराव होल्कर ने शत्रुशाल से नजराना के २ लाख रुपये लेकर उसे शासक की स्वीकृति दे दी।

१७५८ ई० तक मरहठों की शक्ति सारे भारत में फैल गई। पंजाब में वे अर्काट तक पहुँच चुके थे। दिल्ली के मुगल सुल्तान उनके ऋणी थे। पंजाब से दक्षिण भारत तक उनका प्रभाव था परन्तु वे इस बड़े साम्राज्य को न तो संगठित कर सके और न वे एक शासनसूत्र में बांध कर मरहठी राज्य की दृढ़ता ला सके। पंजाब पर मरहठों के अधिकार कर लेने को काबुल का बादशाह अहमदशाह दुर्रानी जो पंजाब को अपना प्रान्त समझता था, सहन न कर सका। उसने चार बार भारत पर आक्रमण किया। १७५९ में वह आक्रमण कर पंजाब पर

---

१ फाल्के : जिल्द १, लेखांक १७९, टिप्पणी १९४।
वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३६५५।

२ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४१५।

आधिकार करता हुआ नजीब रोहिला से जा मिला। जिसने मररठों की शक्ति नष्ट करने के लिये निमन्त्रित किया था। १७६१ की जनवरी को पानीपत के स्थान पर अब्दाली-मरहठा युद्ध हुआ। मरहठे हार गए। मरहठों की हार का लाभ उठा कर जयपुर नरेश माधोसिंह ने राजपूताने से मरहठों को निकालने का प्रयत्न किया। उसने दिल्ली सम्राट शाहआलम द्वितीय, नजीमरोहिला व कोटा, बूंदी, करौली आदि के शासकों का एक गुट तैयार कर मरहठों को निकालना चाहा[1]। परन्तु महाराव शत्रुशाल ने माधोसिंह की इस योजना को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसे इसमें माधोसिंह की वृहत् जयपुर-निर्माण करने की योजना स्पष्ट दिखायी दे रही थी। तथा इधर होल्कर ने गागरोण और चन्द्रावत राजपूतों पर अधिकार कर कोटा पर आँख लगा रखी थी।

सन् १७५४ ई० में माधोसिंह को रणथम्भोर का किला शाह अहमदशाह ने दिया था परन्तु रणथम्भोर को मरहठे लेना चाहते थे। इसलिये सन् १७५६ में उन्होंने घेरा डाल दिया। रणथम्भोर में एक मुगल फौजदार रहता था। वह स्वयं इस पर अधिकार रख स्वतन्त्र होना चाहता था। पर अन्त में यह किला माधोसिंह के पास आ गया। माधोसिंह ने इस किले से सम्बन्धित कोटरियों पर अधिकार करना चाहा। पर वे हाड़ा जाति की जागीरें होने के कारण कोटा के अधीन रहना अधिक पसन्द करती थीं। इस पर माधोसिंह ने १७६१ ई० में जबकि मरहठे पानीपत के मैदान में हार चुके थे, कोटा पर आक्रमण कर दिया तथा कोटरियों से खिराज लेना चाहा। माधोसिंह की सेना ने उणियारा, वलाखेरी पर अधिकार करते हुए पालीघाट के पास कोटा में प्रवेश किया। भटवाड़े के मैदान में कोटा की सेना व जयपुर की सेना का १७६१ में सामना हुआ।

इस युद्ध में जालिमसिंह झाला कोटा का सेनापतित्व कर रहा था। उस समय पानीपत के युद्ध में हार कर भागा हुआ मल्हारराव होल्कर पास ही पड़ाव डाले हुए था। जालिमसिंह ने उससे मुलाकात कर जयपुर के विरुद्ध सहायता चाही और उसके बदले में चार लाख रुपये देने का विश्वास दिलाया। होल्कर माधोसिंह से नाराज था क्योंकि साल भर से उसने होल्कर को मामलात नहीं दी थी। परन्तु पानीपत के मैदान में जो उसकी क्षति हो चुकी थी। उस कारण न तो वह कोटा को, न जयपुर को सहायता दे सकता था। अतः मल्हारराव ने सिर्फ इतना ही विश्वास जालिमसिंह को दिलाया कि यदि जयपुर की सेना हारने लगेगी तो वह उनके डेरों को लूटेगा[2]। भटवाड़े के युद्ध में कोटा विजयी हुआ।

---

१ एस. पी. डी.: जिल्द २६, सं. २७।
२ उपरोक्त जिल्द २१, सं० ६४।
वंशभास्कर : जिल्द २, पृ० ५६२-६३।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५३६।

सम्वत् १८१५ (सन् १७५८) में मल्हारराव होल्कर की एक टुकड़ी ने सुकेत की गढी को आ घेरा। कोटा ने ८००० रुपये देकर उस टुकड़ी को वापिस भेज दिया। सम्वत् १८१७ (सन् १७६०) में होल्कर को कोटा के प्रधान राव अखमराय ने ५१,०००) होल्कर को दिए।

भटवाड़े के युद्ध में कोटा के नरेश ने उम्मेदसिंह बूँदी शासक की सेवायें मांगी थीं। बूँदी की सेना युद्धक्षेत्र में आई तो अवश्य परन्तु युद्धक्षेत्र में दर्शक के रूप में बनी रही। इस पर शत्रुशाल बूंदी वालों से नाराज हो गया और राव उम्मेदसिंह को दण्ड देने के लिये अखमराय को मरहठा सरदार के पास भेजा। मोजाम नामक गांव में वह महारानी सिन्धिया से मिला[1]। सन् १७६३ में कोटा के महाराव और महाराणी व केदारजी सिन्धिया ने बूँदी पर आक्रमण कर दिया। ४० दिन तक बूंदी का घेरा पड़ा रहा। विवश हो उम्मेदसिंह ने संधि करली। महादजी ने महाराव शत्रुशाल को सैनिक खर्च के १७,१२०) रु० दिए[2]। कोटा महाराव ने बूंदी आक्रमण के लिये १,८०,००० रु० लिए थे। इस पर भी जब कभी मरहठी फौज आ जाती तो और धन देना पड़ता था। अखयराम, उसका लड़का केशवराम तथा ठाकुर किशनदास इस कार्य के लिये शोपुर और सपाड़ कई बार भेजे गये। राज्य की रक्षा के हेतु कोट और किले की मरम्मत कराई गई जिससे मरहठे अचानक आक्रमण न करदें[3]।

मरहठे व जालिमसिंह—कोटा में मरहठों का प्रभुत्व जालिमसिंह झाला के समय तक बना रहा। भटवाड़े के युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने व हारे हुये युद्ध को विजय के रूप में परिवर्तित कर देने के उपलक्ष में महाराव शत्रुशाल ने जालिमसिंह को फौजदार बना दिया था। परन्तु महाराव गुमानसिंह ने उसकी स्वतन्त्र प्रकृति से मुक्त होने के लिये उसे पदच्युत कर दिया। जालिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहां उसे राजराणा की पदवी दी गई। अरिसिंह के विरुद्ध प्रतापसिंह ने कुम्भलगढ़ में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी और अरिसिंह के विरुद्ध माधवराव सिन्धिया की सहायता लेकर मेवाड़ के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। तब उज्जैन के पास सिन्धिया-राणा युद्ध हुआ। जालिमसिंह इस युद्ध में घायल हो गया व गिरफ्तार कर लिया गया। अम्बाजी इंगले के पिता त्रम्बकराव ने उसे गिरफ्तार किया। लेकिन अम्बाजी ने उसे मुक्त करा दिया। तब से जालिमसिंह

१ वंशभास्कर: चतुर्थ भाग, पृ० ३७०६।
२ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४५१।
३ उपरोक्त, पृ० ४५२।

ग्रौर अम्बाजी इंगले की मित्रता अन्त तक बनी रही[1]। इसी समय महाराव गुमानसिंह ने मरहठों के वकील लालाजी बल्लाल को भेज कर जालिमसिंह को बुला लिया।

कोटा राज्य की स्थिति बड़ी शोचनीय हो रही थी। मल्हारराव के नेतृत्व में मरहठी सेना कोटे की दक्षिणी सीमा की तरफ बढ़ती हुई आ रही थी। बकानी का घेरा उन्होंने डाल दिया। किलेदार ठाकुर माधोसिंह हाड़ा ने किले को सुरक्षा को बनाए रखा। माधोसिंह के पास उस समय केवल चारसौ सैनिक ही थे। किले की सुरक्षा करते समय वह स्वयं मारा गया परन्तु मरहठों का अधिकार उस गढ़ पर न हो सका। इस युद्ध में १३०० मरहठे काम आए। लौटती हुई मरहठी सेना ने सुकेत पर अधिकार कर लिया और कोटे की ओर बढ़े। महाराव गुमानसिंह इस सेना का सामना करने में असमर्थ था। अतः सुलह की वार्ता करने के लिए ठाकुर भोपतसिंह भांकरोत को भेजा परन्तु वह असफल होकर लौटा। इसी समय लालाजी बल्लाल जालिमसिंह को लेकर कोटे लौट गया था। अब जालिमसिंह प्रतिनिधि बना कर वार्ता के लिये भेजा गया। इस कार्य में जालिमसिंह सफल हो गया। होल्कर को ६ लाख रुपया दिया गया और मरहठी सेना कोटे से हट गई[2]। महाराव गुमानसिंह ने इस सेवा के बदले में जालिमसिंह को पुनः अपने पद, फौजदार पर नियुक्त किया और उसकी जागीर दे दो। मरने के पूर्व महाराव ने उम्मेदसिंह कुंवर को भाला के सुपुर्द किया।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन काल में (सन् १७७०-१८२० ई०) कोटे का सर्वेसर्वा जालिमसिंह भाला ही था। एक सफल शासन प्रबन्धकर्ता के लिये यह आवश्यक था कि मरहठे सरदारों के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखा जाय। इस समय राजपूताने में पिंडारी और मरहठों के हमले बार-बार होते थे। सन्धि की इज्जत करना उनके कोष में नहीं था। धन ही प्राप्त करना उनका जीवन तथा कर्त्तव्य था। साधनों की वे परवाह नहीं करते थे। शासन की देखरेख उनकी शिक्षा के प्रतिकूल थी। ऐसी शक्ति के विरुद्ध जालिमसिंह ने साम, दाम और भेद की नीति अपनाई। सम्वत् १८३० (सन् १७७३ ई०) में जब कोटा राज्य के दक्षिण भागों में पिंडारियों ने लूटमार की तो उन्हें भगाने के लिये भट्ट दयानाथ के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने गागरोण के पास पिंडारियों को हराया व भगाया[3]। पर पिंडारी पुनः आ धमके, लूट-खसोट की और भाग

---

१ टाड : राजस्थान तृतीय, पृ० १५३६।

२ उपरोक्त, पृ० १५८६-१५६०।

३ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४८१।

गए। पुन: आने और भागने की नीति से तंग आकर जालिमसिंह ने सन् १७७४ ई० में पिंडारियों के नेता अमीरखां से मित्रता कर उसे शेरगढ़ का किला दे दिया जहाँ वह रह सके[1]। इस मित्रता की नीति से वह पिंडारी आक्रमण से बच गया। सम्वत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में जीवाजी अप्पा के नेतृत्व में मरहठी सेना कोटे को सीमा में प्रवेश करना चाहती थी पर जालिमसिंह ने बख्शी शिवलाल अखयराम व पंडित तांत्या को भेज कर उसे कोटे में प्रवेश नहीं करने दिया। सम्भवतः कुछ लाख रुपये नजराने के अवश्य दिये गए। होल्कर के नेतृत्व में १७७९ ई० में कोटा रियात इन्द्रगढ़, खातोली, करवाड़, पीपल्दा को मरहठों ने लूटा। झाला ने सेना भेज कर उन्हें दूर करना चाहा। पर वह असफल रहा। इसी प्रकार झाला ने नरहरराव दक्षिण को १७८४ ई० में पन्द्रह हजार, १७८५ ई० में खांडेराव को खण्डणी की बकाया देकर मित्रता मोल ली। तुकोजी होल्कर को भी इस प्रकार समय-समय पर रुपये देकर संतुष्ट करना पड़ता था। १७८२ ई० में तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव होल्कर के विवाह पर कोटे की तरफ से सात हजार रुपये न्योते के भेजे गये थे[2]। सिन्धिया ने बेगू लेना चाहा जहाँ उम्मेदसिंह का ससुराल था। अत: उसे बचाने के लिये जालिमसिंह ने ६ लाख रुपये देकर बेगू बचाया फिर भी सिन्धिया ने सिंगोली और रतनगढ़ ले ही लिए[3]। शाहबाद के किले पर जालिमसिंह ने सिन्धिया की अनुमति के बिना ही कब्जा कर लिया था। इस पर सिन्धिया ने मामलात का हिस्सा मांगा। ३० हजार रुपये शाहबाद की मामलात सिन्धिया को भेजने का निश्चय किया गया[4]।

मरहठों की इस प्रकार की नीति और व्यवहार से, जिसमें न स्थायित्व था, न ईमानदारी, न राजनैतिक मोहब्बत, न मित्रता, जालिमसिंह तंग आ चुका था। वह इनसे सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था, केवल धन से इन्हें खरीद कर ही कोटा की शान्ति बनाये रख सकता था। उस धन-प्राप्ति के लिये कोटे में कई नए प्रकार के कर इसने लगाए जिससे जागीरदार व जनता दोनों ही तंग थे। उसी समय पूर्वी भारत विजय करते हुए अंग्रेज दिल्ली तक आ पहुँचे। मरहठों की शक्ति से उनकी टक्कर होना निश्चित था। १८०२ ई० में सिन्धिया से अंग्रेजों ने टक्कर ली। १८०३ में होल्कर से वे लड़ पड़े।

---

१ टाड : राजस्थान तृतीय, पृ० १५७४।
२ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४८५।
३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३८१९।
४ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४८६।

लार्ड लेक उत्तर की ओर से और दक्षिण की ओर से आरथर वेलेजली होल्कर के विरुद्ध चले। लार्ड लेक ने कर्नल मानसन को तीन बटालियन देकर व कप्तान लूकन को पश्चिम की ओर से होल्कर पर आक्रमण करने भेजा। राजपूत शासकों के लिये मरहठों से मुक्त होने का सुअवसर था। जालिमसिंह ने अंग्रेजी फौज और उसके नेता मानसन को कोटा में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी बल्कि आप अमरसिंह पलायके वाले के नेतृत्व में कोटा की फौज भेज कर मानसन को सहायता दी। मानसन को होल्कर ने मुकन्दरा घाटी में जा घेरा और मारकाट मचादी। होल्कर की फौज की कोटा की सेना के साथ मुठभेड़ हुई जिसमें आप अमरसिंह मारा गया। कोटे के चारसौ व्यक्ति घायल हुए। कप्तान लूकन युद्ध में मारा गया और मानसन भाग कर कोटा आया। परन्तु होल्कर के भय से जालिमसिंह ने उसे शरण नहीं दी[1]। किसी तरह वह दिल्ली पहुँचा।

अब होल्कर ने जालिमसिंह को दण्ड देने के लिये कोटे पर चढ़ाई करदी। जालिमसिंह ने चम्बल नदी के मध्य में नाव पर मुलाकात की। काका जालिमसिंह व मजीज होल्कर बड़ी शिष्टता से बातचीत करते रहे। लेकिन इमानदारी एक के कार्य में भी नहीं थी। होल्कर ने मुगल बख्शी से दस्तावेज प्राप्त कर कोटा से दस लाख रुपये जुर्माना प्राप्त करना चाहा। जालिमसिंह ने उसे स्वीकार नहीं किया। फिर भी होल्कर तीन लाख रुपये लेकर कोटा से रवाना हुआ और शेष सात लाख रुपये माँगना उसने कभी नहीं छोड़ा[2]। जब होल्कर डोग के स्थान पर अंग्रेजों से हार गया तो राजपूताने में उसका प्रभाव कम हो गया और कोटा से प्राप्त होने वाली खण्डणी समय पर नहीं मिलने लगी। जालिमसिंह ने होल्कर से मित्रता भी बनाये रखी और समय पड़ने पर उसके शत्रुओं को सहायता भी देता रहा जिससे कि मराठों की शक्ति क्षीण होती रहे। ३० मई १८१३ में मल्हारराव के लड़के परशुराम ने ढूंढार परगने के रामपुर किले पर अधिकार करना चाहा तो जालिमसिंह ने उसे सहायता दी[3]। उदयपुर में शक्तावतों और चूड़ावतों के युद्ध में सिन्धिया ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। इसी समय सिन्धिया को जोधपुर व जयपुर की सम्मिलित सेना ने हरा दिया। उधर कोटा व उदयपुर की सेना मिल कर मराठों के अधिकृत क्षेत्र नीमाहेड़ा, निकुम्प, जीरण आदि पर अधिकार करती हुई जावत पहुँची। मरहठी सेना का नायक सदाशिव हार गया और भाग गया। इसका परिणाम ठीक नहीं निकला।

---

१ टाड : राजस्थान भाग ३, पृ० १५७१।

२ उपरोक्त, पृ० १५७३।

३ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४६७।

शक्तावत और चूड़ावत पुनः लड़ पड़े। महाराजा ने चूड़ावतों को चित्तौड़ से निकालने के लिये जालिमसिंह और सिन्धिया को बुला भेजा। जालिमसिंह और माधोजी सिन्धिया के प्रतिनिधि अम्बाजी इंगले की संयुक्त सेना ने हमीरगढ़ लेते हुए चित्तौड़गढ़ का घेरा डाला। यहां सिन्धिया सेना लेकर पहुँचा और महाराणा से मिला। यह मुलाकात जालिमसिंह के प्रयत्नों से हुई[1]। महाराणा जालिमसिंह और महादाजी सिन्धिया ने चित्तौड़ के पास सेती गांव में डेरा डाला। भीमसिंह चूड़ावत इस बात पर आत्म-समर्पण करने को तैयार था कि जालिमसिंह कोटा चला जाए। जालिमसिंह ने यह स्वीकार किया[2]। जालिमसिंह को बढ़ती हुई शक्ति को कम करने की यह चाल अम्बाजी इंगले की थी[3]। मेवाड़ में शान्ति स्थापित कराने का भार माधोजी ने अम्बाजी को सौंपा। परन्तु १७९५ ई० में माहादाजी की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र दौलतराम सिन्धिया ने अम्बाजी के स्थान पर लकवा दादा को नियुक्त किया। अम्बाजी इंगले के प्रतिनिधि गणेशपंत ने चितौड़ खाली करने से इन्कार कर दिया। अम्बाजी और लकवा दादा में युद्ध छिड़ गया। महाराणा ने अम्बाजी का पक्ष नहीं लिया। इस पर जालिमसिंह ने महाराणा के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। अम्बाजी के नाई मालेराव को महाराणा की कैद से छुड़ाया और महाराणा से सन्धि कर जहाजपुर पर अधिकार कर लिया[4]।

पिंडारियों के प्रति जालिमसिंह ने मित्रता की नीति बनाए रखी। मीरखाँ पिंडारी को शेरगढ़ देकर मित्र बना लिया। समय २ पर मीरखां की सेना को जब कभी वेतन नहीं मिलता तो कोटा राज्य के धन कोष से धन देता। सन् १८०७ में सिन्धिया ने मीरखां को गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया। उस समय भी जालिमसिंह ने उसको धन देकर छुड़ाया था। परन्तु जब लार्ड हेस्टिंग्ज ने पिंडारियों के दमन के लिये झाला से सहायता मांगी तो कोटा की फौज ने पूर्ण सहायता दी। इसके बदले में जालिमसिंह को उग, पंचपहाड़, अम्बर और गंगराड के परगने दिये गए। १८१८ ई० के बाद तो अंग्रेजों ने जालिमसिंह से सन्धि कर कोटा में मराठों का प्रभाव हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

---

१ ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृ० ९९१।

२ ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृ० ९९२।

३ उपरोक्त।

४ उपरोक्त, पृ० १००३।

कोटा शासन में मरहठी प्रभाव—पेशवा कोटा राज्य को अपना मांगलिक राज्य मानता था। अतः इस अधीनस्थ राज्य को उसने सिन्धिया, होल्कर और पंवारों को बांट दिया था। ये मरहठे सरदार कोटा राज्य को अपने आधिपत्य में समझते थे और इस बात पर जोर देते थे कि उनकी अनुमति और नजराना दिए बिना कोई महाराव गद्दी पर न बैठे। प्रति वर्ष वे कोटा से खण्डणी लेते थे। छोटे-मोटे मरहठा सरदार अवसर पाकर कभी-कभी कोटा राज्य में आ घुसते, लूट-मार करते और कोटा से धन वसूल करते थे। कोटा राज्य में जाने वाले व्यापारियों की जकात स्वयं लेकर वे उन्हें मुफ्त जाने की आज्ञा देते रहते थे। उनकी सुरक्षा कोटा राज्य को करनी पड़ती थी। सिन्धिया होल्कर का स्वागत मुगल सूबेदारों की तरह किया जाता था। धन व सैनिकों से सहायता कोटा वाले मरहठों की करते रहते थे। मरहठी सरदारों के बच्चों के जन्म व विवाह पर कोटा महाराव नज़राना भेजते थे।

मरहठों की ओर से कोटा में वकील रहता था। सन् १७३७ में पहला वकील नियुक्त हुआ। वह लालाजी बल्लाल था। वह कोटा से मामलात वसूल करता, राजनैतिक गतिविधियों पर देख-रेख करता तथा उनकी सूचना मरहठा सरदारों के पास भेजता। ये उसके मुख्य कर्तव्य थे। उसकी मातहती में एक दीवान, कई कमविसदार अन्य कितने ही कर्मचारी व छोटे नौकर रहते थे। वकील सबका वेतन चुकाता था। मामलात वसूल करके हिस्सों के अनुसार ऊंटों पर लाद कर मरहठी सरदारों के पास भेजा जाता था। कोटा की कोटरियात वकील के सुपर्द थी। चूंकि मामलात अधिक मात्रा में लिया जाता था जिसे कोटरियात दे नहीं सकती थी अतः प्रत्येक कोटड़ी में एक मरहठा कमविसदार वहां रहता था। वह आयकर इकट्ठा करने वाला होता था लेकिन वास्तव में शासन का कर्ता-धर्ता वही था। ठाकुर नाम-मात्र के शासक होते थे। प्रारम्भ में चारों मरहठी सरदारों का एक ही वकील होता था परन्तु यह वकील सिन्धिया का पक्ष अधिक लेता था। इस कारण अन्य मरहठी सरदारों ने अपने-अपने अलग वकील नियुक्त किये। जिनमें आम तौर पर धन के बंटवारे के लिये झगड़ा हो जाया करता था। वकील का वेतन अड़तालीस हजार रुपया वार्षिक था[१]। यह वेतन दो मास की किश्तों में मिलता था।

वकील के नीचे दीवान होता था और प्रत्येक परगने में एक कमविसदार नियुक्त किया जाता था। इसका कर्तव्य सिर्फ माल वसूली हासिल करना तथा मामलात प्राप्त करना था। परगने में इनका शासकीय प्रभाव नहीं रहता था।

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५२९।

यह अधिकार कोटा राज्य के सिर्फ कमिश्नरों को था। परन्तु चूंकी वह एक प्रभुत्व शक्ति का प्रतिनिधि था अतः व्यवहार में मुकदमों का फैसला तथा शान्ति स्थापित करने का कार्य वही करता था। उसके पास काफी सेना रहती थी[1]। कभी कम विसदार इतना शक्तिशाली हो जाता था कि वह मामलात भेजने से इन्कार कर देता था। उसको वेतन हिस्साकसी से मिलता था। कालान्तर में मराठों ने इजारे पर कई इलाके देने शुरू किए। इजारा की रकम निश्चित की जाती थी। परगने की मालगुजारी और हकुमत इजारेदार जो अधिकतर वकील होता था उसे देदी जाती। उसे अलग करने का अधिकार मरहठी सरदारों को था। यदि वह समय पर रकम न देता या प्रजा को दुःख देता। सिन्धिया व होल्कर फरमान देकर इजारेदार को नियुक्त करते थे। मरहठों ने कोटा के प्रति कोई शासन नीति नहीं अपनाई थी। सिर्फ एक ही नीति से वे चलते थे। मामलात वसूल करना और मौका मिलने पर नजराना वसूल करना। कोटा को यह धन जुटाने के लिये कई नए कर लगाने पड़े थे। सम्वत् १८१५ में समस्त जागीरदारों पर मरहठों की मांग पूरी करने के लिए चौथान नामक कर वसूल किया गया। इसी वर्ष कानूनगायियों से पेशकशी ली गई। सम्वत १८१६ में घोड़ी-बरार नामक कर लगाया गया। इसकी रकम ६८,०००) वार्षिक इकट्ठी होती थी। जातियों की पंचायतों से कर लिया गया। बीघोड़ी और जामदारी कर शक्ति से वसूल किये गये। बीघोड़ी प्रति घर चार आना, जामदारी प्रति कुटुम्ब एक रुपया लिया जाता था।

कोटा के शासकों द्वारा सिन्धिया के राज्य में रहने वाले या उनके द्वारा स्वीकृत व्यापारी को बिना कर लिए कोटे में घुसने दिया जाता था। कोटे के किसी आदमी ने सिन्धिया के राज्य के किसी व्यक्ति से धन उधार लिया हो तो वकील द्वारा उसकी वसूली होती थी। यदि कोटा राज्य किसी अन्य क्षेत्र को जीतते जो मरहठों का न होता तो उस की खण्डणी अलग देनी पड़ती थी यद्यपि मरहठा धन-मांग अधिक थी। परन्तु मरहठों ने कोटा शासकों को मुगलों की तरह नौकरी के रूप में नहीं बल्कि आदर भावना से बर्ताव रखा। काका शब्द महारावों के लिये प्रयोग किया जाता था। महाराणियों की ओर से मरहठा सरदारों को राखिएँ भेजी जाती थीं। मरहठी रानियें भी राखी भेज कर कोटा घराने से सम्बन्ध स्थापित करती थीं।

कोटा में कई जागीरें मरहठी सरदारों को प्राप्त थीं। केशोराय पाटण तथा

---

१ पाटण के कम विसदार की मातहती में ७५ सरदार, ५० पैदल, ६०० बरकन्दाज और १०० सहने थे। इन सबका वेतन ३४,३४० रु. वार्षिक होता था।

कापरेण सिन्धिया की जागीरें थीं। मरहठों के वकील को बोराखेड़ी व उरमाल दीवान को भराडोला परगना था। होल्कर के दीवान को जुलमी की जागीर दी गई थी। कई मरहठी ब्राह्मण भी जागीरदार थे। मरहठो जागीरों में कुल ७१ गांव थे जिनकी आमदनी एक लाख अट्ठाईस हजार थी[1]। मरहठी जागीरदारों की वृद्धि कोटा के शासक नहीं चाहते थे परन्तु वे विवश थे। दक्षिणी पण्डितों का धार्मिक क्षेत्र में भी प्रभाव था। इन जागीरदारों की प्रतिष्ठा राज-दरबार में होती रहती थी। राज की पड़तालों पर इन्हें इनायत भी होती रहती थी। ये जागीरदार महाराव की नौकरी करते थे। इनसे भेंटें वगैरह नहीं ली जाती थी। परन्तु मरहठी प्रभाव अंग्रेजों के आगमन पर इतना शिथिल हो गया कि उनके स्थाई अवशेष किसी भी रूप में जीवित नहीं रह पाये।

कोटा राज्य का अंग्रेजों से संबंध—भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल थी। यह घटना अचानक हुई, ऐसी संभावना नहीं थी। १८वीं शताब्दी में तीन साम्राज्यों की टक्कर में—मुगल, मरहठा व अंग्रेज। अंग्रेज विजयी होकर भारत की सार्वभोम सत्ता के रूप में परिणित हो गये। ई. सन् १७५७ में जबकि मुगल साम्राज्य की अस्थियां चारों और बिखर रही थीं और उसके अवशेषों पर मरहठी प्रभुता उत्तरी भारत से दक्षिणो भारत तक फैली हुई थी, प्लासी के मैदान में लार्ड क्लाइव ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली। मरहठा शक्ति का प्रभुत्व तो अवश्य फैला हुआ था पर न उसमें शासन का स्थायित्व था व न उसके राजनीतिज्ञों में भारत पर शासन करने की प्रतिभा थी। वे उत्तरी भारत में जुल्मगीरी ही करते थे। गनीम उनका प्रिय नाम हो गया। वहाँ परिस्थितियां तो यही थीं कि मुगल सम्राटों के स्थान पर वे मरहठा साम्राज्य स्थापित कर सकते थे, वहां उन्होंने हर स्थान, हर जागीरदार, नबाब व राजा को आर्थिक शोषण की नीति से तंग किया। धन न देने का अर्थ अराजकता, खेती का नष्ट होना, शहरों का जलाया जाना और जनता की त्राहि-त्राहि था। धन देकर भी इससे मुक्ति पाना कठिन था। मरहठा सरदारों और सेनापतियों में जहाँ नेतृत्व था तो केवल इसी बात का कि उत्तरो भारत की धन की नदियों का बहाव पूना की तरफ मोड़ा गया। मुगलों के पतन से शासन में जो अस्त-व्यस्तता आई थी उसे हटा कर जनता को संगठित और सुव्यवस्थित शासन देने में असफल रहे। १७६१ में पानीपत के मैदान में उनकी हार ने अंग्रेजों को, जो कि भारत में अभी तक शिशु शक्ति के रूप में ही प्रकट हुए थे, अपना स्थायित्व जमाने का अवसर दिया। यह तो भारत की राजनैतिक स्थिति स्पष्ट कर रही थी कि

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३२।

अंग्रेजों को अखिल भारतीय राज्य-शक्ति बनाने के लिए मरहठों से टक्कर लेनी ही पड़ेगी ।

१७६१ की पराजय के बाद मरहठे पुनः अपनी शक्ति संचित करने लगे। अंग्रेज भी अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे । दोनों शक्तियां समानान्तर रूप से भारतीय जीवन पर अधिकार करने के लिये बढ़ रही थीं। १७७६ व १७८१ में उन्होंने टक्कर ली पर यह निर्णय नहीं हो सका कि भारत में अधिक प्रभावशाली शक्ति कौनसी है। दोनों तरफ की एक २१ वर्षीय शांति से अंग्रेजों के अपने विरुद्ध की द्वितीय श्रेणी की शक्तियां—निजाम, हैदरअली व टीपू को दूर करने का अवसर मिल गया। मरहठों ने वही धन प्राप्त करने की नीति जारी रखी। १७९८ में लार्ड वैलेजली ने भारतीय राजनीति के रंगमंच में प्रवेश किया । वह एक साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल था। मरहठा शक्ति आन्तरिक रूप से क्षीण हो चली; उसके कुशल नेता मर चुके थे, उसके अधीन के क्षेत्र व संरक्षित रियासतें उनकी निरंकुशता से इतनी विक्षिप्त हो चुकी थी कि उसके बदले में वे हर कीमत पर अपने आपको उन्हें समर्पित कर सकते थे जो उनकी थोड़ी बहुत बची हुई इज्जत की रक्षा कर सके। ऐसी अवस्था में लार्ड वैलेजली ने अपनी 'सहायक-प्रथा' की नीति प्रचलित कर मरहठा विरोधी संगठन करना शुरू किया । मरहठों की आपसी द्वेषता ने उन्हें और अधिक अवसर दिया और १८०० ई० में बसीन के स्थान पर पेशवा बाजीराव द्वितीय ने यह प्रथा स्वीकार कर भारत में अंग्रेजों की सार्वभौम शक्ति को स्वीकार कर लिया। सिन्धिया और होल्कर के लिये यह अपमानजनक बात थी। उन्होंने पेशवा का विरोध किया व लोहा लिया। सिन्धिया ने सुर्जी अर्जन गांव की संधि में पूर्ण हथियार डाल दिये। होल्कर लड़ता रहा । लार्ड वैलेजली ने होल्कर के विरुद्ध राजपूताना की रियासतों को अपनी ओर मिलाने की नीति अपनाई। अंग्रेज अब तक एक ताकतवर जमात के रूप में बन चुके थे। उनका सुसंगठित शासन-प्रबंध वैज्ञानिक ढंग पर लड़ने वाली युद्ध-प्रणाली तथा भारतीय शासकों को आंतरिक रूप से स्वतंत्र बनाये रखने की नीति ने राजपूताने के शासकों को प्रभावित किया । कोटा का राजराणा फौजदार भाला जालिमसिंह, जिसने मरहठों को मामलात देते २ राज्य को दिवालिया बना दिया था, ने इस नीति को पसंद किया । राजपूताने में अंग्रेजों के प्रवेश का सर्वत्र स्वागत किया गया ।

१८०४ ई० में होल्कर को हटाने के लिये दिल्ली से लार्ड लेक चला। दक्षिण से आर्थर वेलेजली ने सेना सहित कूच किया । लार्ड लेक ने कर्नल मानसन और कप्तान लूकन को राजपूताने की ओर भेजा जिससे पश्चिम की ओर

से होल्कर पर हमला किया जा सके। झाला जालिमसिंह ने जिसने अभी तक निश्चित तौर पर अवलोकन नहीं किया कि अंग्रेज-शक्ति को सहयोग दे। मानसन को सहायता देने के लिये बुलाया था व ठाकुर आप अमरसिंह के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना की टुकड़ी भी भेजी। मुकन्दरे की घाटी में होल्कर ने कप्तान लूकन व आप अमरसिंह को घेर लिया। मुकन्दरा दर्रे के युद्ध में लूकन और आप अमरसिंह मारे गये। मानसन भागता हुआ कोटा में शरण लेने आया। जालिमसिंह ने उसका स्वागत नहीं किया और शरण नहीं दी। वह निराश हो दिल्ली पहुँचा।

जालिमसिंह ने पिंडारियों के साथ मित्रता की नीति अपनाई थी। अमीरखां पिंडारी को शेरगढ़ का किला देकर उससे मित्रता की और कोटा को पिंडारियों से मुक्त कराया। जब १८०७ ई० में सिंधिया ने ग्वालियर के किले में अमीरखां पिंडारी को कैद कर लिया तो जालिमसिंह ने धन देकर उसे छुड़ाया और भावी सुचरित्र का विश्वास दिलाया। पिंडारियों के कई व्यक्ति कोटा के जागीरदार थे। जालिमसिंह ने उनकी प्रतिष्ठा और मित्रता बनाये रखी। जालिमसिंह के पिंडारियों को मित्र बनाये रखने के २ कारण थे। प्रथम—कोटा में उनके कारण अशांति पैदा न हो, दूसरा कि उसकी शक्ति कोटा में बनी रहे। अपने विरोधियों का दमन करने के लिये यह आवश्यक था।

पिंडारी मरहठों की तरह अंग्रेजी सत्ता के लिये एक समस्या बन चुके थे। अत: जब १८१३ ई० में लार्ड हैस्टिंग्ज गवर्नर जनरल बन कर भारत आया तो पिंडारी एक अफलातून शक्ति बन चुके थे। मरहठों का प्रश्रय पाकर के ताकतवर होते जा रहे थे। सन् १८१७ में हैस्टिंग्ज ने पिंडारियों को समाप्त करने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। राजपूताना के शासकों से इस संबंध में सहायता लेने के लिये लार्ड हैस्टिंग्ज ने कर्नल टाड को जो कि उस समय सिंधिया दरबार में उप-रेजीडेंट था, राजराणा जालिमसिंह के पास भेजा। टाड ने जालिमसिंह से २३ नवम्बर १८१७ को रावटा के स्थान पर मुलाकात की[1] टाड-जालिमसिंह की यह प्रथम मुलाकात थी जो कालान्तर में गाढ़ी मित्रता के रूप में परिणित हो गई। जालिमसिंह ने पिंडारी शक्ति के स्थान पर अपने को सुरक्षित रखने वाली अंग्रेजी शक्ति का मूल्य अधिक समझा। अत: पिंडारियों के दमन के लिये १५०० पैदल व घुड़सवार व ४ तोपें, अंग्रेजों को दीं[2]। सर जे. माल्कम के नेतृत्व में यह सेना भेजी गई। पिंडारियों के दमन में कोटा सब तरह

१ उपरोक्त।

२ ट्रीटी ऐंगेजमेंट व सनद, तृतीय भाग, पृ० ३५७ ३५८।

की जासूसी सूचना का केन्द्र हो गया था। जालिमसिंह की सहायता से पिंडारियों के नेता गिरफ्तार कर लिये गये। उसकी इस सहायता को अंग्रेज भूल न सके।

सन् १८१७ तक अंग्रेजों ने पेशवा, सिंधिया और होल्कर को बुरी तरह हरा कर मरहठा शक्ति का सर्वदा के लिये भारत में अंत कर दिया। अंग्रेज अब अत्यन्त शक्तिशाली हो रहे थे। राजपूताने के शासकों से वे संधि-वार्ता कर निश्चित राजनैतिक संबंध स्थापित कर लेना चाहते थे। इसके लिये झाला जालिमसिंह पहले से ही तैयार था। कोटा की ओर से महाराणा शिवदानसिंह, सेठ जीवनराम व लाला हुलंचन्द प्रतिनिधि बना कर दिल्ली भेजे गये। उन्होंने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि मेटकाफ से वार्ता की और २६ दिसम्बर सन् १८१७ में कोटा राज्य और अंग्रेजों में संधि हो गई जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) अंग्रेज सरकार और महाराव उम्मेदसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों में मैत्री का संबंध रहेगा।

(२) संधि करने वाले दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र रहेंगे।

(३) कोटा राज्य अंग्रेजी राज्य की संरक्षता में रहेगा।

(४) महाराव व उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों के आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में उन राजाओं और रियासतों से संबंध नहीं रखेंगे जिनके साथ कोटा राज्य का संबंध अब तक रहा है।

(५) अंग्रेज सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना कोटा के महाराव किसी अन्य राजा या राज्य के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे।

(६) महाराव व उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि ऐसा झगड़ा हुआ तो अंग्रेजी सरकार निर्णय करेगी।

(७) कोटा राज्य अब तक जो कर मरहठों (पेशवा, होल्कर, सिंधिया, पंवार) को देता रहा है वह अंग्रेजी राज्य को देगा।

(८) कोटा किसी अन्य राज्य से कोई कर न ले सकेगा यदि ऐसा अधिकार आया तो इसका उत्तर अंग्रेजी सरकार देगी।

(९) आवश्यकता के अनुसार कोटा अंग्रेजों को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। अंग्रेजों का आन्तरिक हस्तक्षेप न होगा[१]।

---

१ ट्रीटी, एंगेजमेंट व सनद : तृतीय भाग, पृ० ३५७-५८।

इस प्रकार कोटा राज्य मुगल, मरहठों की अधीनता से मुक्त होकर अंग्रेजी सत्ता के अधीन हो गया। कोटा ही राजपूताने का प्रथम राज्य था जिसने अंग्रेजों से इस प्रकार की संधि कर अन्य राज्यों के लिये ऐसी स्थिति पैदा करदी। जालिमसिंह की इस सेवा को अंग्रेज कभी नहीं भूल सके और २० फरवरी १८१८ में जालिमसिंह के साथ अंग्रेजों की गुप्त संधि हो गई जिसके अनुसार यह तय हुआ कि महाराव उम्मेदसिंह के वंश के ही कोटा राज्य के शासक रहेंगे और फौजदार व मुसाहिब का पद जालिमसिंह के वंश में रहेगा[1]। इस प्रकार की संधि ने कोटा राज्य में झगड़ों का श्रीगणेश कर दिया। अंग्रेजों ने १८१९ में चोमहला के परगने जालिमसिंह को देने चाहे पर उसने यह परगने कोटा में मिलने दिये। उम्मेदसिंह के जीवन काल में १८१७ की संधि को व्यवहारिक बनाने में कोई अड़चन नहीं आई। उम्मेदसिंह १८२० में मर गया। उसके बाद उसका पुत्र किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। जालिमसिंह चूंकि वृद्ध और अंधा हो चुका था अतः राज्य का कार्य उसका पुत्र माधोसिंह करने लगा। वह अनुभव-हीन व उद्दण्ड था। महाराव उसकी निरंकुशता से तंग आ चुका था। अतः अपने छोटे भाई पृथ्वीसिंह और जालिमसिंह के दूसरे पुत्र गोरधनदास से मिल कर माधोसिंह का विरोध करना शुरू किया। कर्नल टाड, जो उस समय राजनैतिक प्रतिनिधि था, को यह लिख भेजा कि वह आंतरिक शासन में स्वतंत्र है। अतः २० फरवरी १८२० की गुप्त संधि को स्वीकार नहीं किया जा सका लेकिन टाड उक्त संधि की मान्यता पर जोर दे रहा था। वह महाराव को नाम मात्र का शासक मानता रहा। इस पर किशोरसिंह ने अंग्रेजों का विरोध किया। अंग्रेजों ने जालिमसिंह को सहायता दी और सन् १८२१ में मांगरोल के युद्ध में अंग्रेजों की सहायता से जालिमसिंह ने किशोरसिंह को हरा दिया। किशोरसिंह हार कर नाथद्वारा पहुँचा। मेवाड़ के महाराणा की मध्यस्थता से पुनः महाराव किशोर और अंग्रेजों के बीच संधि हो गई जिसके अनुसार किशोरसिंह को १६४,४८८ रु. का वार्षिक खर्चा प्राप्त हो गया और महाराव ने जालिमसिंह व उसके वंश को कोटा के मुसाहिबआला का पद देना स्वीकार किया[2]। १८२४ में जालिमसिंह की मृत्यु हो गई। माधोसिंह कोटे का दीवान नियुक्त हुआ।

किशोरसिंह की मृत्यु के बाद १८२४ ई० में उसका गोद लिया हुआ पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा। उन्होंने सं० १८३१ में अजमेर में लार्ड विलियम बेंटिंग से भेट की और प्रतिष्ठा प्राप्त कर अंग्रेजी सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर

१ उपरोक्त : पृ० ३५९।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १६०२-१६०३।

लिया। १८३४ ई० में माधोसिंह झाला की मृत्यु हो गई। उसका लड़का मदन-सिंह फौजदार बना। उसके और रामसिंह के बीच प्रारम्भ से ही अनबन होने लगी। ऐसी सम्भावना होने लगी कि मुसाहिब झाला को निकालने के लिये जन-आन्दोलन होने वाला है। मदनसिंह ने अंग्रेजों को मित्रता की याद दिला कर उनकी सहायता प्राप्त करली और उनकी राय से ही 'कोटा कोन्टीनजेंट' सेना का निर्माण अंग्रेजों ने किया जिसका खर्च कोटा से लिया जाने लगा। मदनसिंह के इस दृष्टिकोण से रामसिंह क्रोधित हो उठे और अंग्रेजी सरकार ने इस पर महा-राव की राय से मदनसिंह के लिये प्रथक राज्य की संधि करादी। कोटा राज्य के १७ परगने जिनकी आमदनी १७ लाख रु. थी, मदनसिंह को प्राप्त हुए। नये राज्य का नाम झालावाड़ राज्य पड़ा। इस संबंध में सन् १८३८ में कोटा राज्य व अंग्रेजों के बीच नई संधि हुई। महाराव के कर में अब ८०,००० रु. घटा दिये गये जो अब झालावाड़ को देने पड़े। 'कोटा-कोंटिनजेन्ट' के निर्माण की स्वीकृति महाराव ने देदी।

कोटा राज्य में अंग्रेजों का प्रभुत्व झाला राजनीति की देन थी। अतः अन्तःकरण से महाराव ने इसका स्वागत नहीं किया। अंग्रेजी राज्य जिस विनाश की भावना को लेकर कोटा में प्रविष्ट हुआ—पश्चिमी तौर-तरीकों को पूर्वी तौर-तरीकों पर अवांछनीय रूप से लाद देना—इससे कोटा का जन-जीवन, राष्ट्रीय प्रवृत्ति व सैनिक वर्ग, अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध जागृत हो गया। अतः यही कारण है कि १८५७ की भारतीय क्रांति के समय कोटा का सैनिक वर्ग व जन-साधारण कोटा को अंग्रेजी प्रभाव से निकालने के लिये प्रयत्नशील रहा। १८५७ में राजपूताने का ए० जी० जी० जार्ज लारेंस था। नसीराबाद में अंग्रेजों की छावनी बनी हुई थी। वहाँ की सेना ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। नीमच की छावनी में गदर के चिन्ह दिखाई देने लगे। कोटा का पोलीटिकल एजेंट मेजर बर्टन नीमच के कमांडिंग आफिसर कर्नल मेकडानल्ड की सहायता के लिये नीमच पहुँचा। 'कोटा कोंटिनजेंट' और जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष फैला हुआ था। इसका ज्ञान संभवतः महाराव रामसिंह को था। यही कारण है कि कोटा महाराव ने मेजर बर्टन को पुनः कोटा आने के लिये मना किया[1]। मेजर बर्टन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और गढ में आकर महाराव को बाध्य करने लगा कि विद्रोही तत्वों को राजकीय पदों से हटा दिया जाये व उन्हें दण्ड दिया जाये। अक्टूबर १२ को मेजर बर्टन अपने २ पुत्रोंसहित कोटा आया। उसका कोटा नरेश से मिलने का ज्ञान सेना व सेनापतियों को मालूम

---

१ खड़गावत : राजस्थान रोल इन दी स्ट्रगल आफ १८५७, पृ ६२।

हो गया। अतः उन्होंने १५ अक्टूबर को रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया। रेजीडेंसी के डाक्टर सालडर और मिस्टर सेविल मारे गये। मेजर बर्टन व उसके दोनों पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया गया[1]। कैप्टेन ईडन ने ए० जी० जी० को सूचना देते समय (१८ अक्टूबर १८५७) इस बात का उल्लेख किया कि कोटा महाराव का बर्टन की हत्या में हाथ था[2]। परन्तु कोटा नरेश के विरुद्ध कोई सबूत न मिल सका।

इन विद्रोहियों के नेताओं में लाला जयदयाल कायस्थ, मेहराबखां पठान व इसरारअली थे। बर्टन की हत्या के उपरांत क्रांतिकारियों ने कोटा पर अधिकार कर लिया। सरकारी कोठार, बंगले, बाजार, तोपखाना, कोतवाली चौंतरे पर कोटा कोंटिनमेंट के ही व्यक्ति अधिकार किये हुए थे। कई किलेदारों ने उनका साथ देकर राज्य का कोष उनके हवाले किया। शेरगढ़ में कोटा की सेना ने भी विद्रोह कर दिया। महाराव नजरबंद कर लिये गये। विद्रोही ६ माह तक कोटे के अधिकारी बने रहे[3]।

महाराव ने ए० जी० जी० को खरीता भेजा और इस दुखद घटना पर दुःख प्रकट किया। महाराव ने सहायता के लिये कई मित्रों को खरीता भेजा। एक खरीता लेजाने वाला भैंसरोड़ के जंगल में पकड़ा गया। उस समय विद्रोहियों के पास अंग्रेजों से लगातार संघर्ष करने की पूरी ताकत थी। धीरे धीरे भैंसरोड, गेता, पीपल्दा व कोयला के ठाकुरों ने महाराव की सहायता की। दोनों दलों में भयंकर युद्ध हुआ। ८०० विद्रोही मारे गये। महाराव के ३०० सैनिक मृत्यु के घाट उतरे[4]। उसी समय करोली के शासक ने महाराव की सहायता के लिये सेना भेजदी। महाराजा मदनपाल ने १५०० सैनिक भेज कर चम्बल नदी के पूर्वी किनारे पर अधिकार कर लिया। उसी समय मथुरेशजी के गोस्वामी कन्हैयालाल की मध्यस्थता से महाराव और विद्रोहियों में वार्ता शुरू हुई। वार्ता १५ दिन तक चलती रही। उसी बीच करोली की सेना गढ़ में पहुँच चुकी थी। अंग्रेजों की एक सेना मेजर राबर्ट के नेतृत्व में चम्बल के उत्तरी किनारे पर पहुँची। २२ मार्च १८५८ तक चम्बल के पश्चिमी किनारे पर विद्रोहियों का पूर्ण अधिकार था[5]। करोली की सेना और मेजर राबर्ट के तोपखाने ने विद्रोहियों को

---

१ फोरेस्टर : हिस्ट्री ऑफ दी इंडियन यूनिटी, जिल्द ३, पृ० ५५६-५६।

२ खड़गावत : राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७, पृ० ६०।

३ उपरोक्त : पृ० ६१।

४ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६७३।

५ खड़गावत, पृ० ७३।

दबा दिया। प्रारम्भ में विद्रोही सिर्फ अंग्रेजों के विरुद्ध ही थे परन्तु जब महाराव ने खरीते लिख कर अंग्रेजों को अपनी सहायता के लिये बुलाया तो विद्रोही महाराव के भी विरोधी हो गये। यह विद्रोह जन-सहयोग पर आधारित था नहीं तो न तो इतना व्यापक हो सकता था, और न इतने समय तक कोटा का शासन विद्रोहियों के हाथों में रह सकता था[1]। अंग्रेजों ने विद्रोहियों को दबाने के लिये जिस आतंक की स्थापना की वह स्पष्ट करता है कि कोटा में अंग्रेजी-विरोधी भावना कितनी प्रबल थी। कम्पनी के यूरोपिय सिपाहियों ने घर लूटे, दुकानें लूटीं व मन्दिरों की मूर्तियों के गहने छीन लिये। गुमानपुरा के एक कलाल ने विद्रोहियों को शराब बेची थी, उस पर १५० रु. जुर्माना किया गया। जयदयाल पकड़ लिया गया और तोप से उड़ा दिया गया[2]। महराबखां को एजेंटी के पास वृक्ष पर लटका कर फांसी दी गई[3]।

इस विद्रोह को दबाने में महाराव ने अंग्रेजों को सहायता अवश्य दी थी परन्तु क्योंकि मेजर बर्टन की हत्या कोटा में हुई थी, अतः महाराव की सलामी की तोपें घटा कर १७ से १३ करदी गईं। मेजर बर्टन का स्मारक बाग में स्थापित किया गया और कोटा के नागरिकों से विद्रोह को दबाने का खर्च वसूल किया गया। 'कोटा-कोंटिन्जेंट' तोड़दी गई। उसके स्थान पर देवली छावनी स्थापित कर अंग्रेजी सेना रखी गई। रामसिंह की मृत्यु के पहले कोटा शासन की हालत बिगड़ने लगी।

राजकीय ऋण २० लाख रु. हो गया। रामसिंह व उसके मंत्री इसे चुकाने की क्षमता नहीं रखते थे। सन् १८६१ में कोटा में नवीन शासन-व्यवस्था स्थापित की गई जिसमें कोटा राज्य में पोलीटिकल एजेंट का हस्तक्षेप अधिक होने लगा। उसे की जाने वाली शिकायतें लिखित रूप में की जाने लगीं व उसका रिकार्ड पालकीखाने में सुरक्षित रखा जाने लगा। सन् १८६६ में रामसिंह की मृत्यु हो गई। उसका लड़का भीमसिंह शत्रुशाल के नाम से गद्दी पर बैठा। १८६७ में शत्रुशाल को पुनः १७ तोपों की सलामी प्राप्त हो गई पर शासन की व्यवस्था इतनी गिरने लगी कि अन्त में महाराव ने अंग्रेजी सरकार को एक सुयोग्य प्रबंधक भेजने के लिये लिखा। १८७४ में जयपुर के भूतपूर्व मंत्री नबाब फैजअली खां बहादुर कोटा राज्य का प्रबंधक नियुक्त किया गया जो कि ए० जी० जी० की अधीनता में शासनकर्ता बन गया। महाराव शत्रुशाल राज्य के भीतर हस्तक्षेप

---

१ उपरोक्त : पृ० ६५।

२ उपरोक्त : पृ० ६७-६८।

३ डा० शर्मा ने जयदयाल को भी फाँसी का होना लिखा है।

करने की मनाही करदी गई और खर्च के लिये एक धनराशि निश्चित की[1]। २ वर्ष तक नबाब फैजअली कोटा रहा। १८७६ में कोटा का शासन पोलीटीकल एजेंट के सुपुर्द कर दिया गया जिसकी सहायता के लिये सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण हुआ। धीरे २ जब राज्य की दशा सुधरने लगी तो राज्य का कुछ प्रबंध महाराव को दे दिया गया। विशेष कर दान विभाग, सेना विभाग, और गढ का प्रबंध। १८८१ में अफीम और नशीली वस्तुओं के अलावा व्यापारिक वस्तुओं के प्रचलन पर कर उठा दिया।

१८८२ में अंग्रेजों और महाराव के बीच नमक का समझौता हुआ। नमक बनाने व बेचने का अधिकार अंग्रेजी राज्य को दिया गया। उसके बदले में अंग्रेजों ने महाराव को १६,००० रु. वार्षिक देने का निर्णय किया। शत्रुशाल का ११ जून १८८९ को देहान्त हो गया। उसके स्थान पर गोद लिया हुआ उम्मेदसिंह महाराव बना। सन् १८९६ में कौंसिल तोड़दी गई और महाराव को शासन के पूर्ण अधिकार दे दिये गये। जनवरी १८९९ में अंग्रेजी सरकार ने झालावाड़ के १७ परगनों में से १५ परगने पुनः कोटा में शामिल कर दिये। फरवरी १८९९ में कोटा-बीना रेल-निर्माण के लिये इंडियन मिड़-लैण्ड रेलवे कम्पनी ने समझौता किया। १९०१ में महाराव ने इंडियन पोस्टल प्रणाली कोटा में लागू की और अंग्रेजी मुद्रा ने कोटा की मुद्रा का स्थान ले लिया। १९०४ में महाराव ने नागदा-मथुरा रेल-निर्माण के लिये मुफ्त में कोटा की जमीन देदी। १९१४ के महायुद्ध के समय कोटा के महाराव ने कोटा का सर्वस्व अंग्रेजी राज्य के लिये दे दिया। युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेजी सरकार ने १९ तोपों की सलामी से महाराव को विभूषित किया। यह स्थिति १९४७ तक बनी रही जब कि भारत से अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो गया।

अंग्रेजी काल में १८५७ में जहां कोटा क्रांति में अग्रणी रहा वहां उसके पतन के बाद सामंती व औपनिवेशिक ढांचे ने इतना कमजोर कर दिया गया कि अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े होने की लोगों में क्षमता ही नहीं रही। फिर भी भारतीय जन-जागृति का प्रभाव कोटा में भी पड़ा और कोटा में जो राजनैतिक जागृति हुई उसका श्रेय श्री अभिन्नहरि तथा उसके साथियों को दिया जाता है। उन्होंने सन् १९३१ के आन्दोलन में अजमेर जाकर भाग लिया तथा बाद में कोटा को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। सन् १९४२ में कोटा में जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उसे दबाने के लिये भयंकर प्रयास किया गया। नये महाराव श्री भीमसिंह युग-गति के अनुसार चले। मार्च १९४८ में राजस्थान संघ स्थापित हुआ जिसकी

१ ट्रीटी, ऐंगेजमेंट व सनद, जिल्द ३, पृ० ३३५।

राजधानी कोटा रखी गई तथा कोटा महाराव राजप्रमुख बने। परन्तु बाद में उदयपुर के इस संघ में शामिल हो जाने पर मई १६४८ ई० में राजधानी उदयपुर तथा राजप्रमुख उदयपुर के महाराणा बनाये गये। भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। जब वृहत् राजस्थान बना तब फिर उप-राजप्रमुख का पद कोटा के महाराव श्री भीमसिंह को दिया गया। इस पर वह ३१ अक्टूबर १६५६ तक रहे। पहली नवम्बर से राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया। राजस्थान-निर्माण के बाद कोटा की निरंतर प्रगति हो रही है। चम्बल-योजन के पूर्ण होने पर तो यह एक अति समृद्धशाली प्रदेश हो जायेगा।

कोटा राज्य के सरदार[1]

कोटा राज्य के सरदारों को २ भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक राजवी और दूसरे अमीर उमराव। राजवी कोटा नरेश के नजदीक के कुटुम्बी हैं। ठिकाना कोटरा, बमोलिया, सांगोद, आमली, खेरली, अन्ता तथा मुंडली के जागीरदार किशोरसिंघोत घराने के हैं। इनसे दूसरे दर्जे में मोहनसिंघोत घराना है जिसके मुखिया पलायता के ठाकुर हैं। इन सभी को आपजी कहा जाता है। इन्हीं घरानों से राज्य गद्दी के लिये गोद जाने की प्रथा है।

कोटा राज्य के ताज़ीमी सरदार एवं जागीरदार ३६ हैं। इनमें अधिक संख्या हाड़ा चौहानों को है। कोटा में ८ जागीरें हाड़ा वंश की ऐसी हैं जिन्हें कोटड़ी या क़ोटड़ियात कहते हैं। इन्द्रगढ, बलवन, खातोली, गेंता, करवड, पीपलदा, फसूद व अन्तता रहा है। ये जागीरें कोटा राज्य को ३४,३६७ रु. १३ आना खिराज के रूप में देती हैं जिसमें से जयपुर राज्य को १४३६७ रु. १४ आ. ६ पाई दिया जाता है। ये कोटड़ियाँ पहले बूंदी राज्य के मातहत थीं। इनका सूबा रणथम्बोर

१ 'सरदार' सामन्तों का दूसरा नाम है। यहां उन सामन्तों, ठाकुरों, जागीरदारों के प्रदेशों का विवरण दिया जाता है जो कोटा राज्य के शासन, राजनीति तथा सामाजिक जीवन में कौटम्बिक या व्यक्तिगत सम्बन्ध व प्रभाव था।

लगता था। राजा सुर्जन हाड़ा ने जब रणथम्बोर का किला सन् १५६६ में अकबर को दे दिया तो मुगल शासकों ने इन कोटड़ियों से खिराज लेना प्रारम्भ कर दिया। ई० स० १७६० में रणथम्बोर का किला जयपुर नरेश माधोसिंह के अधिकार में आ गया। जयपुर वालों ने मुगल परम्परा के अनुसार इन कोटड़ियों से खिराज मांगा। इन ठाकुरों ने कोटा महाराव से सहायता मांगी। ई० स० १८२३ में कोटा के दीवान राजराणा जालिमसिंह झाला ने सरकार की सलाह से खिराज जयपुर वालों को स्वीकार किया पर यह खिराज कोटा द्वारा प्राप्त किये हुए खिराज में से दिया जाता था जिससे इन कोटड़ियों पर कोटा का प्रभाव बना रहे। इन्द्रगढ और खातोली के सिवाय अन्य कोटड़ियों से जब नये जागीरदार गद्दी पर बैठते हैं तब नजराना लिया जाता है और महाराव की स्वीकृति के बिना ये गोद भी नहीं ले सकते। करवर, गेंता, फसूद और पीपलदा हरदावतों की कोटड़ियां कहलाती हैं। सं० १६४६ में बादशाह शाहजहां ने बूंदी के रावराजा भोज के बेटे हृदयनारायण के एक बेटे खुशहालसिंह को फसूद का परगना दिया था। खुशहालसिंह ने उसके चार भाग कर—करवर तो अपने पास रखा, गेंता अपने चचेरे भाई अमरसिंह को दिया, फसूद गजसिंह को और पीपलदा दौलतसिंह को दिया। पीपलदा का खास कस्बा चारों के साझे में रहा जो आज तक उसी तरह चला आ रहा है। कोटड़ियों के अलावा २४ जागीरदार ताजीमी हैं।

इन्द्रगढ़—इन्द्रगढ़ कोटा से ४५ मील उत्तर की ओर है। उसे महाराज इन्द्रसाल ने[1] सं० १६६२ माघ बदि ८ को बसाया था। इन्द्रगढ़ में ६२ गांव जागीर के हैं जिनकी आय २,३२,८२२ रुपये है। कोटा राज्य को ये खिराज के रूप में १७५०६ रु. १२ आना देते हैं जिसमें से ६६६६ रुपये जयपुर राज्य को दिया जाता है। तत्कालीन महाराज सुमेरसिंह को १६१७ अक्टूबर में छापोल ठिकाने से महाराज शेरसिंह ने गोद लिया था। इनका नजदीकी कुटुम्बी छापोल और जाटवारी के उमराव हैं।

बलवन—यहां के सरदार महाराज प्रतापसिंह बूंदी के स्वर्गीय महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र बैरीशाल के वंशज हैं। इस जागीर में २१ गाँव हैं जिनकी आय १६ हजार रु. है। इस ठिकाने से कोटा राज्य को १७२८ रु. खिराज के देने पड़ते हैं जिसमें ११२८ रु. जयपुर राज्य को दिये

---

१ इन्द्रसाल का पिता गोपीनाथ था जो कि राव रतन का पुत्र था और उसके शासनकाल में ही मर गया। महाराव इन्द्रसाल हाड़ा को शाहजहां के समय ८०० जात व ४०० सवार का मनसब प्राप्त था।

जाते हैं। महाराज प्रतापसिंह १९२९ को राज्य के उत्तराधिकारी हुए थे।

खातोली—इन्द्रगढ़ के महाराज गजसिंह के दूसरे पुत्र अमरसिंह[1] ने दौलतखां से वि० सं० १७२९ (ई० स० १६७३) में खातोली छीनी थी और अपना ठिकाना स्थापित किया था। यह पार्वती नदी के किनारे कोटा नगर के उत्तर पूर्व में ६२ मील दूरी पर स्थित है जो कि पीपलदा तहसील में है। इस ठिकाणे में ३७ गाँव हैं। इसके अलावा ७ गाँव ग्वालियर राज्य में भी हैं जो वि० सं० १८०७ (ई० स० १७५०) में शिवपुर के राजा से प्राप्त हुए थे। इस जागीर की आमदनी ८२५७८ रु. है। कोटा के खिराज में ७६२२ रु. दिये जाते हैं और उसमें से जयपुर का हिस्सा २९८२ रु. है। वर्तमान जागीरदार महाराज भवानीसिंह है जिसका जन्म १९९० में हुआ और पिता बलवन्तसिंह की मृत्यु के बाद सं० १९९८ में ठिकाने के स्वामी हुए।

हरदावत कोटड़िया—करवड़, गेंता, फसूद, और पीपलदा के ठिकाने हरदावत कोटड़ियें कहलाती हैं। क्योंकि इनके जागीरदार बूंदी के हृदय-नारायण हाड़ा के वंशज हैं। इन सब ठिकाणों की भूमि फसूद इलाके का ही भाग है जो बादशाह शाहजहाँ ने रावराजा भोज के दूसरे पुत्र हृदय-नारायण के वंशधर कुशलसिंह को सन् १६४९ में जागीर में दिया था। कुशलसिंह ने करवड़ अपने पास रखा। इसमें ७ गाँव हैं जिनकी आय १२५०० रु. है। कोटा को १००२ रु. चौदह आने खिराज के दिये जाते हैं तथा उसमें से ३३१ रु. १४ आने हर साल जयपुर राज्य को दिये जाते हैं।

गेंता—यहां के सरदार महाराज तेजसिंह के अधिकार में ७ गांव की जागीर है जो पैत्रिक सम्पत्ति है। अमरसिंह को यह भाग कुशलसिंह ने १६४९ ई० में दिया था। ८ गांव कोटा दरबार से दिये हुए हैं। इस तरह कुल १५ गांव इनकी जागीर में हैं जिसकी सालाना आय ३६९८८ रु. है। यहां से १९०८ रु. सालाना कोटा राज्य को खिराज में दिये जाते हैं जिसमें से १९३ रु. जयपुर दरबार को मिलते हैं। पहले यहां के स्वामी कोटा दरबार की सेवा में १३ घोड़ों की चाकरी देते थे पर अब नकद रकम १०९२ रु. दिये जाते हैं। यह महाराज अपने दादा रायबहादुर महाराज माधोसिंह के उत्तराधिकारी हुए। इनके पिता कुंवर अखैराजसिंह

---

१ अमरसिंह ने बून्दी नरेश महाराव राजा बुद्धसिंह के साथ रह कर दक्षिण में मुगल बादशाह औरंगजेब के युद्धों में भाग लिया था।

का स्वर्गवास ई० स० १९३० मार्च को हो गया था[1]। इनको राजगद्दी १९३५ जून में प्राप्त हुई थी।

फसूद (पुसोद)—ठाकुर जगतसिंह का जन्म ई० स० १९०८ में हुआ था। इनकी जागीर में ६ गांव १७१९८ की आय वाले हैं जिस पर १००२ खिराज के दिये जाते हैं। इसमें से ३३२ रु. जयपुर को मिलते हैं। जगतसिंह ठाकुर जयसिंह की गोद आये थे और १९१५ में ठिकाने के मालिक हो गये थे। पुसोद कोटा से ५१ मील उत्तर की ओर है।

पीपलदा—ठाकुर गुलाबसिंह की जागीर में २२००० रु० सालाना आय के ११ गाँव हैं। खिराज के रुपयों में १००६ रु. कोटा को दिये जाते हैं। जयपुर का हिस्सा ३३१ रु. १२ आने है। ठाकुर भारतसिंह का युवा-वस्था में ही देहान्त हो गया था इसलिये गुलाबसिंह जो इनके नजदीक कुटुम्बियों में थे, कोटा राज द्वारा ठिकाने के स्वामी बनाये गये।

अंतरदा—अंतरदा की जागीर में अन्तरदा तथा ६ गाँव हैं जिससे १५००० रु. की सालाना आय होती है। खिराज के रु. ३८२८ हैं जिसमें १०२८ रु. जयपुर को प्राप्त होते हैं। वर्तमान जागीरदार बहादुरसिंह हैं। ये बूंदी के गोपीनाथ के पौत्र सगतसिंह के वंशज हैं।

निमोला—निमोला इन्द्रगढ ठिकाने से निकला हुआ है। महाराज रणजीतसिंह इन्द्रसिंहोत खाँप के होने की वजह से इन्द्रगढ को ८२० रु. खिराज का देते हैं। इनकी जागीर में केवल एक गाँव चम्बल नदी के दाहिने तट पर है जिसकी सालाना आय ६००० रु. है। वर्तमान महाराज का जन्म ई. स. १८७४ को हुआ और स्वर्गीय महाराज मोतीसिंह ने ई. स. १९०० में गोद लिया था[2]।

कोयला—यह ठिकाणा कोटा राज्य के प्रथम नरेश राव माधोसिंह हाड़ा के चौथे पुत्र कनीराम ने स्थापित किया था। राज-दरबार में इनकी

---

१ महाराज तेजसिंह के पूर्वज नाथजी थे जो अमरसिंह की तीसरी पीढी में थे। इन्होंने कोटा और जयपुर राज्य के बीच भटवाड़े के युद्ध में (१७६१ ई०) कोटा की ओर से लड़ कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। नाथजी के पुत्र शिवदानसिंह थे जिन्होंने कोटा राज्य के प्रतिनिधि की हैसियत से अंग्रेज सरकार के साथ अहदनामा किया। इस अवसर पर अंग्रेज सरकार ने इन्हें एक घोड़ा, एक हाथी व खिलअत तलवार प्रदान की जिनमें से पोशाक व तलवार अब तक इनके यहां सुरक्षित रखी हुई है।

२ कोटा महाराव की महरबानी इन पर बनी रही। अत: महाराज अपने को इन्द्रगढ के अधीन न रख कर कोटा के चौथे दर्जे के सरदार बन गये। ८७१ रु. १४ आना माधोपुरी सिक्के खिराज के दाखिल करते हैं।

पहली बैठक होती है। ये ठाकुर के बजाय 'आप' की उपाधि से सम्बोधित किये जाते हैं। इनकी जागीर में ३१८२० रु. सालाना आय में ६ गांव हैं। राज्य को ये २१०१ रु. सालाना खिराज के देते हैं और १८६४ रु. पौने १२ आने ६० जमइयत के सवारों के एवज में ये राज्य को खिराज देते हैं। इस ठिकाने के कुँवर पृथ्वीसिंह राजमहल के युद्ध में जयपुर के माधोसिंह की ओर से ईश्वरीसिंह के विरुद्ध लड़ा था। इस युद्ध में उसके कई घाव लगे थे[1]। आप अमरसिंह ने सन् १८०४ में गरोठ (इन्दोर के पास) की लड़ाई में प्रसिद्धि प्राप्त की थी जब कि वे अंग्रेजी सेना के कर्नल मानसन की तरफ से लड़ते हुए घायल हो गये थे। वर्तमान राजा आप रघुराजसिंह हैं जो अपनी पीढी के ११ वें आप हैं। आप कोटा नरेश के १९४८ से मिलिट्री सचिव हैं। ये १९५२ से १९५७ तक राजस्थान विधान सभा के सदस्य भी रहे हैं। इनके पिता ब्रिग्रेडियर जनरल राव बहादुर आप गोविन्दसिंह कोटा राज्य की सेना के सेनापति रहे थे।

पलायता—कोटा राज्य के संस्थापक राव माधोसिंह के दूसरे पुत्र मोहनसिंह के वंशज पलायता के 'आपजी' कहलाते हैं। मोहनसिंह ने वि० सं० १७०४ में ८४ गाँवों सहित पलायता ठिकाना स्थापित किया। मोहनसिंह वि० सं० १७१५ (सन् १६५८) में फतेहाबाद के युद्ध में मारा गया। इस जागीर में अब पलायता तथा ५ गाँव हैं जिनकी आय २१००० रु. सालाना है। यह ठिकाना कोटा राजधानी के पूर्व में २६ मील दूर काली सिंध नदी के दायें तट पर है। राज दरबार में इनका प्रमुख स्थान रहा है[2] और यहां के सरदार मेजर जनरल आप सर औंकारसिंह सी. आई. ई. हैं। इनके पिता राव बहादुर आप अमरसिंह रिजेन्सी कौंसिल के सदस्य ई. स. १८७७ से १८९६ तक रहे। इन्होंने अपने प्रथम पुत्र कुंवर प्रतापसिंह को ५ हजार का तथा दूसरे पुत्र औंकारसिंह को २ हजार रु. की जागीर राज्य से दिलवाई। कुंवर प्रतापसिंह की मृत्यु पर वह जागीर भी आप औंकारसिंह को मिल गई। यह जागीर अन्ता और सांगोद परगने में है। आप औंकारसिंह ने कोटा राज्य की सेवायें कई रूपों में कीं। ये पहले पुलिस महकमे

---

१ यह युद्ध औरंगजेब और मुराद के विरुद्ध राजा जसवन्तसिंह ने दारा व शाहजहां की ओर से किया था। इस युद्ध में औरंगजेब की विजय हुई। मोहनसिंह कोटा राव मुकुन्दसिंह के साथ जसवन्तसिंह का पक्ष लेकर युद्ध में प्रवेश हुए थे।

२ कोयला और पलायता का स्थान राज्य में एक ही होने के कारण ये दोनों एक साथ दरबार में नहीं आते हैं।

के जनरल सुपरिंटेंडेंट थे। फिर राज्य की सेना के सेनापति हो गये। १९३३ से राज्य के दीवान का काम करते रहे हैं।

कुनाड़ी—कुनाड़ी चम्बल नदी के बायें तट पर कोटा नगर के सामने है। कुनाड़ी का ठिकाना कोटा नरेश राव मुकन्दसिंह हाड़ा ने ई. सं. १६४४ में देलवाड़ा (मेवाड़) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को राज की उपाधि सहित इनायत किया था। यहां के सरदार राजचन्द्र-सेन का प्रभाव कोटा में बहुत अधिक था। ये झाला राजपूतों के जेतावत शाख के हैं। राज्य दरबार में इनकी प्रथम बैठक बाईं तरफ है। इस जागीर में २५००० रु. आय के ८ गांव है। ये कोटा राज्य को खिराज के रूप में २६९० रु. देते हैं। सरदार चन्द्रसेन के पिता राव बहादुर राज-विजयसिंह विधानुरागी एवं इतिहासप्रेमी थे। ई. स. १८८८ में वे राज-रूपसिंह की मृत्यु पर देलवाड़ा (मेवाड़) से गोद आकर कुनाड़ी के स्वामी हुए थे। चन्द्रसेन सन् १९२६ में कुनाड़ी के अधिकारो हुए थे।

बम्बुलिया—इस जागीर के स्वामी महाराज केशवसिंह हाड़ा महा-राव किशोरसिंह के वंशज हैं[1]। इनकी जागीर में ११ हजार रु० की आय के ६ गांव हैं। यह ठिकाणा कोटा राजधानी से पूर्व में ३४ मील है। राज्य को खिराज के रूप में २३५ रु. देता है। सन् १९३४ में महाराज महताब-सिंह के देहान्त पर वर्तमान महाराज इस ठिकाणे की गद्दी के स्वामी हुए।

सरोला—कस्बा कोटा से ७० मील उत्तर पूर्व में है। और इस जागीर के स्वामो दक्षिणी सारस्वत ब्राह्मण पण्डित चन्द्रकान्त राव हैं जिन्हें दरबार में नरेश के बाईं ओर की दूसरी बैठक प्राप्त है। यह जागीर २७ हजार रु. आय के ७ गांव की है। यहां के स्वामी राज्य को खिराज या चाकरी नहीं देते। यह जागीर ९२७३६४ रु. में रहन रखी हुई है। इस घराने के संस्थापक बालाजी पंडित पूना के पेशवा बाजीराव की सेवा में थे। जब मरहठों ने उत्तरी भारत पर चढाई की तब कोटा राज्य से गुजरते हुए बाजीराव पेशवा ने बालाजी यशवन्त को बूंदी और कोटा दरबार से चौथ तय करने के लिये नियत किया था और बाद में बूंदी कोटा तथा उदयपुर (मेवाड़) से ये खिराज वसूल करने पर भी नियुक्त हुए[2]।

---

१ कोटा के चौथे नरेश महाराज किशोरसिंह के प्रपौत्र सूरजमल ने यह ठिकाना कायम किया था।

२ बाजीराव ने कोटा पर अधिकार कर महाराव दुर्जनशाल से ४० लाख रु. प्राप्त किये। बालाजी यशवन्त नाम के एक कोंकणस्थ सारस्वत ब्राह्मण को इस धन का हिसाब लेने के

बालाजी पंडित ने कोटा को अपना निवास-स्थान बनाया और लेनदेन की दुकान खोली। बालाजी के पुत्र ने कोटा के राजराणा दीवान जालिमसिंह झाला से मित्रता बढाई और ई० स० १७६६ में जब होल्कर ने कोटा को दबाना चाहा तब जालिमसिंह की सहायता की। मरहठा सेना को समझा-बुझा कर वापस कर दिया। उस समय कोटा राज्य ने इनसे ६२७३६४ रु. ऋण लिये थे और ई० स० १७७१ में सरोला की जागीर इस ऋण के एवज गिरवी रखी गई। ई० स० १८१७ में अंग्रेज-कोटा-संधि के अनुसार मरहठों को दिया जाने वाला कर (खिराज) अंग्रेजों को दिया जाने लगा। बालाजी का चोथ इकट्ठा करने वाला पद समाप्त हुआ पर सरोला की जागीर पंडित गणपत राव के पास ही रही।

कचनावदा—ठाकुर मोतीसिंह हाड़ा इस जागीर के तत्कालीन स्वामी हैं। बूंदी के राव सुर्जन के तीसरे पुत्र रायमल ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। रायमल को बादशाद अकबर ने उम्दा खिद्मत के एवज में पलायथा जागीर में दिया था। लेकिन रायमल के पोते हरीसिंह से वह जागीर छूट गई। हरीसिंह के बेटे दौलतसिंह को महाराव भीमसिंह ने सैरथल जागीर में दिया था। सन् १८३८ में सैरथल का इलाका झालरा-पाटण (झालावाड़) में चले जाने के कारण उसके एवज में ठाकुर नरपतसिंह को कचनावदा मिला। इस जागीर में ७३७७ रु. वार्षिक आय के ३ गांव हैं। इनको राज्य को खिराज नहीं देना पड़ता है।

राजगढ़—राव माधोसिंह के बेटे मोहनसिंह के एक पुत्र गोवर्धन ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। गोवर्धनसिंह बादशाह औरंगजेब के पक्ष में युद्ध करते हुए दक्षिण में मारा गया था। उसका पुत्र दौलतसिंह महाराव भीमसिंह के साथ निजाम के विरुद्ध युद्ध में काम आया और दौलतसिंह का पोता नाथजी सन् १७६१ ई० में भटवाड़े की लड़ाई में काम आया था। नाथजी के पोते देवीसिंह ने राजराणा जालिमसिंह को दूर करने में महाराव किशोरसिंह को बहुत मदद की थी। वह सन् १८२१ में मांगरोल के युद्ध में घायल होकर राजगढ़ आया। इस जागीर में ४००० वार्षिक आय के ३ गांव हैं और तत्कालीन जागीरदार माधोसिंह हाड़ा हैं।

लिये छोड़ा गया। कोटा राज्य ने मरहठों की अधीनता सन् १७३७ में स्वीकार करली थी। बालाजी यशवन्त की सेवा के उपलक्ष में महाराव दुर्जनशाल ने बरखेड़ी नामक परगना जागीर में दिया। पेशवा ने उसको अपना वकील बना कर कोटा राज्य में नियुक्त कर दिया। डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३७५।

घाटी—बूंदी के राव वीरसिंह के पोते मेवासिंह ने इस जागीर की स्थापना की थी। उनके वंशजों में जोरावरसिंह महाराव भीमसिंह के साथ सन् १७३६ ई० में निजाम के मुकाबले में मारा गया। जोरावरसिंह के बेटे खुशहालसिंह को जागीर मिली परन्तु उसके पुत्र अजीतसिंह ने कोटा के दीवान को मार डाला इसलिये वह जागीर जप्त हो गई। अजीतसिंह के पोते गुमानसिंह ने भटवाड़े के युद्ध में जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसके उपलक्ष में घाटी जागीर प्राप्त की। यह जागीर मेवावत हाड़ाओं की कही जाती है जिसके अधिकार में २५०० रु. वार्षिक आय के ४ गांव हैं।

खेड़ला के जागीरदार श्रीनल डाबरी, खडेली, सारथल मंडवी की जागीरें १००० रु. वार्षिक आय की एक गांव की हैं। कोटड़ा की जागीर पहले झालरापाटण के मातहत थी। सन् १८९९ ई० में जब झालावाड़ के १७ परगने कोटा को लौटाये गये तो कोटड़ा कोटा के अधिकार में आ गया। इस जागीर की वार्षिक आय २५३६ रु. है और इसके अधीन में ४ गांव हैं। तत्कालीन महाराज दुर्जनसाल हाड़ा हैं।

कोटा के शासक

१ राव माधोसिंह — सम्वत १६८८ से १७०६ — सन् १६३२–१६४९

इनके ५ पुत्र थे—मुकन्दसिंह, मोहनसिंह, जूझारसिंह, कुंजराम और किशोरसिंह

२ ,, मुकन्दसिंह — १७०६–१७१४ — १६४९–१६५७

३ ,, जगतसिंह — १७१४–१७४१ — १६५७–१६८४

राव मुकन्दसिंह के पोते थे

४ ,, किशोरसिंह — १७४१–१७५२ — १६८४–१६९६

राव मुकन्दसिंह के छोटे भाई थे। आपके ३ पुत्र थे। विष्णुसिंह, रामसिंह, और हरनाथसिंह। विष्णुसिंह को गद्दी से महरूम कर अंता की जागीर दी गई।

५ ,, रामसिंह — १७५२–१७६४ — १६९६–१७०७

नं० ४ के दूसरे पुत्र। इनके पुत्र भीमसिंह

६ महाराव भीमसिंह — १७६४–१७७७ — १७०७–१७२०

इनके तीन पुत्र—अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुर्जनशाल

७ ,, अर्जुनसिंह — १७७७–१७८० — १७२०–१७२३

निःसन्तान मरे

८ ,, दुर्जनशाल — १७८०–१८१३ — १७२३–१७५६

निःसन्तान मरे। नं० ७ के छोटे भाई थे

९ ,, अजीतसिंह — १८१३–१८१६ — १७५६–१७५९

अन्ता से गोद आये हुए। इनके ३ पुत्र—शत्रुशाल, गुमानसिंह और राजसिंह

१० ,, शत्रुशाल — १८१६–१८२१ — १७५९–१७६५

निःसन्तान मरे

११ ,, गुमानसिंह — १८२१–१८२७ — १७६५–१७७१

नं० १२ के छोटे भाई। एक पुत्र—उम्मेदसिंह

१२ ,, उम्मेदसिंह — १८२७–१८७६ — १७७१–१८१९

आपके तीन पुत्र—किशोरसिंह, विष्णुसिंह व पृथ्वीसिंह

१३ ,, किशोरसिंह (द्वितीय) — १८७६–१८८४ — १८१९–१८२७

निःसन्तान मरे

१४ ,, रामसिंह (द्वितीय) — १८८४–१९२२ — १८२७–१८६५

नं० १२ के छोटे पुत्र पृथ्वीसिंह के पुत्र। इनका पुत्र भीमसिंह था जिसने अपना नाम शत्रुशाल रखा।

१५ ,, शत्रुशाल (द्वितीय) — १९२२–१९४५ — १८६५–१८८८

निःसन्तान मरे

१६ ,, सर उम्मेदसिंह द्वितीय — १९४५–१९९७ — १८८८–१९४०

कोटड़ा से गोद आये। एक पुत्र—भीमसिंह

१७ ,, सर भीमसिंह — १९९७–२००५ — १९४०–१९४८

२५ मार्च १९४८ को राजस्थान-निर्माण के कारण कोटा राजस्थान में मिल गया अतः महाराव शासक न रहे। ३१६ वर्ष में १७ शासक कोटा गद्दी पर बैठे। औसतन प्रत्येक शासक ने १८.५ वर्ष तक राज्य किया।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१	ह्कलेरा	इकलेरा
५	७	बड़ौदा	बड़ौद
	१४	११६०	११६°
	१५	४४०	४४°
७	१०	कोटा होता हुआ	होती हुई
८	१६	बसे वे सब	बसे वे
६	१	है वहां, कई	है कई
१०	२	आधुनिक क्षेत्र	आधुनिक ढंग
११	१६	अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गई	शासन अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गया
१५	१४	अपराधों पर अर्थदण्ड	पर अर्थदण्ड
३०	४	सं० १५१८	सन् १५१६
	६	सम्वत् १५२१	सन् १५२१
	१२	अम्बर का धाभाई	अकबर का
		गागरोल	गागरोण
	१७	(सम्वत् १७६४–१७७७)	सन् १७०७–१७२०
३१	२७	से गुजरते थे	से गुजरे थे।
३४	८	(१३४३ ई०)	(१३४१ ई०)
३५	१३	सम्वत् १३२१ (१२७४ ई.)	सम्वत् १४२१ (१३७४ ई.)
४४	१६	बहख	बल्ख
४४	२०	"	"
४५	१२	"	"
५१	१	का प्रदर्शन करते हुए वीर-गति प्राप्त किया। उससे	का प्रदर्शन कर वीरगति को प्राप्त हुए, उससे
५४	१५	मुअज्जम मारा गया।	आजम मारा गया।
		आजम विजयी	मुअज्जम विजयी
५६	२६	मड़	मऊ
५७	२	भीमसिंह व फरूखसियार का	भीमसिंह व फरूखसियार में
५८	२०	सत्यता निजाम की चालाकी के सामने नहीं चल सकी	सत्यता के सामने निजाम की चालाकी नहीं चल सकी।
५६	फुटनोट	५	१
६२	फुटनोट ३	पृ. संख्या········	पृ. संख्या ८०-८२

६४	२५	राणोंजी सिंधिया	जनकोजी सिंधिया
६५	३	,, ,,	,, ,,
	१०	——१६५० की	इसका देहांत वि. सं. १८१५ की
	२२	जवरोजी	जनकोजी
	२५	युद्ध मरवाड़े	युद्ध भटवाड़े
६७	फुटनोट २	७ जनवरी १७६१	१४ जनवरी १७६१
६७	फुटनोट ५	मरवाड़ा	भटवाड़ा
	,, ,, (२)	पंचरंग पताका को डाल दिया	पंचरंगी पताका को हटा दिया
६६	१८	राघादेव	राघवदेव
७०	फुटनोट १(३)	महारानी सिंधिया	महादाजी सिंधिया
७१	फुटनोट २(४)	पृ. सं.………	पृ. सं. ६७
७२	फुटनोट ३(२)	देनसिंह	देवीसिंह
७५	६	इससे………सेना	इससे अंग्रेजी सेना
	फुटनोट १	१	३
	फुटनोट ३	३	१
७६	फुटनोट १	यही पुस्तक पृ.……	पृ. ६६-७०
	११	अप्पाजी	अम्बाजी
	फुटनोट ३	अब्बाजी	अम्बाजी
७७	फुटनोट २	यही पुस्तक फुटनोट ।	यही पुस्तक पृ. ७५
७६	फुटनोट २(५)	लाभप्रद हो सकेगा	लाभप्रद हुआ
८०	१३	जागरोण	गागरोण
	१८	गगरोव	गागरोण
	१६	भूमिकर प्रबन्ध सुधार	भूमिकर प्रबन्ध
८४	फुटनोट १(३)	से युद्ध	से मुक्त
६४	फुटनोट १(३)	मारवाड़ के अमरसिंह	अभयसिंह
१०१	१४	सं. १६३६	सन् १६३६
१०१	फुटनोट २	मरवाड़ा	भटवाड़ा
१०५	७	(सन् १६१८)	(सन् १६०८)
१०६	१०	१३ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण १२७४ ई०	१४ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण १३७४ ई०
१२७	१७	सददेशमुखी	सरदेशमुखी
	अन्तिम	सहाराव	महाराव
१२८	फुटनोट	सिपरउल	सिअरउल
१३०	८	राणोजी	जनकोजी
१३२	६-१०	महारानी सिंधिया	महादाजी
१३५	१०	कूकन	लूकन
१३६	१६	अम्बाजी के नाई	अम्बाजी के भाई
१४३	४	१८१८	१८२०

सिरोही राज्य

भौगोलिक व आर्थिक विवरण*

नाम—सिरोही राज्य चौहान वंश की देवड़ा शाखा का राज्य रहा है। यह राजपूताना के दक्षिण-पश्चिम की ओर अक्षांश २४°२०' कला से और २५°१७' कला उत्तर के बीच में; देशान्तर ७२°.१६' कला ७३°.१०' कला व पूर्व तक फैला हुआ है। इसका नाम सिरोही इसकी स्थिति व पहाड़ी क्षेत्र के कारण पड़ा। महाराव शिवभाण ने सरणवा पहाड़ पर किले का निर्माण करा कर अपने नाम की एक नगरी शिवगंज बसाई। सरणवा का अपभ्रंश सिरोही हो गया। सिरोही दो बार बसाई। १४०५ ई० में पुरानी सिरोही शिवभाण ने बसाई थी परन्तु उसके पुत्र सहसमल ने जल की कठिनाई के कारण वह स्थान छोड़ कर २५ अप्रेल १४२५ ई० को आधुनिक सिरोही को बसाया। इस नगर के नाम से राज्य का नाम सिरोही हो गया और यह ई० सन् १९४८ तक देवड़ा चौहानों की राज्यधानी रहा। टॉड का कथन है कि इस क्षेत्र का नाम सिरोही इसलिए पड़ा होगा कि यह रेगिस्तान (रोहो) का अन्तिम (सिर) भाग है। शिवभाण के पहले इस क्षेत्र की राजधानी चन्द्रावती थी जिसे राव लूंभा ने परमारों से सन् १३११ में छीनी थी।

सीमा—इस राज्य के उत्तर में मारवाड़, पूर्व में मेवाड़, दक्षिण में पालनपुर, महीकांठा, ईडर और दांता और पश्चिम में मारवाड़ का राज्य है। इस राज्य का आकार त्रिकोण-सा है पर कोण एक सीधी रेखा में नहीं है बल्कि टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं की तरह है। इसकी आधार रेखा दांता, ईडर से लगा कर चौबीस मील दूरी पर डीसा तक खींची जा सकती है और उत्तरी कोण हरजी गांव में अंकित किया जा सकता है।

---

* सिरोही राज्य का भौगोलिक व आर्थिक विवरण ई. सन् १९४७ के अनुसार है, जबकि यह एक अलग इकाई था।

विस्तार—सिरोही का क्षेत्रफल, १९८८ वर्ग मील है ।

पहाड़—सिरोही का मध्य व पूर्वी दक्षिणी भाग पहाड़ी है । उत्तर पश्चिम का भाग खुला मैदान व उपजाऊ है । आडावला पर्वत की शाखाएँ इस क्षेत्र में फैली हुई हैं । इस पहाड़ की सब से ऊँची चोटी आबू पहाड़ की गुरु शिखर पर है जो समुद्र तल से ५६५० फीट ऊँची चोटी है । आड़ावला की आबू-सिरोही श्रृंखला कम से कम १००० फीट से १२०० फीट की ऊँचाई पर है । आबू की उत्तारी पर्वत श्रेणी सिरोही के पास होती हुई पूर्व में मुड़ कर मारवाड़ की सीमा तक चली गई है जिसमें २००० से २५०० फुट की ऊँचाई के कई शिखर हैं । जोधपुर की सीमा पर सिरोही का माल पहाड़ (माल मगरा) है जिसकी ऊँचाई २७३७ फुट है । पालनपुर राज्य तक फैले हुए पहाड़ में दो चोटियां 'चोटीला' (२७५५ फुट) 'जयराज' (३५७५) फुट मुख्य हैं । राज्य की दक्षिण-पश्चिमी सीमा के निकट नन्दवार या नन्दवाणा, जोकि नीबाज की पहाड़ियों के नाम से प्रसिद्ध है, की ऊँचाई ३२७७ फीट है ।

नदिएँ—सिरोही में बहने वाली मुख्य नदी का नाम बनास है । बनास दो स्थानों से निकलती है । पूर्व की पहाड़ियों की ओर से निकल कर जाड़ोल तक दस मील दक्षिण पूर्व की ओर बहती हुई दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाती है । सिरोही राज्य में आबू की घाटियों में ४० मील बहती हुई पालनपुर राज्य में मावल के पास प्रवेश करती है । यह बारहों मास बहने वाली नदी है । पश्चिमी बनास सिरोही राज्य में बहती हुई सूकली से जो कि रोहिड़ा के पूर्वी पहाड़ों से निकलती है, पालनपुर में मिलती है । पश्चिमी बनास का पानी रोक कर स्वरूप गंज के पास एक बड़ा बांध बनाया जा रहा है जिससे काफी भूमि में सिंचाई हो सकेगी । अन्य नदियों में सूकली, जो नाणा के पास निकल कर रावड़ा के पास जवाई नदी में मिलती है, खारी, जो कि सावली उम्मेदगढ़ होकर जवाई में जाती है, कृष्णावती जो कि खारी की सहायक नदी है; मुख्य नदिएँ है । यद्यपि जवाई नदी जोधपुर राज्य में बहती है परन्तु सिरोही में ८ मील चल कर ऐरनपुरा की छावनी के पास गुजरती हुई उत्तर पूर्व में जोधपुर में प्रवेश करती है । जवाई पर ऐरनपुरा रोड़ के पास अब बांध बना दिया गया है जिसमें सिंचाई के लिए पानी का प्रयोग किया जाता है ।

झील व बांध—सिरोही में प्राकृतिक झील एक भी नहीं है । जो भी झीलें हैं उनमें आबू पर्वत की नक्खी झील सब से मुख्य है । आबूरोड़ के पश्चिम में चंडेला, पीडवाडे में डायमंड जुबिली टेंक, सिरोही के मानसरोवर प्रसिद्ध तालाब हैं । चडेला तालाब से ६७५ एकड़ भूमि की सिंचाई होती है और पींडवाडा के

तालाब से ५६० एकड़ भूमि को पानी दिया जाता है। इसमें पानी नहीं ठहरता है सम्भवतः बांध में वहीं से पानी निकलता हो। जवाई बांध सब से बड़ा बांध है जो इस क्षेत्र की सिंचाई कर रहा है। रोहीड़ा के पास भूला बांध की योजना पूर्ण हो चुकी है। तहसील शिवगंज में ग्रोडा बांध से काफी क्षेत्र में सिंचाई होती है।

ग्राबहवा—सिरोही के मैदानों की ग्राबहवा ग्रधिकतर सूखी व स्वास्थ्यकर है। यहां ग्रधिक गर्मी नहीं पड़ती है परन्तु शीतकाल भी यहां ग्रधिक समय तक नहीं रहता है। ग्राबू पर्वत की ग्राबहवा गर्मी में ग्रत्यन्त लाभदायक है। यहां गर्मी में मैदानों में 'लू' चलती है। ग्रप्रेल माह से ही ९५° तापक्रम हो जाता है जो कभी कभी १००° तक चला जाता है। ग्राबू पर्वत गर्मी के लिए सब से ग्रच्छा स्थान है। ग्राबू पर्वत का ग्रौसत तापक्रम ६९° है। ऐरनपुरा ग्रौर सिरोही का तापक्रम ८३° व ८४° तक रहता है। ग्राबू में वर्षा की ग्रौसत ५७" है। सिरोही में २१·३" है। ज्यों ज्यों उत्तर की ग्रोर जाएं वर्षा कम होती जाती है। ऐरनपुरा में १८" की ही ग्रौसत है।

खानें—ग्ररावली पर्वत में ग्रेनाइट की खाने हैं। पत्थरों में इमारती काम का पत्थर कई जगह निकलता है। चूना बनाने का पत्थर ग्राबूरोड़ के पास बहुतायत से पाया जाता है। इन पहाड़ियों में स्फटिक की खाने भी हैं। ग्राबू के ऊत्तरज ग्रौर शैरगांव के बीच पुष्कर नामक स्थान पर संगमर्मर की खाने भी हैं। ग्रनाद्रा क्षेत्र में भी मकराणी पत्थर निकलता है।

उपज—सिरोही का पश्चिमी क्षेत्र मैदानी व उपजाऊ है। यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, मक्की, तिल, मूंग, मोट, बाजरा, चना, गवार, गन्ना, रूई व तम्बाकू है। सिरोही, ग्राबूरोड़, स्वरूपगंज व ऐरनपुरा मुख्य मंडियां हैं। शिवगंज ग्रौर पिंडवाड़ा व्यापारिक केन्द्र हैं। फलों में ग्राम, जामुन, ग्रमरूद, बेर, खजूर व करौंदा होते हैं।

जंगल—राज्य का ग्रधिक भाग जंगलों से भरा पड़ा है। ग्राड़ावला पहाड़ के नीचले हिस्सों में धाग्रों के वृक्ष हैं। नीम, पीपल, बड़, गुल्लर, बेर, ग्रधिक व्यापक वृक्ष हैं जो राज्य भर में सभी जगह पाए जाते हैं। मैदानों के तीन चौथाई भाग में बेर, ग्रांवल, केर, खेजड़ी, बंबूल, पीलू या झाड, करेल के वृक्षों की भरमार है। ग्राबू की नीचली पहाड़ियों में थोर ग्रधिकतर होता है। जहाँ भूमि उपजाऊ है वहां ढाक के पेड़ होते हैं। ग्राबू पर ग्राम, बांस, धाग्रो, सीमल, जामुन ग्रादि बहुतायत से हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों से यहां का जंगल बहुत ज्यादा कटा है।

जानवर—शिकारियों के लिए आबू पर्वत अत्यन्त आकर्षक केन्द्र हैं। सिरोही की पहाड़ियों में नाना प्रकार के जंगली जानवर पाए जाते हैं। चीते, रींछ इन पहाड़ियों में बहुतायत से हैं। नीमज की पहाड़ियों व आबू पर सांभर काफी है। चीतल मैदानों में पाया जाता है। जंगली पक्षियों में तीतर, बटेर, जंगली मुर्ग पाए जाते हैं। पालतू पक्षियों की संख्या ६,८४,००० के लगभग है। वि० सं० २०१३ (ई० सन् १९५६) की मालशुमारी के अनुसार यहां २२०,००० गायें, ५४००० भैसें, २,५४००० बकरियें, १२,००० मुर्गियें तथा ९००० विविध प्रकार के पशु थे। जानवरों के इलाज के यहां दो दवाखाने व दो अस्पताल हैं।

व्यापार—राज्य भर में मुख्य व्यापारिक मंडियां, आबूरोड़, सिरोही, स्वरूपगंज, शिवगंज और पींडवाड़ा हैं। यहां से निकास होने वाली चीजों में गेहूँ, जौ, मक्की, तिल, सरसों, चमड़ा, रूई, गूंद, शहद आदि हैं। बाहर से गुड़, शक्कर, तम्बाकू, कपड़ा, लोहा, सीसा, आदि धातु का आयात है। इस क्षेत्र का व्यापार अधिकतर बम्बई गुजरात से होता है। अफीम मालवा से आती है।

उद्योग-धन्धे—सिरोही उद्योग-धन्धों का क्षेत्र नहीं रहा है परन्तु कुटीर व्यवसाय यहां अधिक विकसित था विशेषकर तलवार बनाने के लिये। सिरोही का तलवार निर्माण उद्योग भारत भर में प्रसिद्ध है। तलवार के अतिरिक्त कटार, छुरी, भाला तीर-कमान भी बनते हैं। रेजी का कपड़ा तथा उसकी रंगाई छपाई यहां की प्रसिद्ध है।

कृषि-अधिकार—यहां के मैदानी भाग में खेती होती है। राज्य में कुल जमीन की मालिकी राज्य की ही समझी जाती है। काश्तकार जब तक जमीन को बोता और कर देता रहता है जमीन पर उसका अधिकार बना रहता है। किसी किसी को कर-मुक्त भूमि भी दी जाती है। कुल जमीन तीन हिस्सों में बंटी हुई होती है जो जागीर, शासन और खालसा कहलाती है। जागीर की आमद से ५० या २५ प्रतिशत राज्य को खिराज दिया जाता है। जागीरदार जमीन को बेच नहीं सकते हैं। शासन में धर्मादे में दी हुई भूमि होती है। इससे खिराज नहीं लिया जाता है। खालसा भूमि प्रत्यक्ष राज्य के अधिकार में रहती है। काश्तकार कर देते रहने पर इस भूमि को जोतता है। चौमासी खेतो से १/३ से १/६ तक हासिल लिया जाता था। हासिल नाज में लिया जाता है।*

---

* अब १९५५ से सिरोही में राजस्थान टीनेंसी एक्ट लागू हो जाने से काश्तकारों के प्रति के अन्य काश्तकारों के समान अधिकार मिल गये हैं।

कृषि-उपकरण--वि० सं० २०१३ (ई० सन् १९५६) की मालशुमारी के वक्त यहां २९,९१९ हल, १०,८६२ गाडियें, ५ ट्रेक्टर, ४५ तेल के इंजन, १० बिजली के पम्प तथा ३६८ घाणियें थी ।

आबादी--१९५१ तक सिरोही में आठ बार मनुष्य गणना हो चुकी है १९५१ में सिरोही जिले की २,८९,७९१ जनसंख्या थी ।* १९४१ में २,३५,७९० जनसंख्या थी । १९३१ में २,१६,५२८ मनुष्य रहते थे; १९३१ में १,८६,३३९; १९११ में १,८४,८३५; १९०१ में १,५०,४७६; १८९१ में १,८४,९०० और १८८१ में १,४२,९०३ मनुष्य बसते थे। १९५१ में अनुसूचित जातियों की आबादी ६३,००० के लगभग तथा जन-जातियों की आबादी ५७,००० के लगभग थी ।

आवागमन के साधन—राज्य में सिर्फ एक ही रेल लाईन का टुकड़ा है। पहले यह राजपूताना मालवा रेल लाईन तथा बी० बी० एण्ड सी० आई रेलवे कहलाती थी । आजकल पश्चिमी रेलवे कहलाती है । यह रेल सिरोही राज्य में ४० मील का रास्ता तय करती है । इस राज्य में इसके ८ स्टेशन हैं । आबूरोड़ बड़ा रेल का केन्द्र है । अन्य स्टेशन हैं—भावल, कीवरली, भीमाणा, स्वरूपगंज, बनास, सिरोही रोड़ तथा केशवगंज । यह रेल-लाईन ३० दिसम्बर सन् १८८० को खुली थी ।

सिरोही की प्रमुख सड़कों में, आगरे से अहमदाबाद जाने वाली बड़ी सड़क, जिसका निर्माण १८७१ ई० से १८७६ तक हुआ था, ६८ मील इस राज्य में होकर निकली है। दूसरी सड़क आबूरोड से आबू तक १८ मील लम्बी अंग्रेजी सरकार ने बनवाई थी। पींडवाड़ा के स्टेशन से सिरोही तक १६ मील की सड़क; स्वरूपगंज स्टेशन से कोटड़े की छावनी तक की १७ मील और खराड़ी से अम्बा भवानी तक की सड़कें हैं। एरनपुरा (शिवगंज) से सिरोही तथा सिरोही से पींडवाड़ा होती आबू तक पक्की सड़क है। अब एक सड़क सिरोही से अनादरा तक बन रही है।

डाक व तारघर—१९५७ में यहां ३५ डाकघर, ७ तारघर व ३ टेलीफोन एक्सचेंज थे ।

विकास खण्ड—इस क्षेत्र के ग्रामों के विकास के लिये पींडवाड़ा तहसील में ई० सन् १९५४ से तथा आबूरोड तहसील में ई० सन् १९५६ से विकास खण्ड

---

* सिरोही के लगभग २,४५,००० व्यक्ति गांवों में तथा ४५,००० व्यक्ति नगरों में रहते हैं ।

खोले गये हैं।* इन विकास खण्डों की सामुदायिक योजनाओं से ग्रामीणों का चतुर्मुखी विकास किये जाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विवरण

निवासी—सिरोही की जनसंख्या में आदिवासी लोगों भीलों व गिरासियों का एक विशेष स्थान रहा है परन्तु महाजनों व राजपूतों ने हमेशा से ही अपनी शक्ति बनाये रखी है। सिरोही गुजरात व मारवाड़ के बीच का राज्य होने से यहां व्यापारिक मंडियां बनती गईं जिससे महाजनों की बस्तियां बस गईं। वे राज्य की कुल जनसंख्या के बारह प्रतिशत हैं। उनमें भी ज्यादातर ओसवाल पोरवाल हैं। राजपूतों में चौहान, देवड़ा, राठौड़ व सीसोदिया हैं। राजपूत ज्यादातर कृषक हैं। इन्हें देवाली बंघ कहते हैं और अन्य कृषकों की अपेक्षा कम भूमि कर देना पड़ता है। पिछड़ी हुई जातियों में ढेढ, रेबारी, भील व गिरासी हैं। भील यहां की जनसंख्या के सात प्रतिशत हैं। यों कुछ भील गांवों में रहते हैं लेकिन ज्यादातर पहाड़ों पर घुम्मकड़ जीवन व्यतीत करते हैं। गिरासिया भीलों से उच्च वर्ग की जाति मानी जाती है। ये अधिकतर आबू और पिंड़वाडा-तहसीलों में बसे हुए हैं। कहा जाता है कि ये कई सदियों पहले मेवाड़ से आकर यहां बस गए। ये घुमम्कड़ जीवन के आदी हो चुके हैं परन्तु धीरे धीरे ये एक स्थान पर बस कर खेती करने लगे हैं। इन्हे जमीन पर अधिकार हैं। यहां मुसलमान कम हैं।

यहां के लोग मुख्य कर गेहूं, जौ, चना आदि शाकाहारी खाना खाते हैं परन्तु अधिकतर जनता मांसहारी है। ब्राह्मण, राजपूत और महाजन आदि

* सिरोही तहसील में १९५८ से विकास खण्ड खोला गया है।

कुरता या लम्बा अंगरखा , धोती या पायजामा और पाग पहिनते हैं। धीरे धीरे पाग की जगह साफे का प्रयोग लोग करते जाते है। देहाती लोग घुटनों तक मोटे कपडे की धोती, कमरी अंगरखी पहनते हैं और सिर पर मोटा कपड़ा (पोतिया) बांधते हैं। रेजे का पिछेवड़ा वे साथ रखते हैं। गांवों में लोग झोपड़ियों में रहते हैं। इनकी व्यक्तिगत पूंजी नहीं के बराबर हैं। नगरों में पक्के मकान बनते हैं। त्योहारों में हिन्दुओं के सब त्योहार यहां आनन्द पूर्वक मनाए जाते हैं विशेषकर दशहरा। मुख्य मेलों में बामणवार जैन मेला जो फागुन सुदि ७ से १४ तक, सारणेश्वर महादेव का मेला भादवा सुदि ११ को, खूणी में गगोपिया महादेव का संक्रान्ति का मेला; हणादे में ऋोड़ीधज का मेला श्रावण बदी अमावस को, आबूरोड़ के पास हृषिकेश का मेला भादवा सुदि ११ को और आबू पर्वत पर वसिष्ठजी का मेला भादवा सुदि १५ को होते हैं।

धर्म—यहां के लोगों का मुख्य धर्म हिन्दू है। राज्य में ७२.७ प्रतिशत हिन्दू, ११.० प्रतिशत अनिमिस्ट, ११.१ प्रतिशत जैन ३.८ प्रतिशत मुसलमान हैं। अंग्रेजी राज्यकाल के युग में आबू व एरनपुरा में ईसाईयों की संख्या ६२४ के आस पास थी। हिन्दुओं में शैव व वैष्णव मतावलम्बी अधिक हैं। राजघराने के इष्टदेव सारनेश्वर महादेव हैं। मीणे, भील, गिरासियों को माताजी (दुर्गा) का इष्ट है। चौहान का वीर गोगाजी की यहां पूजा होती हैं। वह नागों के रूप में पूजे जाते हैं और गोगाजी के लोकगीत गाए जाते हैं। जैनों में मुख्यतः श्वेताम्बरी ही हैं और मुसलमानों में ९ भाग सुन्नी और एक भाग शिया हैं। ईसाई मत में ईसाई रोमन केथोलिक मत को मानते हैं। इनका सम्बन्ध बम्बई के गिरजाघर से है। आबूरोड़ में एक केथोलिक चर्च है।

संस्कृति—सांस्कृतिक दृष्टि से सिरोही राज्य में आबू पर्वत कला का मुख्य केन्द्र है। योंतो सिरोही के अन्य भागों में भी मन्दिरों का निर्माण हुआ है। चन्द्रावती में १० शताब्दी के पहले के पूजागृह पाए गए हैं परन्तु आबू की मन्दिर कला जैन धर्म से अधिक प्रभावित है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साहित्य के क्षेत्र में आबू के शासक धारावर्ष परमार का भाई प्रल्हादन ने 'पार्थप्राक्रम व्यायोग' की रचना संस्कृत में की। धारावर्ष का समकालीन कवि सोमेश्वर था जिसने कीर्तिकौमुदी की रचना की। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा सिरोही के रोहिड़ा गांव में पैदा हुए थे।*

---

* श्री गौरीशंकर का जन्म वि० सं० १९२० (ई० सन् १८६३) की भादों शुक्ला २ को हुआ था। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ राजस्थान का इतिहास (जो २० भागों में पूर्ण होता है) तथा भारतीय प्राचीन लिपि माला है। इनकी मृत्यु २० अप्रेल १९४८ को हुई।

भाषा—यहां की भाषा मारवाड़ी है लेकिन सीमा प्रदेश होने से इसमें गुजराती भी मिश्रित है। लगभग २ प्रतिशत व्यक्ति गुजराती भाषाभाषी हैं।

शिक्षा—राजपूताने के अन्य भागों की तरह यहां भी शिक्षा की बड़ी कमी है। साक्षरों की संख्या ८.१२ प्रतिशत है। इनमें से मर्द १२.१२ प्रतिशत तथा स्त्रियां २.६५ प्रतिशत साक्षर हैं। प्रत्येक तहसील में रेवदर को छोड़ कर हायर सैकण्ड्री स्कूल है।*

अस्पताल आदि—सिरोही, आबू, तथा आबूरोड़ में अच्छे अस्पताल हैं। कुल १० अस्पताल व ३ दवाखाने हैं।

सिरोही राज्य का शासन प्रबन्ध

परमार शासकों से आबू का क्षेत्र छीन कर लूम्भा देवड़ा ने अपनी सत्ता स्थापित की तो वह सत्ता निरंकुश थी। शक्ति के बल पर राज्य पर अधिकार बनाए रखने की नीति सब राज्यों ने अपनाई। इनका न तो कोई राजत्व का आदर्श था और न इसके लिए खोज करने की आवश्यकता थी। राजकीय ढांचा मध्यकालीन युग की सामन्ती व्यवस्था के आधार पर खड़ा था, जहां युद्ध आवश्यक होता था और रक्तपात में लथपथ रहना सभ्यता का प्रतीक समझा जाता था। सिरोही के शासकों ने युद्ध और शक्ति के बल पर अपने वंश की परम्परा तथा शासन को बनाए रखा। हिन्दू धर्म को अपनाने के कारण उनकी स्थिति प्राचीन क्षत्रिय शासकों की तरह मानी जाने लगी।

सिरोही राज्य का अध्यक्ष वहां का महाराव होता था। यह देवड़ा चौहान जाति के राव लूम्बा के उत्तराधिकारियों में निहित था। हिन्दू विधि के अनु-

* सिरोही नगर में एक डिग्री कॉलेज तथा लड़कियों का एक हाईस्कूल भी है।

सार शासक का बड़ा लड़का ही राज्यगद्दी का हकदार होता था। यदि राजा के कोई पुत्र न होता तो वह सबसे नजदीक के सम्बन्धी के किसी भी पुत्र को गोद ले सकता था। सिरोही के शासक स्वतन्त्र रूप में कम रहे। कभी मेवाड़ के सामन्त रूप में तो कभी मुगलों के और कभी मारवाड़ के शासकों के आधीन रहते और १८२२ ई० से वे अंग्रेजों के आधीन रह कर शासन करने लगे।

राज्य चिह्न

सिरोही के राज्य चिन्ह में एक ढाल है जिसमें आबू पहाड़ का दृश्य दिखाया गया है। इस दृश्य में अचलेश्वर महादेव का मंदिर मध्यमें है और उसके नीचे पानी का एक सोता नदी के रूप में प्राकृतिक रंगों में दिखाया गया है। ढाल के किनारों पर राजवंश के देवी देवता दुर्गा व शिव के वाहन शेर व बैल एक दूसरे के सामने खड़े दिखाए गए हैं। ढाल के ऊपर एक दूसरे को काटती हुई दो तलवारें हैं जिनके ऊपर एक कटार खड़ी की गई है। इनमें 'बलहटबंका देवड़ा' अंकित है जिसका अर्थ होता हैं बल के समान वीर देवड़ा जाति।

***शासन (अंग्रेजी युग में)**—महाराव दीवान की सहायता से शासन करता है। उसकी सहायता के लिए एक नायब दीवान भी होता है जो शिक्षा की देख रेख करता था। अन्य महत्वपूर्ण पदाधिकारी आयकर कमिश्नर, न्यायाधीश, कस्टम सुपरिन्टेन्डेन्ट व पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हैं।

प्रशासकीय दृष्टिकोण से राज्य ६ तहसीलों में विभाजित है। तहसील के अध्यक्ष को तहसीलदार कहते हैं जिसके पास न्याय व भूमि आय-सम्बन्धी अधिकार होते थे। तहसीलदार के नीचे दो नायब तहसीलदार होते हैं जो एक तो न्याय दूसरा आय-सम्बन्धी कार्य करता है। दो नगरों, खराड़ी (आबूरोड) व

---

* सिरोही राज्य का यह शासन प्रबन्ध १६ ई० सन् १९४७ तक चालू था जब कि यह एक अलग इकाई था।

सिरोही को तहसीलों में नहीं रक्खा गया। खराड़ी में एक मजिस्ट्रेट होता है और सिरोही में कोतवाल। आबू-पर्वत पर मजिस्ट्रेट जो ए० जी० जी० का प्रतिनिधि होता है और ऐरनपुरा छावनी के कमान्डर को न्याय सम्बन्धी अधिकार होते हैं।

न्याय—अंग्रेजी सरकार के बनाए हुए कानूनों के द्वारा सिरोही शासक न्याय करते हैं परन्तु राज्य के स्वयं के कानून भी होते हैं। न्यायपालिकाऐं तीन भागों में बंटी हुई थी। दरबार के न्यायालय, अंग्रेजी सरकार के न्यायालय व अन्य। दरबार के न्यायालय में सिरोही कोतवाल, जिसे २५ रु० का दण्ड देने व २ सप्ताह कैद देने का अधिकार होता है; तहसीलदार व खराड़ी का मजिस्ट्रेट जिसे १०० रु० दण्ड देने व २ मास कैद देने व ३०० रु० लागत के दीवानी मुकदमों का निर्णय देने का अधिकार होता है। इनकी अपील ज्यूडिशियल अफसर के पास हो सकती है जो जिला न्यायाधीश होता है। दीवानी के न्यायालय को ज्यूडिशीयल अफसर से अपील तथा ३००० रुपयों तक के दीवानी मुकदमों को निर्णीत करने का अधिकार है। दरबार के पास मृत्यु-दण्ड देने का अधिकार होता है। दीवानी मामले अधिक नहीं होते हैं क्योंकि पंचायतों में कई फैसले हो जाते हैं। सारे राज्य में दरबार का न्याय अधिकार होता है। परन्तु नीमाज ठाकुर अपनी जागीर के मुकदमों का निपटारा करता है। दूसरे प्रकार के न्यायालय अंग्रेजी कोर्ट कहलाते हैं। पहला राजपूताना-मालवा रेल-क्षेत्र का न्यायालय; मेरवाड़ा का उप-कमिश्नर का न्यायालय जो दीवानी मुकदमों का निर्णय करता है। फौजदारी मुकदमों का रेल पुलिस-अध्यक्ष निर्णय करते है। अंग्रेजी रेजीडेन्ट को भी मजिस्ट्रेटी अधिकार प्राप्त हैं। आबू में, आन्द्रा, आबू, खराड़ी रोड़, व आबू-पर्वत के क्षेत्र का न्यायाधिकार अंग्रेजी सत्ता के हाथ में है। आबू का पृथक् मजिस्ट्रेट होता है। यह आमतौर पर अंग्रेज ही होता है।

वित्त—सिरोही राज्य की आय घटती-बढ़ती रही है। १८२२ में टाड़ लिखता है कि इसकी आय तीन चार लाख थी। १८६६ में कर्ज चुका देने के बाद राज्य के खालसा-की आय १·२५ लाख थी। १८९५-९६ में ३·८२ लाख रु० और १८९६–१८९७ ई० में ४·२१ लाख रुपये थी। १९४६–१९४७ ई० में २७,५२,३९१ रु० आय थी। राज्य में आय के साधन जकात, गृह गिन्ती, घासमारी, उत्तराधिकारी कर, ठेके, जंगल, कोर्ट फीस, आदि थे। राज्य के खर्चे में महाराव के कुटुम्ब का खर्चा, जकात विभाग, न्याय व आय-विभाग, जल-कल्याण के कार्य, सेना, पुलिस आदि थे। शिक्षा पर १९४६-४७ में ७२,३५९ रु० व स्वास्थ्य पर ६१,१९९ रु० खर्च किए गये थे। इस वर्ष का कुल खर्चा १९,४७,५१५

रु० पाए गए हैं जिससे राज्यकोष में बचत हुई प्रतीत होती है ।

मुद्रा—सिरोही की स्वयं की कोई टकसाल नहीं रही है। तीन प्रकार के सिक्कों का प्रचलन यहां पाया जाता था। (१) कलदार जो अंग्रेजी सरकार का सिक्का था (२) धब्बूशाही ताम्बे के सिक्के (३) भीलड़ी रुपया। धब्बूशाही जोधपुर से आए थे जो जोधपुर के बिजैशाही रुपयों की तरह मूल्य व भार के होते थे। भीलडी रुपयों का नाम उदयपुर के भीलवाड़ा नगर से सम्बन्धित है, जहां १८ वीं शताब्दी में इन सिक्कों को ढाला जाता था। भीलड़ी १२० रु० का मूल्य १०० कलदार होता था। १९०३-१९०४ ई० में १५ लाख कलदार रुपयों तक भीलड़ी से परिवर्तित करने का अधिकार सिरोही राज्य को प्राप्त हुआ था। १९४७ में कलदार रुपया ही सिरोही का मुख्य सिक्का था।

भूमि प्रबन्ध—सिरोही में भूमि पर अधिकार और भूमि-व्यवस्था ठीक उसी प्रकार की रही जिस प्रकार राजस्थान के अन्य राज्यों में थी। गिरासिया क्षेत्र में गिरासियों को भूम अधिकार प्राप्त थे। शासक के अधिकार की भूमि खालसा कहलाती थी और यह भूमि कम अधिक होती रहती थी क्योंकि कभी राज्य जागीरी भूमि छीन लेता था कभी अपने भाइयों में बंटवारा करा देता था या मन्दिरों में दान के लिए दे देता था। सिरोही में तीन प्रकार की प्रणाली से भूमि-सम्बन्ध नियमित होता था। खालसा, जागीर व शासन के द्वारा राज्य व भूमिदारों के बीच सम्बन्ध आंका जाता था। इसमें एक तिहाई खालसा भूमि होती थी; जागीरी भूमि बेची नहीं जा सकती थी और शासन की भूमि कर-मुक्त भूमि होती थी जो किसी मन्दिर को दान में; या चारण, भाट, व ब्राह्मणों को दान में दी हुई होती थी। खालसा में रैयतवारी भूमि-प्रबन्ध था। भाकर में गिरासियों को भूम-अधिकार प्राप्त होने से कम कर पर कुछ सेवा के बदले में, (गांव रखवाली का कार्य) लिया जाता था। आबू के लोगों को कुछ पैतृक अधिकार भी थे।

राज्य की आय जिन्स के रूप में एकत्रित की जाती थी और १/५ से १/३ के बीच में होती थी। राजपूत, भील, मीनों, कोलीयों, कुछ ब्राह्मणों, कुछ महा-जनों को सुविधाएँ इसमें दी जाती थी। प्रारम्भ में बटाई प्रणाली काम में ली जाती थी। बाद में कानकूट प्रणाली प्रयोग में लाई जाने लगी। कहीं कहीं नकद कर लिया जाता था। जो दो रुपये से पांच रुपये हाली या जोड़ी होता था। १९०३-१९०४ से नकदी लगान (बीघोड़ी) कुछ क्षेत्रों में लागू किया गया। इसमें प्रति बीघा आठ आने से पाँच रुपये तक लगान लिया जाता था। खालसा के बाहर जिन्सों के रूप में कर लेने की प्रणाली अभी तक प्रचलित है।

भूमि-कर के अलावा आय के साधनों में अफीम, नमक, शराब, जड़ी-बूटियें, स्टाम्प आदि थे जिनकी औसतन आय पचास हजार के आसपास थी।

सेना—राज्य के पास एक छोटीसी सेना है जिसमें १२० पैदल, पाँच तोपची और आठ तोपें हैं। पैदल टुकड़ी राजधानी में रहती है और जेल, राजमहल की सुरक्षा के लिए काम में लाई जाती है। कभी कभी उपद्रव दबाने का काम भी यह टुकड़ी करती थी। सैनिक बकायदा सैनिक शिक्षा में शिक्षित व बन्दूक चलाने में निपुण होते हैं। ऐरनपुरा में अंग्रेजों की ४३ वीं रेजीमेन्ट की छावनी थी। इस रेजीमेन्ट से सिरोही में शान्ति बनाए रखने की सहायता मिलती रहती थी। राज्य की ओर से सुरक्षा के लिए १०० सिपाही दिए जाते थे। आबू की केडेट कम्पनी के अलावा राज्य में बम्बई-बड़ोदा सेन्ट्रल इन्डिया वालन्टीयर राइफल्स रहते थे।

पुलिस-जेल—पुलिस टुकड़ी का अध्यक्ष पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट होता है जिसके नीचे ५ नायब फौजदार, ३ जमादार, ८० थानेदार और ६६ घुड़ सवार पुलिस होती है। पहले हर तहसील में एक थानेदार होता था जो तहसीलदार के अधीन शान्ति बनाए रखने का उत्तरदायी होता था परन्तु बाद में (१९०६ के बाद) राज्य-कार्य्य के लिए ९ भागों में बांट दिया गया। प्रत्येक भाग का अध्यक्ष नायब फौजदार या जमादार होता है जो प्रति सप्ताह ज्यूडिशीयल अफसर को अपनी डायरी देता पर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के अधीन होता है। पुलिस में अधिकतर राजपूत व मीणों को भर्ती किया जाता है। जागीरी पुलिस पृथक् होती थी जो सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस की देख-रेख में कार्य करती है। रेलवे पुलिस भारत सरकार के अधीन कार्य करती है और बम्बई आई० जी० पी० के आदेश व निर्देशन में रहती है। राजधानी में एक केन्द्रीय जेल है और प्रत्येक तहसील में एक सबजेल होती है।

सिरोही के ऐतिहासिक स्थान

सिरोही—सिरोही राज्य की राजधानी है । इसका नाम सिरवणा पहाड़ियों के नाम के कारण पड़ा । इन पहाड़ियों के पश्चिमी भाग में यह नगर बसा हुआ है । इसकी स्थापना राव सहसमल ने वि० सं० १४८२ (१४२५ ई०) में की । इसके पिता राव शोभा ने वि० सं० १४६२ (१४०५ ई०) में इसके पूर्व में पुरानी सिरोही का निर्माण कराया था । इस नगर में राजमहलों के अलावा एक जैन मन्दिर, जिसे चौमुखो कहा जाता है ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रसिद्ध है । इसका निर्माण वि० सं० १५३४ (१५७७ ई०) में हुआ । सिरोही से ३ मील की दूरी पर सोलहवीं शताब्दी में बना सारणेश्वर महादेव का मन्दिर है जो राज्य के कुल देवता का मन्दिर है । इस मन्दिर के परकोटे को ऐसा कहा जाता है कि मालवा के मुसलमानी शासक ने बनवाया था क्योंकि उसका कुष्ठ रोग इस मन्दिर के पानी में नहाने से दूर हो गया था । यहां सिरोही शासकों को श्मशान-भूमि भी है । अब सिरोही इसी नाम के जिले का मुख्यावास है । ई० सन् १९५१ में यहां की आबादी ११,९५६ थी ।

पिंडवाड़ा—गुप्तकाल के बाद सूर्य-मन्दिरों का निर्माण लगभग बन्द हो गया था लेकिन कुछ स्थानों पर यह परम्परा बनीं रही । पिंडवाड़े का वर्तमान लक्ष्मी-नारायण का मन्दिर पहले सूर्य मन्दिर था । मन्दिर के दो स्तम्भ वाले तोरण के आकार की चौखट के मध्य में सूर्य-मूर्ति स्थापित थी । चौखट में अन्य मूर्तियाँ सूर्य की ही हैं । मूर्ति के समक्ष चौक के बीच में बने हुए पत्थर के एक स्तम्भ के ऊपर कमलाकृति चक्र बना हुआ है जो सूर्य के वाहन का सूचक है । इस गांव में सूर्य की मूर्तियों की भरमार है। ये मूर्तियाँ द्विभुज हैं, सिर पर मुकुट है, छाती पर कवच, दोनों हाथों में कमल है । इस मन्दिर में परमार राजा धारावर्ष के दो

लेख वि. सं. १२५५ के प्राप्त हुए हैं। पिंडवाड़े से करीब ३ मील दूर अजारी गांव में परमार राजा यशोधवल के समय का वि० सं० १२०२ (११४५ ई०) चन्द्रावती के राजा रामसिंह के समय का वि० सं० १२२३ (११६६ ई०) राजा धारावर्ष वि० सं० १२४७ (११९०) के लेख प्राप्त हुए हैं। ई० सन् १९५१ में इस कस्बे की आबादी ५,५२१ थी। पिंडवाड़े से ४ मील उत्तर-पश्चिम में वामणवारजी में धारावर्ष वि० सं० १२४९ (११९२ ई०) का शिव-मन्दिर है और भाड़ोली में शान्तिनाथ का प्राचीन जैन मन्दिर है। वि० सं० १२५१ (११९८ ई.) के लेख में इसे महावीर का मन्दिर लिखा है जिससे प्रतीत होता है कि पहले यह महावीर का मन्दिर था। शान्तिनाथ की मूर्ति बाद में स्थापित की गई थी। इस मन्दिर के द्वार के बाहर चार स्तम्भों की तीन पंक्तियां है। उसके आगे दो स्तम्भ हैं जिन पर खुदाई का सुन्दर काम किया हुआ है। ये किसी हिन्दू मन्दिर के स्तम्भ प्रतीत होते हैं क्योंकि इन पर जैन मूर्तियों के स्थान पर शिव, पार्वती, गणपति आदि की मूर्तियां है। पिंडवाड़ा के अलावा, सूर्य मन्दिर कुसमा, हाथल, रोहीडा, बासा, नीतोड़ा, मूंगथला, वर्माण (ब्रह्माण) में है। वर्माण का सूर्य मन्दिर ७ वीं सदी का है।

बसन्तगढ़—यह गांव पिंडवाड़ा कस्बे से ६ मील दूर है। इसका प्राचीन नाम वट, वटकर, और वटपुर था। सम्भवतः यहां वट-वृक्षों की अधिकता के कारण इसका यह नाम पड़ा हो। यह नाम ११ वीं शताब्दी तक प्रचलित रहा। १५वीं शताब्दी में इसका नाम वसन्तपुरा पड़ा। कालान्तर में यह बसन्तगढ़ हो गया। यहां के खीमल माता के मन्दिर के पास वि० सं० ६८२ (६२५ ई०) का एक लेख प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर यह कहा जाता है यहां पर एक शासक वर्मलात (चरमलाट) राज्य करता था।* सम्भवतः यह वर्मलात भीनमाल† का शासक हो जिसके विषय में ह्वांगच्यांग ने अपनी यात्रा में 'पी–लो–मी–लो' के नाम से उल्लेख किया। वि. सं. १०९९ (१०४२ ई.) में बसन्तगढ़ को परमार शासक पुरणपाल ने अपनी राजधानी बनाया। पुरणपाल की बहिन लाहिनी के द्वारा निर्मित सरस्वती कुए के अभिलेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज (लाहिनी के पति) का पूर्वज भवगुप्त यहां शासन करता था। तीसरे अभिलेख वि. सं. १५०७ (१४५१ ई.) से ज्ञात होता है कि गुहिलोत शासक कुम्भकरण

---

* वर्मलात के अधीन काज्जिल यहां का शासक माना गया है।

† भीनमाल में इसी काल में ब्रह्मगुप्त (६२८) जिसने प्रसिद्ध ब्रह्म सिद्धान्त की रचना की। उसी युग में महाकवि माघ के दादा सुप्रभदेव भीनमाल में रहते थे।

(राणा कुम्भा) के अधीन यह क्षेत्र रहा । यहां सूर्य व ब्रह्मा के मन्दिरों के अव-शेष बिखरे पड़े हैं । सूर्य्यमन्दिर का निर्माण वशिष्ठपुरष ने किया था और पुरणपाल के समय उसकी बहिन लाहिनी ने इसका पुनरुद्धार करवाया था। यहां की खुदाई में रिखबनाथ की प्राचीन मूर्ति जो सम्भवत: ६८७ ई. की हो, पाई गई थी जिसको पिंडवाड़ा के जैन मन्दिर में स्थापित किया गया ।

शिवगंज—यह जोधपुर-सिरोही राज्य की सीमा पर व्यापारिक केन्द्र है । इसकी स्थापना राव शिवसिंह ने १८५४ ई. में की । शिवगंज जवाई नदी के बांए किनारे पर बसा है । यहां तहसील का मुख्य वास है । ई. सन् १९५१ में यहां की आबादी ५,७२० थी ।

अटवाड़ा—यह शिवगंज तहसील का एक गांव है । यहां वि. सं. १४७२ (ई. सन् १४१५) में जैन धर्म सुधारक लोकाशाह का जन्म हुआ था । वि. सं. १५२९ (ई. सन् १४७२) में उसने जैन धर्म के सुधार के लिये काफी प्रचार किया । इसका स्वर्गवास वि. सं. १५४६ की चैत्र शुक्ला ११ (१३ मार्च,१४८९) को हुआ ।

कायन्द्रा—इसका प्राचीन नाम कासहृद मिलता है । इसी स्थान पर वि. सं. १२३५ (सन् ११७८ ई.) में मोहम्मद गोरी गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ा पर चढ़ाई के समय घायल हुआ । इसकी पहाड़ी गुफाओं में जोधपुर शासक अजीतसिंह ने औरंगजेब से बचने के लिए अपने बाल्यकाल के दिवस बिताए थे । यहां कई सूर्य्य मूर्तियां पाई गई हैं ।

दताणी—इस स्थान पर राव सुरताण और अकबर की ओर से भेजे गए जोधपुर शासक राठौड़ रायसिंह व सीसोदिया जगमाल से वि. सं. १६४० (ई. सन् १५८३) युद्ध हुआ जिसमें विजय राव सुरताण को प्राप्त हुई । परमार धारावर्ष का अन्तिम अभिलेख वि. सं. १२७६ (ई. सन् १२१९ का यहां प्राप्त हुआ है ।

चन्द्रावती—इस नगरी के बारे में ऐसा अनुमान किया जाता है कि टोलेमी के भूगोल में जिस सन्दरावती के नाम का उल्लेख आता है वह यही नगरी है । इस सन्दरावती का क्षेत्रफल १८ वर्ग मील था । यह परमार शासकों की राज-धानी थी । १३०३ ई. तक परमार यहां रहे । १३११ ई. में राव लूंभा ने इसपर अधिकार कर लिया । और जब तक सिरोही की स्थापना (१४०५) में नहीं हुई देवड़ा चौहानों की राजधानी भी यही रही । गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह (१४०५-४२) ने चित्तौड़ विजय से लौटते समय इस नगरी को भी

लूटा और यहां के मन्दिर व अट्टालिकाओं के अवशेषों को गुजरात ले गया । यहां ब्रह्मा का एक मन्दिर अवशेषों में पाया गया । शिव, गरुड़, नृतकियों की मूर्तियें यहाँ पाई गई हैं जो कला की दृष्टि से अति सुन्दर हैं ।

ऐरनपुरा—ऐरनपुरा जवाई नदी के बाएं तट पर बसा हुआ है । १८१८ई. की जोधपुर अंग्रजी सरकार की सन्धि के द्वारा जोधपुर शासक मानसिंह ने आवश्यकता पड़ने पर १५०० सिपाही देने का वादा दिया । १८३६ में जोधपुर लिजिअन का निर्माण किया गया जिसका खर्चा ११,५०००) रु. जोधपुर सरकार से लिया जाता था । इस सैनिक टुकड़ी के कप्तान डार्उनिग ने सिरोही से ऐरन-पुरा लेकर (१८३७ ई.) वहाँ छांवनी स्थापित की । इस स्थान का नाम कमा-न्डर डाउनिंग की जन्मभूमि 'एरन टापू' के नाम पर एरनपुरा रखा गया । ई. सन् १८६० में इस फौज का नाम एरनपुरा इरेग्यूलर फोर्स रखा गया था । पहिले यह फौज विदेशी विभाग के मातहत थी । १८९७ ई. में यह अंग्रेजी कमा-न्डर–इन–चीफ के अन्तर्गत हो गई । १९०३ ई. में इसका नाम ४३वीं (एरन-पुरा) रेजीमेण्ट रखा गया । १८५७ के भारतीय विद्रोह के समय यहा की भारतीय रेजीमेन्ट ने आबू पर्वत पर बसने वाले अंग्रेजों पर आक्रमण किया परन्तु उन्हें शीघ्र ही दबा दिया गया ।

आबू—आबू का प्राचीन नाम अर-बुद्ध है । यह ४००० फीट की ऊंचाई पर बसा है । इसकी सबसे ऊँची चोटी का नाम गुरुशिखर है जो समुद्र तल से ५६५० फीट ऊँची है । भू-गर्भ शास्त्रियों का ऐसा विश्वास है कि अरवली पर्वत पहले समुद्र था । कालान्तर में यह हरी भरी जमीन के रूप में प्रगट हुआ और यह पर्वत के रूप में ईसा से २५ हजार वर्ष पहले ही परिणित हुआ । यह स्थान परम्पराओं के अनुसार वशिष्ठ का निवास स्थान था । आर्यों के गुरु का निवास होने के कारण यह क्षेत्र शीघ्र ही बुद्धिवादियों के लिए आवागमन का केन्द्र हो गया । सम्भव है कि बुद्धिवादियों का पहाड़ होने से इसका नाम अर-बुद्ध पड़ा हो । वसिष्ठ के नेतृत्व में यज्ञों द्वारा अनार्यों की शुद्धि कर उन्हें आर्यों में परिणित करने की प्रणाली यहीं से आरम्भ हुई । सम्भव है कालान्तर में अनार्यों की शुद्धि का सम्बन्ध इसी प्रणाली के आधार पर होने से आबू के अग्निकुण्ड की परम्परा प्रचलित हुई हो । यह परम्परा वशिष्ठ स्थान गौमुख से सम्बन्ध रखती है ।

इस पहाड़ी का उल्लेख मेगस्थनीज ने (३०० ई० पू०) में किया था । टोलेमी ने इसे सब से पृथक चोटी स्वीकार किया है । महाभारत में उल्लेख है

कि यहां पर पृथ्वी में छेद किया गया है और विष्णु पुराण में 'परीपुत्र पर्वत पर सौराष्ट्र, सुर, अभिरास अबुद्ध आदि क्षेत्र फैले हुए हैं। जितने भी अभिलेख यहां प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में यहां शैव-मत का प्रभाव था। १०३२ ई. के बाद यहां जैनों का प्रभाव प्रारम्भ हुआ परन्तु १२३० ई. के बाद १५ वीं शताब्दी तक पुनः शैवधर्म का प्रभाव यहां होने लगा। जैन पुनः १५वीं से १८वीं शताब्दी तक अपना प्रभाव स्थापित कर सके। इस क्षेत्र के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में अधिक ज्ञान अभी तक प्राप्त नहीं हो सका ११वीं शताब्दी में यहां परमार शासक राज्य कर रहे थे। सम्भवतः मौर्यकाल से (३२६ ई. पू.) वल्लभी युग तक (८वीं शताब्दी) यह भारत की केन्द्रीय शक्ति के अधीन रहा हो। गुजरात के चालुक्यों, सोलकियो व बाघेलों के अधीन आबू के परमार शासक रहे। परमारों की दो राजधानियां थी एक चन्द्रावती दूसरी अचलगढ़। परमारों का प्रभाव १३०३ ई. तक आबू पर रहा। ११३१ ई. में आबू, देवड़ा चौहानों के अधीन चला गया । १५वीं शताब्दी के मध्य में (१४३६ ई.) राणा कुम्भा ने गुजरात के शासक कुतुबुद्दीन से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए इन पहाड़ियों में शरण ली थी। कालान्तर में उसने इस स्थान को अपने अधिकार में कर लिया। सिरोही के राव लाखा ने पुनः उसे १४५७ ई. में छीन लिया। राव सुरताण ने अकबर के विरुद्ध सफलता पूर्वक संघर्ष किया। इन्हीं अर्बुद पहाड़ियों की सहायता से गुरिल्ला रणनीति द्वारा वह मुगलाई फौजों को तंग करता रहा।

जून १८२२ में कर्नल टाड इस क्षेत्र का निरीक्षण करने आया तब वह पहला योरपीयन था जिसने आबू की खोज की। सन् १८४० तक आबू सिरोही के पोलिटिकल सुपरिनटेन्डेन्ट का गर्मी के लिए निवास-स्थान बना रहा। वि. सं. १९०२ (सन् १८४५) में राव शिवसिंह ने यहां पर अंग्रेजी सेनोटोरियम बनाने के लिए सुविधाएँ प्रदान की। १९१७ ई. में आबू का शासन अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत कर दिया गया। जब अंग्रेजी शासन की समाप्ति १९४७ में हुई तब अंग्रेजी शासन ने जाते समय अगस्त १९४७ में आबू पुनः सिरोही महाराव को लौटा दिया गया। १९४७ से १९४९ तक आबू पुनः सिरोही शासक के अन्तर्गत रहा। ५ जनवरी १९४९ को आबू पर केन्द्र की ओर से बम्बई सरकार का शासन स्थापित हो गया लेकिन २६ जनवरी १९५० को सिरोही राज्य का विभा-जन किया गया। आबूरोड़ व दिलवाड़ा तहसीलें बम्बई में मिला दी गई व शेष भाग राजस्थान में रक्खा गया। राजस्थान सरकार व जनता ने इस "ऐतिहासिक भाषाकीय,भौगोलिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण" की उपेक्षा के विरुद्ध आन्दोलन

किया । अतः १ नवम्बर १६५६ को राज्य-पुनर्गठन के समय आबू राजस्थान में पुनः मिला दिया गया ।

आबू मन्दिरों का गृह और कला का केन्द्र है आबू पर्वत पर धरातल से ४५० सीढ़ियां चढ़ने पर अर्बुद्ध देवी का मन्दिर मिलता है जो पहाड़ की गुफा के अन्दर बना है । सम्भवतः आर्य्य-बुद्धिवादियों के विचार विनिमय का स्थान यही रहा हो और वे बुद्धि देवी की पूजा करते हों । यहां पर वि. सं. १५७५ (ई. सन् १५१८) का एक अभिलेख है ।

आबू शहर से छः मील की दूरी पर अचलगढ़ है जो कि प्राचीनकाल में परमारों का गढ़ रहा था । यहां अचलेश्वर का मन्दिर, मन्दाकिनी कुण्ड आदि दर्शनीय स्थान हैं । राणा कुम्भा ने इसी स्थान पर आकर शरण ली थी । यहां कुम्भा व उसके पुत्र ऊदा की मूर्तिऐं भी हैं । श्रावण-भादों का तालाब यहां का प्रसिद्ध तालाब है ।

अचलगढ़ के नीचे ओरिया में शैव-मन्दिर है जहां वि. सं. १२६५ (ई. सन्
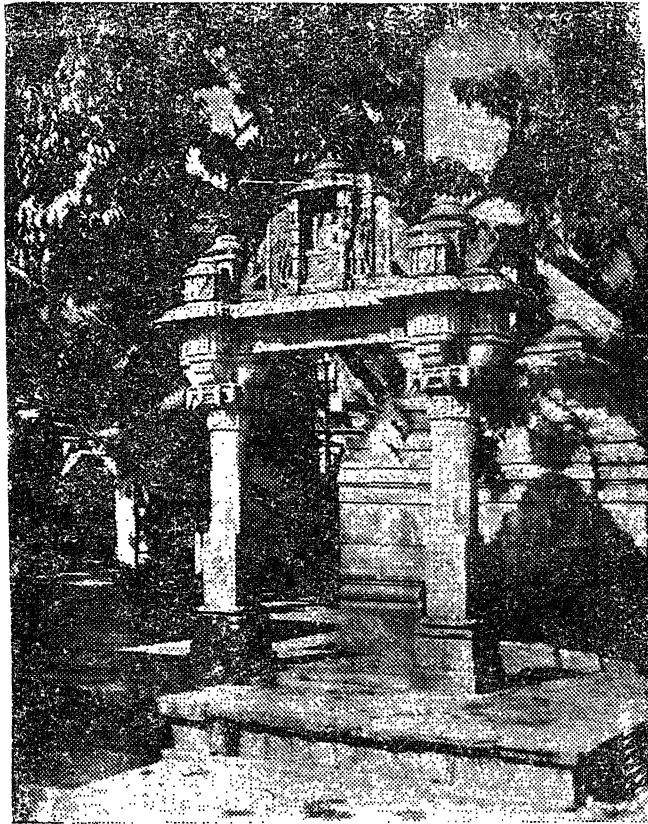
अचलेश्वर मन्दिर का कीर्ति स्तम्भ

१२०८)'के भीमदेव द्वितीय व धारावर्ष परमार के अभिलेख खुदे हुए हैं। ओरिया से ३ मील की चढाई पर ५६५० फुट ऊँची गुरू शिखर की चोटी है। यहाँ एक मन्दिर भी है। कहा जाता है यहाँ दत्तु व्रज-गणपति रहता था जिसने प्रथम बार इस चोटी को ढूंढ निकाला। रामानंद ने १४वीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन को प्रारम्भ करने के पहले यहीं निवासकर भगवत् ध्यान किया था।

आबू नगर से २ मील की दूरी पर गौमुख स्थान है जहाँ पहाड़ी के नीचे ५०० सीढ़ीयों से जाना पड़ता है। यहाँ वशिष्ठ का मन्दिर है। यहाँ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि १३३७ ई. में एक महादेव पाड़ही ने चन्द्रावती के चौहान शासक तेजसिंह के पुत्र कानरदेव के तत्त्वाधान में इसे निर्मित किया। मन्दिर के पास धारावर्ष परमार की मूर्ति है। कुछ लोग इसे इन्द्र मानते हैं। यहाँ का प्रसिद्ध अग्निकुण्ड आज तक सुरक्षित रखा हुआ है। कई मूर्तिऐं यहां बिखरी पड़ी है जिसमें बुद्ध की मूर्ति आकर्षक हैं जिस पर १२६७ वर्ष अंकित है। अनाद्रा में देवगणों के कई मन्दिर है। नरसिंह और विष्णु के दस अवतारों की मूर्तियां एक साथ मिलती है। परम्परागत कथाओं के अनुसार प्राचीन लाखनगर यहीं स्थित था।

आबू शहर से एक मील की दूरी पर प्रसिद्ध देलवाड़ा का जैन-मन्दिर समूह हैं। इस स्थान का नाम देवल वाड़ा था जिसका अर्थ मन्दिरों का स्थान है। इस समूह में पांच जैन-मन्दिर हैं जिसमें चार मन्दिर मुख्य है। इन मन्दिरों का पृथक चौकोर दायरा है और एक ही ढंग से यह दायरा निर्मित है। सब-मन्दिर संग-मरमर पत्थर के बने हुए हैं। यह पत्थर पहाड़ के नीचले भाग झारीवाव से लाकर मन्दिर के काम में लगाया गया था। इन मन्दिरों के निर्माण में जिस चतुराई से सजावट की गई है। वह अद्वितीय है। छतों पर लटकते हुए कमल के फूल की तरह आच्छादित लटकन इतने सुन्दर बनाए गए हैं, मानों सुन्दरता का स्वप्न साकार हो प्रगट हो गया है। कलाकार की छेनी से निर्मित इन मन्दिरों में दो मन्दिर उच्च-कोटि के बने हुए हैं। एक मन्दिर विमलशाह का मन्दिर कहलाता है। यह आदिनाथ का जैन-मन्दिर है। इसकी स्थापना गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के मंत्री सेनापति विमलशाह ने वि.सं. १०८८ (ई. सन् १०३१) में कराई थी। परमार शासक धंधुक पर विजय प्राप्त कर विमलशाह ने उससे यह भूमि ली और यहां कला केन्द्र स्थापित किया। ग्यारहवीं सदी में भुवनेश्वर प्रणाली के मन्दिरों का निर्माण युग था। आबू का यह मन्दिर उसी प्रणाली की परम्परा में बनाया गया था। इस मन्दिर को विमलवसही भी कहते हैं।

इस मन्दिर में आदिनाथ की मूर्ति है जिसकी आंखों में हीरे चमकते हैं और

जिसकी माला मणियों से बनी हुई है। इसके समक्ष एक चबूतरा है जो कवुले
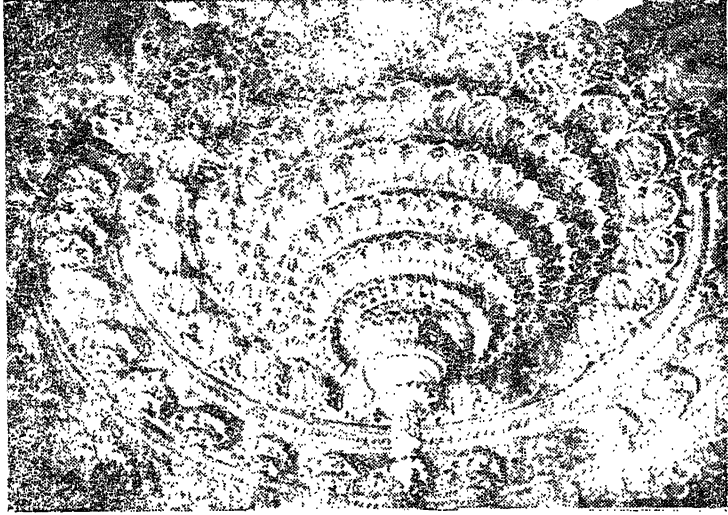
विमलवसही के जैन मन्दिर का सभा मण्डप

आंगन से ३ सिढ़ी उपर है। यह चबूतरा और आंगन ४८ स्तम्भों पर आधारित मंडप से ढका हुआ है बीच के आठ स्तम्भों पर गुम्बज बनाया गया है। यह पूर्ण मन्दिर बाहर से १४० व ९० फुट दिवार से घिरा हुआ है। जहां दो कतारों में स्तम्भ हैं इनमें सुरक्षित छोटे जिनालय हैं। मन्दिर के समक्ष हस्तिशाला बनी है जिसमें दरवाजे के सामने विमलशाह की अश्वारूढ़ पत्थर की मूर्ति है। हस्तिशाला में पत्थर के बने हुए दस हाथी हैं।

दूसरा कलापूर्ण मन्दिर वस्तुपाल और तेजपाल का है। इस मन्दिर को नेमिनाथ या लूणवसहि का मन्दिर भी कहते हैं। इसकी स्थापना वि. सं. १२८७ (१२३१ ई.) में वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपाल ने कराई थी। इस मन्दिर की बनावट विमलशाह के मन्दिर की तरह ही है। मुख्य मन्दिर, गुम्बजदार सभा-मण्डप, अगल-बगल में छोटे-छोटे जिनालय पीछे की ओर हस्तीशाला भी इसमें है। इस मन्दिर की छतों में जैनधर्म की अनेक कथाओं के चित्र भी अंकित हैं। मुख्य मन्दिर के द्वार के दोनों ओर बड़ी बारीकी से बने हुए दो ताक हैं जिन्हें देवराणी–जेठाणी के गोखले कहते हैं। इस मन्दिर की रचना शोभनदेव नाम के शिल्पी ने की थी।

लूणवसही के जैन मन्दिर का सभा-मण्डप

लूणवसही में गोखला

इन मन्दिरों के विषय में टॉड ने लिखा है कि भारत में सुन्दरता में इन मन्दिरों की बराबरी ताज के अलावा दूसरी कला कृति नहीं कर सकती है। फर्गुसन का कहना है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों का उभार जिस कोमलता और चतुराई से किया गया है वह अन्य कहीं नहीं मिलते हैं। गोथिक-प्रणाली पर बने हुए वेस्टमीनीस्टर का सप्तम गिरजागर इस कला के सामने असुन्दरसा लगता है। फार्वस ने रसमाला में कहा है कि 'इन मन्दिरों की खुदाई के काम में स्वभाविक निर्जीव पदार्थों के चित्र बनाए हैं इतना ही नहीं किन्तु सांसारिक जीवन के दृश्य, व्यौपार तथा नौका शास्त्र सम्बन्धी विषय एवं युद्धों के चित्र भी खुदे हुए हैं।

अन्य जैन मन्दिरों में एक पारसनाथ का मन्दिर है और दूसरा आदिनाथ का। पारसनाथ के मन्दिर को चतुर्मुख देव मन्दिर भी कहते हैं। इस मन्दिर के गुम्बज सीधे सादे है पर सामान्य रूप में आकर्षण पैदा होता है। आदिनाथ के मन्दिर स्तम्भ, घंटी व श्रंखला से आच्छादित हैं। बौद्ध कला का प्रभाव इसमें स्पष्ट प्रतीत होता है। ये दोनों मन्दिर १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ के माने जाते हैं। दिगम्बर जैनों का एक मन्दिर मुख्य सड़क के किनारे पर बना हुआ है।

देलवाड़ा में जैन मन्दिर समूहों के पीछे की ओर प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के अवशेष दिखाई देते हैं। यह स्थान बालम रसीया कहलाता है। सम्भवतः बाल्मीकी ऋषि का यहाँ निवास स्थान रहा हो और उसका नाम बिगड़ कर बालमरसिया हो गया हो। बाल्मीकी की मूर्ति भी यहाँ स्थित है जो टूटे मन्दिर में गणपति की मूर्ति के निकट है। एक अन्य मूर्ति एक नारी की है जिसको कुंवारी कन्या बतलाते हैं। १३९५ ई. का एक अभिलेख भी यहाँ प्राप्त हुआ है। इस मन्दिर के पश्चिम की ओर एक अन्य मन्दिर है जिसमें विष्णु की मूर्ति है परन्तु इसके द्वार पर गणपति की मूर्ति होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पहले शिवलिंग था। इस पर १४६८ ई. का एक अभिलेख अंकित है।

सिरोही का प्रारम्भिक इतिहास

सिरोही राज्य एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में स्थापित होने के पहले भारतीय साम्राज्यों का अंग रहा है। दक्षिण में गुजरात और पूर्व में मालवा प्रान्त आ जाने के कारण इसकी स्वतन्त्रता का स्वरूप एक इकाई के रूप में कम प्राप्त किया जासकता है। सिरोही में फैले हुए जैन मन्दिर व मूर्तियों के आधार पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिरोही पर मौर्य्य शासकों का अधिकार था।* मौर्य्यों का अधिकार राजपूताने में ई. सन् ७५० तक रहा होगा।† मौर्यो के बाद सिरोही क्षेत्र पर क्षत्रपों‡ का अधिकार रहा। सिरोही राज्य में प्राप्त हुए क्षत्रपों के १२ चांदी के सिक्के, जिन्हें दम्भ कहते हैं, प्राप्त हुए हैं।§ सिरोही गुप्त साम्राज्य का अंग भी रहा और हूणों के आक्रमण के समय पश्चिमी गुप्त साम्राज्य, मालवा व राजपूताने का दक्षिणी पूर्वी भाग गुप्त शासकों की अधीनता से न रह सका। मिहिरगुल हूण ने मन्दसौर को अपनी पश्चिमी राजधानी बना कर, मालवा व राजस्थान में हूण राज्य का प्रसार किया।$ सिरोही की पर्वत माला तक हूण साम्राज्च के अवशेष अंकित किए जा सकते हैं।¶ सिरोही सम्भव

---

* ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. ८६।

† कंसबा (कोटा से ३ मील दूरी पर) शिवमन्दिर के शिलालेख में वि. स. ७६५ (७३८ ई.) धवलमोकी शासक का उल्लेख।

‡ "क्षत्रप" किसी प्रकार की जाति नहीं थी। कुशाएा-शकों ने प्रशासकीय इकाई को 'क्षत्रप' बनाया। यह व्यवस्था फारस से प्राप्त की गई। क्षत्रप नागरिक व सैनिक राज्यपाल होता था।

§ ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. ६०।

$ मन्दसौर अभिलेख।

¶ सिरोही क्षेत्र में प्राप्त हुए गदिया सिक्के जो हूणों के बताए जाते हैं।

वर्धनों के अधिकार में रहा हो लेकिन कुछ निश्चित तथ्य इसके बारे में प्राप्त नहीं हो सके हैं।

भीनमाल के चावड़ों का अधिकार सिरोही राज्य पर रहा था। चावड़ों का समय वि. सं. ६८२ (६२४ ई.) के आस पास का माना जाता है। भीनमाल के शासकों का सामन्त राजिल जो वज्रभट्ट का पुत्र था सिरोही क्षेत्र (अर्बुद देश) का स्वामी था।* पूर्व मध्यकाल में जब गुजरात के बड़नगर (आनन्दपुर) के गुहिलोतों ने अपना प्रभाव मेवाड़ के पश्चिमी क्षेत्रों पर स्थापित कर लिया तो धीरे धीरे वे अपना प्रसार चित्तौड़ की ओर करते गए। पश्चिम में उनका प्रभाव पूर्वी सिरोही में फैलने लगा।† दशवीं शताब्दि के आस पास मारवाड़ के पड़िहारों का राज्य था जिनकी शक्ति व साम्राज्य प्रसार समस्त उत्तरी भारत में फैला हुआ था। उस समय सिरोही राज्य भी इनके महाराज्य में था।‡

परिहार राजपूतों की तरह सोलंकियों की शक्ति भी सिरोही में फैली। आबू के परमार शासक आन्हेलवाडा के चालुक्यों के सामन्त बनकर रहे। सम्भवतः वि. स. १०१७ से १२५० (९६१ ई. से १२०० ई.) तक आबू के परमारों को सोलंकियों की अधीनता में रहना पड़ा। १०२४ ई. में आबू के शासक धंधुक ने सोलंकियों से स्वतन्त्र होने का प्रयास किया परन्तु सेनापति विमलशाह से पराजित होकर पुनः अधीनता स्वीकार करली।§ मोहम्मद गोरी के आक्रमण$ के बाद ११७७ ई. भीमदेव दूसरे¶ के काल से ही सोलंकियों का साम्राज्य विघटित होने लगा था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने मालिक के कार्यों को पूरा करने के लिए सन् ११९५ ई. में गुजरात पर चढ़ाई की। चालुक्य सेनापति कुंवरपाल, परमार धारावर्ष, ने उसका सामना किया पर वे हार गए। राजा भीम की मृत्यु सन् १२४२ ई. में हुई और उसके बाद ही उसके उत्तराधिकारियों में युद्ध हुआ। प्रारम्भ में त्रिभुवनपाल शासक बना पर शीघ्र ही वघेल वीसलदेव ने उसे हराकर १२४३ ई. में अन्हिलवाड़ा की गद्दीपर बैठ गया। त्रिभुवनपाल

---

* वसन्तगढ़ का वि. स. ६८२ का शिलालेख।

† सामोली (मेवाड़) में प्राप्त शिलादित्य का वि. स. ७०३ का अभिलेख।

‡ ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. १२६।

§ आबू में दिलवाड़ा का प्रसिद्ध जैन, आदिनाथ का मन्दिर विमलशाह ने बनवाया। इसका निर्माण १०३१ में समाप्त हुआ।

$ मोहम्मद गोरी इस युद्ध में हार गया था।

¶ उस समय अन्हीलवाड़ा का शासक मूलराज था। यह युद्ध आबू के पास कायंद्रा गांव के पास हुई थी (सन् ११७८ ई.)।

सम्भवत: सिरोही राज्य की ओर चला गया।* सिरोही गुजरात साम्राज्य से पृथक हो गया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है क्योंकि अर्जुनदेव बाघेला के काल तक (१२६२-१२७५ ई.) आबू के परमार गुजरात शासकों की अधीनता में रहे थे।† अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण गुजरात पर १२९९ ई. में हुआ। उस समय राजा कर्ण बाघेला अन्हिलवाड़ा पर राज्य कर रहा था। मुसलमानों के इस आक्रमण का यद्यपि उसने साहसपूर्वक विरोध किया परन्तु वह हार कर देवगिरी भाग गया। गुजरात पर मुसलमानी शासन स्थापित हो गया। अत: १३०० ई. तक सिरोही चालुक्यों के अधीन होना सम्भव प्रतीत होता है।‡

आबू के परमारों का राज्य चालुक्यों से बहुत पहले का स्वीकार किया जा सकता है। मालवा के मुंज, भोज, अर्जुन परमार की शाखा सम्भवत: आबू के परमारों से निकली प्रतीत होती है। परमार राजपूत प्रारम्भिक राजपूत ज़ातियों की एक शाखा रही। उसका क्षेत्र सिरोही, मारवाड़, पालनपुर व दातां के राज्यों तक फैला हुआ था। इस वंश के पहले राजा का नाम धूमराज लिखा मिलता है। यह कब हुआ यह अभी तक मालूम नहीं हो सका है। आबू के परमारों को गुजरात के सोलंकियों ने—मूलराज—ई. स. ९९६ के आसपास जीता।§ इसी वंश के सिंधुराज का शासन १११७ ई. के आसपास रहा।$ इसी समय से जालोर पर परमारों का अधिकार रहा। इसके पहले १००२ ई. में आबू के शासक धंधुक ने गुजरातियों से स्वतन्त्र होने के लिए चित्तौड़ में स्थित धार राजा भोज परमार के पास सहायता के लिए गया। परन्तु भीमराज के दंडनायक विमलशाह ने उसे हराकर पुन: आबू पर चालुक्यों का प्रभाव स्थापित किया।¶

गुजरात के सोलंकी शासक कुमारपाल और अजमेर के चौहान शासक अर्णोराज के बीच युद्ध के समय आबू के शासक विक्रमसिंह ने जिस कूटनीतिक चाल से आबू को स्वतन्त्र कराना चाहा वह उसके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। उसे अपना राज्य खोना पड़ा। कुमारपाल ने विजयी होकर उसे कैद कर

---

* उसके वंशजों का अधिकार 'माल के मगरे' (सिरोही) में रहा प्रगट होता है।

† वि. सं. १३२० का अर्जुनदेव का अजारी शिलालेख। अजारी गांव सिरोही राज्य की पींडवाड़ा तहसील में है। यह शिलालेख अजारी के गोपालजी के मन्दिर में पाया गया था।

‡ कर्ण के पिता सारंगदेव के समय का एक शिलालेख (वि. सं. १३५१) आबू पर विमलशाह के मन्दिर में पाया गया है।

§ बीजापुर में प्राप्त राजा धवल का शिलालेख वि. सं. १०५३ (ई. सन् ९९६)।

$ जालोर तोपखाने का शिलालेख आषाढ़ सुदि ५ सं. ११७४ (ई. सन् १११७)

¶ ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृ० १४६

लिया और आबू का राज्य उसके भतीजे यशोधवल को दे दिया ।* इसी यशोधवल के पुत्र धारावर्ष ने ई. स. ११७८ में मोहम्मद गोरी के आक्रमण के समय गुजरात के शासक को विजयश्री का श्रेय प्राप्त किया । परन्तु ११९५ ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक से यह हार गया । इसने ५६ वर्ष तक राज्य किया ।† वह अत्यन्त पराक्रमी था । कहा जाता है कि 'धारा वर्ष एक ही बाण से तीन भैंसों को मार सकता था।"‡ इस काल में प्रसिद्ध कवि सोमेश्वर हुआ जिसने "कीर्ति कौमुदी की रचना की । धारावर्ष के छोटा भाई प्रह्लाद ने§ 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' की रचना की । आबू के परमार शासकों में कान्हदेव के पुत्र प्रतापसिंह के समय में मेवाड़ से संघर्ष ई. सन् १२८७ में हुआ । प्रतापसिंह ने जैत्रकर्ण (सम्भवतः मेवाड़ का शासक जैत्रसिंह) से युद्ध कर चन्द्रावती पर अधिकार कर लिया ।$ प्रतापसिंह के उत्तराधिकारी के बारे में वर्माण गांव (सिरोही) के सूर्य-मन्दिर के एक स्तम्भलेख (१२९९ ई.) के आधार पर विक्रमसिंह को माना जा सकता है ।¶ आबू के परमारों में अंतिम शासक हूण था जिसकी राणी पिंगला थी ।|| सन् १३११ ई. के आस-पास जालोर के चौहान महाराव लूंभा ने आबू व चन्द्रावती पर अधिकार कर परमारों का शासन समाप्त किया ।

* यह युद्ध ११५० ई. में हुआ। जिन मंडनोपाध्यायकृत 'कुमारपाल प्रबन्ध' विक्रमसिंह आबू के शासक रामदेव (धंधुक का पौत्र) का छोटा भाई था। उसकी मृत्यु के बाद विक्रम ने सही उत्तराधिकारी यशोधवल से राज्य छीन लिया था ।

† ११६३ ई. का कायद्रा गांव का शिलालेख; १२१९ ई. का भकावल-स्तम्भ का अभिलेख ।

‡ आबू के अचलेश्वर मन्दिर के मंदाकिनी कुन्ड तट मूर्ति पर आधारित कथा पर ।

§ प्रल्हादन ने आधुनिक पालनपुर की स्थापना की जिसे प्रारम्भ में प्रल्हादनपुर कहा जाता था ।

$ पाटणराय मन्दिर लेख (१२८७ ई.)

¶ ओझाः सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ १५५ फुटनोट ‡

|| उपरोक्त फुटनोट पृष्ठ १५६.

राजनैतिक इतिहास

सिरोही चौहान राजपूतों की देवड़ा शाखा का प्रसिद्ध राज्य है। जैसा कि बून्दी के इतिहास में हम लिख चुके हैं कि इन तीन राजवंशों, बूंदी, कोटा तथा सिरोही की उत्पत्ति एक ही मूल पुरुष से हुई है।* चौहानों का मूल-पुरुष चाहमान माना जाता है जिसके वंशज वासुदेव ने सांभर में ८ वीं शताब्दी में राज्य स्थापित किया।† वासुदेव का बारहवां वंशज वाकपतिराज हुआ। जिसके एक पुत्र सिंहराज सांभर व अजमेर की शाखा का मूलपुरुष हुआ; दूसरा लाखन नाडोल की शाखा का संस्थापक हुआ। इसी लाखन का छट्ठा वंशधर आल्हण वि. सं. १२०९ (ई. सन् ११५२) में हुआ। इसके छोटे भाई माणिक्य-राज के वंश में बून्दी और कोटा के हाडा चौहान नरेश हैं और आल्हण का पुत्र कल्हण (११६४ ११८२) नाडोल में रहा और उसका तीसरा पुत्र कीर्तिपाल (केतु) ने सोनगिरी (जालोर) को पंवारों से जीत कर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और सोनगिरी पर राज्य होने से यहां के चौहान सोनगरा चौहान कहलाने लगे।‡ इसी कीर्तिपाल के पुत्र समरसिंह का दूसरा पुत्र मानसिंह§ सिरोही की शाखा का मूलपुरुष हुआ।

चौहानों की देवड़ा शाखा किस प्रसिद्ध पुरुष के पीछे कहलाई इस विषय में इतिहास-वेत्ताओं में मतभेद है। ख्यातों में लिखा है कि कीर्तिपाल का पड़पोता

* गेहलोतकृतः बूंदी राज्य पृ. सं. २९-३४ फुटनोट ३४ पृष्ठ। –
  (चौहानों की उत्पत्ति के बारे में विस्तृत वर्णन)

† उपरोक्त पृ० सं. ३७.

‡ चौहानों की शाखाओं का उल्लेख उपरोक्त पृ. सं. ३६-४२ में देखें।

§ मानसिंह का भाई उदयसिंह जालोर का शासक था (१२०५-१२४९ ई.)

और मानसिंह का पुत्र प्रतापसिंह जो देवराज भी कहलाया जाता है, से देवड़ा शाखा का प्रचलन हुआ। लेकिन आबू के अचलगढ़ मन्दिर के सं० १२२५ और १२२६ के शिलालेखों में देवड़ा शाखा का नाम मिलता है। प्रतापसिंह (देवराज) का समय वि. सं. १२६० (ई. सन् १२०३) के लगभग है अतः देवड़ा शाखा का उसके कारण प्रचलित होना संभव नहीं।*

कई इतिहासवेत्ताओं† का यह मत है कि नाडोल के राव लाखन के पोते ललिराज (देवराज) जो सांचोरे चौहानों का प्रसिद्ध पुरुष था उसके नाम से देवड़ा शाखा कहलाई और इसीसे आबू के लेखों में देवड़ा शाखा का नाम आया। यह बहुत कुछ संभव है कि नाडोल के चौहानों से ही देवड़ा शाखा प्रारम्भ हुई परन्तु पीछे से उस शाखा का लोप हो गया हो और मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह (देवराज) ने इस शाखा का पुनः उद्धार किया हो। प्रतापसिंह (देवराज) के वंशज ही देवड़ा कहलाये हों। उसका यह भी प्रमाण है कि मानसिंह के ५ पुत्र थे। उनमें से बोड़ा नाम के पुत्र से बोड़ावत शाखा, बाला के नाम से बाला और चीबा के नाम से चीबा, और अभै के नाग से अभावत अब तक कहलाते हैं। इसलिये संभव है कि मानसिंह के पुत्र प्रताप (देवराज) के नाम से चौहाणों की यह शाखा देवड़ा कहलाई हो।

जो क्षेत्र इस समय सिरोही राज्य के अन्तर्गत है उस पर कई राजवंशों का राज्य देवड़ों से पहले रहा। मौर्य, क्षत्रप, हूण, बैस, चावड़ा, गुहिलोत, परिहार, सोलंकी और परमार राजवंशों का इस क्षेत्र पर आधिपत्य रहा। सिरोही के आदि निवासी भील थे। गहलोतों ने भीलों को निकाल कर अपना शासन स्थापित किया। बाद में परमारों का इस प्रदेश पर राज्य रहा। जब नाडोल के चौहान राव लाखन के वंशजों को कुतुबुद्दीन ने १२वीं शताब्दी में हरा दिया तब चौहान भीनमाल, सांचोर और जालोर की ओर जा बसे जहां इन्होंने परमारों को शनैः शनैः उस राज्य से बेदखल कर दिया। लाखन के वंशज अल्हण के पुत्र कीर्तिपाल ने पंवारों से जालोर छीन लिया। यह एक वीर पुरुष था। वह शहाबु-

---

* ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास फुटनोट पृष्ठ १६२-१६३.

† वंशभास्कर में उल्लेख है कि माणकराव चौहान के बेटे निर्वाण के वंश में देवट हुआ जिसके वंशज देवड़े कहलाए।

नेणसी की ख्यात में उल्लेख है कि नाडोल के राव लाखणसी के वंश में अश्वराज अत्यन्त सुन्दर था। देवी से शादी की जिसके पुत्र देवड़े कहलाए।

सिरोही ख्यात में उल्लेख है कि लाखण के पुत्र सोहिय के बेटे का नाम देवराज था।

ईन गौरी से वि. सं. १२३५ में आबू की तल्हटी में लड़ा था और सुल्तान को उस युद्ध में घायल होकर लौटना पड़ा। उसने मेवाड़ का भी कुछ भाग दबा लिया था। इस कारण राणा जैत्रसिंह ने उस पर बाद में चढ़ाई कर नाडोल को नष्ट कर दिया। पंवारों की राजधानी चंद्रावती थी जो आबू पहाड़ के तल में बसी हुई थी। बहुत समय तक पंवारों और नाडोल के चौहानों के बीच इस क्षेत्र में लड़ाइयां होती रहीं। कीतिपाल का ज्येष्ठ पुत्र और उत्ताराधिकारी समरसिंह (वि. सं. १२३९-१२४२ ई. सन् ११८२-११८५) था। इसने समरपुर नामक नगर बसाया। समरसिंह के कनिष्ठ पुत्र मानसिंह को जालोर के आसपास के कुछ गाँव गुजारे के लिये जागीर में मिले। यही शिरोही शाखा का मूल-पुरुष गिना जाता है। इसका पुत्र प्रतापसिंह था। जिसका दूसरा नाम देवराज भी था।*

बीजड़† (विजलराय)
[वि. सं. १३३३-१३६७]

यह प्रतापसिंह का पुत्र था। इसने मणादर और बड़गांव पठानों से छीन कर अपना अधिकार कर लिया। वि. सं. १३३३ (ई. सन् १२७६) तक इसने आबू के पश्चिम के बहुत से प्रदेश को पंवारों से छीन लिया।‡ वि.सं. १३४० (ई. सन् १२८३) में इसने मण्डार परगना भी मुसलमानों को हरा कर अपने कब्जे किया।§ इस युद्ध में उसका पुत्र लूणकर्ण मारा गया। इसके ५ पुत्र लूणकर्ण (लूणा) लूंभा, लक्ष्मण, लूणवर्मा और लढा थे।$ इसकी रानी का नाम नार्मल्लदेवी था।

---

* सिरोही स्टेट गजेटियर पृ. २६८ तथा सिरोही राज्य का इतिहास पृ. १८६

† इसे विगड़ भी कहा जाता है राजपूताना गजेटियर भाग ३अ पृ. २३८

‡ टोकरा शिलालेख—वि. सं. १३३३ की फाल्गुन कृष्णा ६

§ राजपूताना गजेटियर भाग ३अ पृ. २३८

$ डा० ओझाकृत सिरोही राज्य का इतिहास में ४ पुत्र होना लिखा है—लावण्य कर्ण, लुँठ (लूम्भा) लक्ष्मण और लूणवर्मा (लूणा) बड़े भाई लावण्यकर्ण की मृत्यु अपन पिता के जीवनकाल में ही हो जाने के कारण लूम्भा उत्तराधिकारी हुआ (पृष्ठ १८४)।

महाराव लूम्भा
[वि. सं. १३६८-१३७७]

यह बीजड़ का द्वितीय पुत्र और उत्तराधिकारी था । वह (१३१० ई.) गद्दी पर बैठा है ।* इसने सम्वत् १३६८ (ई. सन् १३११) में परमारों से उनकी राजधानी चन्द्रावती छीन ली ।† लूंभा ने परमारों से आबू किस प्रकार लिया इसके लिये मूता नैणसी ने लिखा है कि देवड़ों ने परमारों से छल करके कहलाया कि हम अपनी कन्याऐं परमारों को ब्याहना चाहते हैं । जब परमार आबू से नीचे तलहटी में बरात लेकर आये तब देवड़ा बन्धुओं ने जो वास्तव में सैनिक थे परमार वरों को मार डाला । इन देवड़ा सैनिकों ने बाहर परमार बरातियों का काम तमाम किया । यह भी कहा जाता है कि देवड़ों ने परमारों को कहा कि अपनी कन्याऐं ब्याहने के लिये लाओ । जब परमारों ने ऐसा ही किया और आबू के नीचे बाड़ेली गांव में आये, तब देवड़े उन पर टूट पड़ और उनका काम तमाम कर आबू पर अपना झंडा जा फहराया ।‡ ये सब कपोल-कल्पित बातें हैं । वास्तविकता तो यह है कि देवड़ों ने परमारों को कमजोर देख कर इनसे राज्य छीन लिया और बाद में छुटकर लड़ाईयां होती

---

* बडवा [भाटों] बहियों में इसका उल्लेख; नैनसी मुहता अपनी ख्यात में परमारों से चन्द्रावती विजय की तिथि ई. सन् ११५६ का उल्लेख करता है पर यह सत्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि परमारों की शक्ति १३१२ ई. तक रहना प्रतीत होता है (ओझा. सिरोही राज्य का इतिहास पृ. १५५)

† आबूरोड़ स्टेशन से ३ मील दक्षिण में उजड़ा हुआ गांव है, विमलशाह चन्द्रावती का ही निवासी था । यह नगरी परमारों से हट कर १ वर्ष तक देवड़ों के कब्जे रही । कहते हैं कि इस नगर के (संगमरमर के मन्दिरों को तोड़ कर) अहमदाबाद की जुम्मा मसजिद बनवाई गई थी ।

‡ राजपूताना गजेटियर भाग ३ए पृ. २३८ ।

रही। लूम्भा ने वि. सं. १३७७ (सन् १३२.० ई.) में अचलेश्वर मंदिर का जीर्णोद्धार करा कर एक गांव हैठुजी भेंट किया था।* उसके दो पुत्र तेजसिंह और तिहूणाक थे। इसका स्वर्गवास सं.१३७७ (ई.सन् १३२१) के आसपास हुआ।

महाराव तेजसिंह
[वि. सं० १३७७-१३९३]

यह लूंभा का ज्येष्ठ पुत्र था। इसके समय में भी चन्द्रावती देवड़ों की राजधानी रही। आबू के मन्दिरों में† इसके समय के तीन शिलालेख मिले हैं जिससे ज्ञात होता है कि यह आबू का शासक था। इसने तीन गांव झाबटू, ज्यातूली और तेजलपुर वशिष्ठ के मन्दिर को अर्पण किये थे।‡ सम्भव है इसने वि. सं. १३९३ (१३३६ ई.) तक राज्य किया हो जैसा कि गोमुख के अभिलेख से मालूम होता हैं।§

---

* अचलेश्वर मन्दिर अभिलेख वैशाख सुदि ८, १३७७ (ई. १३२१) इस मन्दिर में उसने अपनी राणी की मूर्तिऐं भी स्थापित की थी।

† विमलेश अभिलेख ९ ज्येष्ठ सुदि—१३७८ वि. सं. (१३२१ ई.)।

‡ अचलेश्वर मन्दिर अभिलेख १३८७ वि. सं. (सन १३३०)।

§ यह अभिलेख वि. सं. १३९३ (सन् १३३६) का है।

महाराव कान्हड़देव
[वि. सं. १३६३ १४०४]

कान्हड़देव वि. सं. १३६३ (ई. सन् १३३६) में तेजसिंह का उत्तराधिकारी होकर चन्द्रावती का स्वामी हुआ ।* भाटों की बहियों में तेजसिंह, कान्हणदेव सामन्तसिंह के नाम छोड़ दिये गये हैं† परन्तु शिलालेखों के अनुसार यह निश्चित है कि इन तीनों ने चन्द्रावती पर राज्य किया । उसने आबू पर वशिष्ठ मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था और वीरवाड़ा नामक गांव मन्दिर के भेंट किया ।‡ आबू के अचलेश्वर के मन्दिर में कान्हणदेव की एक पाषाण मूर्ति भी बनी हुई है जिसके नीचे वि. सं. १४०० खुदा हुआ है । इस मूर्ति के गले में दोलड़ी कंठी, दोनों हाथों में कड़े और भुजबन्द, घुटनों तक लटकता हुआ दुपट्टा, धोती पर कमर-बन्ध बंधा है । सिर पर बाल और गर्दन के नीचे तक दाढ़ी है । तत्कालीन वेष-भूषा का कलात्मक रूप में उच्चतम प्रदर्शन किया गया है ।§

---

* आबू में वशिष्ठ मन्दिर का शिलालेख वैशाख सुद १०, १३९४ (१३३७ ई.) ।

† मुहता नेणसी की ख्यात में ये नाम छोड़ दिए गए है और न सिरोही की ख्याती में इनका नाम पाया जाता है ।

‡ वशिष्ट मन्दिर शिलालेख १३३७ ।

§ अचलेश्वर मन्दिर अभिलेख १३४३ ई.

सामन्तसिंह
[वि. सं. १४००-१४०४]

कान्हड़देव की मृत्यु के बाद सामन्तसिंह राज्य का स्वामी हुआ।* इसका शिलालेख आबू पर मिला है। इसने वशिष्ठ के मन्दिर को ३ गांव भेंट किये थे।† सामन्तसिंह के कोई पुत्र न था। अतः उसकी मृत्यु के बाद महाराव सलेखां आबू का राजा हुआ। यह महाराव तेजसिंह के भाई तेलोक का पुत्र था।‡ इसके चार रानियां थी। इसने आबू तलहटी में ऋषिकेश का मन्दिर बनवाया था। यह वि. सं. १४०४ (ई. सन् ७३४७) युद्ध में काम आया। इसके दो पुत्र रणमल और भीखरसी थे।

रणमल
[वि. सं. १४०४–१४४६]

इसके चार रानियां थी, जिनसे इनके दो पुत्र शिवभाण (अर्थात् शोभा) और गजा§ हुए। ज्येष्ठ पुत्र शिवभाण उत्तराधिकारी हुआ।

---

* फार्बस ने कान्हड़देव के बाद सामन्तसिंह का आबूराज होना लिखा है (रसमाला पृ. ३४०; बहुरा अनुवादित)।

† सीतारामकृत हिस्ट्री ऑफ सिरोही पृ. १६३८।

‡ उपरोक्त पृष्ठ १६४।

§ डुंगरोत देवड़ा शाखा का संस्थापक गजा ही माना जाता है।

शिवभाण

[वि. सं. १४४६–१४८१]

यह शोभा के नाम से प्रसिद्ध था। यह वि. सं. १४४६ (ई. सन् १३६२) में गद्दी पर बैठा। इस समय तक इस प्रदेश की राजधानी चन्द्रावती थी। लेकिन यहां राजधानी रखना सुरक्षित नहीं था। मुसलमानों के आक्रमण होते रहते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक, अलाऊद्दीन खिलजी के आक्रमण से इसकी पूरी तबाही हो गई थी अत: नई राजधानी बसाना आवश्यक हो गया, इन कारणों से शिवभाण ने सरणवा पहाड़ी पर सं. १४६२ (ई. सन् १४०५) में सिरोही किले की नींव रखी और अपने नाम से शिवपुरी नगर बसाया।* यह शहर वर्त्तमान सिरोही नगर से २ मील पूर्व में उजड़ा पड़ा हुआ है। सिरोही शब्द सरणवा का ही अपभ्रंश है। शिवभाण की बसाई हुई यह पुरानी राजधानी २० वर्ष बाद उसके पुत्र सहसमल्ल के समय में छोड़ दी गई क्योंकि यहां जल आदि की कमी थी।† शिवभाण के तीन पुत्र सहसमल्ल, सीहा और सातल थे।

---

* ओझा: सिरोही का इतिहास पृष्ठ १६३।

† राजपूताना गजेटियर जिल्द ३ 'अ' पृ० २३६।

सहसमल्ल
[वि. सं. १४८१–१५०८]

यह वि. स. १४८१ (ई. सन् १४२४) में गद्दी पर बैठा। इसने सं. १४८२ की वैशाख सुदि २ (ई. सन् १४२५) की २० अप्रेल) को वर्त्तमान नगर बसाया॰ जोकि मौजूदा राजधानी है। इसने मालमगरा नामका प्रदेश सोलंकियों से छीन कर अपने राज्य में मिलाया।† इसने मेवाड़ के सीमावर्ती (वर्त्तमान तहसील पीण्डवाड़ा से लगते) कुछ गांव भी दबा लिये थे। इस कारण महाराणा कुंभा ने सिरोही राज्य पर हमला कर दिया।‡

वर्त्तमान पीण्डवाड़ा तहसील के कुछ गांव (बसन्तगढ़ आदि) पर महाराणा कुंभा ने कब्जा कर आबू को भी अपने अधिकार में कर लिया। आबू पर कुंभा ने अचलगढ़ का किला और अचलेश्वर महादेव का मंदिर व कुण्ड वि. स. १५०९ (ई. सन् १४५२) में बनवाया। बसन्तगढ़ में भी एक किला बनवाया।§ बाद में सहसमल्ल के द्वितीय पुत्र महाराव लाखा ने गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन की सहायता से महाराणा कुंभा को आबू से निकाल कर वापस अपना अधिकार जमाया।

सहसमल्ल के तीन पुत्र—देवीसिंह, लाखा और सांगा थे। देवीसिंह बाल्य-काल में ही मर गया। इससे द्वितीय पुत्र लाखा राज्य गद्दी पर बैठा।

॰ ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ १९४.

† राजपूताना गजेटियर भाग ३ ए पृ० २३९.

‡ सीतारामकृत हिस्ट्री ऑफ सिरोही राज्य पृ० १६५ ख्यातों में उल्लेख कि मेवाड़ के राणा कुम्भा गुजरात की फौज से हार कर आबू के अचलगढ़ में छिपे। मुसलमानी फौज लौट जाने पर आबू से वे न हटे। इस पर सहसमल के पुत्र लाखा ने गुजरात व मालवा की सहायता से महाराणा को निकाल दिया।

§ ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ० १९५.

लाखा

[वि. सं. १५०८–१५४०]

यह वि. सं. १५०८ (ई. सन् १४५१) में राज्य का स्वामी हुआ। इसका मुख्य काम महाराणा कुंभा को आबू से निकाल कर वहां पर अपना अधिकार करना था। कुंभा जैसे प्रबल शत्रु का सहज ही में आबू से हटना कठिन था लेकिन जब मांडू व गुजरात के सुल्तानों ने मिलकर कुंभलगढ़ के किले पर चढ़ाई की तो कुंभा ने उसकी रक्षा करने के लिये आबू से अपनी ज्यादातर सेना हटाली। तब मौका पाकर वि. सं. १५१४ (ई. सन् १४५७) में लाखा ने मेवाड़ियों को आबू से निकाल दिया। इस कार्य में गुजरात के कुतुबुद्दीन की सेना ने भी सहायता की थी।* लाखा ने सोलंकियों के शासक भोज को मार कर उनका माल मगरे का प्रदेश (१४७३–८३) के बीच छीन लिया।†

लाखा एक वीर पुरुष था। इसके समय में सिरोही की काफी उन्नति हुई। इसने बाहर के कई व्यापारियों को बुलाकर सिरोही में बसाया। ख्यातों के अनुसार इसने पावागढ़ लेने में गुजरात के सुल्तान महमूद बेगडा को सहायता

---

* मिराते-सिकन्दरी में उल्लेख है कि आबू प्राप्त करने के लिए सन् १४५६ में कुतुबुद्दीन ने शहबान इमादुमुल्क को भेजा पर वह सफल न हो सका इस पर १४५७ ई. में कुतुबुद्दीन स्वयं आक्रमण करने गया और राणा से आबू का किला छीन कर राव लाखा को दिया। फरीश्ता ने चम्पानेर के समझोते (१४५७ ई०) में इसी प्रकार आबू प्राप्त होना लिखा है। राव लाखा को यह विजय अत्यन्त महंगी पड़ी क्योंकि मुसलमानी सैनिकों ने सिरोही में खूब लूटपाट मचाई थी (तबकते-अकबरी)।

† सीतारामकृत हिस्ट्री ऑफ सिरोही राज पृ० १६८ फुटनोट १ सोलंकी परम्पराओं के अनुसार यह युद्ध सन् १५३१ में हुआ और इस युद्ध में लाखा मारा गया कहा जाता है। पर इसमें सत्यता नहीं प्रगट होती क्योंकि लाखा का १५३१ ई. के बहुत पूर्व ही स्वर्गवास हो गया था।

दी थी। इसने पावागढ़ से कालिका की मूर्ति लाकर सिरोही में स्थापित की थी। इसने अपने नाम से लाखनाव नामक तालाब बनवाया। इसके आठ रानियां और सात पुत्र थे।

वि. सं. १५४० (ई. सन् १४८३) में इसका स्वर्गवास हुआ।

राव जगमाल

[वि. सं. १५४०–१५८०]

वह राव लाखा का ज्येष्ठ पुत्र था। यह वि. सं. १५४० (सन् १४८३) में सिरोही के सिंहासन पर बैठा। यह बहुत ही उदार नरेश था।* इसके छोटे भाई हमीर ने जगमाल की नरम प्रकृति का लाभ उठाकर अपनी जागीर को बढ़ाना आरम्भ किया और धीरे-धीरे आधे राज्य का स्वामी बन गया। उसने ब्राह्मणों के माफी के गांवों को भी छीन लिया। इस पर तंग आकर जगमाल ने हमीर से युद्ध कर उसे मार डाला।†

जब दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी ने मेवाड़ के राणा रायमल पर चढ़ाई की तब जगमाल राणा की मदद में पहुँचा और सुल्तान को हराया। इससे प्रभावित होकर राणा ने जगमाल को अपनी कन्या ब्याह दी और आबू का शासक मान लिया।‡

वि. सं. १५४४ (ई. सन् १४८८) में ईरान व खुरासान के घोड़ों व कपड़ों के कुछ व्यापारी दिल्ली से अहमदाबाद जाते हुए आबू होकर निकले। इनको

---

* ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृ० २०१

† उपरोक्त पृष्ठ २०४

‡ टाड: एनल्स एण्ड एण्टीक्वेटीज ऑफ राजस्थान जिल्द १, पृ.३४०। टाड ने आबू के शासक को मेवाड़ का सामन्त शासक उल्लेख किया है। आबू दहेज के रूप में दिया गया।

जगमाल ने लूट लिया। व्यापारियों ने गुजरात पहुँच कर वहां के सुल्तान महमूद बेगड़ा से शिकायत की इस पर महमूद बेगड़ा ने जगमाल को लिखा कि या तो घोड़े व माल वापिस दे दो नहीं तो सिरोही की खैर नहीं है। इस पर जगमाल ने सब वस्तुएँ लौटा दी। माफी मांगी व खिराज भी दिया।*

ख्यातों में लिखा है कि जालोर के बिहारी पठान, मजीदखां और जगमाल के आपस में युद्ध हुआ था। इस युद्ध में मजीदखां कैद हुआ। बाद में ९ लाख फीरोजे (सिक्के) दंड के लेकर जगमाल ने उसे वि. सं. १५६१ (ई. सन् १५०४) में छोड दिया।†

महाराव जगमाल का देहान्त वि. सं. १५८० (ई. सन् १५११) में हुआ था। इसके ५ रानियां थी। इसकी रानी आनंदा बाई सीसोदिया महाराणा रायमल की पुत्री थी। इससे पाटवी पुत्र अखेराज, महोजल और रूद्रा तथा पुत्री पद्मावती थी। पद्मावती का विवाह जोधपुर के राव गांगा से हुआ था।‡ महाराव जगमाल अपनी रानी आनंदा बाई को कष्ट देता था इससे रानी का भाई पृथ्वीराज मेवाड़ से चल कर जगमाल को समझाने आया। जगमाल ने ऊपरी प्रेम बतलाया पर मन में बहुत कुढ़ा और पृथ्वीराज को विदा होते समय जहर की गोलियाँ दवा के बहाने दे दी। जिनके सेवन से पृथ्वीराज रास्ते में ही मर गया।§

जगमाल की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र अखेराज गद्दी पर बैठा।

---

* राजपूताना गजेटियर जिल्द ३(अ), पृ० २४०

† नैणसीख्यात। परन्तु नेणसी उस समय सिरोही की गद्दी पर अखेराज का होना लिखता है। परन्तु मजाहिदखां की मृत्यु १५०९ ई० में हुई और पालनपुर की तवारीख के अनुसार उसे मृत्यु के पांच वर्ष पहले मुक्ति प्राप्त हुई थी। अतः १५०४ ई. में छूट कर जब वह आया तो उस तिथि में महाराव जगमाल राज्य कर रहा था।

‡ ओझाः सिरोही राज्य का इतिहास पृ० २०५.

§ टाडः राजस्थान जिल्द २ पृ० ३४८.

महाराव अखेराज (प्रथम)
[वि. सं. १५८०-१५९०]

यह बड़ा वीर राजा था । इसने देवल राजपूतों से बहुत से इलाका जीता और लोहियाणा* का किला बनवाया । इसके आक्रमण बहुत ही तेजी से होते थे । इससे यह "उडण अखेराज" कहलाने लगा । यह महाराणा सांगा की ओर से बाबर से खानवा के युद्ध में वि. सं. १५८४ (ई. सन् १५२७) में लड़ा था† इसने जालोर के सूबेदार मलिक मजहदारखां को एक बार गिरफ्तार कर लिया था । इससे इसकी शक्ति और प्रभाव काफी बढ़ गया था और इसे 'महाराज श्री' कहकर उल्लेख किया जाने लगा ।‡ वि. सं. १५८९ (ई. सन् १५३२) में इसने पालड़ी गांव के ब्राह्मणों की चोकीदारो लाग माफ करदी थी ।§ इसका देहान्त वि. सं. १५९० (ई. सन् १५३३) में हुआ था । इसके दो पुत्र रायसिंह व दूदा थे ।

---

* यह किला वि. सं. १५८० (ई. सन् १५२३) में बनवाया गया था । यहां के जागीरदार के विद्रोही हो जाने पर जोधपुर राज्य ने इस किले को वि. सं. १९४१ (ई. सन् १८८४) में नष्ट कर दिया और नया गांव जसवंतपुरा (जिला जालोर) के नाम से बसाया ।

‡ डा० गोपीनाथ शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल्स पृ० ३६

† वशिष्ठ शिलालेख वि. सं. १५८९ की वैशाख शुक्ला १५

§ बाडला मन्दिर शिलालेख वि. सं. १५८९ की पौष कृष्णा ७

रायसिंह
[वि. सं. १५६०–१६००]

यह अखेराज का ज्येष्ठ पुत्र था और सं. १५६० में (१५३३ ई.) गद्दी पर बैठा। इसका जन्म सं. १५१८ (१५२१ ई.) की पौष बदी ६ को हुआ था। यह बडा दानी था। ब्राह्मणों व चारणों को कई गांव पुण्यार्थ दिये।* ई. सन् १५३५ में चित्तौड़ की रक्षा में सहायता की थी जबकि गुजरात के बहादुरशाह ने वहां का घेरा डाला था।† इसने मारवाड़ के राजाओं की सहायता भी की थी। वीर-विनोद में लिखा है कि रायसिंह ने मेवाड़ व मारवाड़ की फौजों में रह कर बड़ी वीरता बतलाई। वि. सं. १६६० (ई. सन् १५४३) में इसने भीनमाल प्राप्त करने के लिये जालोरी पठानों पर भी चढ़ाई की लेकिन इस युद्ध में इसके तीर लग जाने के कारण मृत्यु हो गई।‡ इसका दाह-संस्कार कालन्द्री गांव में हुआ।§ रायसिंह का पुत्र उदयसिंह अवयस्क होने के कारण महाराव के छोटे भाई दूदा को राज्य-भार सौंपा गया।

---

* चारणमाल आसीया को करोड़ पसाव में खांण गांव, माटासण गांव दिए गए।

† गुजरात के शासक बहादूर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण के समय राणी करणावती का जौहर हुआ था। चित्तौड़ पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। विजयी बहादूरशाह अधिक समय तक चित्तौड़ न ठहर सका क्योंकि शीघ्र ही उसे अपने गुजरात की रक्षा के लिए भागना पड़ा जबकि मुगल बादशाह हुमायूं ने गुजरात पर अधिकार करने के लिए आक्रमण किया था।

‡ नेणसी ख्यात।

§ ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ २०७.

महाराव दूदा
[वि. सं. १६००–१६१०]

दूदा का जन्म सं. १५८० (१५२३ ई.) की पौष बदी ६ को हुआ था। यह रायसिंह का छोटा भाई था। वि. सं. १६०० (१५४३ ई.) में उदयसिंह का अभिभावक बनकर सिरोही की गद्दी पर बैठा। इसने रायसिंह के वचनों का अक्षरशः पालन किया और राज्य का लोभ कभी भी मन में नहीं आने दिया। रायसिंह के अवयस्क पुत्र उदयसिंह को ही इसने राज्य का स्वामी माना और अपने स्वयं के पुत्र मानसिंह को राज्य का कोई भी हिस्सा देने का नहीं विचार किया। दूदा वि. सं. १६१० में बघेलों के साथ लड़ाई में मारा गया। इसने मरते समय सरदारों को यही आदेश दिया कि उदयसिंह को गद्दी पर बिठाना और उदयसिंह से कहा कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मानसिंह को लोहियाणा जागीर दे देना।*

उयदसिंह
[वि. सं. १६१०–१६१६]

यह रायसिंह का एकलौता पुत्र था जो वि. सं. १६१० (१५५३ ई.) में गद्दीनशीन हुआ। इसने दूदा की वसीयत के अनुसार दूदा के पुत्र मानसिंह को

* रायसिंह ने मरते समय दूदा से प्रतिज्ञा लेली थी कि वह सिरोही का राज्य उदयसिंह को वयस्क होने पर सौंप देगा व उसका लालन-पालन पिता की तरह करेगा। (ओझा : सिरोही का इतिहास पृ० २०७-२०८)

लोहियाणा जागीर में दे दिया। बाद में इसे लालच आ गया और लोहियाणे की जागीर को मानसिंह से वापस ले लिया।* मानसिंह लोहियाणा छोड़कर चित्तौड़ महाराणा उदयसिंह के पास चला गया। महाराणा को मानसिंह ने अपनी सेवाओं से बहुत प्रसन्न किया अतः उन्होंने उसे बटकाण बीच में नीजावास की १८ गांवों की जागीर दी।†

वि. सं. १६१६ (१५७२ ई.) की आसोज बद ११ को जब महाराव उदयसिंह का देहान्त शीतला रोग से हो गया तब सिरोही के सरदारों ने मानसिंह को बुला कर राज-गद्दी पर बैठाया-क्योंकि उस वक्त स्वर्गीय महाराव के कोई पुत्र नहीं था।‡ महाराणा उदयसिंह ने उत्ताराधिकार के इस मामले में अनुचित लाभ उठाना चाहा।§ अतः उन्होंने मानसिंह से सिरोही के ६ परगने मांगे। इसके लिये महाराणा उदयसिंह ने अपना पुरोहित भी भेजा। इस वक्त मानसिंह ने अपने वाक्-चातुर्य से महाराणा को प्रसन्न कर लिया। मानसिंह ने तब महाराणा को १ हाथी और ४ घोड़े भेंट किये और कहलाया कि सिरोही का राज्य ही महाराणा का है, मैं तो उन्हीं का एक सेवक हूँ। इससे राणा प्रसन्न हो गये और फिर कोई मांग नहीं की।$

महाराव उदयसिंह देवड़ा के १० रानियां थी जिनमें से ७ रानियां उनके साथ सती हुई। तीन रानियों को सती नहीं होने दिया गया जिनमें से बीकानेरी रानी (कल्याणमल की पुत्री) गर्भवती थी।

* सन् १५५४ ई०

† ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ २०६.

‡ सिरोही ख्यात में उदयसिंह का मरना १५६३ ई. उल्लेखित है।

§ महाराणा उदयसिंह मानसिंह से सम्भवतः इसलिए क्रुद्ध हुए कि बिना महाराणा की आज्ञा से वह उनकी सेवा छोड़ कर सिरोही चला गया था और वहां पर राज्याधिकारी हो गया।

$ ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृ० २१३.

मानसिंह द्वितीय

[वि. सं. १६१६–१६२८]

इसका जन्म वि. सं. १५६६ (१५४२ ई.) की मिगसर बद ८ को हुआ था। यह राव दूदा का पौत्र था। महाराव उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् वि. सं. १६१६ (१५६३ ई.) में सिरोही की गद्दी पर बैठा। इसने ७ वर्ष तक राज्य किया। यह बहुत ही वीर नरेश था। मुहणोत नैणसी नें लिखा है कि इसने गुजरात प्रांत की सीमा पर के कोलियों के विरुद्ध सेना भेज कर उनका दमन किया और उनका मेवासी* छीन लिया। वि. सं. १६२० (ई. सन् १५६३) की चैत्र सुदि ६ को महाराव रायसिंह की रानी चम्पा बाई ने इसे कहलाया कि मेरे पुत्र उदयसिंह की विधवा रानी बीकानेरी के गर्भ हैं। यदि उसके पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसे सिरोही की राज-गद्दी देनी होगी। इस पर मानसिंह को क्रोध आ गया और चम्पा बाई व बीकानेरी रानी को तत्काल ही मार डाला और बीकानेरी रानी के ८ मास के गर्भस्थ पुत्र को भी मार डाला।†

राव उदयसिंह का प्रधान परमार पंचायण था जो बड़ा षड़यंत्रकारी था। मौका पाकर मानसिंह ने पंचायण को विष पिलवा कर मार डाला‡ लेकिन पंचायण का भतीजा कल्ला परमार भी मानसिंह की सेवा में रहता था। वि. सं. १६२८ (ई. सन् १५७२) में उसने आबू पर महाराव को कटारी से मार डाला।§

---

* मेवासा का क्षेत्र सिरोही राज्य सांतपुर, पालनपुर इलाका कहलाता है। राजा मान ने अपने थाने स्थापित कर कोलियों को हमेशा के लिए अपने अधिकार में कर लिया।

† चंडू पंचांग के अनुसार।

‡ संभवतः पंचायण परमार मानसिंह के कुकृत्य व उसकी अप्रसिद्धि का लाभ उठाकर पुनः सिरोही व आबू पर परमार शासन स्थापित करने का षडयन्त्र रच रहा हो।

§ ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ २१५। कुछ का विश्वास है कि उसे विष दिया गया। राजपूताना गजेटियर भाग ३ए, पृ० २४०।

मानसिह के कोई पुत्र नहीं था। मरते समय उसने राव लाखा के पड़पोते भाण के बड़े बेटे सुरताण को अपना उत्तराधिकारी चुना। इसके मरने के बाद बाड़मेरी रानी के एक पुत्र हुआ था परन्तु वह भी सिरोही पहुँचते ही मर गया।* मानसिह की दाहक्रिया आबू पर अचलेश्वर मंदिर के सामने हुई। उसके साथ उसकी पांच रानियां सती हुई।† मानसिह की एक पुत्री ओंकार कंवर जोधपुर के राव चंद्रसेण को ब्याही थी।

सुरताण
[वि. सं. १६२८–१६६७]

यह नरेश सिरोही के इतिहास में एक महान् प्रतापी व वीर राजा माना जाता है। इसमें वीरता, स्वराज्य प्रेम और स्वतंत्रता का अनुराग उदयपुर के महाराणा प्रताप की भांति ही था। यों भी यह महाराणा प्रताप के समकालीन था।‡ इसने बादशाह अकबर से टक्कर ली। यों सिरोही में घरेलू झगड़े थे लेकिन उन कठिनाइयों को झेलते हुए भी धैर्य वीर बना रहा। महाराव मानसिह की अंतिम इच्छा के अनुसार सिरोही के सरदारों की सम्मति से यह वि. सं. १६२८ (ई. सन् १५७२) में सिरोही की राज्य-गद्दी पर बैठा। उस समय इसकी आयु केवल १२ वर्ष की थी।§ सिरोही का राज्य-काज पहले से ही महाराव शिवभाण के छोटे भाई गज्जा के वंशज बीजा के हाथ में था। बीजा ने अपनी राज्य कार्यों में सत्ता जमाई रखने के लिये मानसिह की रानी बाड़मेरी को, जो अपनी माता के पास बाड़मेर थी, गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया। इस

---

* उपरोक्त पृ० २४०।

† मानेश्वर मन्दिर अभिलेख (आबू) १५७७ ई०।

‡ महाराणा प्रताप सन् १५७२–१५९७ तक राज्य करते रहे।

§ इसका जन्म १५५९ ई० में हुआ था। ओझा : सिरोहि राज्य का इतिहास पृष्ठ २१९।

योजना को सुरताण का काका सूजा सफल होने नहीं दे रहा था इसलिये बीजा ने उसे धोखे से मरवा डाला।* सुरताण अभी बालक ही था अतः वह बीजा के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सका और चुपचाप सिरोही छोड़कर रामसीण चला गया।† बाड़मेर से मानसिंह का पुत्र सिरोही पहुँचा परन्तु यकायक उसका देहान्त हो गया ‡ और बीजा की आशालता टूट गई लेकिन बीजा ने हिम्मत नहीं हारी और सिरोही का अधिकारी खुद ही बन बैठा। इस प्रकार वह ४ मास तक राज्य करता रहा लेकिन वह सरदारों की आंखों में खटकता था। ऐसी स्थिति से लाभ उठा कर महाराव जगमाल के बेटे मेहाजल के पुत्र देवड़ा कल्ला§ ने मेवाड़ के महाराणा की सहायता से सिरोही पर कब्जा कर लिया। बीजा ने ईडर जाकर शरण ली।$

अब कल्ला सिरोही का राजा बन बैठा लेकिन सरदारों के साथ उसका अच्छा व्यवहार नहीं था¶ इसलिये सरदारों ने रामसीण से सुरताण को बुला कर गद्दी पर बैठाना चाहा। इस कार्य में बीजा भी सरदारों के साथ हो गया। जालोर के मालिकखां पठान ने भी सिरोही के ४ परगने मिलने की पूर्ति पर|| सुरताण का साथ दिया। ये सम्मिलित सेना कालिन्द्री में एक कोस दूर स्थान पर पहुँच कर कल्ला की सेना से लड़ी।° कल्ला भाग निकला। सुरताण सिरोही का

---

* उपरोक्त पृष्ठ २२०।

† यह ग्राम जालोर जिले में है। राव सुरताण ने अपने स्वर्गीय चाचा के कुटम्ब को भी इसी ग्राम में सुरक्षित रखा।

‡ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३ (अ) पृष्ठ २४०।

§ यह राणा प्रताप का भानजा था।

$ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३(अ) २४० में महाराणा उदयसिंह द्वारा सैनिक सहायता का उल्लेख किया गया है। स्वर्गीय दुगड़ की हस्तलिखित प्रति में भी उक्त राणा का उल्लेख है। वीर विनोद जिल्द १ में राणा प्रताप द्वारा सहायता दी जाने का उल्लेख पाया जाता है जो अधिक विश्वसनीय जान पड़ता है। यह घटना १५७२ ई. की है जब कि राणा प्रताप गद्दी पर थे।

¶ कल्ला के समय चीबों का—चीबा खींवा प्रधान था—प्रभाव बढ़ने से अन्य देवड़ा सामन्त जो पहले सुरतांण के विरोधी थे, अब वे उसके पक्ष में हो गए। बीजा भी सुरताण के पक्ष में चला गया।

|| ये परगने सियांणा, बड़गांव, लोहियाणा और डोडियाल थे। पठानखां ने १५०० सवारों से सहायता की।

° सेना की संख्या ४००० कल्ला की और ३००० फौज सुरतांण की फौज थी। बीजा के नेतृत्व में कालिन्द्री के पास युद्ध हुआ और सुरताण ने पीछे से सिरोही पर अधिकार कर लिया। यह युद्ध सम्भवतः १५७४ ई. में हुआ था क्योंकि ख्यातों में इस महाराज की उम्र १५ वर्ष लिखी गई है।

दुबारा राजा बन गया। इस समय उसकी १५ वर्ष की आयु थी इसलिये राज-सत्ता बीजा के ही हाथ में रही।

इस वक्त अकबर भारत में अपने साम्राज्य को फैलाने में लगा हुआ था। राजपूत उसकी अधीनता स्वीकार कर रहे थे। सिरोही के घरेलू झगड़ों की ओर उसकी दृष्टि लगी हुई थी। अपना पूर्ण आधिपत्य जमाने के लिये* वि. सं. १६३३ (ई. सन् १५७६) में उसने एक सेना बीकानेर के राव रामसिंह की अध्यक्षता में सिरोही भेजी। राव सुरताण आसानी से बादशाह की आधीनता मानने वाला नहीं था।† अतः बादशाही सेना का उसने सामना किया। राव सुरताण सिरोही को बचा न सका और उसने आबू के पहाड़ों में आश्रय लिया लेकिन रामसिंह ने आबूगढ़ पर भी अधिकार कर लिया। सुरताण के लिये अब आत्मसमर्पण के सिवाय और कोई चारा नहीं था। राव सुरताण ने बादशाह की आधीनता वि. सं. १६३४ (ई. सन् १५७७) में स्वीकार करली।‡

वि. सं. १६३७ (ई. सन् १५८०) में मुगल साम्राज्य को सूबों में बांटा गया। राजपूताने में अजमेर सूबा बना। इस सूबे के अन्तर्गत ७ सरकारें स्थापित की गईं जिनमें सिरोही भी एक थी। सिरोही सरकार में सिरोही राज्य के अलावा जालोर, डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा राज्य थे।§

राव रायसिंह राठौड़ गुजरात की ओर जाता हुआ सिरोही राज्य में होकर निकला तब राव सुरताण ने उसका बड़ा सत्कार किया। बीजा ने भी रायसिंह से मिल कर यह प्रयत्न किया कि यदि सिरोही की राज्य गद्दी उसे दिलवा दी जावे तो वह आधा राज्य बादशाह अकबर को भेंट कर सकेगा।$ रायसिंह ने अकबर को इस बहाने खुश करने का अच्छा अवसर समझा। अतः जब वह रहस्य

* सिरोही पर मुगल अधिकार होना अत्यंत आवश्यक था। गुजरात विजय के लिए इसकी महत्ता बढ़ गई थी। उत्तर से दक्षिण का निकट व सुरक्षित मार्ग यही था। अकबर को यों सूचना मिली कि सुरतांण व जालोर का ताजखां राणा प्रताप से मिलना चाहते हैं।

† ताजखां ने बिना युद्ध अकबर की अधीनता स्वीकार करली। इस पर सुरतांण ने भी बादशाह की सेवा स्वीकार करके रायसिंह के पास चला गया। बाद में सुरतांण अकबर के विरुद्ध हो गया अतः दूसरी बार सुरताण पर आक्रमण किया गया।
ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ १७३।

‡ उपरोक्त पृष्ठ १७४, अकबर नामा (वेपरिज कृत) जिल्द ३, २६६।

§ आइने अकबरी जिल्द १, पृष्ठ ४८५ व पृष्ठ ४९२।
परमात्मा शरण : प्रोविन्सीयल गवर्नमेन्ट ऑफ दि मुगल्स, पृष्ठ १२८।

$ ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ १७६।

सुरताण को ज्ञात हुआ तब सुरताण ने खुद ने भी बादशाह के विरुद्ध लड़ना उचित न समझ कर अपना आधा राज्य अकबर को देना स्वीकार कर लिया।* फल यह हुआ कि बीकानेर के रायसिंह ने पराये हाथों पुण्य कराके अपनी नामवरी हासिल करली। बादशाह की ओर से सहायता पाकर सुरताण ने बीजा को सिरोही से निकाल दिया।

एक ही वंश के दो भाईयों की आपसी शत्रुता के कारण अकबर ने सिरोही का आधा हिस्सा बिना किसी लड़ाई के पा लिया। अकबर को ज्ञात हुआ कि महाराणा प्रताप के छोटे भाई जगमाल सिसोदिया का विवाह स्वर्गीय राव मानसिंह की पुत्री से हुआ था। इसलिये उसने जगमाल सिसोदिया को सिरोही का आधा राज्य दे दिया। इससे उसने आशा की थी कि सिरोही में देवड़ा व सिसोदियों में पारस्परिक वैमनस्य रहने से मुगल-शक्ति को चुनोती न मिलेगी। अतः जगमाल को वि. सं. १६४० (ई. सन् १५८३) में आधा राज्य दिया गया।†

जगमाल और सुरताण के बीच खटपट हुए बिना न रही। मौका देख कर जगमाल ने सुरताण के महल पर कब्जा करना चाहा लेकिन वह ले नहीं सका। उस समय सुरताण अपनी राजधानी में नहीं था। जगमाल बाद में दिल्ली जाकर बादशाही सेना सिरोही पर चढ़ा लाया। अपना बल काफी ना देख कर सुरताण आबू के पहाड़ों में चला गया। जगमाल ने सिरोही पर कब्जा कर लिया।‡ सिरोही के बदनाम षड़यंत्रकारी बीजा ने भी जगमाल का साथ दिया। सुरताण पहाड़ों में भटकता रहा और मौका देख कर जगमाल से टक्कर लेता रहा। जगमाल व जोधपुर के रायसिंह§ का डेरा दताणी गांव में था। सुरताण ने उनके डेरे पर हमला कर दिया। इस लड़ाई में जगमाल व रायसिंह के अलावा शाही सेना के कई वीर काम आये। सुरताण की विजय हुई।$ जगमाल के मारे जाने से सिरोही पर से सिसोदियों का कब्जा हट गया। लेकिन बीजा का द्वेष सुरताण से वैसा ही बना रहा। उसनें सिरोही लेने के लिये फिर भी प्रयत्न जारी

---

* उपरोक्त

† मुँहणोत नेणसी की ख्यात, जिल्द १, पृष्ठ १३१-३।

‡ ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ १७६-७७।

§ रायसिंह जोधपुर के राव चन्द्रसेन का बड़ा पुत्र था।
रेउ : मारवाड़ का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ १३७-६।

$ यह युद्ध सन् १५८३, १८ अक्टूबर को हुआ था। रत्रि के समय सुरतांण ने अचानक हमला कर मुगल सेनापतियों (जगमाल व रायसिंह) को २८४ योद्धाओं सहित मार गिराया। अकबर नामा भाग ३, ४१३

रक्खा। वह अकबर के दरबार में दिल्ली पहुँचा। अकबर भी दत्ताणी के युद्ध क्षेत्र में अपनी शाही सेना की हार होने के कारण खिन्न हुआ बैठा था इसलिये उसने वि. सं. १६४४ (ई. सन् १५८८)* में एकबार और शाही सेना जानबेग की अध्यक्षता में भेजी और मोटा राजा उदयसिंह को भी बीजा के साथ सुरताण को दबाने के लिये भेजा। इन शत्रुओं के आने पर सुरताण फिर आबू पहाड़ पर चढ़ गया। उदयसिंह एक महीने तक घेरा डाले पड़ा रहा लेकिन वह कुछ भी न कर सका। अंत में उसने छल-बल से सिरोही के सरदारों को समझौते के बहाने वि. सं. १६४४ में नीतोड़ा गांव (पिंडवाड़ा तहसील) में इकट्ठा किया और उनसे विश्वासघात कर उन्हें मरवा डाला† तथा नीतोड़ा गांव को खूब लूटा। उधर बीजा ने भी सुरताण से आबू छीनना चाहा। अतः आबू पर चढ़ने का प्रयत्न किया। सुरताण को पता लगते ही वास्थानजी‡ नामक स्थान पर बीजा की सेना को रोका। इस लड़ाई में बीजा मारा गया। सुरताण को विजय प्राप्त हुई। अतः तंग आकर उदयसिंह राव कल्ला को सिरोही की गद्दी पर बैठा कर वापस जोधपुर लौट गया। लेकिन सुरताण ने आबू से उतर कर कल्ला को सिरोही से भगा दिया।§ इस प्रकार वीर सुरताण ने अपना पैतृक राज्य फिर अपने ही पुरुषार्थ से प्राप्त किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुरताण राजपूताने के वीर व्यक्तियों में से एक प्रसिद्ध गिने जाने योग्य राजा है जिसने अकबर की शाही सेना को दो बार हराया।$

---

* अकबर नामें में यह आक्रमण १५९३ ई. में होना लिखा है (जिल्द ३, पृष्ठ ६४१) मारवाड़ की ख्यात में १५८८ ई. दिया गया है (जिल्द १, पृष्ठ १००),
ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास २२४–२५ में भी इस तिथि का उल्लेख है।

† वगड़ी के ठाकुर बेरीसाल द्वारा देवड़ा सामन्तों—देवड़ा सांवतसी, देवड़ा पता, राउबरा हमीर, धीबा जेता, देवड़ा तोगा—को रामरत्न सिंहोत द्वारा मरवा डाला,
(रेउ : मारवाड़ का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ १७४)।

‡ अकबर नामा, जिल्द ३, पृष्ठ ६४१।

§ जोधपुर राज्य की ख्यात जिल्द १, पृष्ठ १००। मुंहणोत नेणसी की ख्यात, जिल्द १, पृ. १३४। बांकीदास की ऐतिहासिक बातें संख्या ८७१।

$ १५९३ ई. में जोधपुर शासक पुनः सिरोही पर आक्रमण के लिए भेजा गया पर इसके परिणाम का कहीं उल्लेख नहीं है।
(अकबर नामा, जिल्द ३, पृष्ठ ९८५),

मुंहणोत नेणसी अपनी ख्यात में लिखता है कि मोटा राजा सुरतांण पर विजय प्राप्त न कर सका अतः वह असफल लौट आया (जिल्द १, पृष्ठ १३५),

टाड : एनल्स एन्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान में सुरतांण का अकबर के पास जाने का उल्लेख करता है (जिल्द २, पृष्ठ ९८९–९९०),

अकबर नामे में भी इसी प्रकार का उल्लेख पाया जाता है।

सन १६५६ ई. में अकबर के आदेशानुसार गुजरात में सूरसिंह जोधपुर नरेश को भेजा गया। उसे आज्ञा प्राप्त हुई कि राव सुरतांण को आधीन करे। सूरसिंह ने पूर्ण सफलता प्राप्त की (अकबर नामा जिल्द ३, ७२५) सुरतांण ने शाही सेना के सहायतार्थ एक देवड़ा टुकड़ी भी भेजी।

इसका स्वर्गवास वि. सं. १६६७ (ई. सन् १६१०) आसोज बदि ६ को हुआ। इसने ३६ वर्ष तक राज्य किया। इसमें वीरता के अतिरिक्त उदारता, धार्मिकता व मिलनसारी भी थी। इसने लगभग ८४ गांव ब्राह्मणों व चारणों, भाटों आदि को दिये। इसके समय के कई शिलालेख मिलते हैं। इसने विपत्ति के समय (ई. सन् १५७५-८०) में जोधपुर के राव चन्द्रसेन को अपने यहां एक वर्ष तक सुरक्षित रखा। इसका एक विवाह महाराणा प्रताप की पोती से हुआ था। इसके १२ रानियां थी जिनसे २ पुत्र राजसिंह व सूरसिंह हुए थे।

महाराव राजसिंह
[वि. सं. १६६०-१६७७]

यह सुरताण का ज्येष्ठ पुत्र था जो वि. सं. १६६७ आसोज बदि ६ (ई. सन् १६१०) को गद्दी पर बैठा। यह सीधा-सादा राजा था। इस कारण इसके छोटे भाई सूरसिंह ने अपना प्रभाव डाल कर राज्य पर अधिकार करना चाहा। इसके लिये उसने जोधपुर के महाराज सूरसिंह को अपने पक्ष में करना चाहा। देवड़े सरदार व राठोड़ों के बीच के पुराने वैर-भाव मिटा कर ब्याह सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। इस सम्बन्ध में सं. १६६८ (सन् १६११) में एक समझौता भी महाराज सूरसिंह से किया* जिसके द्वारा देवड़ा सूरसिंह को सिरोही

* इस समझौते के अनुसार—

(अ) कुँवर गजसिंह का विवाह उसकी पुत्री से हो, (आ) देवड़ा बीजा की जड़ाउ कटार गजसिंह को दी जाय, (इ) रायसिंह से छीना हुआ सामान (जो सुरताँण ने दांताणी युद्ध के बाद प्राप्त किया था) शेरसिंह जोधपुर को लौटा दिया जाय, (ई) देवड़ा सूरसिंह को सिरोही का शासक स्वीकार किया जाय, (उ) देवड़ा सूरसिंह को शाही फरमान इस सम्बन्ध का प्राप्त करने में राठौड़ शासक सहायता करे।

(ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास, पृष्ठ २४६)

विश्वेश्वरनाथ रेउ ने मारवाड़ के इतिहास जिल्द १, पृष्ठ १८६ व रामकरण आसोपा ने मारवाड़ के संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ३३८ में उल्लेख किया है कि महाराजा शेरसिंह की संधि महाराव राजसिंह से हुई थी जिनमें उपरोक्त ५ शर्तों के स्थान पर प्रथम तीन शर्तें ही है।

गुणरूपक में लिखा है कि पुराने बैर का बदला लेने के लिए गजसिंह (सूरसिंह का पुत्र) ने आबू और सिरोही के देवड़ों को हराकर उनका प्रसिद्ध कटार छीन लिया (पृ. १०-११)

की गद्दी पर बिठाना तय हुआ परन्तु यह चाल सफल न हो सकी। इसके विपरीत दोनों भाईयों में वैर बढ़ा और लड़ाई हुई। इसमें राजसिंह की जीत हुई और सूरसिंह को सिरोही राज्य से भागना पड़ा।* राजसिंह इस कठिनाई से दूर हो ही पाया था कि दूसरी आपत्ति राजसिंह के लिये फिर तैयार हो गई। देवड़ा सूजा का पुत्र पृथ्वीराज राज्य का मुसाहब बनकर धीरे-धीरे अपना फौलादी पंजा राज्य पर फैलाने लगा। इससे महाराव व पृथ्वीराज में अनबन हो गई। यह देख कर मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह के राजकुमार करणसिंह ने पृथ्वीराज व राजसिंह दोनों को समझाया† परन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। इस पर राजसिंह ने वि. सं. १६७४ (सन् १६१७ ई.) में जोधपुर के महाराजकुमार गजसिंह राठौड़ को सिरोही के १४ गांव देने का वायदा करके उनके द्वारा पृथ्वीराज को निकालने में सहायता ली। राठौड़ सेना ने आकर पृथ्वीराज को निकाल दिया।‡ परन्तु दूसरे वर्ष पृथ्वीराज फिर आ धमका और राजसिंह को मारने का षड़यंत्र रचने लगा। वि. सं. १६७७ (ई. सन् १६२०) में एक दिन वह अपने सहायकों को लेकर महलों पर चढ़ गया और महाराव को मार डाला।§ महाराव का ढाई वर्ष का छोटा पुत्र अखेराज भी उस समय महल में ही था जिसे भी पृथ्वीराज ने मारना चाहा लेकिन धाय की चतुराई से वह बालक छिपा दिया गया और बाद में सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया गया।$

---

* ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ २४६।

† मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह महाराव राजसिंह के नाना थे अतः सिरोही में गृह युद्ध की अवस्था को रोकने के लिए अमरसिंह ने करणसिंह को यह कार्य सौंपा।

‡ महाराजकुमार गजसिंह ने उस समय जालोर विजय कर शानदार सफलता प्राप्त की थी वहां से पठान शासकों को भगा दिया और जालोर राठोड़ों के अधिकार में आगया।

§ पृथ्वीराज ने पहले महाराव राजसिंह के सामन्त भैरवदास को धोखे से सारणेश्वर के मन्दिर के पास मरवा डाला।

$ ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ २४९–२५०।

महाराव अखेराज (द्वितीय)
[वि. सं. १६७७-१७३०]

इसका जन्म १६७४ मिगसर बद १० को हुआ था। इसको सिरोही के सरदारों ने वि. सं. १६७७ (१६२० ई.) में ढ़ाई वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठाया। पृथ्वीराज को राज्य से निकाल दिया गया। पृथ्वीराज भीनमाल में अपने ससुराल में जा रहा लेकिन वह वि. सं. १६८१ (१६२४ ई,) में देवड़ा राजसिंह के हाथ से धोखे से मारा गया।* पृथ्वीराज के मारे जाने पर उसका बेटा चांदा सिरोही राज्य की सीमा के गांवों में लूट-खसोट करने लगा।

अखेराज (द्वितीय)

राव अखेराज एक वीर तथा कुशल राजा था। उसने बालिग होने पर अपने पिता राव राजसिंह को मारने वालों से बदला लिया और उनमें से कईयों को मरवा डाला। उधर चांदा का

* अखैराज ने पिता का बदला लेने के लिये पृथ्वीराज को उसी तरह मरवा डाला। राजपूताना गजेटियर भाग ३अ, पृष्ठ २४२।

उपद्रव बढ़ता ही गया। उसने सिरोही के दक्षिण-पश्चिम के इलाके नीमज पर कब्जा कर लिया।* वि. सं. १७१३ (१६५६ ई.) में महाराव अखेराज ने चांदा का दमन करने के लिये सेना भेजी, परन्तु उसे लड़ाई में सफलता प्राप्त नहीं हुई। यकायक चांदा मर गया लेकिन उसके पुत्र अमरसिंह ने उपद्रव जारी रखा।†

महाराणा जगतसिंह प्रथम ने भी सन् १६२८ ई. में अपनी सेना भेज कर सिरोही राज्य के कई गांव लूट लिये। इससे दोनों राजवंशों में वैर-भाव हो गया। बाद में महाराणा जगतसिंह के स्वर्गवास के बाद महाराणा राजसिंह के समय वि. सं. १७०९ (१६५२ ई.) दोनों राजवंशों में सुलह हो गई।‡

अखेराज के दो पुत्र उदयभान और उदयसिंह थे। वि. सं. १७२० में उदयभान अपने पिता को कैद कर स्वयं राज्य-गद्दी पर बैठ गया। लेकिन महाराणा राजसिंह की सहायता से अखेराज कैद से मुक्त हो गया।§ बाद में अखेराज ने उदयभान और उसके एक पुत्र को मरवा डाला। इस समय चांदा के बेटे अमरसिंह ने भी बगावत छोड़ कर महाराव से माफी मांग ली।$ इसलिये महाराव ने उसे अपराधों के लिये क्षमा कर उसे कुछ जागीर देदी। महाराव अखेराज के समय शाहजहां के पुत्रों में राजगद्दी के लिये लड़ाई हुई।¶ तब मुराद बक्ष और दाराशिकोह ने महाराव से सहायता लेना चाहा और कई पत्र महाराव के नाम भेजे। अखेराज ने दाराशिकोह का पक्ष लिया।|| सं. १७१५ में दाराशिकोह औरंगजेब से लड़ने के लिये गुजरात से आगरा जाता हुआ सिरोही भी आया था।° इसका भी शिलालेख सिरोही नगर में वि.सं.१७२० का मिला है।

---

* उपरोक्त; यह घटना सन् १६५४ ई. की है।

† ओझा के इतिहास में उल्लेख है कि अमरसिंह नींबाज छोड़ कर भाग गया और इधर-उधर लूट-मार करता रहा परन्तु उसमें दम नहीं था (सिरोही का इतिहास पृ. २५३)।

‡ वीर विनोद भाग २, ४, पृष्ठ ४३६–७, राजप्रशस्ति सर्ग ५, श्लोक २१–२९।

§ वीर विनोद भाग २।

$ ओझा : सिरोही का इतिहास पृष्ठ २५५।

¶ शाहजहां के उत्तराधिकार का युद्ध १६५७–१६५९ में हुआ।

|| दारा के पत्र १६४९ ई. से लगाकर १६५७ ई. तक प्राप्त हुए हैं; मुराद ने १६५६ ई. का एक पत्र अखैराज के पास भेजा।

° दारा थरमत के स्थान पर हार कर दिल्ली, लाहोर, मुलतान, सिन्ध, कच्छ होता हुआ अहमदाबाद आया। वहां उसने अपनी सत्ता स्थापित कर, वह राजा जसवन्तसिंह राठोड़ के निमन्त्रण पर मारवाड़ की ओर चला (सन् १६५९)। दारा ने अखैराज से सहायता के लिये पत्र लिखा। दारा अजमेर के पास देवली के युद्ध में (१४ मार्च, १६४९) को हार कर मेड़ता, पीपाड़, सिरोही होता हुआ अहमदाबाद की ओर चला गया। इस युद्ध में जसवन्तसिंह को औरंगजेब का साथ देने पर गुजरात की सूबेदारी मिली। गुजरात जाते हुए वह सिरोही ठहरा और अखैराज की पुत्री आनन्दकँवर (अति सुखदेवड़ी) से शादी की।

वि. सं. १७३० में इस महाराव का स्वर्गवास हुआ। इसके १७ रानियां और दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र उदयभान तो इसके हाथ से ही मारा गया। अतः दूसरा पुत्र उदयसिंह गद्दी का अधिकारी हुआ।

उदयसिंह
[वि. सं. १७३०-३३]

यह वि. सं. १७३० में राज्य-गद्दी पर बैठा। इसने केवल ढाई वर्ष राज्य किया और वि. सं. १७३३ में इसका स्वर्गवास हो गया। इसके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये इसका भतीजा बैरीसाल जो उदयभान का पुत्र था उत्तराधिकारी हुआ।

बैरीसाल (प्रथम)
[वि. सं १७३३–१७५४]

यह महाराव अखेराज के ज्येष्ठ पुत्र उदयभान का पुत्र था। इसके समय में मारवाड़ राज्य पर औरंगजेब का प्रकोप हुआ। वि. सं. १७३५ (ई. सन् १६७८) में जोधपुर के जसवंतसिंह का देहान्त जमरूद* में हो जाने से औरंगजेब ने

* जसवन्तसिंह की मृत्यु १० दिसम्बर, १६७८ को हुई। उसकी मृत्यु के बाद जोधपुर पर मुगलों का शासन हो गया।

जोधपुर रियासत खालसा करली तथा महाराजा के पुत्र बालक अजीत को अपने कब्जे में करना चाहा परन्तु दुर्गादास आदि स्वामि-भक्त सरदारों ने बालक अजीत को सिरोही पहुँचा दिया।* महाराव बैरीसाल ने प्रकट रूप से अजीत को अपने यहां रखना उचित नहीं समझा और कालन्द्री नामक गांव में उनके रहने का गुप्त से प्रबन्ध कर दिया।‡ इस काल अखेराज की पुत्री आनन्दकंवर देवड़ी (अति सुख देवड़ी), जो महाराजा जसवन्त को ब्याही थी, उसने भी बड़ी सहायता दी।

बैरीसाल ने बादशाह औरंगजेब को प्रसन्न रखने के लिये उसके शाहजादे अकबर, जो दुर्गादास राठौड़ आदि की सहायता पाकर अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा था, को अपनी सीमा में घुसने नहीं दिया।† इससे बादशाह इस पर बराबर प्रसन्न ही रहा।§

राव बैरीसाल का देहान्त वि. सं. १७५४ (ई. सन् १६९७) में हुआ। इसके पीछे तीन रानियां सती हुई। इसके दो पुत्र सुरताण व भीमसिंह थे। भीम बालकपन में ही मर गया। सुरताण ने केवल एक ही वर्ष राज्य किया। उसको महाराव उदयसिंह के पुत्र छत्रसाल उर्फ (दुर्जनसिंह) ने गद्दी से उतार दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया।

* सरकारकृत हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग ३, पृष्ठ ३३४–३३५,

‡ बैरीसाल के बादशाह के भय से इसे अपने यहां रखने में सहमत नहीं हो सकने के कारण जसवन्तसिंह की विधवा रानी आनंदकँवर (अति सुखदेवड़ी) की सलाह पर इसे पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणा ब्राह्मण की स्त्री को सौंप दिया।

† अजितोदय सर्ग ११, श्लोक २१–२६। अकबर आबू पहाड़ों में कुछ दिन रह कर डूंगरपुर चला गया।

§ ई. सन् १६८१ को एक पत्र शाहजादा मौअज्जम ने बैरीसाल को लिखा जिससे वह अकबर को पकड़ने में सहायता करे। (ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. २६६) सम्भवतः दुर्गादास को सहायता न देने का आशय हो कि औरंगजेब सिरोही राज्य पर अधिकार न करले।

छत्रशाल
[वि. सं. १७५४–१७६२]

यह वि. सं. १७५४ में गद्दी पर बैठा। इसको दुर्जनसिंह या दुर्जनशाल भी कहते हैं। इसकी मृत्यु वि. सं. १७६२ में हुई। इसकी एक पुत्री का ब्याह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह के साथ और दूसरी का ब्याह जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के साथ हुआ था। इसके एक ही पुत्र मानसिंह था जो उसके पीछे राज्य का स्वामी हुआ।

मानसिंह (द्वितीय)
[वि. सं. १७६२-१८०६]

यह वि. सं. १७६२ में राज्य का स्वामी हुआ। इसको उम्मेदसिंह भी कहते थे। मुंहणोत नेणसी ने मानसिंह और उम्मेदसिंह को पृथक् पृथक् शासक माना है। इसने वि. सं. १७७२ (ई. सन् १७१५) में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह को अपनी पुत्री ब्याही थी*) दूसरी पुत्री का विवाह बीकानेर के गजसिंह के साथ

---

* महाराजा अजीतसिंह को ई. सन् १७१५ में गुजरात की सूबेदारी और ५००० की मनसब प्राप्त हुई (इर्विनकृत लेटर मुगल्स,भाग १,पृ.२९)गुजरात जाते हुए वह सिरोही में ठहरा।

किया। वि. सं. १७८७ (ई. सन् १७३०) में जब जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने गुजरात की सूबेदारी की सनद प्राप्त करके सर्बुलन्दखां पर शाही सेना के साथ चढ़ाई की तब रास्ते में उससे सिरोही के रेवाड़ा ठाकुर जो जोधपुर राज्य के जालोर परगना में लूट-खसोट करता था, उसका दमन करने के लिये सिरोही राज्य में पहुँचा। रेवाड़ा गांव को नष्ट किया गया तथा पोसालिया को लूटा गया।* सिरोही राज्य में इस लूटमार से मानसिंह दुखित हुआ लेकिन वह अभयसिंह को रोक नहीं सका। अतः मानसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह महाराजा से करके सुलह करली† और देवड़ों की एक सैनिक टुकड़ी शाही सेना के साथ भेजी जिन्होंने गुजरात के युद्धों में बड़ी वीरता बतलाई।‡

मानसिंह तलवारों का बड़ा प्रेमी था। उसने अपने ढंग की एक नई तलवार का प्रचलन कराया जो मानसाही तलवार कहलाती है। अब भी सिरोही की तलवार का पानी प्रसिद्ध है।

मानसिंह का स्वर्गवास वि. सं. १८०६ (ई. सन् १७४६) में हुआ। इसके तीन पुत्र—पृथ्वीराज, जोरावरसिंह और जगतसिंह थे।

महाराव मानसिंह के बाद पृथ्वीराज (वि. सं. १८०६-१८२६—ई. सन् १७४६-१७७२), तख्तसिंह (वि. सं. १८२६-१८३६-ई. सन् १७७२-१७८२) और जगतसिंह§ (वि. सं. १८३६-ई. सन् १७८२) ने सिरोही पर राज्य किया। इन शासकों का राज्यकाल सिरोही के लिये संकटमय था। इस काल में राजपूताने में राजपूत-मराठा संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष में सिरोही भी बचा नहीं रह सका।$ इससे राज्य की परिस्थिति बिगड़ती गई। जागीरदार भी राजा को निर्बल पाकर स्वतंत्र होने का दुस्साहस करने लगे।

---

* रेऊ: मारवाड़ राज्य का इतिहास भाग १, पृ. ३३७।

† राजपूताना गजेटियर भाग ३अ, पृ. २४३।

‡ अभयसिंह ने गुजरात को ई. सन् १७३० की ३० नवम्बर तक अधिकार में कर लिया था। इसमें पाडीव के देवड़ा ठाकुर का सहयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ।

§ तख्तसिंह पृथ्वीराज का पुत्र था। तख्तसिंह के कोई पुत्र नहीं था अतः उसका निकटतम सम्बन्धी महाराव मानसिंह का पुत्र जगतसिंह राजगद्दी पर बैठा लेकिन वह छः माह तक ही राज्य कर सका। अतः उसका ज्येष्ठ पुत्र बैरीसाल सिरोही की राज गद्दी पर वि. सं. १८३६ में गद्दी पर बैठा।

$ राजपूताना की राजनीति में मराठों का प्रवेश वि. सं. १८८७ (ई. सन् १८३०) में होने लगा था। उधर जोधपुर राज्य के शासक गुजरात के सूबेदार रहने लगे। अतः मराठों से संघर्ष होने लगा। सिरोही के गुजरात व जोधपुर राज्य के बीच में होने से काफी कठिन परिस्थितियों में पड़ना पड़ा। सिरोही के लिये यह एक बड़ा संकट था।

महाराव बैरीसाल (द्वितीय)
[वि. सं. १८३६–१८६४]

यह सम्वत् १८३६ (१७८२ ई.) में गद्दी पर बैठा। इसका जन्म १८१७ श्रावण सुद १५ को हुआ। इसके समय राज्य की अशांति रही। जागीरदार आदि इसे कमजोर पाकर स्वतंत्र होने लगे। पालनपुर राज्य तथा कोलियों ने भी सिरोही के कई गांव दबा लिये। भील मीने भी लूटमार करने लगे। इससे सिरोही राज्य में ४०-५० गांव ही गये।* यह दशा देखकर महाराव ने मकराणी-सिन्धी और नागों की एक स्वतंत्र फौज बनाई और पालनपुर पर चढ़ाई करदी। रास्ते में बागी सरदारों† का दमन करना चाहा, परन्तु साथी सरदारों के विरोध के कारण असफल रहे। सरदारों पर आतंक जमाने के उद्देश्य से महाराव ने पाडीव के ठाकुर अमरसिंह को जो विद्रोही सरदारों का मुखिया था, वि. सं. १८५५ (ई. सन् १८६८) में धोखे से सिन्धी देरूर के हाथ से सारणेश्वर के मन्दिर से बाहर निकलते वक्त मरवा डाला। बाद में मोटागांव के ठाकुर तेजसिंह को मरवा दिया गया। यह बहुत ही प्रभावशाली ठाकुर था। अतः इसके मरने पर जागीरदारों का उपद्रव कम हो गया।

महाराव बैरीसाल अपने राज्य में सुधार करना चाहता था परन्तु जोधपुर राज्य से अनायास ही शत्रुता हो जाने से कुछ नहीं हो सका। जोधपुर के महाराज विजयसिंह की मृत्यु‡ के बाद उनका पौत्र भीमसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा।

---

* ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृ० २७३.

† भटाने का ठाकुर आदि पालनपुर के आक्रमण के पूर्व ही सिरोही के लखावत, डुगरावत और बजावत ठाकुर महाराव का साथ छोड़ कर पालनपुर चले गए थे अतः महाराव ने पालनपुर लेने का विचार त्याग दिया।

‡ वि. सं. १८५० की आषाढ़ कृष्णा १४ (८ जुलाई १७६३ ई.).

उसके और विजयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र गुमानसिंह के पुत्र मानसिंह में आपस में लड़ाई छिड़ गई । मानसिंह ने जालोर के किले पर अधिकार कर लिया ।* जब मानसिंह ने भीमसिंह की सेना को† जालोर की ओर आते देखा तब उसने अपनी रानियों को मय पुत्र छत्रसिंह के सिरोही में सुरक्षित स्थान में भेजना चाहा परन्तु बैरीसाल ने भीमसिंह के डर से उन्हें आश्रय नहीं दिया ।‡ इससे मानसिंह को बुरा लगा और जब भीमसिंह की मृत्यु हो जाने पर मानसिंह सन् १८०३ को जोधपुर की गद्दी पर बैठा तब उसने अपनी सेना सिरोही राज्य पर बदला लेने को भेजी । इस सेना ने सिरोही को बहुत लूटा और बाद में भी बराबर शत्रुता रखी ।§ महाराव का देहान्त वि. सं. १८६४ (ई. सन् १८०७) को हुआ । इसके दो रानियां और तीन पुत्र उदयभान, अखेसिंह व शिवसिंह थे । यह महाराव सीधे स्वभाव और धर्मात्मा था । इसके समय के कई शिलालेख और ताम्र-पत्र मिले हैं । इसने औदीच्य ब्राह्मणों को कई गांव दान दिये थे । वि. सं. १८६० में औदीच्य ब्राह्मणों को गोलगांव दान में दिया । इस गांव के ये ब्राह्मण बाद में गोलवाल (गोरवाल) ब्राह्मण कहलाने लगे ।

* रेऊः मारवाड़ का इतिहास जिल्द १ पृष्ठ २९७

† सिंघी अखेराज को सेना देकर महाराज भीमसिंह ने सन् १७९७ में जालोर पर अधिकार करने भेजा ।

‡ ओझा: सिरोही का इतिहास पृ० २७७; राजपूताना गजेटियर भाग ३ अ पृ० २४३.

§ सिरोही पर आक्रमण वि. सं. १८६१ (१८०४ ई.) में मुहणोत ज्ञानमल के पुत्र नवलमल के नेतृत्व में किया गया था । नवलमल तथा सूरजमल जालोरी को आसोप, नींबाज, रास, लांबिया, रीयां, बलुंदा, रायण आदि के सरदारों १०,००० फौज और तोपखाने के साथ सिरोही पर भेजा । सिरोही पर अधिकार कर पाड़ीव, कालिन्द्री बुवाड़ा पर दंड निर्धारित किया गया । महाराव सिरोही छोड़ कर भीतरोह परगने में चला गया ।
जोधपुर राज्य की ख्यात जिल्द ४, पृ० २१.
वीर-विनोद भाग २, पृ० ८६ ।
ओझा: जोधपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २ पृ० ७८४.

महाराव उदयभान
[वि. सं. १८६४–१८७५]

इसका जन्म सम्वत् १८४४ में हुआ था। यह बैरीसाल का ज्येष्ठ पुत्र होने से सं. १८६४ (सन् १८०७) फागण कृष्णा ६ को राज-गद्दी पर बैठा। उस समय जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ सिरोही की पुरानी शत्रुता थी तथा राज्य के भील और मीणें भी आंतरिक रूप से उपद्रव कर रहे थे अतः यह दशा देखकर वि. सं. १८६६ (१८१२ ई.) में मानसिंह ने अपनी सेना सिरोही में लूट-पाट करने भेज दी।* जोधपुरी सेना ने सिरोही नगर तथा रास्ते के गांवों को खूब लूटा। उधर वि. सं. १८७० (ई. सन् १८१३) में महाराव ने गंगायात्रा से लौटते वक्त पाली में डेरा किया। वहां वह वेश्याओं के नाच-रंग में लग गया। इसका गुप्त रूप से समाचार पाकर मानसिंह ने सेना भेज कर उसे कैद करवा कर जोधपुर बुलवाया। वहां वह ३ मास रहा और अन्त में सवा लाख रुपये देने की शर्त मानने पर कैद से छोड़ा गया।† महाराव ने सिरोही पहुँच कर अपनी शर्त का पालन नहीं किया। इस पर मानसिंह ने वि. सं. १८७३ (ई. सन् १८१७) में सिरोही पर आक्रमण कर दिया। मानसिंह की सेना ने लूट-खसोट कर लगभग २॥ लाख जनता से वसूल किया तथा सिरोही राज्य का पुराना रेकार्ड जला दिया।‡ महाराव भाग कर पहाड़ों में चला गया। बाद में राज्य में ऐसी अशांति

---

* ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. २७६.

† उपरोक्त पृष्ठ २७६-८०; जोधपुर की ख्यात में ५०-६० हजार रुपयों का रुक्का लिखा जाना दिया है। (जिल्द ४, पृ० ४६६) राजपूताना गजेटियर में पांच लाख रुपयों का उल्लेख है (जिल्द ३, अ, पृ० २४३).

‡ यह आक्रमण मुहता साहिबचन्द के नेतृत्व में किया गया ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २८०–२८१।

देख कर उदयभान ने शर्त की रकम देना स्वीकार कर लिया लेकिन सिरोही के खजाने में इतनी रकम नहीं थी अतः उसने कर लगा कर रकम वसूल करना आरम्भ किया। करों की वसूली की ज्यादती के कारण प्रजा तंग आ गई। आखिर वि. सं. १८७५ (ई. सन् १८१८) में जनता उदयभान के भाई शिवसिंह के पास सहायता के लिये पहुँची। सबने मिलकर (सरदार किसान व प्रजा) उदयभान को पदच्युत कर वि. सं. १८७५ में कैद कर लिया।* महाराव उदयभान २९ वर्ष तक कैद रहा। शिवसिंह संरक्षक (रिजेन्ट) की हैसियत से राज्य-कार्य चलता रहा। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने उदयभान को छुड़ाने को सेना भेजी परन्तु सफल नहीं हुआ। इस प्रकार उदयभान केवल १० वर्ष तक राज्य कर पाया। जीवन के शेष २९ वर्ष कैद में बिता कर वि. सं. १९०३ (सन् १८४६ ई.) में स्वर्ग सिधारा।

उदयभान के तीन रानियां थीं लेकिन उसके कोई पुत्र नहीं था, अतः इसका छोटा भाई शिवसिंह राज-गद्दी पर बैठा। उदयभान अति विलासी होने तथा अपनी बुरी आदतों के कारण एक असफल राजा रहा। इसके राज्यकाल में प्रजा बराबर दुःखी रही।

महाराव शिवसिंह

[संरक्षक—वि. सं. १८७४–१९०३]

[नरेश—वि. सं. १९०३–१९१९]

इसका जन्म वि. सं. १८५५ कार्तिक सुद ६ को हुआ था। इसको नादीया की जागीर मिली हुई थी। अपने बड़े भाई उदयभान से जब राज-काज नहीं संभल सका तब इसने वि. सं. १८७४ (ई. सन् १८१८) में प्रजा की सहमति से उसे कैद

---

*ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० २८२।

करके सब प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। जब तक उदयभान जीवित रहा तब तक यह राज्य का काम एक संरक्षक की भांति देखता रहा। उदयभान की मृत्यु के बाद यह राज्य-गद्दी पर बैठा।

जब यह संरक्षक की भांति काम कर रहा था तब राज्य की आर्थिक दशा ठीक न पाकर* तथा भीलों व मीणों के विद्रोह व लूटमार की† हरकतों को देख कर इसने अन्य रियासतों की भांति ही अंग्रेजों से वि. सं. १८८० (ई. सन् १८२३) में संधि कर ली। इस संधि को न होने देने के लिये जोधपुर महाराज मानसिंह ने कई रुकावटें डाली‡ उसने सिरोही को जोधपुर के अधीनस्थ राज्य बतलाया लेकिन वह असफल रहा। संधि के बाद§ इसने अंग्रेजों से ५०,०००) का ऋण लेकर राज्य की सेना को भली भांति संगठित किया तथा आंतरिक उपद्रवों को दबाया।

महाराव शिवसिंह

नीबज और रोउवा के जागीरदारों को दबाया।$

* राज्य की आमदनी ६०,०००) रु. ही रह गई थी।

† कई सामन्तों ने सिरोही के स्थान पर पालनपुर शासक की अधीनता स्वीकार करली। जोधपुर के शासक मानसिंह ने नजरबन्द उदयभाण को मुक्त कराने के लिए १८१९ ई० में जोधपुर की फौज पुनः सिरोही पर भेजी पर उसे सफलता नहीं मिली।

‡ सिरोही के शासक जोधपुर को कर देते रहे हैं। सिरोही शासक अभयसिंह के समय से ही मारवाड़ के अधीन थे—टाड : ट्रावल्स इन वेस्टर्न इन्डिया, पृ० ६०–६४।

§ ११ सितम्बर, १८२३ को अंग्रेजी सरकार से अधीनता की सन्धि शिवसिंह ने करली। अंग्रेजी सार्वभौमिकता सिरोही राव ने स्वीकार कर, वार्षिक कर ३।८ भाग आय का रखा। शिवसिंह ने अपने राज्य में सुधार करने, पोलिटिकल एजेन्ट की राय से कार्य करने व अन्य राज्यों से राजनैतिक सम्बन्ध न रखने की सन्धि की। एचिशन : ट्रीटीज, एंग्जेमेण्टस एण्ड सनदस् राजपूताना एजेन्सी भाग ३, पृ.३१०-३१२।

$ उदयपुर के पोलिटिकल एजन्ट केप्टन स्पीयर्स के हस्तक्षेप व सहायता से।

पालनपुर राज्य ने भी सिरोही के ३१२ गांव दबा लिये थे। अतः इसने अंग्रेजों से मध्यस्थता करवा करके गांव लौटा लिये। वि. सं. १८९३ में महाराणा जवानसिंह ने आबू पहाड़ की यात्रा करनी चाही। इस समय तक राजपूताने का कोई भी नरेश आबू पहाड़ पर नहीं जा सकता था परन्तु भारत सरकार के समझाने से महाराव ने महाराणा को यात्रा करने दी। इसके बाद नरेशों के लिये यह रुकावट हट गई।*

वि. सं. १८९३ (ई. सन् १८३६) में इसने ऐरनपुरा नामक गांव बसा कर वहां छावनी स्थापित की। छावनी के स्थापित होने के पहले सिरोही व मेवाड़ का सम्बन्ध अजमेर के पोलीटिकल एजेन्ट से था लेकिन अब एरनपुरा की छावनी के कमान्डर मेजर ड्राउनिंग को यह भार दिया गया और सिरोही का सम्बन्ध नीमच एजेन्सी से कर दिया गया।† वि. सं. १९०० (ई. सन् १८४३) में मारवाड़ के गोड़वाड़ इलाके के हाकिम ने सिरोही की सीमा पर के गांवों में लूटपाट की तब एक अंग्रेज अधिकारी मध्यस्थता के लिये नियुक्त हुआ। दोनों राज्यों की सीमा-बन्दी की गई लेकिन इसमें सिरोही के काफी गांव मारवाड़ में मिला दिये गये।‡ सं. १९०२ (ई. सन् १८४६) में आबू की आब-हवा अच्छी देख कर अंग्रेज सरकार ने वहां पर सेनीटोरीयम (स्वास्थ्य-दायक स्थान) स्थापित करना चाहा तब इसने वह स्थान दे दिया।§ यह स्थान स्वास्थ्य के लिये बड़ा अच्छा सिद्ध हुआ। यह एक पहाड़ी विश्राम-स्थल (हिल स्टेशन) हो गया। वि. सं. १९१० (ई. सं. १८५३) में इसने ऐरनपुरा छावनी के पास अपने नाम से शिवगंज नामक कस्बा बसाया। बसने वाले और व्यापारियों को इसने कई सुविधायें दीं। केवल सवा रुपये में मकान के पट्टे कर दिये। इसके कारण यह बहुत जल्दी आबाद हो गया तथा व्यापारिक केन्द्र बन गया।

वि. सं. १९१४ (ई. सन् १८५७) में जब विपल्व की आग फैली तब इस राज्य की ऐरनपुरा छावनी भी अछूती नहीं बची। यहां के सिपाही, सिवाय मीणों व भीलों के, विद्रोह कर बैठे व आबू पहाड़ पर पहुँच गये जहां कि अंग्रेज रहते थे। रोउआ ठाकुर को दबाने के लिये इसी समय एक पैदल सेना भेजी गई थी। यह सेना भी अनादरा पहुँच कर आबू के विद्रोहियों से मिल गई। आबू पर कुछ ही अंग्रेज थे लेकिन फिर भी विद्रोही उनका कुछ न बिगाड़ सके। यही बात ऐरनपुरा छावनी में भी हुई।

---

* ओझा : सिरोही का इतिहास पृ० २९७–२९८।
† राजपूताना गजेटियर भाग ३ बी, पृ० २९५।
‡ ओझा : सिरोही का इतिहास पृ० ३००।
§ एचीशन : ट्रीटीज, एंग्जेमेण्टस एण्ड सनदस भाग ३, पृ० ३१४।

महाराव ने इस समय गोरे अफसरों की रक्षा की और सरकार का बराबर राज-भक्त बना रहा। विद्रोह शीघ्र दबा दिया गया। इससे सरकार ने प्रसन्न होकर गदर के समाप्त होने पर राज्य के बकाया खिराज को माफ कर दिया और सालाना खिराज भी घटा कर आधा ६८८१।) कर दिया।*

वि. सं. १९१८ (ई. सन् १८६०) में महाराव के सब से बड़े पुत्र गुमानसिंह ने अपनी अस्वस्थता के कारण आत्म-हत्या करली। इससे शिवसिंह को बहुत ज्यादा दुःख हुआ। अतः राज्य-कार्य सन् १८६१ में उम्मेदसिंह को सौंप दिया और स्वयं ईश्वर भजन में लग गया।

महाराव शिवसिंह एक अच्छा शिकारी तथा घुड़सवार था। वह साहित्यकों का भी संरक्षक था। उसने राज्य की आर्थिक दशा सुधारने तथा अमन-चैन रखने का भरसक प्रयत्न किया। इसका स्वर्गवास वि. सं. १९१९ (ई. सन् १८६२) में हुआ। इसके छः रानियां, आठ पुत्र और छः पुत्रियां थीं।

महाराव उम्मेदसिंह
[वि. सं. १९१९–१९३२]

इसका जन्म वि. सं. १८८९ (ई. सन् १८३३) फागुण सुदि २ को हुआ। जब वि. सं. १९१८ में महाराव शिवसिंह ने इसे युवराज बना कर राज्य का प्रबन्ध सौंपा तब राज्य की दशा बहुत कुछ सुधर गई थी। वि. सं. १९१९ में शिवसिंह के स्वर्गवास होने पर पौष बदि २ को यह राज-गद्दी पर बैठा। इसके चार छोटे भाई हमीरसिंह, जैतसिंह, जवानसिंह तथा जमातसिंह थे। शिवसिंह के समय ही तीन भाइयों को ५००) रु. मासिक विवाह होने तक देना निश्चित हुआ था।†

* राजपूताना गजेटियर, भाग ३ बी, पृ० २४६०।

† सीताराम कृत हिस्ट्री ऑफ सिरोही स्टेट पृ. २४४। यह व्यवस्था हमीरसिंह के अलावा सब भाईयों ने स्वीकार की।

महाराव उम्मेदसिंह

परन्तु हमीरसिंह बगावत पर उतारू हो गया और भील,मीणों, गिरासिये आदि जुरायम पेशा लोगों का दल बांध कर पींडवाड़ा कस्बा पर कब्जा कर लिया। उस समय सिरोही के पोलिटीकल सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर हॉलं ने सेना भेज कर पींडवाड़ा से हमीर को भगा दिया। बाद में इस बगावत में तीन भाई भी शामिल हो गयेथे। अन्त में फाल्गुण बदि ६ सं. १६१६ को महाराव ने जागीरें* देकर इन भाईयों को राजी कर लिया। इसके राज्यकाल में भीलों, मीणों, गरासियों आदि पहाड़ी जातियों† ने लूट-खसोट करना ज्यादा ही शुरू कर दिया था। और तो और राजवंश के लोग तथा जागीरदार तक इनकी सहायता करते रहते थे।‡ अतः जनता सदा भयत्रस्त रहती थी।

---

* जेतसिंह को नादिया, हमीरपुर, लाज और आधी बावली की जागीर प्राप्त हुई। जवानसिंह को अजारी, आल्पा, खेजड़िया की जागीर मिली। जमातसिंह को खाखड़वाडा व खराड़ गांव दिए गए। हमीरसिंह उपद्रवी बना रहा। नीतोड़ा का गांव संयुक्त बना रहा। हमीरसिंह ने भी थोड़े समय बाद (आषाढ़ सुद २, १६२० वि. सं.) क्षमा मांग कर उम्मेदसिंह से सन्तपुर, कुई, सिवाह, भीमाणा, सिरोही का तीसरा भाग व पोसीतरा का खालसा भाग प्राप्त किया।

† १८६६ ई. में महाराव ने भाखर परगना, जहां भील व गिरासिए रहते थे और ढोर जानवर चुरा कर ले जाते थे, में जाकर एक माह तक रहे और वहां के भीलों से अच्छे बर्ताव करने का वायदा लेकर लौटे।

‡ ठाकुर नाथुसिंह के नेतृत्व में अत्याधिक उपद्रव हुए। जोधपुर राज्य की सीमा पर बसने वाले मीणों व भील सिरोही में लूटपाट मचाने लगे। उम्मेदसिंह इस विपत्ति को हल न कर सका। अंग्रेजी सरकार को इसकी भयंकरता उस समय महसूस हुई जबकि अहमदाबाद का रास्ता बन्द हो गया और व्यापारी मार्ग में लूटे जाने लगे। तब राज्य का राजनैतिक उत्तरदायित्व ऐरनपुरा की छावनी के अधिकारी को दे दिया गया। इस सैनिक अधिकारी ने शान्ति स्थापित करने के लिए कठोर नीति से काम लिया। फिर भी नाथुसिंह (जिसकी मृत्यु १८६६ में हो गई थी) का पुत्र भरतसिंह विद्रोही बना रहा। अन्त में १८७१ में अंग्रेजों से समझौता कर भरतसिंह शान्त हो गया।

यह बड़ा सरल प्रकृति का दयालु, ईश्वर भजन में रत और धर्म-कर्म-कांडी था। इसका ध्यान राज-प्रबन्ध में बहुत कम रहता था। इसके पुराने ख्यालात के होने से और दान-पुण्य में अधिक खर्च करने से राज्य पर कर्जा बढ़ता गया। इससे बचने के लिये सन् १८६९ में राज्य की बागडोर सरकार के हाथ में आठ वर्ष के लिये देने की ठान ली थी परन्तु सरकार ने कम से कम १२ वर्ष तक कब्जा रखना चाहा। अतः समझौता न हो सका। अंग्रेजी सरकार ने महाराव को कई सुधार* करने को मजबूर किया और ये चेतावनी दी कि यदि वे उदासीन बने रहेंगे तो सरकार जबरन उचित कार्यवाही काम में लायगी। इसका फल यह निकला कि महाराव नें अपने निज का खर्च घटाया और रियासत के कर्ज को चुकाया। इसका स्वर्गवास वि. सं. १९३२ की आश्विन कृष्णा १ (१६ सितम्बर, १८७५) को हुआ।

---

* महाराव के सुधार—

(१) महाराव को वि. सं. १९२२ की भाद्रपद शुक्ला ११ (१ सितम्बर, १८६५) को शासन के पूर्ण अधिकार दे दिए गए। तब से अपराधियों को सुधारे जाने की योजना बनाई गई।

(२) १८६२ ई. में राज्य भर में सती-प्रथा बन्द करदी गई।

(३) १८६६ ई. फौजदारी व दीवानी अदालतें पृथक् कर दी गईं।

(४) तहसीलदारों का वेतन बढ़ाया गया।

(५) आबू का म्यूनिसीपल व न्याय (अंग्रेजों से सम्बन्धित) शासन अंग्रेजी अधिकार में कर दिया गया (जुलाई १८६६ ई.)।

(६) १८६७ ई. में पींडवाड़ा, रोहीड़ा, मन्डार व कालिन्द्री में अंग्रेजी, हिन्दी व उर्दू के स्कूल खोले गए।

(७) १८६७ ई. में आधुनिक ढंग की राजकीय सेना निर्मित की गई।

(८) एक अस्पताल खोला गया।

(९) १८६८-१८६९ ई. में सिरोही में भयंकर अकाल पड़ा। राज्य की ओर से २५,०००) रु. खर्च कर, अकाल की पीड़ाओं को दूर करने का प्रयास किया गया। आबू व डीसा में कई कुए, बावड़िएँ व तालाब बनवाए गये। धान का निर्यात और आयात बढ़ाने के लिए उन पर कर कम कर दिया गया।

महाराव केसरीसिंह
[वि. सं. १९३२–१९७७]

इसका जन्म वि. सं. १९१४ की श्रावण कृष्णा १४ (२० जुलाई, सन् १८५७) को हुआ था। इसका वि. सं. १९३२ (२४ नवम्बर ई. सन् १८७५) में राजतिलक किया गया। राज-गद्दी पर बैठने के समय राज्य पर लगभग ८९,०००) का कर्ज था तथा राज्य की आमदनी लगभग १,०५,०००) थी।* अतः कर्ज चुकाने की एक बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई। राज्य में जागीरदार यों भी उपद्रव मचा रहे थे। इसने बडी कुशलता से भूमि का सुधार करके तथा प्रशासन में खर्चा कम करके ५ वर्षों में सब कर्जा चुका दिया तथा आमदनी के स्रोतों को बढ़ा दिया।† वि. सं. १९३६ (ई. सं. १८७९) में इसने भारत से नमक के सम्बन्ध में समझौता किया जिससे सिरोही को १७,८००) वार्षिक मिलने लगे।‡

इसने रेवाड़ा के उपद्रवी जागीरदार सार्दूलसिंह को गिरफ्तार कर गोली से उड़वा दिया तथा उसकी जागीर जब्त करली। झाड़ोली के बजावत शाखा के उपद्रवी राजपूतों को भी इसने दबाया और सज़ा दी। इससे और जागीरदार शान्त

---

* ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० ३३९।

† परदेशियों को सिरोही में बसाया गया। उन्हें भूमि कम दामों में दी गई व खेत जोतने पर कर कम लिया गया। आयात व्यापार वृद्धि के लिए विदेशों में व्यापारियों को जाने की आज्ञा मिल गई। वहां उन्हें सुविधा प्रदान करने का प्रयास किया गया। १८७७ ई. में यह आज्ञा प्रचलित की गई कि शासण की जमीन नहीं बेची जा सकती है।

‡ एचिशन: ट्रीटीज, सनदस् एण्ड ऐंग्जेमेण्टस् भाग ३बी, पृ० ३२१-३२५।

हो गये।*

इसने प्रशासनिक ढांचे में भी रद्दोबदल किये। नये विभाग खोले तथा पुराने विभागों को नये ढंग से काम करने की हिदायतें दी।† प्रशासन ठीक ढंग से होने से राज्य की वार्षिक आमदनी ५,२५,०००) तक पहुँच गई।‡

महारानी विक्टोरिया की वि. सं. १९५४ (ई. सन् १८९७) में डायमन्ड जुब्ली होने पर इसने राज्य में बड़ा उत्सव मनाया तथा पींडवाड़े के निकट "डायमन्ड जुब्ली टैंक" ४७,०००) का तालाब बनवाया लेकिन इसमें पानी कम ठहरता है। अतः इससे काश्तकारों को कम ही लाभ होता है।§

---

* ठाकुर वेलंगड़ी के साले ओका ने दांता के ठाकुर कानजी को मारकर उपद्रव प्रारम्भ किया। झाड़ोली के बजावतों के गद्दी खाली होने पर, तेजसिंह ने अधिकारों की मांग की। बजावतों ने विरोध किया और मनादर से तेजसिंह को निकाल दिया। राज्य की ओर से उपद्रव शान्त करने के लिए दीवान निआमत अलीखां व राजशहीबान जमतसिंह भेजे गए। शार्दूलसिंह रेवाड़ा के ठाकुर ने भी १८७९ में पुनः उपद्रव प्रारम्भ किया। १८८२ ई. में वह पकड़ा गया। उसे गोली से उड़ा दिया गया। १८९६ ई. में मेनारिया भील की कार्यवाहिऐं समाप्त कर दी गई।

† न्याय विभागों में सुधार—

(अ) फौजदारी—१. सर्वोच्च-न्यायालव—दरबार का न्यायालय (मृत्यु-दण्ड की पुनःस्वीकृति के लिए)।
२. मुसाहिब आला की कचहरी—सेसन कोर्ट।
३. न्यायालय।
४. तहसीलदार की कचहरी।

(आ) दीवानी—१. मुशाहिब आला की कचहरी।
२. मुन्सिफ कोर्ट।
३. तहसीलदार।

इस न्यायालय की अन्तिम अपील दरबार में हो सकती थी।

(ई) १८८८ ई. में पीनल कोड, सीवील प्रोसीज्योर, क्रीमीनल प्रोसीज्योर कोड। कोर्ट फीस कानून १८९० ई. में लागू किया गया। १८९६ ई. चिड़ियें और जानवरों का मारना कुछ दशाओं में बन्द किया गया।

(उ) पुलिस व तहसीलों का आधुनिक ढंग से संगठन किया गया।

(ए) १८९१-९२ में सेन्ट्रल जेल ३६०००) की लागत से बनाई गई।

(ओ) रेवन्यू कमिश्नरी स्थापित—नकद कर की प्रणाली प्रारम्भ कर दी गई।

‡ बाजार में नए तौल व नाप का प्रचलन; कस्टम विभाग का नवीन संगठन (१८९५) १९०४-५ में विघोड़ी का प्रचलन, मुद्रा में अंग्रेजी सिक्का शुरु किया गया (१९०४ ई.) राज्य की आमदनी ५,२५,००० रु० १९०५-६ में थी; १९१७-१९१४ में ९,०३,३५१ रु० हो गई।

§ इसके अलावा इसके शासनकाल में ट्रेवोर तालाब (१८९४), चन्देला तालाब, मानसरोवर तालाब (१९०० ई.) आदि तालाब भी बने।

वि. सं. १९५५ में कम वर्षा होने तथा वि. सं १९५६ में (१८९९ ई.) में बिल्कुल वर्षा न होने से सिरोही में भयंकर अकाल पड़ा। हजारों पशु और मनुष्य मर गये। कितने ही पशुओं और मनुष्यों को जंगली लोगों—भील, मीनें, गिरासिये आदि ने मार डाला। राज्य की ओर से काफी सहायता दी गई जिससे अन्य राज्यों के मुकाबले यहां कम मनुष्य मरे। वि. सं. १९५७ में बहुत ज्यादा वर्षा हुई इससे बिमारी बहुत फैली। इससे भी सैकड़ों आदमी मर गये।

वि. सं. १९६० (ई. सं. १९०४) में इसने राज्य में प्रचलित भीलड़ी रुपये की जगह कलदार रुपये चलाये। इससे जनता को काफी फायदा हो गया। भीलड़ी रुपये का भाव चांदी के भाव के अनुसार घटता बढ़ता रहता था। पिछले वर्षों में अकाल, अतिवृष्टि, देहली दरबार तथा नये भवनों के निर्माण के कारण राज्य पर लगभग ५ लाख रुपये कर्जा हो गया।* अतः राज्य की आर्थिक दशा गिरने लगी। इसी समय भारत स्वदेशी आन्दोलन ने बहुत जोर पकड़ा। स्वामी गोविन्द नामक एक सन्यासी ने वि. सं. १९६२ (ई. सन् १९०५) में "सम्पसभा" स्थापित की। इस सभा ने पहाड़ी लोगों, भीलों, मीनों आदि में एकता लाने, मादक द्रव्यों को छुड़ाने, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिये काफी चेतना फैलाई। अतः राज्य में शासन के विरुद्ध थोड़ी थोड़ी हवा चलने लगी।

इसके समय में ही नये अस्पताल, तारघर, व डाकखाने खोले गये।† सिरोही तथा पिंडवाड़ा में प्रचलित बेगार प्रथा बंद करदी गई। राज्य में कई महल, कोठियां, कार्यालय भवन, तालाब आदि बनाये गये।

इसको महारानी विक्टोरिया ने के० सी० एस० आई० तथा एडवर्ड सप्तम ने जी० सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित किया था। इसको १७ तोपों की सलामी मिली हुई थी। इसने कई बार तीर्थयात्रायें भी की। वि. सं. १९६६

---

* १००) कलदार रुपये = १४० भीलड़ी रुपयों के। भारतीय सरकार ने १५ लाख कलदार रुपयों तक ही परिवर्तित करने की आज्ञा दी।

† अन्य सुधारः—(१) अफीम के अलावा-अन्य चुंगी कर उठा दिए।
(२) १८८० ई. में अजमेर से अहमदाबाद तक रेलनिर्माण—सिरोही में ४० मील तक रेल पटरी निर्मित हुई।
(३) शिवगंज, आबूरोड़, में अस्पतालों की स्थापना हुई। राज्य में १००००) रु० वार्षिक स्वास्थय के लिए खर्चा किया जाता था।
(४) काल्विन हाईस्कूल की स्थापना ११ नवम्बर १९१५ ई. में हुई।
(५) आबू पर जाने वाली सड़क का निर्माण हुआ।
(६) आबूरोड़ में देशी खांड का कारखाना बनाने की आज्ञा दी गई।

(ई. सन् १९०९) में यह इंगलैण्ड भी गया था। वि. सं. १९७४ (ई. सन् १९१७) में इसने आबू पहाड़, भारत सरकार को ईजारे पर दे दिया।

इसका स्वर्गवास वि. सं. १९८१ (ई. सन् १९२५) में हुआ। स्वर्गवास से बहुत पूर्व वि. सं. १९७७ (ई. सं. १९२०) में ही इसने राज्य कार्य की देखरेख व पूरा काम अपने महाराजकुमार स्वरूपरामसिंह को सम्हला दिया था। अतः वही राज्य का कामकाज करता था।

महाराव स्वरूपरामसिंह
[वि. सं. १९८१ २००२]

इसका जन्म वि. सं. १९४५ की आसोज शुक्ला १५ (२७ सितम्बर, १८८९) को हुआ था। इसको राज्याधिकार अपने पिता के जीवनकाल में ही २९ अप्रेल १९२० को मिल गये थे। यों यह प्रधान मंत्री का काम भी पहले करता था।

इसके समय जनता में काफी राजनैतिक चेतना आ गई थी। किसान जागीरदारों के जुल्मों से तंग आ गये थे। सन् १९२२ मे यहां जागीरदारों के खिलाफ एक जबर्दस्त आन्दोलन चला। मई १९२२ में रोहिड़ा तहसील के २ गांवों में यह आन्दोलन बहुत ही क्रूरता से दबाया गया। आदमियों, औरतों और बच्चों को गोलियों से भून दिया गया। इससे लगभग १८०० आदमी मारे गये तथा ६०० मकान जला दिये गये। यह भील, गिरासिया आन्दोलन नाम से प्रसिद्ध है।*

---

* यह आन्दोलन श्री मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में हुआ था। गिरासिया व भीलों के गांवों में बिलायती मकराणी मुसलमान थानेदार के अत्याचार के विरुद्ध प्रारम्भ हुआ था। दूसरा आन्दोलन १९२४–२५ में प्रजा-विरोधी कानूनों के विरुद्ध "नौ प्रगना महाजन एशोसियेशन" ने चलाया। जनता को सफलता प्राप्त हुई और बैठ-वैगार बंद कर दी गई। सिरोही प्रजा-मंडल की स्थापना १६-४-१९३५ ई. को बम्बई में हुई। इसके सदस्य सिरोही में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते थे। इस संस्था का नेतृत्व कालान्तर में गोकुलभाई भट्ट को प्राप्त हुआ।

अंग्रेजी सरकार की ओरसे इसको ३ जून १९२४ को जी० सी० एस० आई० तथा पहली जनवरी १९३२ को जी० सी० आई० की उपाधि मिली।

इसके शासनकाल में राज्य पर कर्जा बढ़ गया। यह बड़ा विलासी था तथा अपना निजी खर्च बहुत बढ़ा लिया था। अपने मुसलमान प्राईवेट सेक्रेटरी जफरूलहुसेन के प्रभाव में आकर इसने नीच जाति की स्त्रियों (ढोलनियों आदि) से बहुत ज्यादा सम्बन्ध बढ़ा लिया। अपने प्राईवेट सेक्रेटरी के कहने में आकर इसने मुसलमानी धर्म भी अपना लिया। वि. सं. २००२ की माघ कृष्णा ६ (२३ जनवरी, १९४६)* को जब इसका देहान्त दिल्ली में हुआ तब इसकी लाश मुसलमानी ढंग से ही दफनाई गई।†

इसने चार ब्याह—पहला भुज की राजकुमारी से, दूसरा रतलाम की राजकुमारी से, तीसरा कुवार (गुजरात) के ठाकुर की पुत्री से तथा चौथा जूनिया (अजमेर) के ठाकुर की पुत्री से किया। इनकी बड़ी पुत्री कंचनकंवर बा का ब्यांह जामनगर नरेश दिग्विजयसिंह के साथ ७ मार्च १९३५ को हुआ था। इसके एक पुत्र लखपतरामसिंह रतलाम वाली रानी लीला से हुआ था लेकिन उसे

---

* 'हिन्दुस्तान' तारीख २४-१-१९४६।

† राज्य की स्थिति इनके शासनकाल में बिगड़ती गई। १९३८ की सिरोही के शासन की रिपोर्ट के आधार पर इस राज्य की आय १०,६०,८२४ रु. थी और खर्च ११,१७,०८१ रुपये था। राज्यकोष में सिर्फ ८३,७१६ रु० जमा थे और राज्य पर ४,५४,६५१ रुपयों का कर्ज था। जूनागढ़ से तीन लाख कर्ज लिए गए। राज्य भर में कुल गांव ५१५ थे थे, जिनमें ४२३ बसे हुए और बाकी उजड़े हुए पाए गए। आमदनी का ५५% राजा के नीजि खर्च में चला जाता था।

इसके कृपापात्रों में देसाई लल्लू भाई (रेवेन्यू कमीश्नर) व मौलवी जफरूल हुसेन (महकमा खास सेक्रेटरी) व बिसाजी थे। सिरोही राज्य की आमदनी कम होते हुए भी बड़ी तनख्वाह वाले अंग्रेज नियुक्त थे। मि० मेकग्रेगर दीवान था जिसे दो हजार महावार वेतन मिलता था। मि० केवेन्ट्री पुलिस आई. जी. पी. था। इसे एक हजार रुपया महावार मिलता था। मि. क्रिप्स नरेश के ए. डी. सी थे। इसे भी एक हजार रुपया माहवार प्राप्त होता था। जातीय पक्षपात के कारण सिरोही के निवासी कम ही ऊँचे पद पर थे। ज्यादातर मुसलमान (जफरूलहुसेन के रिश्तेदार) व गुजराती (लल्लू भाई के रिश्तेदार) नियुक्त किए जाने से जनता में असन्तोष फैलने लगा। जनता में गिरासिए व भीलों की संख्या अधिक थी पर उन्हें शिक्षा व स्वास्थय-सम्बन्धी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो सकी। १९२२-२३ में भील हत्याकांड के बाद भीलों व गिरासियों के लिए स्कूलों को शिक्षा-विभाग से हटा कर रेवन्यू-विभाग के अन्तरर्गत कर दिया गया। राज्य में नए कर लगाए गए और पुराने करों की दरें बढ़ा दी गई जिसमें मुख्य हाऊसटैक्स, सगपण कर (महाजनों पर), गोद-बाव, कपूर-बाव आदि थे।

दासी पुत्र घोषित कर राज्याधिकार नहीं दिया गया। इसके अलावा कोई जायन्दा पुत्र नहीं था।

महाराव तेजसिंह
[वि. सं. २००३–२००६]

महाराव स्वरूपरामसिंह के निःसंतान के मर जाने के कारण तथा अपने जीवनकाल में किसी को गोद न लेने के कारण भारत सरकार ने अपनी विवेक बुद्धि से राजपरिवार की मंडार शाखा की बड़ी पांती के भोपालसिंह के कुंवर तेजसिंह को राजगद्दी पर बैठाया।* यह ढ़ाई वर्ष का बालक था। इसका राज. तिलक पहली जुलाई १९४६ को हुआ। यह बालक महाराव स्वरूपरामसिंह का निकटतम सम्बन्धी नहीं था। अतः जनता की ओर से काफी विरोध किया गया। सिरोही राज्य में सन् १९२२–१९२३ से ही जन-आन्दोलन प्रारम्भ हो

* सिरोही स्टेट एक्सट्रा आरडीनरी गजट, ११ मई १९४६ वर्ष ७, अंक १५।
राजगद्दी प्राप्त करने के लिए राजकुमार लखपतरामसिंह ने भारत सरकार को १२ मई १९३९ को एक स्मृति-पत्र दिया कि उसे सिरोही का उत्तराधिकारी स्वीकार किया जावे लेकिन भारत सरकार ने उसे पासवान का पुत्र मानकर अप्रेल १९४५ में अस्वीकार कर दिया। स्मृति-पत्र के पृ० १२ पर यह उल्लेख किया गया था कि उसे पासवान का पुत्र द्वेषवश ही बतलाया गया है। भारत के एडवोकेट जनरल श्री बी० एल० मित्र ने जो राय भारत सरकार को २२ मई १९३९ को दी उसमें लखपतरामसिंह को स्वरूपरामसिंह का वास्तविक उत्तराधिकारी बतलाया था। स्वरूपरामसिह जैसे राजा के लिये कुछ नहीं कहा जा सकता जौ अपने वंशजों को राज-गद्दी दिलाना ही नहीं चाहता था (उसके मुस्लिम धर्म अपनाने का एक कारण यह भी था)। उसने ऐसी ही नीति वर्तमान महाराव (अभयसिंह) के लिए भी अपनाई थी और उसे ७ दिसम्बर १९४४ की विज्ञप्ति संख्या १३२४ के अनुसार राजवी होते भी महाराज की जगह ठाकुर लिखे जाने का आदेश दिया था। स्वरूप रामसिंह के जीवनकाल तक वह ठाकुर ही कहलाता रहा। अंत में जब राज्य में रिजेन्सी कौन्सिल बनी तब वह २७ सितम्बर १९४७ से फिर महाराज कहलाने लगा।

चुका था। सन् १९३६ से उसमें तीव्रता आई और द्वितीय महायुद्ध के बाद भारत में स्वतन्त्रता संग्राम ने जो उग्र रूप धारण किया उससे सिरोही बच नहीं सका। सिरोही प्रजा-मण्डल, जिसकी स्थापना २३ जनवरी, १९३९ में हुई ने भी गोकुल भाई भट्ट के नेतृत्व में आन्दोलन छेड़ दिया।

महाराव तेजसिंह के बाल्यावस्था में होने के कारण शासन की देखरेख के लिए १४ अगस्त, १९४७ को एक रीजेन्सी कौन्सिल का निर्माण किया गया जिसमें राजमाता अध्यक्षा और दांता के महाराणा श्री भवानीसिंह, मंडावर ठाकुर राजा साहब श्री भोपालसिंह सदस्य बनाए गए। उसी समय यह घोषणा की गई कि प्रशासकीय कौन्सिल को राज्य-कौन्सिल समझा जायेगा और उसके अध्यक्ष को 'मुख्य मंत्री' बनाया जायेगा। श्री आई० के० पाण्डया प्रथम मुख्य मंत्री नियुक्त किया गया। इस घोषणा के पहले ही ३ जून १९४७ के माउन्टबेटन योजना के अनुसार भारत को १५ अगस्त १९४७ को स्वाधीन करने का अंग्रेजी कानून स्वीकृत किया जा चुका था। राज्यों के प्रति जो नीति अंग्रेजी सरकार ने अपनाई

गोकुल भाई भट्ट

उसके फलस्वरूप सिरोही राज्य को यह अधिकार दिया गया कि चाहे वह भारत के अन्तर्गत रहे या स्वाधीन इकाई में रहे, उसके बारे में उसकी राज्य-कौन्सिल स्वयं निश्चय करे। ५ अगस्त को आबू, जो कि अंग्रेजों को १९१७ ई. में लीज पर दिया गया था अंग्रेजों ने आबू को पुनः सिरोही राज्य को दे दिया गया। २४ अक्टूबर १९४७ से सिरोही-राज्य प्रजा-मण्डल का प्रतिनिधि श्रीजुहारमल सिंघी सिरोही का प्रथम लोक-प्रिय मंत्री नियुक्त किया गया सिरोही जनता की यह ऐतिहासिक विजय थी। शीघ्र ही सम्पूर्ण लोकप्रिय मंत्री-मंडल के निर्माण का प्रयास भी किया गया। गोकुल भाई भट्ट के नेतृत्व में इसका निमाण फरवरी १९४८ को हुआ। भारत सरकार के गृह-मंत्री सरदार पटेल की राज्य एकीकरण की नीति के कारण राजस्थान के राज्यों का एकीकरण १९४८ के १८ मार्च से प्रारम्भ हुआ।* सिरोही के बारे में भारतीय सरकार द्वारा पृथक नीति अपनाई गई।

---

* मत्स्य-संघ (अलवर, भरतपुर, करौली, धोलपुर) का उद्घाटन १८ मार्च १९४८ को हुआ। यह एकीकरण का प्रथम सोपान था।

नवम्बर १९४७ ई० में सिरोही को गुजरात प्रान्त में मिलाने का सुझाव इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि सिरोही भाग के कुछ क्षेत्रों में गुजराती प्रभाव रहा है। १ फरवरी १९४८ को सिरोही गुजरात राज्य एजेन्सी का भाग बना दिया गया। १९ मार्च १९४८ को गुजरात के राज्य बम्बई प्रान्त में मिल गए परन्तु सिरोही को गोकल भाई भट्ट की राय से* केन्द्रीय प्रशासन में ८ नवम्बर १९४८ को ले लिया गया। ५ जनवरी, १९४९ को सिरोही का शासन बम्बई सरकार को सौंप दिया गया जिससे वह केन्द्र के नाम पर प्रबन्ध कर सके। इसी बीच में महाराव तेजसिंह के विरुद्ध गद्दी पर अधिकार प्राप्ति के लिए अभयसिंह† और लखपतरामसिंह‡ ने भारत के राज्य-विभाग को स्मृति व प्रार्थना-पत्र भेजा। भारत सरकार ने सौराष्ट्र के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश दिवेतिया की अध्यक्षता में इसकी जांच करने के लिये एक आयोग स्थापित किया। इस आयोग ने अभय-सिंह को महाराव स्वरूपरामसिंह के बाद सिरोही का सही उत्तराधिकारी स्वीकार किया।§ भारत सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया। इस समस्या के साथ ही एक अन्य समस्या उठ खड़ी हुई। सिरोही को गुजरात व राजस्थान में मिलाने के लिए पृथक-पृथक आन्दोलन उठ खड़े हुये। सरदार पटेल ने इस पर सिरोही के दो भाग कर दिए। आबूरोड़ व दिलवाड़ा तहसील के ८९ गांव बम्बई में मिला दिए गए और बाकी राजस्थान में। भारतीय संविधान सभा में १६ नवम्बर १९४९ में इस विभाजन की प्रथम बार घोषणा की गई। २६ जनवरी, १९५० को राजस्थान की तरफ से जोधपुर कमिश्नर ने विभाजित सिरोही का राजस्थान में सम्मिलित करने का चार्ज ले लिया। आबू का बम्बई में जाना राजस्थान पर एक अत्याचार माना गया। राजस्थानी जनता ने इसका विरोध किया। भौगो-लिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आबू का क्षेत्रराजस्थान का भाग रहा था। अतः जब १९५६ में राज पुनर्निमाण आयोग ने राज्यों के पुनर्गठन पर अपनी रिपोर्ट दी तो आबू पुनः राजस्थान का भाग १ नवम्बर १९५६ को हो गया।

---

* मेननकृत दी इंटग्रेसन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. २७०

† यह महाराव उम्मेदसिंह के भाई का पौत्र था।

‡ महाराव स्वरूपरामसिंह का पुत्र जिसका गद्दी के लिए प्रार्थना-पत्र १९४५ अप्रेल में रद्द किया गया था।

§ महाराव को प्रीवी पर्स के २,१२,६००) वार्षिक मिलते हैं।

सिरोही राज्य का मुसलमानों से सम्बन्ध

भारत में मुसलमानों के आक्रमण दसवीं शताब्दी के अन्त से प्रारम्भ होने लगे। यों तो वि. सं. ७६८ (७११ ई.) में मोहम्मदबीन कासिम के नेतृत्व में सिन्ध पर पहला अरबी आक्रमण हुआ परन्तु वह सिर्फ घटना बन कर ही रह गया। सिन्ध के बाहर इसका नगण्य प्रभाव पड़ा। वि. सं. १०५७ (१००० ई.) में गजनी के शासक महमूद गजनवी ने भारत में धन प्राप्ति के लिए भारत पर आक्रमण प्रारम्भ किए। वि. सं. १०८२ (१०२५ ई.) तक वह भारत के विभिन्न भागों को लूटता रहा। उसका प्रसिद्ध आक्रसण वि. सं. १०८२ (१०२६ ई.) मे सोमनाथ के मन्दिर (सौराष्ट्र) पर हुआ। उस समय गुजरात में चालुक्यों का शासन था। गजनवी के आक्रमण से चालुक्य शासक भीमदेव गुजराज को न बचा सका। आबू के परमार शासक ने जो कि सोलंकियों के अधीन था, इस युद्ध में सोलंकियों का साथ नहीं दिया क्योंकि परमार धंधूक इनसे स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहा था। सम्भवतः इस स्थिति का लाभ उठा कर वह धार के शासक राजा भोज के पास सहायता प्राप्त करने चला गया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। महमूद ने सिर्फ धन प्राप्ति के लिए ही सोमनाथ पर आक्रमण किया था। अतः उसके लौटते ही भीमदेव ने अपनी शक्ति संगठन कर धंधुक पर आक्रमण किया। धंधुक के विरुद्ध सेनापति विमलशाह भेजा गया जिसने (सन् १०३१) में आबू पर अधिकार कर, व धंधुक को गिरफ्तार कर भीमदेव के समक्ष उपस्थित किया।* विमलशाह ने आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ किया।

मुहम्मद गोरी के भारतीय आक्रमणों के काल में (११७५-११९३ ई.) गुज-

* ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृ० १४६।

रात में मूलराज सोलंकी व भीमदेव द्वितीय राज्य कर रहे थे। मुलतान आदि पर विजय प्राप्त करके मुहम्मद गोरी गुजरात पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। सन् ११७८ ई. में उसने अन्हिलवाड़ा के शासक मूलराज पर आक्रमण किया। मूलराज के समय धारावर्ष परमार आबू का शासक था जो चालुक्यों के सामन्त के रूप में मुसलमानों से लड़ने के लिए तैयार था।* इस युद्ध में मुहम्मद गोरी हार गया। मूलराज की मृत्यु भी ११७८ ई. में हो गई। उसका पुत्र भीमदेव द्वितीय गद्दी पर बैठा। मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज चौहान को ११९३ ई. में तराईन के मैदान में हरा कर दिल्ली पर मुसलमानी शासन की स्थापना कर दी। उसने अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में मुस्लिम राज्य के प्रसार के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। ऐबक ने गुजरात पर ११९५ ई. में आकमण किया। भीमदेव का सेनापति कुमारपाल ऐबक का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। आबू का हर्षदेव भी भीमदेव की सहायता के लिए आबू के नीचे कायन्द्रा गांव में आ डटा। यह युद्ध कायन्द्रा और आबू के बीच के मैदानों में हुआ।† कुमारपाल युद्ध करता हुआ मारा गया। चालुक्यों की बुरी तरह हार हुई। ऐबक लूटपाट करता हुआ दिल्ली लौट गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद ईल्तूतमिश ने दिल्ली सल्तनत पर अधिकार कर लिया। उसने सुदृढ मुस्लिम राज्य की स्थापना भारत में की। गुजरात में भी सोलंकियों की शक्ति कमजोर होने लगी।‡ आबू के परमारों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास किया। इस संघर्ष के कारण उनकी शक्ति भी क्षीण होने लगी। धीरे-धीरे परमारों के कई क्षेत्र पड़ोसी राज्यों ने दबाने शुरू किए। जालोर के चौहानों ने आबू से पश्चिम का बहुतसा क्षेत्र दबा लिया था। महाराव लूंभा चौहान ने परमारों से आबू तथा चन्द्रावती छीन कर (१३११ ई. में) आबू में परमारों के राज्य का अन्त कर दिया।§ सिरोही का क्षेत्र इल्तूतमिश के काल में मुसलमानी आक्रमणों से बचा रहना प्रतीत नहीं होता है। १२२८ में इल्तूतमिश ने जालोर का घेरा डाल दिया जहां चौहान शासक उदयसिंह शासन करता था। आबू के परमारों द्वारा इस आक्रमण के समय तटस्थ नीति अपनाना प्रतीत होता

---

* ओझा: सिरोही राज्य का इतिहास पृ. १५१।

† ताजुल मआसिर।

‡ १२९९ ई० में अलाउद्दीनखिलजी ने अपने भाई उलुगखां को गुजरात के शासक कर्ण बाघेला के विरुद्ध सेना भेजी। कर्ण बाघेला हार गया व देवगीरि भाग गया। गुजरात का राज्य विध्वंश होने लगा। ऐसी स्थिति में आबू व परमार स्वतन्त्र हो गए होंगे।

§ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३ (अ), पृ० २३८।

है। जालोर पर अलाउद्दीनखिलजी ने १३०९ ई. में आक्रमण किया। वहां का शासक कान्हड़देव युद्ध करता हुआ मारा गया।* इन चौहानों की एक शाखा ने सिरोही की ओर आकर यहां अपना राज्य स्थापित किया।

सिरोही की भौगोलिक स्थिति इस राज्य के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई। मारवाड़, मेवाड़ व गुजरात की सीमाओं के मध्य में यह क्षेत्र इन राज्यों की प्रसार शक्ति का शिकार बनता रहा। मेवाड़ के राणा कुम्भा (१४३३-१४६८) के काल में सिरोही के आबू पर्वत पर सिसोदियों का अधिकार हो गया। महाराणा कुम्भा ने वि. सं. १५०९ (१४५२ ई.) में अचलगढ़ के किले का निर्माण करा कर मुसलमानों से सुरक्षा का स्थान बना दिया था। सिरोही शासक सैंसमल देवड़ा ने गुजरात के शासक कुतुबुद्दीन को सहायता के लिए लिखा। वि. सं. १५१४ (१४५७ ई.) में कुतुबुद्दीन ने महाराणा कुम्भा पर आक्रमण किया। सिरोही का शासक लाखा भी उसके साथ था। आबू प्राप्ति के लिए कुतुबुद्दीन ने शहबान इमादुमुल्क को भेजा, पर वह कुम्भा की शक्ति के आगे टिक न सका। इस पर चांपानेर के अहदनामे के अनुसार कुतुबुद्दीन ने लाखा की सहायता की। उसने राणा कुम्भा पर कुंभलगढ़ की ओर आक्रमण किया। राणा ने आबू पर पड़ी सेना को कुम्भलगढ़ बुला लिया। इस पर राव लाखा ने आबू पर पुनः अधिकार कर लिया।† परन्तु यह विजय अत्यन्त मंहगी पड़ी। कुतुबुद्दीन ने सिरोही को तीन बार लूटा और बहुत से क्षेत्रों पर अधिकार भी कर लिया।‡ सन् १४६७ ई. में गुजरात के शासक महमूद बेगड़ा ने सूरत पर अधिकार कर लिया। उसी वर्ष उसने जूनागढ़ पर आक्रमण किया। इस युद्ध में महाराव लाखा ने बेगड़ा की सहायता की और इसके फलस्वरूप पावागढ़ प्राप्त किया। पावागढ़ से कालिका की मूर्ति लाकर सिरोही में स्थापित की।§

महाराव जगमाल वि. सं. १५४० (१४८३ ई.) में सिरोही की गद्दी पर आसीन हुआ। इस काल में सिरोही मुसलिम शासकों की शक्ति का शिकार बन गई। देहली, अहमदाबाद में व्यापार करने वालों को सिरोही होकर जाना पड़ता था। महाराव इन व्यापारियों पर अधिक अत्याचार करते थे। महमूद बेगड़ा ने महाराव को दण्ड देने के लिए वि. सं. १५४४ (१४८८ ई.) में

---

* फरिस्ता के अनुसार; मुहणोत नेनसी १३११ ई. में उदयसिंह का मारा जाना उल्लेख करता है।

† मिराते-सिकन्दरी व फरिस्ता। ‡ तबकाते अकबरी।

§ सिरोही की ख्यात।

सिरोही पर आक्रमण करने की तैयारी प्रारम्भ की। महाराव ने सूचना मिलने पर यह आतंक बन्द कर दिया।*

दिल्ली में उस समय सुल्तान बहलोल लोदी राज्य कर रहा था। मेवाड़ के राणा रायमल पर उसने आक्रमण कर दिया। जगमाल ने राणा की मदद की और सुल्तान को हराया। इससे प्रभावित होकर राणा ने जगमाल को अपनी कन्या ब्याह दी और उसे आबू का शासक स्वीकार कर लिया।† जालोर के बिहारी पठान मजहिदखां और जगमाल के आपस में भी युद्ध हुआ था। मजहिदखां कैद हो गया। १५०४ ई. में उससे ६ लाख फिरोजे दंड के लेकर मुक्त कर दिया गया।‡

मुगलों से सम्बन्धः—१५२६ ई. में भारत से लोदी सल्तनत का अन्त हो गया और बाबर के नेतृत्व में मुगल साम्राज्य की स्थापना हो गई। महाराणा सांगा को खानवा के युद्ध में बाबर ने हरा कर उत्तरी भारत में मुगल शक्ति को सार्वभौमिक बना दी। सिरोही का शासक अखेराज राणा सांगा के साथ खानवा के युद्ध, वि. सं. १५८४ (१७ मार्च, १६२७) में लड़ा था§ परन्तु राजपूत शक्ति की हार हो जाने पर वह सिरोही लौट आया। राणा सांगा युद्ध-क्षेत्र में घायल हो जाने पर बेहोश हो गया। इस पर महाराव अखैराज जोधपुर के राव मालदेव व जयपुर के पृथ्वीराज की सहायता से उसे सुरक्षित स्थान पर ले गया।$ अखैराज का देहान्त वि. सं. १५६० (१५३३ ई.) में हो गया। राणा सांगा वि. सं. १५८४ (१५२८ ई.) में ही मर चुका था। उसके बाद चित्तौड़ की गद्दी पर उसका पुत्र रतनसिंह गद्दी पर बैठा परन्तु शीघ्र ही बूंदी के राव सूरजमल द्वारा वह मार दिया गया। वि. सं. १५८८ (१५३१) में विक्रमादित्य का शासन मेवाड़ में प्रारम्भ हुआ। वह अयोग्य था। उसके काल में बहादुरशाह ने दो बार चित्तौड़ का घेरा डाला। पहला घेरा ३१ जनवरी, १५३३ से २४ मार्च १५३३ तक रहा और दूसरा घेरा जनवरी १५३५ ई. में डाला। सिरोही के राव रायसिंह ने चित्तौड़ की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ दीं परन्तु बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर

---

* मिराते–सिकन्दरी में, व्यापारियों से छीने हुए माल को पुनः वापिस दे देने का उल्लेख पाया जाता है।

† टॉड: एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग १ पृ० ३४०।

‡ नैणसी की ख्यात व पालणपुर की तवारीख।

§ डा. जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल्स पृष्ठ ३६।

$ उपरोक्त पृ० ३८।

अधिकार ८ मार्च, १५३५ में कर लिया।* वि. सं. १६०० (ई. सन् १५४३) में इसने भीनमाल प्राप्त करने के लिए जालोरी पठानों पर भी चढ़ाई की लेकिन इस युद्ध में तीर लग जाने के कारण इसकी मृत्यु हो गई।†

अकबर के समय मुग़ल साम्राज्य अत्यन्त विशाल और शक्ति-शाली बन गया। उसने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए राजपूतों से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लिया। राजपूत-मुगलाई वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुए। जयपुर के राजा विहारीमल ने (१५६२ ई. में) इस नयी नीति को जन्म दिया। धीरे-धीरे राजपूताना के शासकों—जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बून्दी, जैसलमेर आदि ने मुगलाई अधीनता स्वीकार कर ली। चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह अकबर की इस नीति को धार्मिक व राजनैतिक पतन समझते थे। अकबर की शक्ति को प्रथम बार अरावली पहाड़ों के निवासियों से चुनोती प्राप्त हुई। साम्राज्यवादी अकबद ने चित्तौड़ पर आक्रमण वि. सं. १६२४ (ई. सन् १५६७ अक्टूबर) में कर दिया। राणा उदयसिंह राजनैतिक और परम्परा-गत परिस्थितियों से बाध्य होकर अपनी नीति न अपना सका। वह शान्ति चाहता था।1 सामन्तवर्ग चित्तौड़ को स्वतंत्र रखना चाहता था अतः राणा चित्तौड़ छोड़ कर चला गया। चित्तौड़ की रक्षा का भार राठौड़ जयमल, पत्ता, कल्ला आदि सरदारों ने अपने ऊपर लिया। सिरोही के राव मानसिंह ने, जिसको महाराणा उदयसिंह ने अपने यहां शरण दी थी, इस युद्ध में भाग नहीं लिया।

अकबर की शक्ति को दूसरी बार अरवली पहाड़ से चुनोती राणा प्रताप ने दी जो कि उदयसिंह की मृत्यु के बाद वि. सं. १६२८ (ई. सन् १५७२) में गद्दी पर बैठा था। राणा प्रताप इस कार्य में अकेला नहीं था। जोधपुर का राव चन्द्रसेन और सिरोही का राव सुरताण द्वितीय भी इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। गुजरात विजय के लिए और बाद में गुजरात तक जाने के लिए निष्कंटक मार्ग की आवश्यकता समझ कर अकबर सिरोही पर अधिकार करना चाहता था। १५७२-७६ तक सिरही की राजगद्दी के तीन उत्तराधिकारियों में सुरताण, कल्ला व बींजा-संघर्ष चल रहा था। सुरताण जिस समय गद्दी पर बैठा वह १२ वर्ष का बालक ही था। बींजा, जो दीवान का कार्य करता था, ने सुरताण को रामसीण भगा दिया परन्तु महाजल देवड़ा के पुत्र कल्ला ने महाराणा की सहा-यता से सिरोही पर कब्जा कर लिया। सुरताण ने जालोर के मालिकखां पठान

* डा. जी. एन. शर्मा कृत मेवाड़ एण्ड दी मुगल्स, पृ. ५६-५७।
† नैणसी की ख्यात।

की सहायता से सिरोही पर पुनः अधिकार कर लिया। सिरोही के घरेलू झगड़ों का लाभ उठा कर अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को भेज कर सिरोही पर अधिकार करना चाहा। सूरताण ने आबू पर्वत की शरण ली, परन्तु रायसिंह ने सुरताण को हरा दिया। सुरताण ने अकबर की अधीनता वि. सं. १६३४ (१५७७ ई.) में स्वीकार करली।* वि. सं. १६३७ (१५८० ई.) में सिरोही को मुगलाई सरकार बनाया गया और अजमेर सूबे के अन्तर्गत कर दीया गया।† बींजा जो अब तक सिरोही से हट कर ईडर राज्य में रहने लगा था, रायसिंह से आ मिला और उसने रायसिंह से समझौता करना चाहा कि सिरोही का राज्य प्राप्त करने में यदि मुगलाई शक्ति का सहयोग उसे प्राप्त होवे तो वह आधी सिरोही मुगलों को सौंप देगा। सुरताण ने भी रायसिंह को इन्हीं शर्तों पर मुगलाई सहायता के लिए लिखा।‡ अकबर ने सुरताण की शर्तें स्वीकार कर बींजा को सिरोही से निकाल दिया। शीघ्र ही मुगल बादशाह को यह मालूम हुआ कि सुरताण और जालोर का ताजखां महाराणा प्रताप की सहायता§ कर रहे हैं तो सुरताण को अधिकार में रखने के लिए सिरोही का आधा भाग जो सुरताण ने मुगलों को सौंपा था, महाराणा प्रताप के छोटे भाई जगमाल को वि. सं. १६४० (सन् १५८३ ई.) में दे दिया। जगमाल ने अकबर की अधीनता पहले ही स्वीकार करली थी।

जगमाल की सिरोही में नियुक्ति सुरताण और राणा प्रताप दोनों के लिए खतरा था। इससे वंशीय युद्ध की संम्भावना बढ़ने लगी। जगमाल धीरे-धीरे पूर्ण सिरोही पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। अकबर की इस कूटनीति ने सुरताण को उसका घोर विरोधी बना दिया। जगमाल ने सिरोही पर अपना अधिकार स्थापित कर, बींजा से मित्रता स्थापित करली। सूरताण अरवली पहाड़ों में चला गया। अकबर ने सुरताण को पकड़ने के लिए जगमाल की सहायता के लिए जोधपुर के शासक रायसिंह राठौड़ को भेजा परन्तु सुरताण ने दत्ताणी के

---

* अकबरनामा (वेवरिज अनुवाद) जिल्द ३, पृ० २६६-६७। ओझा: बीकानेर राज्य का इतिहास जिल्द १, पृ. १७४।

† आइने अकबरी: जिल्द १, पृ० ४८५ व पृ० ४६२। पी. शरण: प्रोवेन्सीयल गवर्नमेंट ऑफ दी मुगलस् पृ. १२८।

‡ ओझा: बीकानेर का इतिहास जिल्द १, पृ. १७६।

§ राणा प्रताप मुगलों से सन् १५७६ ई. में हल्दी घाटी में हार कर मुगलों के विरुद्ध उदयपुर, ईडर, जालोर और सिरोही राज्यों का संयुक्त मोर्चा बनाने लगा था। डा. शर्मा: मेवाड़ एण्ड दी मुगल पृ. १०८।

युद्ध में (अक्टूबर १५८३) जगमाल और रायसिंह की सम्मिलित सेना को बुरी तरह से हराया। दोनों मुगलाई सेनापति मारे गए।* सिरोही पर सुरताण का पुनः अधिकार हो गया।

अकबर ने दताणी युद्ध में शाही हार का बदला लेने के लिए वि. सं. १६४४ (सन् १५८८ ई.) में जानबेग की अध्यक्षता में एक सेना भेजी।† जगमाल के स्थान पर बींजा सिरोही का शासक स्वीकार कर लिया गया। जानबेग जोधपुर के शासक मोटा राजा उदयसिंह सहित सुरताण के विरुद्ध आबू पहाड़ की ओर चला। आबू का घेरा डाला गया पर एक माह के बाद भी आबू पर मुगलाई अधिकार न हो सका। वीरता जब सफलता न दे सकी तो उदयसिंह ने कूटनीति से काम लिया। उसने शान्ति वार्ता के लिए सुरताण को लिख भेजा। सुरताण ने सन् १५८८ ई. में बगड़ी के ठाकुर बेरीसाल की सुरक्षा-सौगन्ध पर अपने सामन्त देवड़ा सावतसी के नेतृत्व में एक दल नीतोड़ा में भेजा। उदयसिंह ने राम-रत्न-सिंहोत द्वारा देवड़ा शान्ति वार्ता के दल को मरवा डाला और नीतोड़ा को लूटना प्रारम्भ किया।‡ उधर बींजा आबू के घेरे को और मजबूत बना कर सुरताण को वहां से निकल जाने को बाध्य करने लगा। वास्थान की लड़ाई में§ सुरताण की पुनः विजय हुई। इस लड़ाई में बींजा मारा गया। उदयसिंह राव कल्ला को सिरोही का उत्तरदायित्व सौंप कर जोधपुर चला गया। सुरताण ने कल्ला से सिरोही छीन ली।$ १५९६ ई. में अकबर ने जोधपुर के शासक शूरसिंह को गुजरात भेजा। उसे फरमान दिया कि राव सुरताण को भी अधीन करे। शूरसिंह ने पूर्ण सफलता प्राप्त की¶ और शाही सेना की सहायता के लिए उसने अपनी एक टुकड़ी शेरसिंह को दी। अकबर की मृत्यु वि. सं. १६६२ (१६०५ ई.) में हो गई लेकिन सुरताण वि. सं. १६६७ (१६१० ई.) तक जीवित रहा।

सिरोही के शासक (वि. सं. १६६७ से १७१४—सन् १६१० ई. से १६५७ ई. तक) मुगलों की सेवा में रहे परन्तु कोई महत्वपूर्ण स्थान इन्हें मुगलाई राज-नीति में प्राप्त हुआ प्रतीत नहीं होता है। वि. सं. १७१४ (१६५७ ई.) में मुगल

---

* अकबरनामा भाग ३, पृ. ४१३

† जोधपुर की ख्यात भाग १, पृ. १००।

‡ रेउ : मारवाड़ का इतिहास जिल्द १, पृ. १७४।

§ अकबरनामा जिल्द ३, पृ. ६४१।

$ जोधपुर राज्य की ख्यात भाग १, पृ. १००; मुंहणोत नेणसी की ख्यात जिल्द १, पृ. १३४; बांकीदास की बात संख्या ८७१।

¶ अकबरनामा जिल्द ३, पृ. ७२५।

बादशाह शाहजहां बीमार पड़ा। उसके पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिये युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक शाहजादा राजपूत शासकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए पत्र व्यवहार करने लगा। सिरोही के शासक अखैराज द्वितीय से शाहजादा मुराद, जो कि गुजरात का सूबेदार था, इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करने लगा। शाहजहां के प्रथम पुत्र दारा के पत्र भी अखैराज के पास आते रहे। दारा के पत्रों में जो वि. सं. १७०३ से १७१४ (१६४६ ई.से १६५७ ई.) तक के प्राप्त हुए हैं उनमें अखैराज के शाही सेवा में उपस्थित होने तथा निष्कंटक शासन करने का आदेश था व मुराद के विरुद्ध शाही सेवा में लगे रहने की हिदायत थी।* अखैराज ने दारा का पक्ष लिया परन्तु दारा धरमत के स्थान पर १६५७ में औरंगजेब से हार कर लाहोर व सिन्ध की तरफ चला गया। फिर १६५८ ई. में अहमदाबाद पर अधिकार करके जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह के निमंत्रण पर मारवाड़ की ओर चला गया। ऐसी स्थिति में दारा ने सिरोही के अखैराज से पुनः सहायता मांगी और मारवाड़ की ओर जाता हुआ सिरोही आया।

दारा देवली (अजमेर के पास) युद्ध में १६५६ ई. में, हार कर मेड़ता, पीपाड़, सिरोही होता हुआ अहमदाबाद की ओर चला गया। औरंगजेब ने १६५८ ई. में दिल्ली पर अधिकारकर लिया। राजपूताना के शासकों जयपुर के जयसिंह, जोधपुर के जसवन्तसिंह और सिरोही के अखैराज ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। जसवन्तसिंह दारा का पीछा करता हुआ सिरोही आया। उसे गुजरात का सूबेदार बना दिया गया था। उसने सिरोही की राजकुमारी आनन्दकुँवरी (अति सुखदे) से शादी की। अखैराज वि. सं. १७३० (१६७३ ई.) में मर गया। कई देवड़ा सामन्तों ने जसवन्तसिंह के साथ दक्षिण में मरहटों के विरुद्ध युद्धों में भाग लिया था। जसवन्तसिह की मृत्यु वि. सं. १७३५ (ई. सन् १७७८ नवम्बर) में जमरूद थाने में हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अजीतसिंह पैदा हुआ। औरंगजेब ने अजीतसिंह को जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार न करके, जोधपुर राज्य मुगलाई साम्राज्य में मिला दिया। दुर्गादास के नेतृत्व में जोधपुर के राठौड़ बालक अजीतसिंह को दिल्ली से भगा कर, राव बैरीसाल के पास सिरोही लाए† परन्तु बैरीसाल मुगलाई शक्ति के विरुद्ध बालक को शरण नहीं देना चाहता था। इस पर जसवन्तसिंह की

---

* ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. २५६–२६२।

† सरकार : औरंगजेब का इतिहास जिल्द ३, पृ. ३३४–३५।
अजितोदय : सर्ग ७, श्लोक ४–७।

विधवा राणी अतिसुखदे की सलाह से पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणा ब्राह्मण की स्त्री को उसे सौंप दिया गया ।* सिरोही के गांव कालिन्द्री में अजीतसिंह का लालन-पालन होने लगा । औरंगजेब ने वि.सं. १७३६ (१६८० ई.) में मेवाड़ व मारवाड़ पर आक्रमण कर दिया । उसके पुत्र अकबर को दुर्गादास ने अपने पिता के विरुद्ध करके अपनी ओर मिला लिया । दुर्गादास अकबर के नेतृत्व में उदारवादी मुगल शासन की स्थापना करना चाहता था जिससे अजीतसिंह को जोधपुर का शासन प्राप्त हो सके । उसने मेवाड़, जयपुर व सिरोही के शासकों को औरंगजेब के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने की योजना में सम्मिलित करना चाहा । अकबर के विद्रोह को सहायता न देने का व उसे पकड़ने का आदेश औरंगजेब की ओर से शाहजादा मुअज्जम का आदेश १६८८ ई. में बैरीसाल को प्राप्त हुआ ।† अतः जब दुर्गादास अकबर को लेकर सिरोही पहुँचा तो महाराव ने उसकी सहायता नहीं की । इस पर अकबर कुछ दिन आबू में रहकर डुंगरपुर की ओर चला गया ।‡ जब तक औरंगजेब की मृत्यु नहीं हुई तब तक अजीतसिंह सिरोही के पहाड़ों की ओर से मुगलों से युद्ध करता रहा ।

औरंगजेब की मृत्यु वि. सं. १७६३ (ई. सन् १७०७) के बाद मुगलों की शक्ति क्षीण होने लगी । अजीतसिंह सिर्फ जोधपुर का शासक ही नहीं बन गया, उसे १७१५ ई. में गुजरात की सुबेदारी भी प्राप्त हो गई । देवड़ा ठाकुर पाडीव (सिरोही का सामन्त) महाराव की ओर से अभयसिंह राठौड़ व सरबुलन्दखां के बीच के युद्ध में (१३३० ई.) लड़ने गया जहां उसकी वीरता से अभयसिंह की विजय हुई । इसके बाद सिरोही में जोधपुर का प्रभाव स्थापित हो गया ।

मुगलों के लिए सिरोही का अत्यन्त महत्व था । गुजरात व दक्षिण भारत में जाने का मार्ग सिरोही होकर ही जाता था अतः वे हमेशां इस बात का ध्यान रखते थे कि सिरोही शासक उनकी अधीनता में ही रहें । सिरोही १५८० ई. से अजमेर सूबे की एक सरकार बनाया गई परन्तु मुगलों को वहां से कर-वसूली का ही अधिकार था ।

* रेउ : मारवाड़ का इतिहास जिल्द १, पृ. २५४ ।
† ओझा : सिरोही का इतिहास पृ. २६६ ।
‡ अजितोदय : सर्ग ११, श्लोक २१–२६ ।

सिरोही राज्य का अंग्रेजों से सम्बन्ध

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना वि. सं. १८१४ (१७५७ ई.) में हुई। भारत में मराठा शक्ति की प्रगति में पानीपत के मैदान में १७६१ ई. में हार प्राप्त होने पर, कुछ समय के लिये रुकावट पैदा हो गई थी। इसी बीच में अंग्रेजों ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना लिया। १७९८ ई. में अंग्रेजी गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली ने सहायक नीति द्वारा अपनी शक्ति का प्रसार करके अंग्रेजी साम्राज्य की वृद्धि की। ई. सन् १८०० से १८२० तक अंग्रेजी साम्राज्य का ताण्डव नृत्य होता रहा। सिन्धिया व भौंसले जैसी मराठी शक्तियों ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। राजपूताना के शासकों ने मराठों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों की शरण ली। सिरोही शासक भी अंग्रेजी सुरक्षा प्रणाली के अन्तर्गत आ गये।

सिरोही शासक बैरीसाल और जोधपुर के शासक मानसिंह में इस बात पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि जालोर के घेरे के समय मानसिंह ने जब अपना कुटुम्ब सिरोही भेजा तब उन्हें शरण नहीं दी। यह शत्रुता उदयभान (ई.सन् १८०८-१८१८) के काल तक बनी रही। मारवाड़ के सामन्त मानसिंह का सहयोग पाकर, सिरोही को लूटने लगे। स्वयं महाराव उदयभान को अपने पिता की अस्थियां गंगा में डाल कर लौटते वक्त गिरफ्तार कर महाराजा मानसिंह ने उससे सवा लाख रुपया लेकर मुक्त किया।* महाराव ने सिरोही पहुँच कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं की। इस पर मानसिंह ने ई.सन् १८१६ में पुनः आक्रमण कर सिरोही

* जोधपुर राज्य की ख्यात में ५०-६० हजार रुपयों का रुक्का लिखा जाना दिया है जिल्द ४, पृ. ४६६ ; राजपूताना गजेटियर में ५ लाख रुपयों का उल्लेख है (जिल्द ३ (अ), पृ. २४३)।

को लूट लिया। ढाई लाख रुपया वसूल किया गया और सिरोही के पुराने रिकार्ड जला दिये गए। उदयभान ने मानसिंह का कर्ज चुकाने के लिए नए कर लगाए और उन्हें सख्ती से वसूल करने लगा। इस पर सामन्तों व जनता ने उदयभान को गद्दी से उतार करके उसके भाई शिवसिंह को गद्दी पर बिठा दिया। मानसिंह फिर भी सिरोही पर आक्रमण करता रहा। उसने सिरोही पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए उदयभान को मुक्त कराना चाहा पर वह असफल रहा। सिरोही में आन्तरिक अराजकता फैलने लगी। भील व मीणों ने उपद्रव शुरू कर दिए। कई सामन्त पालनपुर के राज्य के अधीन चले गए। राज्य की आमदनी ६०,०००)रु० ही रह गयी। जोधपुर के शासक मानसिंह को बाहर के आक्रमण का भय रहने लगा। ऐसी परिस्थितियों में महाराव शिवसिंह ने अंग्रेजों से सुरक्षा की सन्धि वि. सं. १८८० (१८२३ ई.) में करली। जोधपुर के शासक मानसिंह ने सिरोही पर राठौड़ों का आधिपत्य जताना चाहा। महाराज अभयसिंह के समय से ही सिरोही के शासक जोधपुर के सामन्त बनकर रहे हैं, इस तर्क पर सिरोही की मान्यता लेनी चाही पर कर्नल टॉड ने मानसिंह के इस तर्क को अमान्य कर ११ सितम्बर, १८२३ ई. को महाराव शिवसिंह से सन्धि कर सिरोही को अंग्रेजी सुरक्षा में ले लिया। इस सन्धि के अनुसार यह शर्तें* तय की गई :—

(अ) सिरोही राज्य ने अंग्रेजी राज्य की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया।
(आ) अन्य राज्यों से झगड़ा होने पर अंग्रेजी मध्यस्थता स्वीकार की गई।
(इ) शासन के क्षेत्र में अंग्रेजी प्रतिनिधियों की राय स्वीकार की गई।
(ई) अंग्रेजी सरकार आंतरिक उपद्रव को दबाने में सहायता देगी।
(उ) उदयभान के जीवनकाल में शिवसिंह संरक्षक रहेगा। उसकी मृत्यु के बाद यदि उसके कोई उत्तराधिकारी हो तो उसे सिरोही का शासक बनाया जायेगा।
(ए) अंग्रेजी सरकार को वार्षिक आय का ३/८ भाग खिराज के रूप में मिलेगा।
(ओ) सिरोही के पास अंग्रेजी फौज रहने पर उसकी रसद का इन्तजाम सिरोही राज्य करेगा।

इस सन्धि के अनुसार सिरोही का राज्य अंग्रेजी राज्य की संरक्षता में ले लिया गया। सिरोही राज्य का खिराज १५,००० भिलड़ी रुपयों में निश्चित किया गया। सिरोही राज्य की आन्तरिक दशा को सुधारने के लिए अंग्रेजी

---

* एचीशन : ट्रीटीज, एनगेजमेण्टस् एण्ड सनदस् जिल्द ३, पृ. ३१०।

प्रतिनिधि स्पीयर्स* नामक अंग्रेज नियुक्त किया गया। उसने सिरोही राज्य में हस्तक्षेप करके राज्य सरकार को दृढ़ बनाने का प्रयास किया। बम्बई से एक अंग्रेजी सैनिक टुकड़ी मंगा कर, भीलों और मीणों के उपद्रवों को शान्त किया गया। इस सेना का खर्च सिरोही को देना था परन्तु धन की कमी के कारण अंग्रेजी सरकार से पचास हजार रुपया बिना ब्याज के कर्ज लिया गया, जिसके बदले में चूंगी आय का तीन चौथाई हिस्से का अधिकार दो वर्षों के लिए अंग्रेजी सरकार को सौंपा गया।†

स्पीयर्स की सहायता से सिरोही राव ने नीमज ठाकुर, जो कि अत्यन्त उपद्रवी था, को अधीन किया। मई १८२४ की सन्धि द्वारा निमज ठाकुर ने महाराव को अपनी सेवाएँ व अपनी आय का ३/८ भाग देना निश्चित किया। निमज ठाकुर बहाल कर दिया गया। महाराव ने अंग्रेजी सहायता से पालनपुर के अधीन कई सामन्तों को, जो सिरोही की अधीनता छोड़ कर चले गए थे, प्राप्त करना चाहा परन्तु सिर्फ मंडार व जिलवाड़ा के ठाकुर पर ही अधिकार किया जा सका। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें १८१७ के बाद पालनपुर के अधीन जाने को स्वीकार नहीं किया। १८३२ ई. में सिरोही से अंग्रेजी प्रतिनिधि हटा लिया गया और वि. सं. १८९३ (१८३६ ई.) में ऐरनपुरा में अंग्रेजी सैनिक छावनी स्थापित करके सिरोही का उत्तरदायित्व छावनी के कमान्डर मेजर ड्राउनीगे को सौंपा‡ गया व सिरोही का सम्बन्ध नीमच एजेन्सी से कर दिया गया। वि. सं. १९०३ (१८४६ ई.) में उदयभान की मृत्यु हो गई। उसका कोई उत्तराधिकारी न होने पर अंग्रेजी सत्ता ने शिवसिंह को सिरोही का शासक स्वीकार कर लिया।

१८४५ ई. में आबू की आबहवा को स्वास्थ्यप्रद देख कर अंग्रेजी सरकार

---

* राजपूताना गजेटियर भाग ३-अ, पृ० २४५।

† एचीशन : ट्रीटीज, एनगेजमेण्टस् एण्ड सनदस् जिल्द ३, पृ. ३१३।

‡ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३-अ, पृ० २४५।

ने वहां पर सेनिटोरियम बनाया।* सिरोही का शासन अत्यन्त खर्चीला होता जा रहा था। महाराव पर दो लाख रुपयों का कर्ज हो गया था। अतः अंग्रेजी सरकार ने सिरोही को अपने प्रत्यक्ष शासन में आठ वर्ष के लिए ले लिया।3 जोधपुर लीजॉन की सहायता से वि. सं. १६१० (ई. सन् १८५३) में ठाकुर नाथुसिंह के उपद्रव को शान्त किया गया। वि. सं. १६१४ (१८५७ ई.) के भारतीय विप्लव में सिरोही शासक ने अंग्रेजों की सहायता की। ऐरनपुरा की छावनी में भी विप्लव का प्रभाव पड़ा। मीणों व भीलों के अलावा अन्य सिपाही अंग्रेजों के विरुद्ध होकर आबू पर्वत पर चले गये, जहां अंग्रेज रहते थे। महाराव ने इस समय गोरे अफसरों की रक्षा की और अंग्रेजी सरकार के राज्य-भक्त बने रहे। विद्रोह दवा दिया गया। अंग्रेजी सरकार ने प्रसन्न होकर, विप्लव की समाप्ति के बाद सिरोही से जो खिराज १५,०००) रु० लिया जाता था घटा कर ६८८१·४ रु० कर दिया।† अपनी वृद्धावस्था के कारण शिवसिंह शासन के प्रति ध्यान नहीं देने लगा। इस पर अंग्रेजी सरकार ने शासन का उत्तरदायित्व १८६१ ई. में इसके पुत्र उम्मेदसिंह को सौंप दिया। १८६२ ई. में सिरीही राज्य को गोद लेने की सनद अंग्रेजी सरकार से प्राप्त हुई।

महाराव उम्मेदसिंह के राज्यकाल में बी. बी. एण्ड सी. आई. रेल मार्ग सिरोही राज्य में होकर निकाला गया। महाराव ने रेलमार्ग बनाने के लिए भूमि निःशुल्क दी और अफीम के अलावा सब प्रकार का यातायात बन्द कर दिया।

---

* आबू पर सेनेटोरियम निर्मित करने पर अंग्रेजी समझौते पर ये शर्तें निश्चित की गईं—

(अ) यह स्वास्थप्रद सेनेटोरियम नक्की झील के किनारे की भूमि पर होगा (आ) सैनिक गांवों में न जा सकेंगे और वे नागरिकों—विशेषकर स्त्रियों को तंग नहीं करेंगे। (इ) गाय, बैल, कबूतर का मारना व गौमांस पहाड़ पर ले जाना वर्जित होगा। (ई) मन्दिरों में अंग्रेजी हस्तक्षेप नहीं होगा, साधु व फकीरों को तंग नहीं किया जायगा। (उ) महाराव की आज्ञा बिना माउन्ट आबू पर वृक्षों को नहीं काटा जायेगा। (ऊ) नक्की झील के किनारे के मन्दिर के पास मच्छी पकड़ना वर्जित होगा। (ए) सैनिकों को खेत व फसल में दखल करने से रोका जायगा। (ऐ) मार्ग के रास्ते सर्वदा खुले रहेंगे। (ओ) महाराव का यह उत्तरदायित्व नहीं होगा कि वे सेनेटोरियम की रसद का प्रबन्ध करें। (औ) कुलियों, पथप्रदर्शकों को पूर्ण मजदूरी दी जायगी। (अं) अन्य सुविधाओं का प्रयोग बिना महाराव की आज्ञा के गैर कानूनी होगा। (एचीशन : ट्रीटीजज एनगेजमेन्टस एण्ड सनदस् जिल्द ३, पृ. ३१५)

† सिरोही राज्य के शासन प्रबन्ध में शीथिलता प्रवेश होने पर लेफ्टीनेंट कर्नल सर लारेन्स ने आठ वर्ष के लिए सिरोही को अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत कर दिया। ए. जी. जी. ने सैयद निआमतअली को महाराव का सलाहकार बनाकर भेजा। (उपरोक्त, पृ. ३१६)

आबू पर्वत पर कई अंग्रेजी व योरुपीय कुटम्ब निवास करने लगे। सिरोही की जनता भी वहां जाकर बसने लगी। अतः वहां के म्यूनिसिपल उत्तरदायित्व विभिन्न अधिनियम बना कर वृद्धि की गई। सफाई का अधिकार भी नगरपालिका को दिया गया। फौजदारी व दीवानी मामलों का अधिकार, जहां तक स्थानीय सिरोही की जनता से सम्बन्धित था, सिरोही न्यायालयों को दिया गया। अंग्रेजी न्याय से सिरोही की जनता के धार्मिक तथा रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप न करने की हिदायत दी गई।* दूसरे वर्ष ही १८६७ ई. में सिरोही राज्य ने अंग्रेजों के साथ अपराधी निर्वासन सन्धि करके, अपराधियों को आश्रय न देने का विश्वास दिलाया। अंग्रेजी सरकार ने इस पर प्रसन्न होकर महाराव को १५ तोपों की इज्जत प्रदान की। यों उम्मेदसिंह का शासन भी सिरोही की जनता पर कठोर शासन था। राज्यकोष खाली हो रहा था। कर अधिक लगाए जा रहे थे। ऐसी स्थिति में १८६९ में अंग्रेजी सरकार सिरोही को पुनः अपने अधिकार में रखना चाहती थी परन्तु यह समझौता हस्ताक्षरित नहीं हो सका क्योंकि जहां महाराव आठ वर्ष के लिए शासन सौंपना चाहते थे वहां अंग्रेजी सरकार १२ वर्ष के लिए राज्य लेना चाहती थी।† महाराव के समय ठाकुर नाथुसिंह के उपद्रव के कारण सिरोही का प्रबन्ध ए. जी. जी. के राजनैतिक सुपरिन्टेन्डेन्ट से हटा कर, ऐरनपुरा सैनिक छावनी के कमान्डर को सौंप दिया गया। सिरोही का पुलिस अधिकार सैनिकों को सौंप दिया गया। इस सैनिक सहायता से नाथुसिंह के उपद्रव ही शान्त नहीं हुए बल्कि सिरोही, मारवाड़ व मेवाड़ की सीमा के उपद्रवों को भी दबा दिया गया।‡

१८८० ई. में अजमेर–अहमदाबाद रेल-मार्ग निर्मित हो गया। भारत सरकार ने सिरोही राज्य को यातायात आय की हानि के क्षतिपूर्ति के रूप में १०,०००) रुपया वार्षिक देना तय किया। परन्तु यह सुविधा मई १८८६ ई. में हटा ली गई क्योंकि पोलिटिकल रेजीडेन्ट ने यह लिख भेजा कि सिरोही के राज्य की आमदनी में इस आय की कमी के कारण कुछ भी हानि नहीं हुई है। वि. सं. १९३६ (१८७९ ई.) में महाराव केसरीसिंह और अंग्रेजी सरकार के बीच नमक की सन्धि हुई। राज्य भर में नमक बनाने पर रोक लगा दी गई। नमक के निर्यात और आयात पर अंग्रेजी कर लगने लगा। इसके बदले में महाराव को

* एचीशन : ट्रीटीजस, एनगेजमेन्टस एण्ड सनदस्, पृ. ३१७।

† उपरोक्त पृ. २८४।

‡ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३-अ, पृ. २४७।

१८००) रुपये वार्षिक और आधे कर पर जनता के लिए १३,००० मण नमक प्राप्त करने की सुविधा मिली।* १८८२ ई. में १८,००० मण नमक प्राप्त करने का अधिकार मिल गया और १८८४ ई. में ६०००) रुपये सालाना कर दिए गए परंतु आधे कर को हटा कर पूरा कर लिया जाने लगा। '१८८६ ई. में सिरोही शासक महाराव कहलाने लगे। १८६५ में सिरोही महाराव को के. सी. एस. आई. व १६०१ में जी. सी. आई. ई. की पदविएँ प्राप्त हुईं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सिरोही में अंग्रेजी हकूमत पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी। महाराव तो नामका शासक था। अंग्रेजों की यह नीति थी कि देशी नरेशों को अयोग्य बना कर उनके शासन को पूर्णतया अंग्रेजी शासन में लिप्त कर देना। सिरोही के वित्तीय-क्षेत्र में अंग्रेजी प्रभाव की चरम-सीमा वि. सं. १६६० (१६०४ ई.) में पहुँची जबकि सिरोही सिक्के को अंग्रेजी सिक्के में परिणित कर दिया गया। अंग्रेजी कलदार सौ रुपयों में सिरोही के एकसौ चालीस भीलड़ी रुपयों का अनुपात प्रचलित किया गया। सिरोही सरकार को भारत सरकार ने पन्द्रह लाख कलदार रुपयों तक ही परिवर्तित करने की आज्ञा दी। सिरोही में रानी विक्टोरिया की स्मृति में एक तालाब का निर्माण किया गया। (१६११ ई.) में जार्ज-पंचम भारत यात्रा को आया। उस समय दिल्ली दरबार में सिरोही शासक ने जाकर अपनी राज्य-भक्ति प्रदर्शित की। इस पर उसे महाराजाधिराज का पद प्राप्त हुआ। वि. सं. १६७४ (१६१७ ई.) में अंग्रेजी सरकार के साथ एक समझौता हो गया जिसके अनुसार १ अक्टूबर, १६१७ को आबू (६ वर्ग मील तक की भूमि) पर्वत पर अंग्रेजी अधिकार हो गया। इस क्षेत्र के आय, न्याय और अन्य प्रशासकीय अधिकार अंग्रेजी सरकार को दे दिए गए। अंग्रेजी सरकार ने इसके बदले में पचीस हजार रुपया वार्षिक देना तय किया। देलवाड़ा शराब की दुकान के बन्द करने की क्षति पूर्ति के लिए दो हजार रुपया दिया गया। अंग्रेजी सरकार ने खराड़ी और अनादरा में अपने न्याय-सम्बन्धी अधिकार महाराव को लौटा दिये। सिर्फ आबूरोड स्टेशन और आबू पर्वत की सड़क पर (सड़क के दोनों ओर ३० फुट तक) अंग्रेजी अधिकार रखा। यह तय किया गया कि सिरोही दरबार इस सड़क पर गुजरने वाले माल असबाब पर किसी प्रकार का कर नहीं लगा सकेगा। आबू म्यूनिसिपल शासन के लिए सिरोही बजट से जो आठ हजार रुपया रखा जाता था वह बन्द हो गया। सिरोही सरकार वार्षिक खिराज ६८८१ रु. ४ आ. था, वह नहीं लिया जायेगा परन्तु महाराव

---

* एचीशन : ट्रीटीज एगनेजमेण्टस एण्ड सनदस्, जिल्द ३, पृ. ३२०।

आबू के दवाखाने के लिये एक हजार रुपये देते रहेंगे।* आबू पर्वत पर अंग्रेजी अधिकार १९४७ ई. तक रहा। जब भारत से अंग्रेजी सत्ता समाप्त होने लगी तब आबू सिरोही राज्य को वापस लौटा दिया गया।

महाराव केसरीसिंह के काल में प्रथम महायुद्ध (ई. सन् १९१४-१९१८ में) हुआ। अंग्रेजी सरकार को महाराव ने अपनी सैन्य-शक्ति जो कि ५२ अश्वारोही, १४० पैदल, तथा ३५३ सशस्त्र पुलिस थी, प्रस्तुत की। युद्धकाल के बाद १९१९ में सिरोही राजपूताना एजेंसी में मिला दिया गया। १८८१ ई. से सिरोही पश्चिमी राजपूताना एजेन्सी के अन्तर्गत था। वि. सं. १९७७ (१९२० ई.) में वृद्धावस्था के कारण महाराव ने राज्य का भार अपने पुत्र स्वरूपरामसिंह को दे दिया। स्वरूपरामसिंह के समय सिरोही सामन्तों में महाराव द्वारा उनकी जागीरों में हस्तक्षेप होने के कारण असन्तोष फैल गया। अंग्रेजी सरकार ने इसकी जांच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की। इस आयोग की सिफारिशों पर अंग्रेजी सरकार ने सामन्तों को सुविधाएँ प्रदान की। १९२२ में भील आन्दोलन को अंग्रेजी सैनिक शक्ति की सहायता से बुरी तरह कुचल दिया गया। यह 'भील हत्याकाण्ड' राष्ट्रीय प्रेरणा का स्रोत बन गया। स्वरूपरामसिंह अत्यन्त कमजोर व अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। इसके राज्यकाल में मुसलमानों का प्रभाव राज्य में बहुत बढ़ा, जिसका लाभ उठा कर अंग्रेजी सरकार ने सिरोही में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य पैदा करवा दिया। महाराव के कोई पुत्र नहीं था। एक पुत्र लखपत-रामसिंह था जो कि रतलाम की राणी लीला से पैदा हुआ था। चूंकि महाराव ने लीला से शादी तलवार भेजकर की थी अतः अंग्रेजी सरकार ने लखपतराम-सिंह को सिरोही का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया। लखपतरामसिंह, ने सन् १९३९ को एक स्मृति-पत्र अंग्रेजी सरकार को दिया जिसमें उल्लेख किया किया कि वह पासवान रानी का पुत्र नहीं बल्कि सिरोही गद्दी का असली हकदार है। स्टेट रिकार्ड में उसकी माता का पासवान होने का उल्लेख द्वेष के कारण लिख दिया गया है। अंग्रेजी सरकार ने अप्रेल, १९४५ में इसका निर्णय दिया और लखपतरामसिंह के स्मृति-पत्र को स्वीकार नहीं किया। स्वरूपरामसिंह की मृत्यु के बाद १९४६ ई. में अंग्रेजी सरकार ने मंडार की देवड़ा शाखा के तेजसिंह को राज्य-गद्दी पर बैठाया।† यह स्वरूपरामसिंह का निकट सम्बन्धी भी नहीं था फिर भी १ जुलाई, १९४६ को अंग्रेजी कूटनीति ने इसका

---

* एचीशन : ट्रिटीज एनगेजमेण्ट एण्ड सनदस्, जिल्द ३, पृ. ३२४–३२७।

† सिरोही एक्सट्रा आरडिनेरी गजट (११ मई १९४६) वर्ष ७, अंक १५।

राजतिलक करवा दिया। राजा के नाबालिग होने के कारण शासन का भार १४ अगस्त, १६४७ को एक रिजेन्सी कौन्सिल को सौंपा गया जिसमें राज-माता अध्यक्ष व दांता के महाराणा भवानीसिंह, मंडावर के ठाकुर भोपालसिंह सदस्य नियुक्त किए गए। १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हो गया। इस प्रकार सिरोही में अन्तिम समय तक अंग्रेजों का हस्तक्षेप बना रहा। जाते समय अंग्रेजों ने इस कौन्सिल को सिरोही का पूर्ण अधिकार सौंप दिया कि वह चाहे भारत में वीलिन हो या स्वतन्त्र इकाई दनी रहे। आबू भी सिरोही राज्य को दे दिया गया।

सिरोही में राजनैतिक चेतना

सिरोही में राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली लहर सन् १६०५ ई. में उठी जबकि बंगाल में बंग-भंग आन्दोलन व स्वदेशी आन्दोलन तीव्रता से फैल रहा था और गुजरात-महाराष्ट्र (बम्बई प्रान्त) में तिलक का गरम दल अंग्रेजों के विरुद्ध विहंगम रूप से संगठित हो रहा था। सिरोही मे अंग्रेजी प्रभाव का स्वरूप आर्थिक दशा में गिरावट के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। सिरोही स्वशासन की स्थापना के लिए एक सन्यासी स्वामी गोविन्द ने 'सम्प-सभा' की स्थापना की। इस सभा ने पहाड़ी लोगों—भीलों व मीणों में एकता स्थापित करने, मादक द्रव्यों व विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके,स्वदेशी राज्य स्थापित करने की चेतना फैलाई। सिरोही में इस प्रकार का पहला प्रकरण था जब कि महाराव के विरुद्ध जन आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। यह आन्दोलन १६६५ (१६०८ ई.) में कुचल दिया गया। १६२२-२३ में भारत में गांधीजी के नेतृत्व में एक व्यापक असहयोग आन्दोलन चला। सिरोही को जनता में भी राजनैतिक चेतना पुनः जागृति हुई। सामन्ती जुल्म के विरुद्ध १६२२ की मई में रोहिड़ा तहसील के गांवों में एक जबर्दस्त आन्दोलन उठा। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में गिरासियों व भीलों ने सिरोही शासन को समाप्त करने की आवाज

उठाई परन्तु अंग्रेजी सैनिक सहायता से यह आन्दोलन दबा दिया गया। भील आन्दोलन को दबाने में अंग्रेजी सत्ता ने मानवता को भूला दिया था। लगभग १८०० आदमी मारे गए। औरतों व बच्चों को भी गोलियों का शिकार बनाया गया। ६०० मकान जला डाले गये। इस हत्याकांड ने सारे देश को अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध कर दिया। इस कांड की आग अभी बुझने ही न पाई थी कि १९२४–२५ में प्रजा-विरोधी कानूनों के विरुद्ध "नौ प्रगना महाजन एसोशियेशन' ने आन्दोलन उठाया। उसे सफलता प्राप्त हुई और बैठ-बेगार जैसी कुप्रथायें बन्द कर दी गई।

बम्बई में रहने वाले सिरोही के उत्साही युवकों ने सिरोही की मौजूदा शासन व्यवस्था में असन्तोष के विरुद्ध संगठित रूप में आन्दोलन करने हेतु बम्बई में १६ अप्रेल, १९३४ को प्रजा-मण्डल की स्थापना की। इसका उद्देश्य सिरोही नरेश की छत्रछाया में जिम्मेदार हकूमत कायम करना था। १९३६ ई. में सिरोही में आन्दोलन उठा परन्तु यह आन्दोलन प्रभावशाली न हो सका। इसका एक महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि सिरोही में प्रजा-मण्डल का निर्माण २३ जनवरी १९३९ ई. में हो गया, जिसके नेतृत्व में स्वशासन का आन्दोलन चलाया जाने लगा। इस आन्दोलन में गोकल भाई भट्ट का मुख्य नेतृत्व रहा। १५ अगस्त, १९४७ को भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। सिरोही उस समय एक स्वतन्त्र इकाई बनाया गया था। सिरोही में संयुक्त राजस्थान की लहरें उठने लगी।* सिरोही के रिजेन्सी बोर्ड ने उदयपुर महाराणा द्वारा आयोजित संयुक्त राजस्थान की योजना में सिरोही को शामिल होने की स्वीकृति १३ सितम्बर १९४७ को दी परन्तु यह योजना कार्य्यान्वित न हो सकी। आबू में पाण्डया के नेतृत्व में राज्य-कौन्सिल निर्मित हुई और २४ अक्टूबर, १९४७ को सिरोही प्रजा-मण्डल की ओर से श्री जुहारमल सिंघी को उक्त कौन्सिल में लोकप्रिय मन्त्री बनाया गया।

नवम्बर १९४७ में सिरोही को गुजरात-प्रान्त में मिलाने का सुझाव प्रस्तुत किया गया क्योंकि सिरोही के कुछ क्षेत्रों में गुजराती प्रभाव बताया गया। १ फरवरी, १९४८ को सिरोही को गुजरात स्टेटस् एजेन्सी का भाग बना दिया गया। ८ नवम्बर १९४८ को सिरोही केन्द्रीय-शासन में ले लिया गया। फरवरी १९४८ ई. में गोकुल भाई भट्ट के नेतृत्व में प्रजा-मण्डल मंत्री-मण्डल का सिरोही में निर्माण हुआ। यह मंत्री-मण्डल सिरोही को राजस्थान में मिलाने के पक्ष में था। अतः

---

* मई, १९४७ सिरोही राज्य प्रजा-मण्डल ने अपने हाथल अधिवेशन में संयुक्त राजस्थान का प्रस्ताव स्वीकार किया था। आबू समिति प्रतिवेदन (राजस्थान सरकार) पृ. ४।

५ जनवरी, १९४९ ई. को भारत मंत्री सरदार पटेल ने सिरोही का शासन बम्बई सरकार को सौंप दिया । ताकि वह केन्द्र के नाम पर शासन करे । शीघ्र ही राजस्थान व गुजरात में सिरोही को अपने अपने राज्य में मिलाने के आन्दोलन उठे । भारतीय सरकार ने १६ नवम्बर, १९४९ को सिरोही के विभाजन की घोषणा कर आबूरोड़ व देलवाड़ा तहसील के ८९ गांवों को बम्बई में, तथा शेष भाग (१९७१ वर्ग मील) २६ जनवरी १९५० को सिरोही राजस्थान में मिला दिया ।

इस विभाजन का समर्थन करते हुए सौराष्ट्र के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश व गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री हरसिद्ध भाई दिवतिया ने नवसारी में गुजराती साहित्य परिषद के १८ वें अधिवेशन (दिसम्बर १९५२) में उल्लेख किया कि भाषाकीय एवं ऐतिहासिक, भौगोलिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण से 'सिरोही व आबू गुजरात के भाग हैं ।* वल्लभ-विद्यानगर के उपकुलपति ए. वी. पाण्डया ने 'आबू इन बोम्बे स्टेट' में इसी प्रकार से समर्थन किया है। राजस्थान ने सिरोही व आबू के बारे में सही तथ्य प्राप्त करने के लिए राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर के अध्यक्ष श्री जिनविजयजी मुनि की अध्यक्षता में ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाकीय व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जांच की । जब १९५४ में भारत के राज्यों में पुनर्गठन करने के लिये आयोग निर्मित हुआ तो उस आयोग के समक्ष राजस्थान सरकार ने आबू क्षेत्र पर राजस्थानी परम्परा के अधिकार की सम्पूर्ण सामग्री प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत की । राज्य पुनर्गठन आयोग ने आबूरोड और दिलवाड़ा तहसीलों को 'भाषाकीय, ऐतिहासिक, भौगोलिक और व्यवहारिक दृष्टि बिन्दू से' राजस्थान का अंग घोषित किया। इस आयोग की सिफारस को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने १ नवम्बर १९५६ को आबूरोड व दिलवाड़ा की तहसीलें राजस्थान में मिला दीं । सिरोही राज्य आखिर राजपूताना का ही एक भाग रहा।

* राजस्थान सरकार : आबू समिति प्रतिवेदन, पृ. २३।

सिरोही राज्य के प्रमुख सरदार*

सिरोही में सरदारों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—प्रथम शासक के कुटुम्ब के सदस्य, जिन्हें महाराज कहा जाता है। दूसरे वर्ग के सरदारों को ठाकुर राजश्री कह कर सम्बोधित किया जाता है। तीसरे वर्ग वालों को सिर्फ ठाकुर ही कहा जाता है। ये सब सरदार देवड़ा चौहान राजपूत हैं।

राजसाहिबानों में नांदिया, मनादर और अजारी के सरदारों को यह पद प्राप्त है। इनकी बैठक दरबार के सम्मुख होती है और दोहरी ताजमी प्राप्त है। पाड़ीव, जावाल, कालंदरी और मोटागांव के सरदार ठाकुर राजश्री हैं तथा नरेश के दाहिने हाथ की ओर दरबार में बैठते हैं। नीमज व पाड़ीव के ठाकुरों का समान पद होने के कारण, दोनों एकही साथ दरबार में नहीं आते हैं। रोहुआ और भटाणा के ठाकुरों को दोहरी ताजीम और भटवाड़ा व दबाणी को एक ताजीम प्राप्त है। पाडीव ठाकुर नए शासक के तलवार बांधता है।

नांदिया—यहां के सरदार महाराव रामसिंह हैं। इनकी सालाना जागीर की आय २५००) रु० है। ये महाराजा अभयसिंह के भाई हैं और रियासत को खिराज नहीं देते हैं।

मनादर—यहां के सरदार महाराज अभयसिंह अभी सिरोही नरेश हैं।

अजारी—महाराव के भाई महाराज ईश्वरसिंह यहां के राजसाहिबान हैं जिनकी वार्षिक आय ३,०००) रु० हैं।

मण्डार—इसकी दो पांतियां हैं। बड़ी पांति में तेजसिंह है जिनको पहले सिरोही की राज-गद्दी पर बैठाया गया था। छोटी पांति में अचलसिंह है। दोनों पांति वाले राज्य को ५० प्रतिशत खिराज देते हैं।

---

* ई. सन् १९४८ के अनुसार। अब तो जागीरों का राजस्थान सरकार ने पुनर्ग्रहण कर लिया है।

पाड़ीव—राव रिड़मल के दूसरे पुत्र गज्जा के बेटे डूंगरसिंह के वंश में डुँगरोत देवड़ा और डूंगरसिंह के चौथी पीढी में बज्जा हुआ जिसके वंशज बजावत देवड़ा कहलाए। पाड़ीव के ठाकुर राजश्री बाजावत देवड़ा हैं। तत्कालीन ठाकुर राजश्री बलवंतसिंह हैं। इनकी आय पांच हजार रुपये है जिसमें राज्य को वे ३७ प्रतिशत खिराज देते हैं।

कालंदरी—इसके ठाकुर श्री डुंगरोत देवड़ा शाखा के हैं। तीन हजार रुपयों की आय में वे राज्य को ३७प्रतिशत खिराज देते हैं। वर्तमान ठाकुर चमनसिंह हैं।

जावाल—यहां के ठाकुर डूंगरावत देवड़ा मेघसिंह है। आय ५०००) वार्षिक है तथा ६ आना प्रति रुपया खिराज देता है।

मोटागांव—यहां के ठाकुर डुंगरावत देवड़ा मोहब्बतसिंह है। आय ४०००) वार्षिक है तथा ६ आना प्रति रुपया खिराज देता है।

नीमज—के ठाकुर राजश्री हिम्मतसिंह ३७ प्रतिशत खिराज देते हैं। नीमज के तीन गांव पालनपुर रियासत में प्राप्त हुए थे।

रोहुआ व **दबाणी** के लाखावत ठाकुरों को पचास प्रतिशत, भटाणा का तेजावत देबड़ा पचास प्रतिशत खिराज देता है। सब से अधिक खिराज मंडवाड़ा के ठाकुर डूंगरसिंह जिसकी आय एक हजार रुपये है, आधा भोग व तीन चौथाई नकद के रूप में देता है।

सिरोही के शासक

१. **मानसिंह**—वि. सं. १२३६–१२४२ (ई. सन् ११८२–८५)
जालोर के चौहान समरसिंह का पुत्र ।

२. **प्रतापसिंह (देवराज)**—चौहानों की देवड़ा शाखा इसी के नाम से प्रचलित हुई ।

३. **बीजड़ (विजयराज)**—वि. सं. १३३३–१३६७ (ई. सन् १२७६–१३१०) ।

४. **लूंभा**—वि. सं. १३६७–१३७७ (ई. सन् १३१०–१३२१) ।

५. **तेजसिंह**—वि. सं. १३७७–१३९३ (ई. सन् १३२१–१३३६) ।

६. **कान्हड़देव**—वि. सं. १३९३–१४०० (ई. सन् १३३६–१३४३) ।

७. **सामन्तसिंह**—वि. सं. १४००–१४०४ (ई. सन् १३४३–१३४७) ।

टिप्पणी—सिरोही की ख्यात में तेजसिंह, कान्हड़देव व सामन्तसिंह का उल्लेख नहीं है
लेकिन शिलालेखों से इनका सिरोही पर राज्य करना ज्ञात होता है ।

८. **रणमल्ल**—वि. सं. १४०४–१४४९ (ई. सन् १३४७–१३९२) ।

९. **शिवभाण**—वि. सं. १४४९–१४८१ (ई. सन् १३९२–१४२४) ।
पुरानी सिरोही को बसाने वाला ।

१०. **सहसमल**—वि. सं. १४८१–१५०८ (ई. सन् १४२०–१४५१) ।
नई सिरोही का बसाने वाला ।

११. **लाखा**—वि. सं. १५०८–१५४० (ई. सन् १४५१–१४८३) ।

१२. **जगमाल**—वि. सं. १५४०–१५८० (ई. सन् १४८३–१५२३) ।

१३. **अखैराज** (प्रथम)—वि. सं. १५८०–१५९० (ई. सन् १५२३–१५३३) ।

१४. **रायसिंह**—वि. सं. १५९०–१६०० (ई. सन् १५३३–१५४३) ।

१५. **दूदा**—वि. सं. १६००–१६१० (ई. सन् १५४३–१५५३) ।
रायसिंह का छोटा भाई ।

१६. **उदयसिंह**—वि. सं. १६१०–१६१९ (ई. सन् १५५३–१५६२) । रायसिंह का पुत्र

१७. **मानसिंह**—वि. सं. १६१९–१६२८ (ई. सन् १५६२–१५७१) । दूदा का पुत्र ।

१८. **सुरताण**—वि. सं. १६२८–१६६७ (ई. सन् १५७१–१६१०) ।
लाखा के तृतीय पुत्र उदा के पोते भाण का पुत्र ।

१९. **राजसिंह**—वि. सं. १६६६–१६७७ (ई. सन् १६१०–१६२०)।

२०. **अखैराज** (द्वितीय)—वि. सं. १६७७–१७३० (ई. सन् १६२०–१६७३)।

२१. **उदयसिंह**—वि. सं. १७३०–१७३३ (ई. सन् १६७३–१६७६)।

२२. **बेरीसाल** (प्रथम)—वि. सं. १७३३–१७५४ (ई. सन् १६७६–१६९७)।
उदयसिंह का भतीजा।

२३. **छत्रसाल**—वि. सं. १७५४–१७६२ (ई. सन् १६९७–१७०५)।
उदयसिंह का पुत्र।

२४. **मानसिंह** (द्वितीय)—वि. सं. १७६२–१८०६ (ई. सन् १७०५–१७४९)।
इसे उम्मेदसिंह भी कहा जाता है।

२५. **पृथ्वीसिंह**—वि. सं. १८०६–१८२९ (ई. सन् १७४९–१७७२)।

२६. **तख्तसिंह**—वि. सं. १८२९–१८३९ (ई. सन् १७७२–१७८२)।

२७. **जगतसिंह**—वि. सं. १८३९ (ई. सन् १७८२)।

२८. **बेरीसाल** (द्वितीय)—वि. सं. १८३९–१८६४ (ई. सन् १७८२–१८०८)।

२९. **उदयभान**—वि. सं. १८६४–१८७५ (ई. सन् १८०८–१८१८)।

३०. **शिवसिंह**—वि. सं. १८७४–१९०३ (ई. सन् १८०८–१८४७) संरक्षक।
वि. सं. १९०३–१९१९ (ई. सन् १८४७–१८६३) शासक।
उदयभान का छोटा भाई।

३१. **उम्मेदसिंह**—वि. सं. १९१९–१९३२ (ई. सन् १८६३–१८७५)।

३२. **केसरीसिंह**—वि. सं. १९३३–१९७७ (ई. सन् १८७५–१९२०)।

३३. **स्वरूपरामसिंह**—वि. सं. १९७७–२००२ (ई. सन् १९२०–१९४६)।

३४. **तेजसिंह**—वि. सं. २००३–२००६ (ई. सन् १९४६–१९४९)।
मंडार शाखा से आया। अंग्रेजी सरकार द्वारा नियुक्त।

३५. **अभयसिंह**—वि. सं. २००६ (ई. सन् १९४९) से।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
११	फुटनोट* १	प्रबन्ध १९ ई० सन्	प्रबन्ध ई० सन्.
१५	७	(१५७७ ई०)	(१४७७ ई०)
१६	७	(११९८ ई०)	(११९४ ई०)
	फुटनोट† १	ब्रह्मगुप्त (६२८) जिसने	ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) हुआ
१९	१	विष्णु पुराण में 'परीपुत्र	विष्णु पुराण में उल्लेख है कि परीपुत्र
२८	२	धारावर्ष ने	धारावर्ष की सहायता से
	३	श्रेय प्राप्त किया	श्रेय प्राप्त हुआ।
३४	२	[वि० सं० १३९३ १४०४]	[वि० सं० १३९३–१४००]
३५	६	(ई० सन ७३४७)	(ई० सन् १३४७)
४४	६	(१५७२ ई०)	(१५६२ ई०)
४५	१	मानसिंह द्वितीय	मानसिंह प्रथम
	५	(१५६३ ई०)	(१५६२ ई०)
४८	फुटनोट* ३	यों सूचना	यह सूचना
४९	१६	काफी ना देख	काफी न देख
५०	१७	राजा है जिसने	राजा था जिसने
५४	फुटनोट° ४	(१४ मार्च १६४९)	(१४ मार्च १६५९)
५६	फुटनोट‡ १	बैरीसाल के	बैरीसाल ने
५९	५	गांव ही गये	गांव ही रह गये
	१०	(ई० सन् १८९८)	(ई० सन् १७९८)
६२	८	चलता रहा	चलाता रहा
७६	९	भीमदेव गुजराज	भीमदेव गुजरात
७७	फुटनोट‡ २	विरुद्ध सेना भेजी	विरुद्ध भेजा
८१	८	और उसने रायसिंह से समझौता	पर उसने मुगलों से पृथक समझौता
८४	२४	बनाया गई	बनाई गई

सिरोही पर आक्रमण करने की तैयारी प्रारम्भ की। महाराव ने सूचना मिलने पर यह आतंक बन्द कर दिया।*

दिल्ली में उस समय सुल्तान बहलोल लोदी राज्य कर रहा था। मेवाड़ के राणा रायमल पर उसने आक्रमण कर दिया। जगमाल ने राणा की मदद की और सुल्तान को हराया। इससे प्रभावित होकर राणा ने जगमाल को अपनी कन्या ब्याह दी और उसे आबू का शासक स्वीकार कर लिया।† जालोर के बिहारी पठान मजहिदखां और जगमाल के आपस में भी युद्ध हुआ था। मजहिदखां कैद हो गया। १५०४ ई. में उससे ६ लाख फिरोजे दंड के लेकर मुक्त कर दिया गया।‡

मुगलों से सम्बन्धः—१५२६ ई. में भारत से लोदी सल्तनत का अन्त हो गया और बाबर के नेतृत्व में मुगल साम्राज्य की स्थापना हो गई। महाराणा सांगा को खानवा के युद्ध में बाबर ने हरा कर उत्तरी भारत में मुगल शक्ति को सार्वभौमिक बना दी। सिरोही का शासक अखेराज राणा सांगा के साथ खानवा के युद्ध, वि. सं. १५८४ (१७ मार्च, १६२७) में लड़ा था§ परन्तु राजपूत शक्ति की हार हो जाने पर वह सिरोही लौट आया। राणा सांगा युद्ध-क्षेत्र में घायल हो जाने पर बेहोश हो गया। इस पर महाराव अखैराज जोधपुर के राव मालदेव व जयपुर के पृथ्वीराज की सहायता से उसे सुरक्षित स्थान पर ले गया।$ अखै-राज का देहान्त वि. सं. १५६० (१५३३ ई.) में हो गया। राणा सांगा वि. सं. १५८४ (१५२८ ई.) में ही मर चुका था। उसके बाद चित्तौड़ की गद्दी पर उसका पुत्र रतनसिंह गद्दी पर बैठा परन्तु शीघ्र ही बूंदी के राव सूरजमल द्वारा वह मार दिया गया। वि. सं. १५८८ (१५३१) में विक्रमादित्य का शासन मेवाड़ में प्रारम्भ हुआ। वह अयोग्य था। उसके काल में बहादुरशाह ने दो बार चित्तौड़ का घेरा डाला। पहला घेरा ३१ जनवरी, १५३३ से २४ मार्च १५३३ तक रहा और दूसरा घेरा जनवरी १५३५ ई. में डाला। सिरोही के राव रायसिंह ने चित्तौड़ की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ दीं परन्तु बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर

---

* मिराते-सिकन्दरी में, व्यापारियों से छीने हुए माल को पुनः वापिस दे देने का उल्लेख पाया जाता है।

† टॉड: एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग १ पृ० ३४०।

‡ नैणसी की ख्यात व पालणपुर की तवारीख।

§ डा. जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल्स पृष्ठ ३६।

$ उपरोक्त पृ० ३८।

अधिकार ८ मार्च, १५३५ में कर लिया।* वि. सं. १६०० (ई. सन् १५४३) में इसने भीनमाल प्राप्त करने के लिए जालोरी पठानों पर भी चढ़ाई की लेकिन इस युद्ध में तीर लग जाने के कारण इसकी मृत्यु हो गई।†

अकबर के समय मुग़ल साम्राज्य अत्यन्त विशाल और शक्ति-शाली बन गया। उसने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए राजपूतों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। राजपूत-मुगलाई वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुए। जयपुर के राजा बिहारीमल ने (१५६२ ई. में) इस नयी नीति को जन्म दिया। धीरे-धीरे राजपूताना के शासकों—जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बून्दी, जैसलमेर आदि ने मुगलाई अधीनता स्वीकार कर ली। चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह अकबर की इस नीति को धार्मिक व राजनैतिक पतन समझते थे। अकबर की शक्ति को प्रथम बार अरावली पहाड़ों के निवासियों से चुनोती प्राप्त हुई। साम्राज्यवादी अकबद ने चित्तौड़ पर आक्रमण वि. सं. १६२४ (ई. सन् १५६७ अक्टूबर) में कर दिया। राणा उदयसिंह राजनैतिक और परम्परा-गत परिस्थितियों से बाध्य होकर अपनी नीति न अपना सका। वह शान्ति चाहता था।1 सामन्तवर्ग चित्तौड़ को स्वतंत्र रखना चाहता था अतः राणा चित्तौड़ छोड़ कर चला गया। चित्तौड़ की रक्षा का भार राठौड़ जयमल, पत्ता, कल्ला आदि सरदारों ने अपने ऊपर लिया। सिरोही के राव मानसिंह ने, जिसको महाराणा उदयसिंह ने अपने यहां शरण दी थी, इस युद्ध में भाग नहीं लिया।

अकबर की शक्ति को दूसरी बार अरवली पहाड़ से चुनोती राणा प्रताप ने दी जो कि उदयसिंह की मृत्यु के बाद वि. सं. १६२८ (ई. सन् १५७२) में गद्दी पर बैठा था। राणा प्रताप इस कार्य में अकेला नहीं था। जोधपुर का राव चन्द्रसेन और सिरोही का राव सुरताण द्वितीय भी इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। गुजरात विजय के लिए और बाद में गुजरात तक जाने के लिए निष्कंटक मार्ग की आवश्यकता समझ कर अकबर सिरोही पर अधिकार करना चाहता था। १५७२-७६ तक सिरही की राजगद्दी के तीन उत्तराधिकारियों में सुरताण, कल्ला व बींजा-संघर्ष चल रहा था। सुरताण जिस समय गद्दी पर बैठा वह १२ वर्ष का बालक ही था। बींजा, जो दीवान का कार्य करता था, ने सुरताण को रामसीण भगा दिया परन्तु महाजल देवड़ा के पुत्र कल्ला ने महाराणा की सहा-यता से सिरोही पर कब्जा कर लिया। सुरताण ने जालोर के मालिकखां पठान

* डा. जी. एन. शर्मा कृत मेवाड़ एण्ड दी मुगल्स, पृ. ५६-५७।
† नैणसी की ख्यात।

की सहायता से सिरोही पर पुनः अधिकार कर लिया। सिरोही के घरेलू झगड़ों का लाभ उठा कर अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को भेज कर सिरोही पर अधिकार करना चाहा। सूरताण ने आबू पर्वत की शरण ली, परन्तु रायसिंह ने सुरताण को हरा दिया। सुरताण ने अकबर की अधीनता वि. सं. १६३४ (१५७७ ई.) में स्वीकार करली।* वि. सं. १६३७ (१५८० ई.) में सिरोही को मुगलाई सरकार बनाया गया और अजमेर सूबे के अन्तर्गत कर दीया गया।† बींजा जो अब तक सिरोही से हट कर ईडर राज्य में रहने लगा था, रायसिंह से आ मिला और उसने रायसिंह से समझौता करना चाहा कि सिरोही का राज्य प्राप्त करने में यदि मुगलाई शक्ति का सहयोग उसे प्राप्त होवे तो वह आधी सिरोही मुगलों को सौंप देगा। सुरताण ने भी रायसिंह को इन्हीं शर्तों पर मुगलाई सहायता के लिए लिखा।‡ अकबर ने सुरताण की शर्तें स्वीकार कर बींजा को सिरोही से निकाल दिया। शीघ्र ही मुगल बादशाह को यह मालूम हुआ कि सुरताण और जालोर का ताजखां महाराणा प्रताप की सहायता§ कर रहे हैं तो सुरताण को अधिकार में रखने के लिए सिरोही का आधा भाग जो सुरताण ने मुगलों को सौंपा था, महाराणा प्रताप के छोटे भाई जगमाल को वि. सं. १६४० (सन् १५८३ ई.) में दे दिया। जगमाल ने अकबर की अधीनता पहले ही स्वीकार करली थी।

जगमाल की सिरोही में नियुक्ति सुरताण और राणा प्रताप दोनों के लिए खतरा था। इससे वंशीय युद्ध की संम्भावना बढ़ने लगी। जगमाल धीरे-धीरे पूर्ण सिरोही पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। अकबर की इस कूटनीति ने सुरताण को उसका घोर विरोधी बना दिया। जगमाल ने सिरोही पर अपना अधिकार स्थापित कर, बींजा से मित्रता स्थापित करली। सूरताण अरवली पहाड़ों में चला गया। अकबर ने सुरताण को पकड़ने के लिए जगमाल की सहायता के लिए जोधपुर के शासक रायसिंह राठौड़ को भेजा परन्तु सुरताण ने दत्ताणी के

---

* अकबरनामा (बेवरिज अनुवाद) जिल्द ३, पृ० २६६-६७। ओझा: बीकानेर राज्य का इतिहास जिल्द १, पृ. १७४।

† आइने अकबरी: जिल्द १, पृ० ४८५ व पृ० ४६२। पी. शरण: प्रोवेन्सीयल गवर्नमेंट ऑफ दी मुगलस् पृ. १२८।

‡ ओझा: बीकानेर का इतिहास जिल्द १, पृ. १७६।

§ राणा प्रताप मुगलों से सन् १५७६ ई. में हल्दी घाटी में हार कर मुगलों के विरुद्ध उदयपुर, ईडर, जालोर और सिरोही राज्यों का संयुक्त मोर्चा बनाने लगा था। डा. शर्मा: मेवाड़ एण्ड दी मुगल पृ. १०८।

युद्ध में (अक्टूबर १५८३) जगमाल और रायसिंह की सम्मिलित सेना को बुरी तरह से हराया। दोनों मुगलाई सेनापति मारे गए।* सिरोही पर सुरताण का पुनः अधिकार हो गया।

अकबर ने दताणी युद्ध में शाही हार का बदला लेने के लिए वि. सं. १६४४ (सन् १५८८ ई.) में जानबेग की अध्यक्षता में एक सेना भेजी।† जगमाल के स्थान पर बींजा सिरोही का शासक स्वीकार कर लिया गया। जानबेग जोधपुर के शासक मोटा राजा उदयसिंह सहित सुरताण के विरुद्ध आबू पहाड़ की ओर चला। आबू का घेरा डाला गया पर एक माह के बाद भी आबू पर मुगलाई अधिकार न हो सका। वीरता जब सफलता न दे सकी तो उदयसिंह ने कूटनीति से काम लिया। उसने शान्ति वार्ता के लिए सुरताण को लिख भेजा। सुरताण ने सन् १५८८ ई. में बगड़ी के ठाकुर बेरीसाल की सुरक्षा-सौगन्ध पर अपने सामन्त देवड़ा सावतसी के नेतृत्व में एक दल नीतोड़ा में भेजा। उदयसिंह ने राम-रत्न-सिहोत द्वारा देवड़ा शान्ति वार्ता के दल को मरवा डाला और नीतोड़ा को लूटना प्रारम्भ किया।‡ उधर बींजा आबू के घेरे को और मजबूत बना कर सुरताण को वहां से निकल जाने को बाध्य करने लगा। वास्थान की लड़ाई में§ सुरताण की पुनः विजय हुई। इस लड़ाई में बींजा मारा गया। उदयसिंह राव कल्ला को सिरोही का उत्तरदायित्व सौंप कर जोधपुर चला गया। सुरताण ने कल्ला से सिरोही छीन ली।$ १५९६ ई. में अकबर ने जोधपुर के शासक शूरसिंह को गुजरात भेजा। उसे फरमान दिया कि राव सुरताण को भी अधीन करे। शूरसिंह ने पूर्ण सफलता प्राप्त की¶ और शाही सेना की सहायता के लिए उसने अपनी एक टुकड़ी शेरसिंह को दी। अकबर की मृत्यु वि. सं. १६६२ (१६०५ ई.) में हो गई लेकिन सुरताण वि. सं. १६६७ (१६१० ई.) तक जीवित रहा।

सिरोही के शासक (वि. सं. १६६७ से १७१४–सन् १६१० ई. से १६५७ ई. तक) मुगलों की सेवा में रहे परन्तु कोई महत्वपूर्ण स्थान इन्हें मुगलाई राज-नीति में प्राप्त हुआ प्रतीत नहीं होता है। वि. सं. १७१४ (१६५७ ई.) में मुगल

---

* अकबरनामा भाग ३, पृ. ४१३

† जोधपुर की ख्यात भाग १, पृ. १००।

‡ रेउ : मारवाड़ का इतिहास जिल्द १, पृ. १७४।

§ अकबरनामा जिल्द ३, पृ. ६४१।

$ जोधपुर राज्य की ख्यात भाग १, पृ. १०० ; मुंहणोत नेणसी की ख्यात जिल्द १, पृ. १३४ ; बांकीदास की बात संख्या ८७१।

¶ अकबरनामा जिल्द ३, पृ. ७२५।

बादशाह शाहजहां बीमार पड़ा। उसके पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिये युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक शाहजादा राजपूत शासकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए पत्र व्यवहार करने लगा। सिरोही के शासक अखैराज द्वितीय से शाहजादा मुराद, जो कि गुजरात का सूबेदार था, इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करने लगा। शाहजहां के प्रथम पुत्र दारा के पत्र भी अखैराज के पास आते रहे। दारा के पत्रों में जो वि. सं. १७०३ से १७१४ (१६४६ ई.से १६५७ ई.) तक के प्राप्त हुए हैं उनमें अखैराज के शाही सेवा में उपस्थित होने तथा निष्कंटक शासन करने का आदेश था व मुराद के विरुद्ध शाही सेवा में लगे रहने की हिदायत थी।* अखैराज ने दारा का पक्ष लिया परन्तु दारा धरमत के स्थान पर १६५७ में औरंगजेब से हार कर लाहोर व सिन्ध की तरफ चला गया। फिर १६५८ ई. में अहमदाबाद पर अधिकार करके जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह के निमंत्रण पर मारवाड़ की ओर चला गया। ऐसी स्थिति में दारा ने सिरोही के अखैराज से पुनः सहायता मांगी और मारवाड़ की ओर जाता हुआ सिरोही आया।

दारा देवली (अजमेर के पास) युद्ध में १६५६ ई. में, हार कर मेड़ता, पीपाड़, सिरोही होता हुआ अहमदाबाद की ओर चला गया। औरंगजेब ने १६५८ ई. में दिल्ली पर अधिकारकर लिया। राजपूताना के शासकों जयपुर के जयसिंह, जोधपुर के जसवन्तसिंह और सिरोही के अखैराज ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। जसवन्तसिंह दारा का पीछा करता हुआ सिरोही आया। उसे गुजरात का सूबेदार बना दिया गया था। उसने सिरोही की राजकुमारी आनन्दकुँवरी (अति सुखदे) से शादी की। अखैराज वि. सं. १७३० (१६७३ ई.) में मर गया। कई देवड़ा सामन्तों ने जसवन्तसिंह के साथ दक्षिण में मरहटों के विरुद्ध युद्धों में भाग लिया था। जसवन्तसिह की मृत्यु वि. सं. १७३५ (ई. सन् १७७८ नवम्बर) में जमरूद थाने में हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अजीतसिंह पैदा हुआ। औरंगजेब ने अजीतसिंह को जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार न करके, जोधपुर राज्य मुगलाई साम्राज्य में मिला दिया। दुर्गादास के नेतृत्व में जोधपुर के राठौड़ बालक अजीतसिंह को दिल्ली से भगा कर, राव बैरीसाल के पास सिरोही लाए† परन्तु बैरीसाल मुगलाई शक्ति के विरुद्ध बालक को शरण नहीं देना चाहता था। इस पर जसवन्तसिंह की

---

* ओझा : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. २५६–२६२।

† सरकार : औरंगजेब का इतिहास जिल्द ३, पृ. ३३४–३५।
अजितोदय : सर्ग ७, श्लोक ४–७।

विधवा राणी अतिसुखदे की सलाह से पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणा ब्राह्मण की स्त्री को उसे सौंप दिया गया।* सिरोही के गांव कालिन्द्री में अजीतसिंह का लालन-पालन होने लगा। औरंगजेब ने वि.सं. १७३६ (१६८० ई.) में मेवाड़ व मारवाड़ पर आक्रमण कर दिया। उसके पुत्र अकबर को दुर्गादास ने अपने पिता के विरुद्ध करके अपनी ओर मिला लिया। दुर्गादास अकबर के नेतृत्व में उदारवादी मुगल शासन की स्थापना करना चाहता था जिससे अजीतसिंह को जोधपुर का शासन प्राप्त हो सके। उसने मेवाड़, जयपुर व सिरोही के शासकों को औरंगजेब के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने की योजना में सम्मिलित करना चाहा। अकबर के विद्रोह को सहायता न देने का व उसे पकड़ने का आदेश औरंगजेब की ओर से शाहजादा मुअज्जम का आदेश १६८८ ई. में बैरीसाल को प्राप्त हुआ।† अतः जब दुर्गादास अकबर को लेकर सिरोही पहुँचा तो महाराव ने उसकी सहायता नहीं की। इस पर अकबर कुछ दिन आबू में रहकर डुंगरपुर की ओर चला गया।‡ जब तक औरंगजेब की मृत्यु नहीं हुई तब तक अजीतसिंह सिरोही के पहाडों की ओर से मुगलों से युद्ध करता रहा।

औरंगजेब की मृत्यु वि. सं. १७६३ (ई. सन् १७०७) के बाद मुगलों की शक्ति क्षीण होने लगी। अजीतसिंह सिर्फ जोधपुर का शासक ही नहीं बन गया, उसे १७१५ ई. में गुजरात की सुबेदारी भी प्राप्त हो गई। देवड़ा ठाकुर पाडीव (सिरोही का सामन्त) महाराव की ओर से अभयसिंह राठौड़ व सरबुलन्दखां के बीच के युद्ध में (१३३० ई.) लड़ने गया जहां उसकी वीरता से अभयसिंह की विजय हुई। इसके बाद सिरोही में जोधपुर का प्रभाव स्थापित हो गया।

मुगलों के लिए सिरोही का अत्यन्त महत्व था। गुजरात व दक्षिण भारत में जाने का मार्ग सिरोही होकर ही जाता था अतः वे हमेशां इस बात का ध्यान रखते थे कि सिरोही शासक उनकी अधीनता में ही रहें। सिरोही १५८० ई. से अजमेर सूबे की एक सरकार बनाया गई परन्तु मुगलों को वहां से कर-वसूली का ही अधिकार था।

* रेउ : मारवाड़ का इतिहास जिल्द १, पृ. २५४।
† ओझा : सिरोही का इतिहास पृ. २६६।
‡ अजितोदय : सर्ग ११, श्लोक २१–२६।

सिरोही राज्य का अंग्रेजों से सम्बन्ध

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना वि. सं. १८१४ (१७५७ ई.) में हुई। भारत में मराठा शक्ति की प्रगति में पानीपत के मैदान में १७६१ ई. में हार प्राप्त होने पर, कुछ समय के लिये रुकावट पैदा हो गई थी। इसी बीच में अंग्रेजों ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना लिया। १७९८ ई. में अंग्रेजी गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली ने सहायक नीति द्वारा अपनी शक्ति का प्रसार करके अंग्रेजी साम्राज्य की वृद्धि की। ई. सन् १८०० से १८२० तक अंग्रेजी साम्राज्य का ताण्डव नृत्य होता रहा। सिन्धिया व भौंसले जैसी मराठी शक्तियों ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। राजपूताना के शासकों ने मराठों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों की शरण ली। सिरोही शासक भी अंग्रेजी सुरक्षा प्रणाली के अन्तर्गत आ गये।

सिरोही शासक बैरीसाल और जोधपुर के शासक मानसिंह में इस बात पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि जालोर के घेरे के समय मानसिंह ने जब अपना कुटुम्ब सिरोही भेजा तब उन्हें शरण नहीं दी। यह शत्रुता उदयभान (ई.सन् १८०८-१८१८)के काल तक बनी रही। मारवाड़ के सामन्त मानसिंह का सहयोग पाकर, सिरोही को लूटने लगे। स्वयं महाराव उदयभान को अपने पिता की अस्थियां गंगा में डाल कर लौटते वक्त गिरफ्तार कर महाराजा मानसिंह ने उससे सवा लाख रुपया लेकर मुक्त किया।* महाराव ने सिरोही पहुँच कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं की। इस पर मानसिंह ने ई.सन्१८१६ में पुनः आक्रमण कर सिरोही

---

* जोधपुर राज्य की ख्यात में ५०-६० हजार रुपयों का रुक्का लिखा जाना दिया है जिल्द ४, पृ. ४६६ ; राजपूताना गजेटियर में ५ लाख रुपयों का उल्लेख है (जिल्द ३ (अ), पृ. २४३)।

को लूट लिया। ढाई लाख रुपया वसूल किया गया और सिरोही के पुराने रिकार्ड जला दिये गए। उदयभान ने मानसिंह का कर्ज चुकाने के लिए नए कर लगाए और उन्हें सख्ती से वसूल करने लगा। इस पर सामन्तों व जनता ने उदयभान को गद्दी से उतार करके उसके भाई शिवसिंह को गद्दी पर बिठा दिया। मानसिंह फिर भी सिरोही पर आक्रमण करता रहा। उसने सिरोही पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए उदयभान को मुक्त कराना चाहा पर वह असफल रहा। सिरोही में आन्तरिक अराजकता फैलने लगी। भील व मीणों ने उपद्रव शुरू कर दिए। कई सामन्त पालनपुर के राज्य के अधीन चले गए। राज्य की आमदनी ६०,०००)रु० ही रह गयी। जोधपुर के शासक मानसिंह को बाहर के आक्रमण का भय रहने लगा। ऐसी परिस्थितियों में महाराव शिवसिंह ने अंग्रेजों से सुरक्षा की सन्धि वि. सं. १८८० (१८२३ ई.) में करली। जोधपुर के शासक मानसिंह ने सिरोही पर राठौड़ों का आधिपत्य जताना चाहा। महाराज अभयसिंह के समय से ही सिरोही के शासक जोधपुर के सामन्त बनकर रहे हैं, इस तर्क पर सिरोही की मान्यता लेनी चाही पर कर्नल टॉड ने मानसिंह के इस तर्क को अमान्य कर ११ सितम्बर, १८२३ ई. को महाराव शिवसिंह से सन्धि कर सिरोही को अंग्रेजी सुरक्षा में ले लिया। इस सन्धि के अनुसार यह शर्तें* तय की गईं:—

(अ) सिरोही राज्य ने अंग्रेजी राज्य की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया।
(आ) अन्य राज्यों से झगड़ा होने पर अंग्रेजी मध्यस्थता स्वीकार की गई।
(इ) शासन के क्षेत्र में अंग्रेजी प्रतिनिधियों की राय स्वीकार की गई।
(ई) अंग्रेजी सरकार आंतरिक उपद्रव को दबाने में सहायता देगी।
(उ) उदयभान के जीवनकाल में शिवसिंह संरक्षक रहेगा। उसकी मृत्यु के बाद यदि उसके कोई उत्तराधिकारी हो तो उसे सिरोही का शासक बनाया जायेगा।
(ए) अंग्रेजी सरकार को वार्षिक आय का ३/८ भाग खिराज के रूप में मिलेगा।
(ओ) सिरोही के पास अंग्रेजी फौज रहने पर उसकी रसद का इन्तजाम सिरोही राज्य करेगा।

इस सन्धि के अनुसार सिरोही का राज्य अंग्रेजी राज्य की संरक्षता में ले लिया गया। सिरोही राज्य का खिराज १५,००० भिलड़ी रुपयों में निश्चित किया गया। सिरोही राज्य की आन्तरिक दशा को सुधारने के लिए अंग्रेजी

* एचीशन : ट्रीटीज, एनगेजमेण्टस् एण्ड सनदस् जिल्द ३, पृ. ३१०।

प्रतिनिधि स्पीयर्स* नामक अंग्रेज नियुक्त किया गया। उसने सिरोही राज्य में हस्तक्षेप करके राज्य सरकार को दृढ़ बनाने का प्रयास किया। बम्बई से एक अंग्रेजी सैनिक टुकड़ी मंगा कर, भीलों और मीणों के उपद्रवों को शान्त किया गया। इस सेना का खर्च सिरोही को देना था परन्तु धन की कमी के कारण अंग्रेजी सरकार से पचास हजार रुपया बिना ब्याज के कर्ज लिया गया, जिसके बदले में चूंगी आय का तीन चौथाई हिस्से का अधिकार दो वर्षों के लिए अंग्रेजी सरकार को सौंपा गया।†

स्पीयर्स की सहायता से सिरोही राव ने नीमज ठाकुर, जो कि अत्यन्त उपद्रवी था, को अधीन किया। मई १८२४ की सन्धि द्वारा निमज ठाकुर ने महाराव को अपनी सेवाएँ व अपनी आय का ३/८ भाग देना निश्चित किया। निमज ठाकुर बहाल कर दिया गया। महाराव ने अंग्रेजी सहायता से पालनपुर के अधीन कई सामन्तों को, जो सिरोही की अधीनता छोड़ कर चले गए थे, प्राप्त करना चाहा परन्तु सिर्फ मंडार व जिलवाड़ा के ठाकुर पर ही अधिकार किया जा सका। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें १८१७ के बाद पालनपुर के अधीन जाने को स्वीकार नहीं किया। १८३२ ई. में सिरोही से अंग्रेजी प्रतिनिधि हटा लिया गया और वि. सं. १८९३ (१८३६ ई.) में ऐरनपुरा में अंग्रेजी सैनिक छावनी स्थापित करके सिरोही का उत्तरदायित्व छावनी के कमान्डर मेजर ड्राउनीगे को सौंपा‡ गया व सिरोही का सम्बन्ध नीमच एजेन्सी से कर दिया गया। वि. सं. १९०३ (१८४६ ई.) में उदयभान की मृत्यु हो गई। उसका कोई उत्तराधिकारी न होने पर अंग्रेजी सत्ता ने शिवसिंह को सिरोही का शासक स्वीकार कर लिया।

१८४५ ई. में आबू की आबहवा को स्वास्थ्यप्रद देख कर अंग्रेजी सरकार

---

* राजपूताना गजेटियर भाग ३-अ, पृ० २४५।

† एचीशन : ट्रीटीज, एनगेजमेण्टस् एण्ड सनदस् जिल्द ३, पृ. ३१३।

‡ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३-अ, पृ० २४५।

ने वहां पर सेनिटोरियम बनाया ।* सिरोही का शासन अत्यन्त खर्चीला होता जा रहा था । महाराव पर दो लाख रुपयों का कर्ज हो गया था । अतः अंग्रेजी सरकार ने सिरोही को अपने प्रत्यक्ष शासन में आठ वर्ष के लिए ले लिया ।3 जोधपुर लीजॉन की सहायता से वि. सं. १९१० (ई. सन् १८५३) में ठाकुर नाथूसिंह के उपद्रव को शान्त किया गया । वि. सं. १९१४ (१८५७ ई.) के भारतीय विप्लव में सिरोही शासक ने अंग्रेजों की सहायता की । ऐरनपुरा की छावनी में भी विप्लव का प्रभाव पड़ा । मीणों व भीलों के अलावा अन्य सिपाही अंग्रेजों के विरुद्ध होकर आबू पर्वत पर चले गये, जहां अंग्रेज रहते थे । महाराव ने इस समय गोरे अफसरों की रक्षा की और अंग्रेजी सरकार के राज्य-भक्त बने रहे । विद्रोह दबा दिया गया । अंग्रेजी सरकार ने प्रसन्न होकर, विप्लव की समाप्ति के बाद सिरोही से जो खिराज १५,०००) रु० लिया जाता था घटा कर ६८८१·४ रु० कर दिया ।† अपनी वृद्धावस्था के कारण शिवसिंह शासन के प्रति ध्यान नहीं देने लगा । इस पर अंग्रेजी सरकार ने शासन का उत्तरदायित्व १८६१ ई. में इसके पुत्र उम्मेदसिंह को सौंप दिया । १८६२ ई. में सिरोही राज्य को गोद लेने की सनद अंग्रेजी सरकार से प्राप्त हुई ।

महाराव उम्मेदसिंह के राज्यकाल में बी. बी. एण्ड सी. आई. रेल मार्ग सिरोही राज्य में होकर निकाला गया । महाराव ने रेलमार्ग बनाने के लिए भूमि निःशुल्क दी और अफीम के अलावा सब प्रकार का यातायात बन्द कर दिया ।

---

* आबू पर सेनेटोरियम निर्मित करने पर अंग्रेजी समझौते पर ये शर्तें निश्चित की गई—

(अ) यह स्वास्थ्यप्रद सेनेटोरियम नक्की झील के किनारे की भूमि पर होगा (आ) सैनिक गांवों में न जा सकेंगे और वे नागरिकों—विशेषकर स्त्रियों को तंग नहीं करेंगे । (इ) गाय, बैल, कबूतर का मारना व गौमांस पहाड़ पर ले जाना वर्जित होगा । (ई) मन्दिरों में अंग्रेजी हस्तक्षेप नहीं होगा, साधु व फकीरों को तंग नहीं किया जायगा । (उ) महाराव की आज्ञा बिना माउन्ट आबू पर वृक्षों को नहीं काटा जायेगा । (ऊ) नक्की झील के किनारे के मन्दिर के पास मच्छी पकड़ना वर्जित होगा । (ए) सैनिकों को खेत व फसल में दखल करने से रोका जायगा । (ऐ) मार्ग के रास्ते सर्वदा खुले रहेंगे । (ओ) महाराव का यह उत्तरदायित्व नहीं होगा कि वे सेनेटोरियम की रसद का प्रबन्ध करें । (औ) कुलियों, पथप्रदर्शकों को पूर्ण मजदूरी दी जायगी । (अं) अन्य सुविधाओं का प्रयोग बिना महाराव की आज्ञा के गैर कानूनी होगा । (एचीशन : ट्रीटीजज एनगेजमेन्टस एण्ड सनदस् जिल्द ३, पृ. ३१५)

† सिरोही राज्य के शासन प्रबन्ध में शीथिलता प्रवेश होने पर लेफ्टीनेंट कर्नल सर लारेन्स ने आठ वर्ष के लिए सिरोही को अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत कर दिया । ए. जी. जी. ने सैयद निआमतअली को महाराव का सलाहकार बनाकर भेजा । (उपरोक्त, पृ. ३१६)

आबू पर्वत पर कई अंग्रेजी व योरुपीय कुटम्ब निवास करने लगे। सिरोही की जनता भी वहां जाकर बसने लगी। अतः वहां के म्यूनिसिपल उत्तरदायित्व विभिन्न अधिनियम बना कर वृद्धि की गई। सफाई का अधिकार भी नगरपालिका को दिया गया। फौजदारी व दीवानी मामलों का अधिकार, जहां तक स्थानीय सिरोही की जनता से सम्बन्धित था, सिरोही न्यायालयों को दिया गया। अंग्रेजी न्याय से सिरोही की जनता के धार्मिक तथा रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप न करने की हिदायत दी गई।* दूसरे वर्ष ही १८६७ ई. में सिरोही राज्य ने अंग्रेजों के साथ अपराधी निर्वासन सन्धि करके, अपराधियों को आश्रय न देने का विश्वास दिलाया। अंग्रेजी सरकार ने इस पर प्रसन्न होकर महाराव को १५ तोपों की इज्जत प्रदान की। यों उम्मेदसिंह का शासन भी सिरोही की जनता पर कठोर शासन था। राज्यकोष खाली हो रहा था। कर अधिक लगाए जा रहे थे। ऐसी स्थिति में १८६६ में अंग्रेजी सरकार सिरोही को पुनः अपने अधिकार में रखना चाहती थी परन्तु यह समझौता हस्ताक्षरित नहीं हो सका क्योंकि जहां महाराव आठ वर्ष के लिए शासन सौंपना चाहते थे वहां अंग्रेजी सरकार १२ वर्ष के लिए राज्य लेना चाहती थी।† महाराव के समय ठाकुर नाथुसिंह के उपद्रव के कारण सिरोही का प्रबन्ध ए. जी. जी. के राजनैतिक सुपरिन्टेन्डेन्ट से हटा कर, ऐरनपुरा सैनिक छावनी के कमान्डर को सौंप दिया गया। सिरोही का पुलिस अधिकार सैनिकों को सौंप दिया गया। इस सैनिक सहायता से नाथुसिंह के उपद्रव ही शान्त नहीं हुए बल्कि सिरोही, मारवाड़ व मेवाड़ की सीमा के उपद्रवों को भी दबा दिया गया।‡

१८८० ई. में अजमेर–अहमदाबाद रेल-मार्ग निर्मित हो गया। भारत सरकार ने सिरोही राज्य को यातायात आय की हानि के क्षतिपूर्ति के रूप में १०,०००) रुपया वार्षिक देना तय किया। परन्तु यह सुविधा मई १८८६ ई. में हटा ली गई क्योंकि पोलिटिकल रेजीडेन्ट ने यह लिख भेजा कि सिरोही के राज्य की आमदनी में इस आय की कमी के कारण कुछ भी हानि नहीं हुई है। वि. सं. १९३६ (१८७९ ई.) में महाराव केसरीसिंह और अंग्रेजी सरकार के बीच नमक की सन्धि हुई। राज्य भर में नमक बनाने पर रोक लगा दी गई। नमक के निर्यात और आयात पर अंग्रेजी कर लगने लगा। इसके बदले में महाराव को

---

* एचीशन : ट्रीटीजस, एनगेजमेन्टस एण्ड सनदस्, पृ. ३१७।

† उपरोक्त पृ. २८४।

‡ राजपूताना गजेटियर जिल्द ३-अ, पृ. २४७।

१८००) रुपये वार्षिक और आधे कर पर जनता के लिए १३,००० मण नमक प्राप्त करने की सुविधा मिली।* १८८२ ई. में १८,००० मण नमक प्राप्त करने का अधिकार मिल गया और १८८४ ई. में ९०००)रुपये सालाना कर दिए गए परंतु आधे कर को हटा कर पूरा कर लिया जाने लगा। '१८८९ ई. में सिरोही शासक महाराव कहलाने लगे। १८९५ में सिरोही महाराव को के. सी. एस. आई. व १९०१ में जी. सी. आई. ई. की पदविएँ प्राप्त हुईं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सिरोही में अंग्रेजी हकूमत पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी। महाराव तो नामका शासक था । अंग्रेजों की यह नीति थी कि देशी नरेशों को अयोग्य बना कर उनके शासन को पूर्णतया अंग्रेजी शासन में लिप्त कर देना। सिरोही के वित्तीय-क्षेत्र में अंग्रेजी प्रभाव की चरम-सीमा वि. सं. १९६० (१९०४ ई.) में पहुँची जबकि सिरोही सिक्के को अंग्रेजी सिक्के में परिणित कर दिया गया। अंग्रेजी कलदार सौ रुपयों में सिरोही के एकसौ चालीस भीलड़ी रुपयों का अनुपात प्रचलित किया गया। सिरोही सरकार को भारत सरकार ने पन्द्रह लाख कलदार रुपयों तक ही परिवर्तित करने की आज्ञा दी। सिरोही में रानी विक्टोरिया की स्मृति में एक तालाब का निर्माण किया गया। (१९११ ई.) में जार्ज-पंचम भारत यात्रा को आया। उस समय दिल्ली दरबार में सिरोही शासक ने जाकर अपनी राज्य-भक्ति प्रदर्शित की। इस पर उसे महाराजाधिराज का पद प्राप्त हुआ। वि. सं. १९७४ (१९१७ ई.) में अंग्रेजी सरकार के साथ एक समझौता हो गया जिसके अनुसार १ अक्टूबर, १९१७ को आबू (६ वर्ग मील तक की भूमि) पर्वत पर अंग्रेजी अधिकार हो गया। इस क्षेत्र के आय, न्याय और अन्य प्रशासकीय अधिकार अंग्रेजी सरकार को दे दिए गए। अंग्रेजी सरकार ने इसके बदले में पचीस हजार रुपया वार्षिक देना तय किया। देलवाड़ा शराब की दुकान के बन्द करने की क्षति पूर्ति के लिए दो हजार रुपया दिया गया। अंग्रेजी सरकार ने खराड़ी और अनादरा में अपने न्याय-सम्बन्धी अधिकार महाराव को लौटा दिये। सिर्फ आबूरोड स्टेशन और आबू पर्वत की सड़क पर (सड़क के दोनों ओर ३० फुट तक) अंग्रेजी अधिकार रखा। यह तय किया गया कि सिरोही दरबार इस सड़क पर गुजरने वाले माल असबाब पर किसी प्रकार का कर नहीं लगा सकेगा। आबू म्यूनिसिपल शासन के लिए सिरोही बजट से जो आठ हजार रुपया रखा जाता था वह बन्द हो गया। सिरोही सरकार वार्षिक खिराज ६८८१ रु. ४ आ. था, वह नहीं लिया जायेगा परन्तु महाराव

---

* एचीशन : ट्रीटीज एगनेजमेण्टस एण्ड सनदस्, जिल्द ३, पृ. ३२०।

आबू के दवाखाने के लिये एक हजार रुपये देते रहेंगे।* आबू पर्वत पर अंग्रेजी अधिकार १९४७ ई. तक रहा। जब भारत से अंग्रेजी सत्ता समाप्त होने लगी तब आबू सिरोही राज्य को वापस लौटा दिया गया।

महाराव केसरीसिंह के काल में प्रथम महायुद्ध (ई. सन् १९१४-१९१८ में) हुआ। अंग्रेजी सरकार को महाराव ने अपनी सैन्य-शक्ति जो कि ५२ अश्वारोही, १४० पैदल, तथा ३५३ सशस्त्र पुलिस थी, प्रस्तुत की। युद्धकाल के बाद १९१९ में सिरोही राजपूताना एजेंसी में मिला दिया गया। १८८१ ई. से सिरोही पश्चिमी राजपूताना एजेन्सी के अन्तर्गत था। वि. सं. १९७७ (१९२० ई.) में वृद्धावस्था के कारण महाराव ने राज्य का भार अपने पुत्र स्वरूपरामसिंह को दे दिया। स्वरूपरामसिंह के समय सिरोही सामन्तों में महाराव द्वारा उनकी जागीरों में हस्तक्षेप होने के कारण असन्तोष फैल गया। अंग्रेजी सरकार ने इसकी जांच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की। इस आयोग की सिफ़ारिशों पर अंग्रेंजी सरकार ने सामन्तों को सुविधाएँ प्रदान की। १९२२ में भील आन्दोलन को अंग्रेजी सैनिक शक्ति की सहायता से बुरी तरह कुचल दिया गया। यह 'भील हत्याकाण्ड' राष्ट्रीय प्रेरणा का स्रोत बन गया। स्वरूपरामसिंह अत्यन्त कमजोर व अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। इसके राज्यकाल में मुसलमानों का प्रभाव राज्य में वहुत बढ़ा, जिसका लाभ उठा कर अंग्रेजी सरकार ने सिरोही में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य पैदा करवा दिया। महाराव के कोई पुत्र नहीं था। एक पुत्र लखपत-रामसिंह था जो कि रतलाम की राणी लीला से पैदा हुआ था। चूंकि महाराव ने लीला से शादी तलवार भेजकर की थी अतः अंग्रेजी सरकार ने लखपतराम-सिंह को सिरोही का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया। लखपतरामसिंह, ने सन् १९३९ को एक स्मृति-पत्र अंग्रेजी सरकार को दिया जिसमें उल्लेख किया किया कि वह पासवान रानी का पुत्र नहीं बल्कि सिरोही गद्दी का असली हकदार है। स्टेट रिकार्ड में उसकी माता का पासवान होने का उल्लेख द्वैष के कारण लिख दिया गया है। अंग्रेजी सरकार ने अप्रेल, १९४५ में इसका निर्णय दिया और लखपतरामसिंह के स्मृति-पत्र को स्वीकार नहीं किया। स्वरूपरामसिंह की मृत्यु के बाद १९४६ ई. में अंग्रेजी सरकार ने मंडार की देवड़ा शाखा के तेजसिंह को राज्य-गद्दी पर बैठाया।† यह स्वरूपरामसिंह का निकट सम्बन्धी भी नहीं था फिर भी १ जुलाई, १९४६ को अंग्रेजी कूटनीति ने इसका

* एचीशन : ट्रिटीज एनगेजमेण्ट एण्ड सनदस्, जिल्द ३, पृ. ३२४-३२७।

† सिरोही एक्सट्रा आरडिनेरी गजट (११ मई १९४६) वर्ष ७, अंक १५।

राजतिलक करवा दिया। राजा के नाबालिग होने के कारण शासन का भार १४ अगस्त, १९४७ को एक रिजेन्सी कौन्सिल को सौंपा गया जिसमें राज-माता अध्यक्ष व दांता के महाराणा भवानीसिंह, मंडावर के ठाकुर भोपालसिंह सदस्य नियुक्त किए गए। १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हो गया। इस प्रकार सिरोही में अन्तिम समय तक अंग्रेजों का हस्तक्षेप बना रहा। जाते समय अंग्रेजों ने इस कौन्सिल को सिरोही का पूर्ण अधिकार सौंप दिया कि वह चाहे भारत में वीलिन हो या स्वतन्त्र इकाई बनी रहे। आबू भी सिरोही राज्य को दे दिया गया।

सिरोही में राजनैतिक चेतना

सिरोही में राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली लहर सन् १९०५ ई. में उठी जबकि बंगाल में बंग-भंग आन्दोलन व स्वदेशी आन्दोलन तीव्रता से फैल रहा था और गुजरात-महाराष्ट्र (बम्बई प्रान्त) में तिलक का गरम दल अंग्रेजों के विरुद्ध विहंगम रूप से संगठित हो रहा था। सिरोही मे अंग्रेजी प्रभाव का स्वरूप आर्थिक दशा में गिरावट के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। सिरोही स्वशासन की स्थापना के लिए एक सन्यासी स्वामी गोविन्द ने 'सम्प-सभा' की स्थापना की। इस सभा ने पहाड़ी लोगों—भीलों व मीणों में एकता स्थापित करने, मादक द्रव्यों व विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके, स्वदेशी राज्य स्थापित करने की चेतना फैलाई। सिरोही में इस प्रकार का पहला प्रकरण था जब कि महाराव के विरुद्ध जन आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। यह आन्दोलन १९६५ (१९०८ ई.) में कुचल दिया गया। १९२२-२३ में भारत में गांधीजी के नेतृत्व में एक व्यापक असहयोग आन्दोलन चला। सिरोही की जनता में भी राजनैतिक चेतना पुनः जागृति हुई। सामन्ती जुल्म के विरुद्ध १९२२ की मई में रोहिड़ा तहसील के गांवों में एक जबर्दस्त आन्दोलन उठा। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में गिरासियों व भीलों ने सिरोही शासन को समाप्त करने की आवाज

उठाई परन्तु अंग्रेजी सैनिक सहायता से यह आन्दोलन दबा दिया गया। भील आन्दोलन को दबाने में अंग्रेजी सत्ता ने मानवता को भूला दिया था। लगभग १८०० आदमी मारे गए। औरतों व बच्चों को भी गोलियों का शिकार बनाया गया। ६०० मकान जला डाले गये। इस हत्याकांड ने सारे देश को अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध कर दिया। इस कांड की आग अभी बुझने ही न पाई थी कि १९२४–२५ में प्रजा-विरोधी कानूनों के विरुद्ध "नौ प्रगना महाजन एसोशियेशन' ने आन्दोलन उठाया। उसे सफलता प्राप्त हुई और बैठ-बेगार जैसी कुप्रथायें बन्द कर दी गई।

बम्बई में रहने वाले सिरोही के उत्साही युवकों ने सिरोही की मौजूदा शासन व्यवस्था में असन्तोष के विरुद्ध संगठित रूप में आन्दोलन करने हेतु बम्बई में १६ अप्रेल, १९३४ को प्रजा-मण्डल की स्थापना की। इसका उद्देश्य सिरोही नरेश की छत्रछाया में जिम्मेदार हकूमत कायम करना था। १९३६ ई. में सिरोही में आन्दोलन उठा परन्तु यह आन्दोलन प्रभावशाली न हो सका। इसका एक महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि सिरोही में प्रजा-मण्डल का निर्माण २३ जनवरी १९३९ ई. में हो गया, जिसके नेतृत्व में स्वशासन का आन्दोलन चलाया जाने लगा। इस आन्दोलन में गोकल भाई भट्ट का मुख्य नेतृत्व रहा। १५ अगस्त, १९४७ को भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। सिरोही उस समय एक स्वतन्त्र इकाई बनाया गया था। सिरोही में संयुक्त राजस्थान की लहरें उठने लगी।* सिरोही के रिजेन्सी बोर्ड ने उदयपुर महाराणा द्वारा आयोजित संयुक्त राजस्थान की योजना में सिरोही को शामिल होने की स्वीकृति १३ सितम्बर १९४७ को दी परन्तु यह योजना कार्यान्वित न हो सकी। आबू में पाण्डया के नेतृत्व में राज्य-कौन्सिल निर्मित हुई और २४ अक्टूबर, १९४७ को सिरोही प्रजा-मण्डल की ओर से श्री जुहारमल सिंघी को उक्त कौन्सिल में लोकप्रिय मन्त्री बनाया गया।

नवम्बर १९४७ में सिरोही को गुजरात-प्रान्त में मिलाने का सुझाव प्रस्तुत किया गया क्योंकि सिरोही के कुछ क्षेत्रों में गुजराती प्रभाव बताया गया। १ फरवरी, १९४८ को सिरोही को गुजरात स्टेटस् एजेन्सी का भाग बना दिया गया। ८ नवम्बर १९४८ को सिरोही केन्द्रीय-शासन में ले लिया गया। फरवरी १९४८ ई. में गोकुल भाई भट्ट के नेतृत्व में प्रजा-मण्डल मंत्री-मण्डल का सिरोही में निर्माण हुआ। यह मंत्री-मण्डल सिरोही को राजस्थान में मिलाने के पक्ष में था। अतः

---

* मई, १९४७ सिरोही राज्य प्रजा-मण्डल ने अपने हाथल अधिवेशन में संयुक्त राजस्थान का प्रस्ताव स्वीकार किया था। आबू समिति प्रतिवेदन (राजस्थान सरकार) पृ. ४।

५ जनवरी, १६४६ ई. को भारत मंत्री सरदार पटेल ने सिरोही का शासन बम्बई सरकार को सौंप दिया। ताकि वह केन्द्र के नाम पर शासन करे। शीघ्र ही राजस्थान व गुजरात में सिरोही को अपने अपने राज्य में मिलाने के आन्दोलन उठे। भारतीय सरकार ने १६ नवम्बर, १६४६ को सिरोही के विभाजन की घोषणा कर आबूरोड़ व देलवाड़ा तहसील के ८६ गांवों को बम्बई में, तथा शेष भाग (१६७१ वर्ग मील) २६ जनवरी १६५० को सिरोही राजस्थान में मिला दिया।

इस विभाजन का समर्थन करते हुए सौराष्ट्र के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश व गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री हरसिद्ध भाई दिवतिया ने नवसारी में गुजराती साहित्य परिषद के १८ वें अधिवेशन (दिसम्बर १६५२) में उल्लेख किया कि भाषाकीय एवं ऐतिहासिक, भौगोलिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण से 'सिरोही व आबू गुजरात के भाग हैं।* वल्लभ-विद्यानगर के उपकुलपति ए. वी. पाण्डया ने 'आबू इन बोम्बे स्टेट' में इसी प्रकार से समर्थन किया है। राजस्थान ने सिरोही व आबू के बारे में सही तथ्य प्राप्त करने के लिए राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर के अध्यक्ष श्री जिनविजयजी मुनि की अध्यक्षता में ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाकीय व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जांच की। जब १६५४ में भारत के राज्यों में पुनर्गठन करने के लिये आयोग निर्मित हुआ तो उस आयोग के समक्ष राजस्थान सरकार ने आबू क्षेत्र पर राजस्थानी परम्परा के अधिकार की सम्पूर्ण सामग्री प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत की। राज्य पुनर्गठन आयोग ने आबूरोड और दिलवाड़ा तहसीलों को 'भाषाकीय, ऐतिहासिक, भौगोलिक और व्यवहारिक दृष्टि बिन्दू से' राजस्थान का अंग घोषित किया। इस आयोग की सिफारस को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने १ नवम्बर १६५६ को आबूरोड व दिलवाड़ा की तहसीलें राजस्थान में मिला दीं। सिरोही राज्य आखिर राजपूताना का ही एक भाग रहा।

* राजस्थान सरकार : आबू समिति प्रतिवेदन, पृ. २३।

सिरोही राज्य के प्रमुख सरदार*

सिरोही में सरदारों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—प्रथम शासक के कुटुम्ब के सदस्य, जिन्हें महाराज कहा जाता है। दूसरे वर्ग के सरदारों को ठाकुर राजश्री कह कर सम्बोधित किया जाता है। तीसरे वर्ग वालों को सिर्फ ठाकुर ही कहा जाता है। ये सब सरदार देवड़ा चौहान राजपूत हैं।

राजसाहिबानों में नांदिया, मनादर और अजारी के सरदारों को यह पद प्राप्त है। इनकी बैठक दरबार के सम्मुख होती है और दोहरी ताजमी प्राप्त है। पाड़ीव, जावाल, कालंदरी और मोटागांव के सरदार ठाकुर राजश्री हैं तथा नरेश के दाहिने हाथ की ओर दरबार में बैठते हैं। नीमज व पाड़ीव के ठाकुरों का समान पद होने के कारण, दोनों एकही साथ दरबार में नहीं आते हैं। रोहुआ और भटाणा के ठाकुरों को दोहरी ताजीम और भटवाड़ा व दबाणी को एक ताजीम प्राप्त है। पाडीव ठाकुर नए शासक के तलवार बांधता है।

नांदिया—यहां के सरदार महाराव रामसिंह हैं। इनकी सालाना जागीर की आय २५००) रु० है। ये महाराजा अभयसिंह के भाई हैं और रियासत को खिराज नहीं देते हैं।

मनादर—यहां के सरदार महाराज अभयसिंह अभी सिरोही नरेश हैं।

अजारी—महाराव के भाई महाराज ईश्वरसिंह यहां के राजसाहिबान हैं जिनकी वार्षिक आय ३,०००) रु० हैं।

मण्डार—इसकी दो पांतियां हैं। बड़ी पांति में तेजसिंह है जिनको पहले सिरोही की राज-गद्दी पर बैठाया गया था। छोटी पांति में अचलसिंह है। दोनों पांति वाले राज्य को ५० प्रतिशत खिराज देते हैं।

---

* ई. सन् १९४८ के अनुसार। अब तो जागीरों का राजस्थान सरकार ने पुनर्ग्रहण कर लिया है।

पाड़ीव—राव रिड़मल के दूसरे पुत्र गज्जा के बेटे डूंगरसिंह के वंश में डुँगरोत देवड़ा और डूंगरसिंह के चौथी पीढी में बज्जा हुआ जिसके वंशज बजावत देवड़ा कहलाए । पाड़ीव के ठाकुर राजश्री बाजावत देवड़ा हैं । तत्कालीन ठाकुर राजश्री बलवंतसिंह हैं । इनकी आय पांच हजार रुपये है जिसमें राज्य को वे ३७ प्रतिशत खिराज देते हैं ।

कालंदरी—इसके ठाकुर श्री डुंगरोत देवड़ा शाखा के हैं । तीन हजार रुपयों की आय में वे राज्य को ३७प्रतिशत खिराज देते हैं । वर्तमान ठाकुर चमनसिंह हैं ।

जावाल—यहां के ठाकुर डूंगरावत देवड़ा मेघसिंह है । आय ५०००) वार्षिक है तथा ६ आना प्रति रुपया खिराज देता है ।

मोटागांव—यहां के ठाकुर डुंगरावत देवड़ा मोहब्बतसिंह है । आय ४०००) वार्षिक है तथा ६ आना प्रति रुपया खिराज देता है ।

नीमज—के ठाकुर राजश्री हिम्मतसिंह ३७ प्रतिशत खिराज देते हैं । नीमज के तीन गांव पालनपुर रियासत में प्राप्त हुए थे ।

रोहआ व **दबाणी** के लाखावत ठाकुरों को पचास प्रतिशत, भटाणा का तेजावत देबड़ा पचास प्रतिशत खिराज देता है । सब से अधिक खिराज मंडवाड़ा के ठाकुर डूंगरसिंह जिसकी आय एक हजार रुपये है, आधा भोग व तीन चौथाई नकद के रूप में देता है ।

सिरोही के शासक

१. **मानसिंह**—वि. सं. १२३९–१२४२ (ई. सन् ११८२–८५)
जालोर के चौहान समरसिंह का पुत्र।

२. **प्रतापसिंह (देवराज)**—चौहानों की देवड़ा शाखा इसी के नाम से प्रचलित हुई।

३. **बीजड़ (विजयराज)**—वि. सं. १३३३–१३६७ (ई. सन् १२७६–१३१०)।

४. **लूंभा**—वि. सं. १३६७–१३७७ (ई. सन् १३१०–१३२१)।

५. **तेजसिंह**—वि. सं. १३७७–१३९३ (ई. सन् १३२१–१३३६)।

६. **कान्हड़देव**—वि. सं. १३९३–१४०० (ई. सन् १३३६–१३४३)।

७. **सामन्तसिंह**—वि. सं. १४००–१४०४ (ई. सन् १३४३–१३४७)।

टिप्पणी—सिरोही की ख्यात में तेजसिंह, कान्हड़देव व सामन्तसिंह का उल्लेख नहीं है
लेकिन शिलालेखों से इनका सिरोही पर राज्य करना ज्ञात होता है।

८. **रणमल्ल**—वि. सं. १४०४–१४४९ (ई. सन् १३४७–१३९२)।

९. **शिवभाण**—वि. सं. १४४९–१४८१ (ई. सन् १३९२–१४२४)।
पुरानी सिरोही को बसाने वाला।

१०. **सहसमल**—वि. सं. १४८१–१५०८ (ई. सन् १४२०–१४५१)।
नई सिरोही का बसाने वाला।

११. **लाखा**—वि. सं. १५०८-१५४० (ई. सन् १४५१–१४८३)।

१२. **जगमाल**—वि. सं. १५४०–१५८० (ई. सन् १४८३–१५२३)।

१३. **अखैराज (प्रथम)**—वि. सं. १५८०–१५९० (ई. सन् १५२३–१५३३)।

१४. **रायसिंह**—वि. सं. १५९०–१६०० (ई. सन् १५३३–१५४३)।

१५. **दूदा**—वि. सं. १६००–१६१० (ई. सन् १५४३–१५५३)।
रायसिंह का छोटा भाई।

१६. **उदयसिंह**—वि. सं. १६१०–१६१९ (ई. सन् १५५३–१५६२)। रायसिंह का पुत्र

१७. **मानसिंह**—वि. सं. १६१९–१६२८ (ई. सन् १५६२–१५७१)। दूदा का पुत्र।

१८. **सुरताण**—वि. सं. १६२८–१६६७ (ई. सन् १५७१–१६१०)।
लाखा के तृतीय पुत्र उदा के पोते भाण का पुत्र।

१६. **राजसिंह**—वि. सं. १६६६–१६७७ (ई. सन् १६१०–१६२०)।

२०. **अखैराज** (द्वितीय)—वि. सं. १६७७–१७३० (ई. सन् १६२०–१६७३)।

२१. **उदयसिंह**—वि. सं. १७३०–१७३३ (ई. सन् १६७३–१६७६)।

२२. **बेरीसाल** (प्रथम)—वि. सं. १७३३–१७५४ (ई. सन् १६७६–१६६७)।
उदयसिंह का भतीजा।

२३. **छत्रसाल**—वि. सं. १७५४–१७६२ (ई. सन् १६६७–१७०५)।
उदयसिंह का पुत्र।

२४. **मानसिंह** (द्वितीय)—वि. सं. १७६२–१८०६ (ई. सन् १७०५–१७४६)।
इसे उम्मेदसिंह भी कहा जाता है।

२५. **पृथ्वीसिंह**—वि. सं. १८०६–१८२६ (ई. सन् १७४६–१७७२)।

२६. **तख्तसिंह**—वि. सं. १८२६–१८३६ (ई. सन् १७७२–१७८२)।

२७. **जगतसिंह**—वि. सं. १८३६ (ई. सन् १७८२)।

२८. **बेरीसाल** (द्वितीय)—वि. सं. १८३६–१८६४ (ई. सन् १७८२–१८०८)।

२६. **उदयभान**—वि. सं. १८६४–१८७५ (ई. सन् १८०८–१८१८)।

३०. **शिवसिंह**—वि. सं. १८७४–१६०३ (ई. सन् १८०८–१८४७) संरक्षक।
वि. सं. १६०३–१६१६ (ई. सन् १८४७–१८६३) शासक।
उदयभान का छोटा भाई।

३१. **उम्मेदसिंह**—वि. सं. १६१६–१६३२ (ई. सन् १८६३–१८७५)।

३२. **केसरीसिंह**—वि. सं. १६३३–१६७७ (ई. सन् १८७५–१६२०)।

३३. **स्वरूपरामसिंह**—वि. सं. १६७७–२००२ (ई. सन् १६२०–१६४६)।

३४. **तेजसिंह**—वि. सं. २००३–२००६ (ई. सन् १६४६–१६४६)।
मंडार शाखा से आया। अंग्रेजी सरकार द्वारा नियुक्त।

३५. **अभयसिंह**—वि. सं. २००६ (ई. सन् १६४६) से।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
११	फुटनोट* १	प्रबन्ध १९ ई० सन्	प्रबन्ध ई० सन्.
१५	७	(१५७७ ई०)	(१४७७ ई०)
१६	७	(११९८ ई०)	(११९४ ई०)
	फुटनोट† १	ब्रह्मगुप्त (६२८) जिसने	ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) हुआ
१९	१	विष्णु पुराण में 'परीपुत्र	विष्णु पुराण में उल्लेख है कि परीपुत्र
२८	२	धारावर्ष ने	धारावर्ष की सहायता से
	३	श्रेय प्राप्त किया	श्रेय प्राप्त हुआ।
३४	२	[वि० सं० १३९३ १४०४]	[वि० सं० १३९३–१४००]
३५	६	(ई० सन ७३४७)	(ई० सन् १३४७)
४४	६	(१५७२ ई०)	(१५६२ ई०)
४५	१	मानसिंह द्वितीय	मानसिंह प्रथम
	५	(१५६३ ई०)	(१५६२ ई०)
४८	फुटनोट* ३	यों सूचना	यह सूचना
४९	१६	काफी ना देख	काफी न देख
५०	१७	राजा है जिसने	राजा था जिसने
५४	फुटनोट° ४	(१४ मार्च १६४९)	(१४ मार्च १६५९)
५६	फुटनोट‡ १	बैरीसाल के	बैरीसाल ने
५९	५	गांव ही गये	गांव ही रह गये
	१०	(ई० सन् १८९८)	(ई० सन् १७९८)
६२	८	चलता रहा	चलाता रहा
७६	९	भीमदेव गुजराज	भीमदेव गुजरात
७७	फुटनोट‡ २	विरुद्ध सेना भेजी	विरुद्ध भेजा
८१	८	और उसने रायसिंह से समझौता	पर उसने मुगलों से पृथक समझौता
८४	२४	बनाया गई	बनाई गई